भातखण्डे संगीत शास्त्र

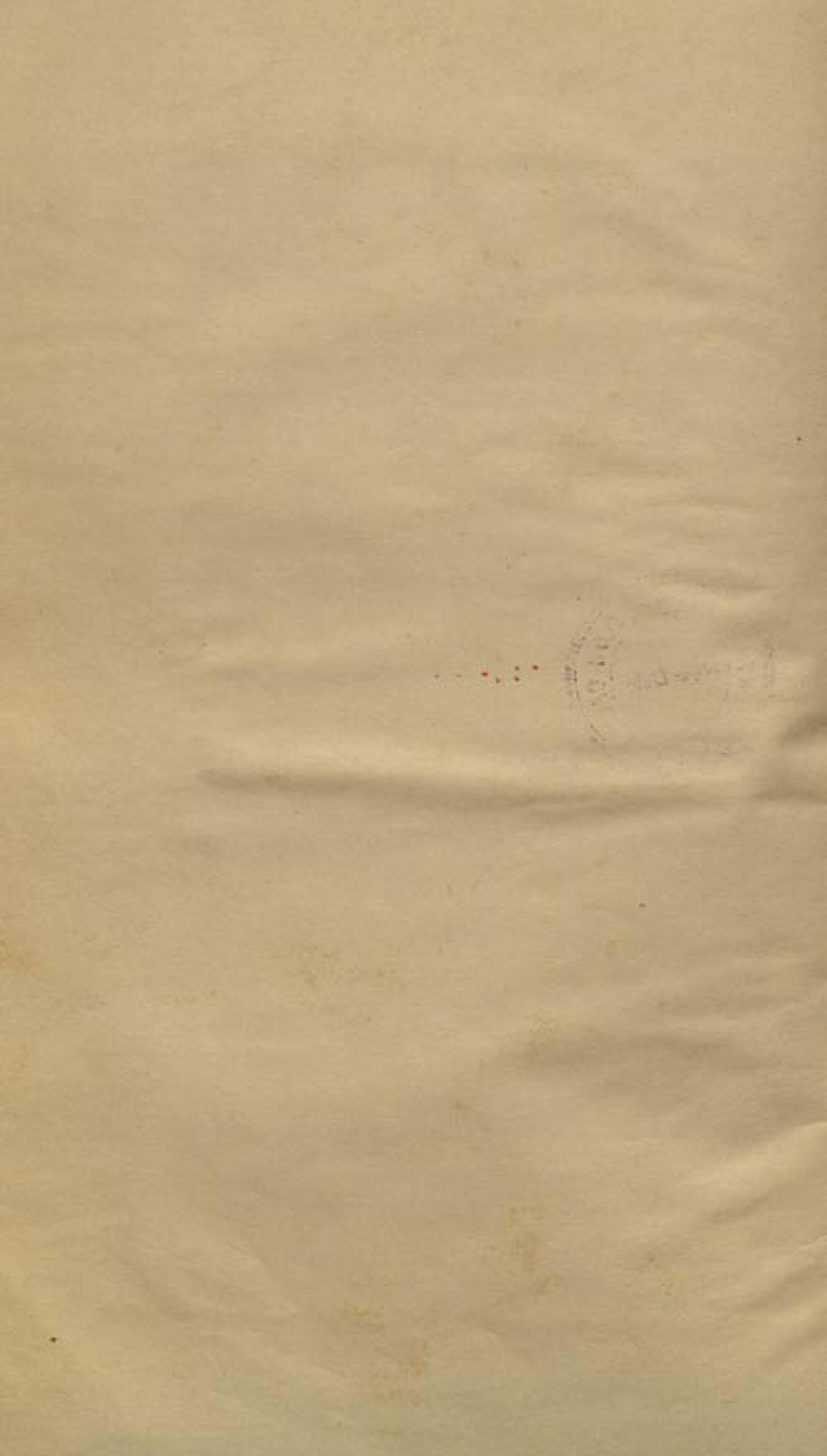
[हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति]

भाग तीसरा



वि० ना० भातखंडे

आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट दिल्ली-6



भातखंडे संगीत-शास्त्र

[हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति]

भाग तीसरा

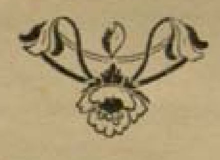


मूल लेखक—
श्री विष्णुनारायण भातखंडे
(पं० विष्णु शर्मा)

★

सम्पादक—
लक्ष्मीनारायण गर्ग

ने मराठी से हिन्दी में अनुवाद कराकर
संगीत कार्यालय, हाथरस
से प्रकाशित किया।



प्रथम संस्करण
मार्च, १९५६ ई०

मूल्य
६) छः रुपया

Printed at the SANGEET PRESS HATHRAS (India)
By Th. Bharat Singh and. Published By
L. N. Garg
SANGEET KARYALAYA HATHRAS. U. P. (INDIA)

प्रकाशक का वक्तव्य

संगीत जगत को श्री भातखण्डे जी की अमर देन "सङ्गीत शास्त्र" का यह तृतीय पुष्प समर्पित करते हुए आज हमें असीम हर्ष होरहा है। जिस ग्रंथ के लिये विगत ४० वर्षों से सङ्गीत के हिन्दी भाषी विद्यार्थी प्रतीक्षा कर रहे थे और जिसका अनुवाद प्रकाशित करने का साहस अब तक कोई भी न कर सका था; आज वह अद्वितीय एवं अपूर्व प्रयास पूर्ण होते हुए देखकर हमें सन्तोष होना स्वाभाविक ही है। सङ्गीत कार्यालय ने अपने जीवन काल में सङ्गीतोत्थान एवं सङ्गीत-साहित्य के विकास तथा प्रसारार्थ जो कार्य किया है वह सर्व विदित है, किन्तु जब वह नयनाभिराम पुष्प चतुर्मुखी वातावरण को सुवासित करके उसमें एक अभिनव आभा का प्रस्फुरण करता है, उसमें एक मौलिक भाव को अंकुरित करता है और उसमें एक आत्मिक आलोक की अभिवृद्धि करता है, तो हमारे अन्दर एक नवीन चेतना, नवीन स्फूर्ति और नूतन उल्लास तथा देदीप्यमान लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की नवीन प्रेरणा का उद्भव होने लगता है।

स्वर्गीय आचार्य भातखण्डे जी—जिनके उपनाम पंडित विष्णु शर्मा और चतुर पण्डित हैं—ने सङ्गीत शास्त्र Thoery की अगम्य और गहरी जानकारी के लिये मराठी भाषा में "हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति" शीर्षक से चार भागों का प्रस्तुतीकरण किया था, किन्तु काल प्रवाह की विमूढ़ावस्था में वे सर्व सुकृतियां अप्राप्य होगईं। सङ्गीत कार्यालय ने गुदड़ी में से दो लाल निकाल कर तो पारखी जिज्ञासुओं के सम्मुख पहले ही प्रकाश में लाकर रख दिये, अब यह तीसरा लाल प्रकाश में आरहा है और शीघ्र ही चौथा भी अपनी जाज्वल्यमान आभा से संगीत जगत को प्रदीप्त करेगा, जोकि इस कड़ी का सबसे विशाल और अन्तिम रत्न है। सङ्गीत जिज्ञासु यह जानकर प्रसन्न हुए बिना न रहेंगे कि चौथे भाग की छपाई भी आरम्भ हो गई है तथा शीघ्र ही वह प्रकाशित होने वाला है। चौथे भाग में लगभग ११०० पृष्ठ हैं, अतएव उसे पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध २ भागों में प्रकाशित करने का विचार किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की महत्ता का मूल्यांकन करने के लिए यहाँ कुछ लिखना, सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। हमारी विज्ञ पाठकों से यही विनय है कि वे इसकी गहराई के अतुल सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए और इसके विशाल आत्मिक-प्रकाश का अनुशीलन करने के लिए तथा इसके यथार्थ प्रारूप से अवगत होने के लिए, इस ग्रन्थ का आदि से अन्त तक गम्भीरता से अध्ययन करें।

इस अनुवाद—कार्य में हमें श्री भूषण जी सङ्गीताचार्य एवं अन्य महानुभावों से जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए हम उन्हें धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकते। साथ ही साथ हम अपने परमस्नेही श्री वी० एच० देवकरण के भी अत्यन्त आभारी हैं जिनकी कृपा से हमें इस पुस्तक की मराठी प्रति (जो कि आजकल अप्राप्य है) प्राप्त होसकी। सङ्गीतोत्थान के लिए ऐसे महानुभावों का निस्वार्थ सहयोग और प्रेम ही सङ्गीत कला को आगे बढ़ायेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

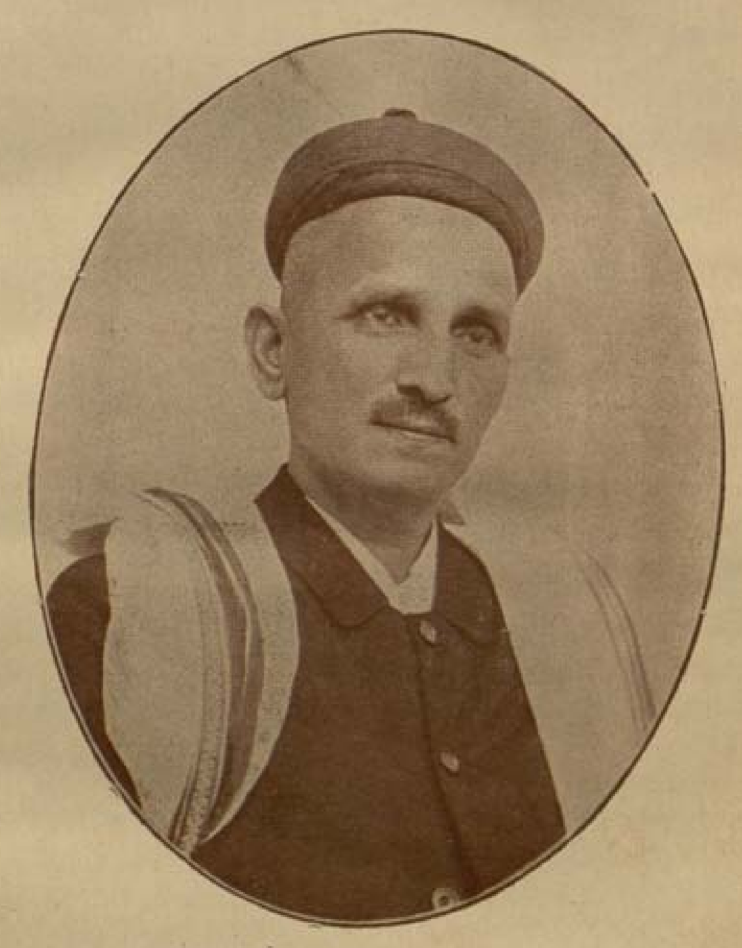
फाल्गुन शुक्ला पंचमी
सम्वत् २०१२

प्रभूलाल गर्ग



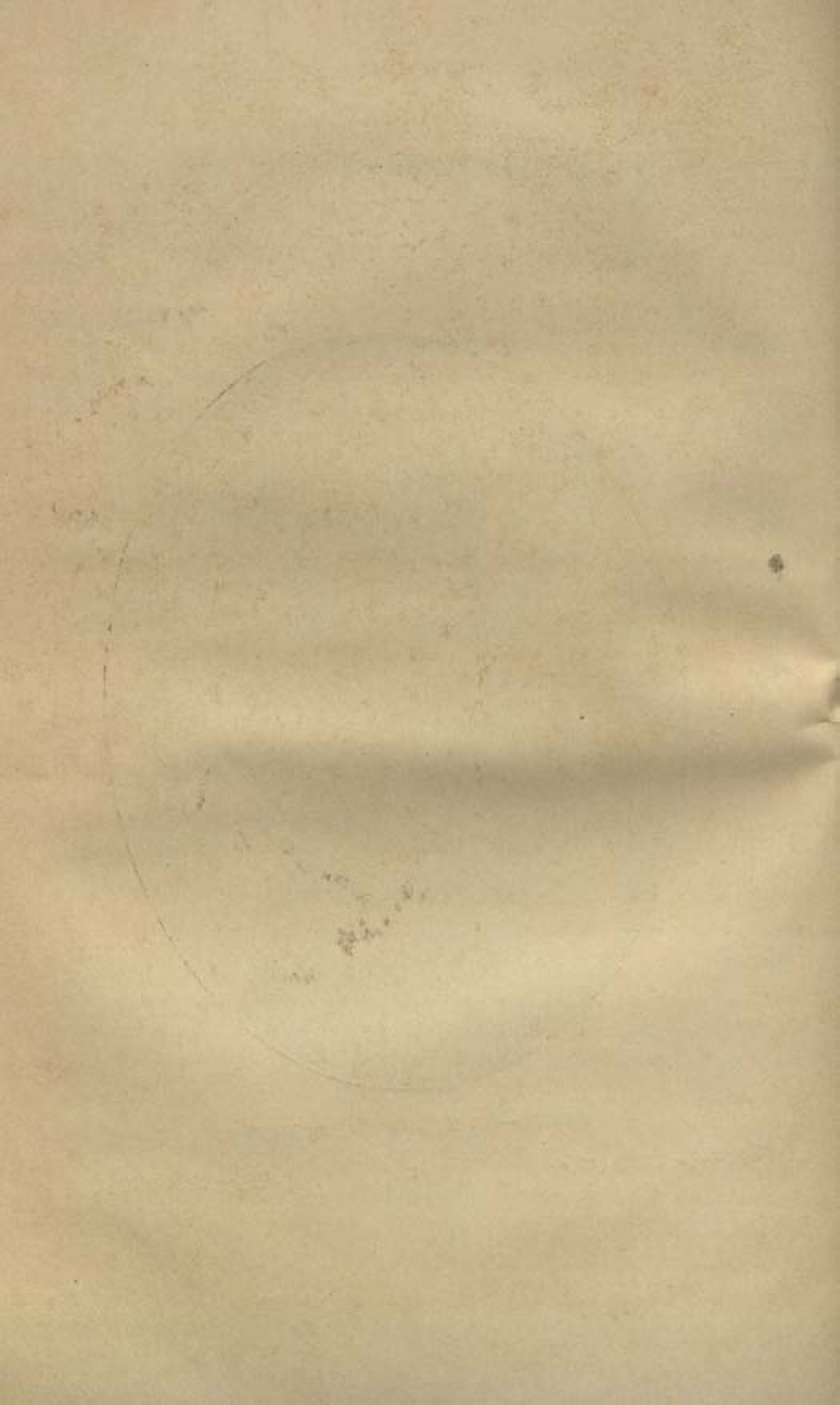
अनुक्रमणिका





ग्रन्थकार—कै० श्री विष्णुनारायण भातखंडे

जन्म—१० अगस्त १८६० :: मृत्यु—१६ सितम्बर १९३६



भातखण्डे सङ्गीत शास्त्र

(हिन्दुस्थानी सङ्गीत पद्धति)

भाग तीसरा

★

प्रिय मित्र ! इस प्रसङ्ग में मेरे मन में तुमको पूर्वी और मारवा नामक संधिप्रकाश मेल से उत्पन्न होने वाले रागों का यथायोग्य ज्ञान करा देना है। पिछली बार हम श्रुति स्वर प्रकरण और भैरव मेल जन्य रागों के विषय में लंबी चौड़ी चर्चा कर चुके हैं। प्रस्तुत पूर्वी और मारवा थाट का विचार वस्तुतः उसी समय होना चाहिये था, परन्तु भिन्न-भिन्न विषयों पर हमारे बोलते रहने से वैसा करने की फिर हमको सुविधा ही नहीं हुई। फिर भी जो कुछ हुआ वह भी बुरा नहीं हुआ। कारण, ऐतिहासिक महत्व की जो जानकारी मैंने तुमको उस समय दी थी, वह उचित ही थी। मेरी बताई हुई बातों से अब तुम्हें यह जानने में विशेष सुविधा प्राप्त होगी कि अपने सङ्गीत में कैसे-कैसे परिवर्तन हुये। अपने सङ्गीत के संस्कृत ग्रन्थ हमको कितना और कैसा काम देंगे, अपने शुद्ध स्वर सप्तक कैसे कैसे बदलते चले गये आदि प्रश्नों पर अब थोड़ा बहुत विचार करना उपयोगी होगा। अति कोमलतर, तीव्र, आदि स्वरों का शास्त्राधार प्राचीन ग्रन्थों में कौन सा और कैसा है, यह भी तुमको धीरे धीरे आगे मालुम होगा। अब तक जो चर्चा हमने की, उस से तुम्हारे ध्यान में यह आया ही होगा कि पिछले तीन चारसौ वर्षों में जो संस्कृत ग्रन्थकार हुए, वे प्राचीन सङ्गीत को भली प्रकार न समझने के कारण उस पर विशेष रूप से कुछ नहीं लिख सके। अलबत्ता उन्होंने अपने समय की बातें उचित ढङ्ग से लिखीं, यह स्वीकार करना पड़ेगा। कहीं कहीं तुमको ऐसा भी सन्देह हुआ होगा कि उन संस्कृत ग्रन्थकारों में से कुछ के प्रत्यक्ष सङ्गीत ज्ञान मध्यम कोटि के ही थे। ऐसा हो या न हो, परन्तु यह बात तो प्रायः सभी को स्वीकार करनी पड़ेगी कि फ़ारसी, उर्दू, हिन्दी आदि देशी भाषाओं में ग्रन्थ लिखने वाले जब प्रकाश में आये तब उनके ग्रन्थों को अथवा प्राचीन सङ्गीत शास्त्रज्ञ पंडितों को योग्य सहायता मिलने का प्रमाण उपलब्ध ग्रन्थों में नहीं दिखाई देता। "तोफे-तुल-हिंद" "नग़माते आसफी" "सरमाये अशरत" "सङ्गीत सार" "सङ्गीत कल्पद्रुम" आदि ग्रन्थ इस बात की साक्षी दे सकेंगे। इस दृष्टि से यदि ये ग्रन्थ प्राचीन शास्त्रों का उत्तम विश्लेषण करने में उपयोगी सिद्ध न हुए तो आश्चर्य क्या है ? फिर भी इन ग्रन्थों का उपयोग अपनी आज की नवीन पद्धति में होना बहुत सम्भव है। इसलिये उन्हें यथावकाश पढ़ने की सिफारिश मैं समयानुसार करता आया हूँ। ऐसे ग्रन्थों की संख्या अधिक नहीं है, ऐसा मेरा अनुमान है। गत दस बीस वर्षों के ग्रन्थों के विषय में मैं कुछ नहीं कहना चाहता "तोफे-तुल-हिंद" नामक ग्रन्थ कलकत्ते में देखा जा सकता है, ऐसा कहते हैं। "नग़माते

आसफी" ग्रन्थ की एक प्रतिलिपि मुझे लखनऊ के मेरे एक मित्र ने भेंट की है, और उसके बारे में उसका अंग्रेजी भाषांतर भी भेजा है। ग्रन्थ छोटा होने पर भी मनोरंजक है, उसका सार मैं आगे तुमको बताने वाला हूँ। मेरे मित्र लिखते हैं कि यह ग्रन्थ अवध प्रान्त के चौथे नवाब "आसफ़उद्दौला" के पास के मोहम्मद रजा नामक एक संगीत विद्वान ने लिखा है। वे ऐसा भी कहते हैं—

"This Nabab removed the Capital form Fyzabad (Ajodhya) to Lucknow. The famous musician 'Shoree' was also attached to his Court".

इससे "आसफ़ी" ग्रन्थ का काल निर्णय सहज में हो सकेगा। इसी नाम का ग्रन्थ मैंने स्वतः बनारस के महाराजा के पुस्तक संग्रह में देखा था और तत्संबंधी मैंने अपनी याददाश्त की पुस्तक में ऐसी टिप्पणी लिख रक्खी थी। "ओसूले-नग़माते-आसफ़ी गुलाम रजा इबने महम्मद १२२४ फसली"। "नग़माते आसफी" ग्रन्थ छाप कर प्रकाशित करने के विषय में मैंने अपने मित्र से प्रार्थना की है और उसे उन्होंने मान भी लिया है। यहाँ एक बात तुमको ध्यान में रखकर चलने को मैं कहने वाला हूँ, और वह यह कि यद्यपि अपने संगीत पर वर्तमान मुसलिम गायकों ने अपना थोड़ा बहुत पैर जमाया है तथापि वे आज किसी खास यावनिक ग्रंथ के अनुसार चलते हैं, ऐसा नहीं समझा जायेगा। खैर अब प्रस्तुत विषय की ओर लौटता हूँ। अपनी आज की अर्वाचीन हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति में संधिप्रकाश रागों का वैचित्र्य कुछ अपूर्व माना गया है, यह मैंने कहा ही था। आज की अर्वाचीन पद्धति में ऐसा मैं विशेष रूप से कहता हूँ; और ऐसा करने का कारण तुम्हारे ध्यान में सहज में ही आयेगा। यह तो तुम जानते ही हो कि तुम्हारा आज का प्रचार प्रायः "लक्ष्य संगीत" मतानुसार है, ठीक है न ? परन्तु उस पद्धति का मुख्य आधार शुद्ध स्वर मेल "शंकरा भरण" अथवा "बिलावल थाट" है। उत्तर के आधार ग्रन्थ कौनसे हैं, यह तुमको ज्ञात है और उनके शुद्ध स्वर सप्तक कौनसे हैं यह भी तुम्हारे ध्यान में आचुका है।

प्रश्न—जी हाँ. आपका कहना यह है कि भरत, मतंग, शार्ङ्गदेवादिकों की दृष्टि से जय लोचन और अहोबल अर्वाचीन लेखक प्रमाणित हुए तो आज की अपनी पद्धति उनसे भी आगे की है, यही न ?

उत्तर—तुम ठीक समझे। दक्षिण की ओर जो स्थिति आज है, उसे देखें तो एक दृष्टि में उधर की आज की पद्धति भी कुछ नवीन ही है, ऐसा कोई भी कह सकता है। यह सुनकर तुमको थोड़ा सा आश्चर्य होगा। तुम पूछोगे कि उधर के शुद्ध स्वर सप्तक तो परम्परागत माने जाते हैं फिर वहाँ की पद्धति अर्वाचीन कैसी ? तुम्हारी यह शंका उचित ही है। परन्तु उस पद्धति की नवीनता भिन्न दृष्टि से देखनी है, वह कैसे ? यह बताता हूँ। आज जो संगीत पद्धति दक्षिण की ओर प्रचार में है, उसका आधार ग्रन्थ कौनसा है ? उसका संस्कृत आधार तो "चतुर्दंडिप्रकाशिका" और "राग लक्षण" ये कहे जायेंगे, और प्राकृत आधार कहें तो 'गायक लोचन' और 'संगीत संप्रदाय प्रदर्शिनी' यह कहे जायेंगे। यह अन्तिम दोनों ग्रन्थ तेलगू भाषा में हैं।

प्रश्न—तो फिर ऐसा मालुम होता है कि दक्षिण की ओर आज कल दो मत प्रचलित हैं।

उत्तर—ऐसा कहा जाय तो कोई हानि नहीं, परन्तु उस मत के औचित्य अनौचित्य के विषय में हम विचार नहीं करते हैं। अपना विषय उससे भिन्न है। दक्षिण में आज जो पद्धति चालू है, उसमें ७२ जन्य मेल की व्यवस्था है, और वह व्यवस्था पिछले ग्रन्थकारों द्वारा न अपनाई जा सकी।

प्रश्न—आपके इस कथन से एक खास बात की ओर मेरा ध्यान पहुँचा! आप कहेंगे अति प्राचीन शास्त्रकारों की दृष्टि से कल्लिनाथ, रामामात्य, सोमनाथ, पुण्डरीक, आदि पंडित जब अर्वाचीन माने गये तो चतुर्दंडिकार, व्यंकटमखी और उनके अनुयायी सभी पंडित उनसे भी अर्वाचीन कहे जायेंगे। यही न?

उत्तर—हाँ, मैं अब यही कहने वाला था। इसमें मैं कुछ अपूर्व ज्ञान तुमको दे रहा हूँ सो बात नहीं। वह सब तुमको प्रथम ही ज्ञात हो चुका है। अर्वाचीन शब्द का उपयोग मैंने किया, इसलिये यह स्पष्टीकरण करना भी आवश्यक हुआ। अब आगे चलता हूँ। तुम्हारे ध्यान में यह अच्छी तरह से आ चुका होगा कि अपनी हिन्दुस्थानी पद्धति को "रे ध, रे॒ ध॒, ग॒ नि॒" इन तीन जोड़ियों के भिन्न-भिन्न प्रयोगों द्वारा विशेष वैचित्र्य प्राप्त हुआ है। वास्तव में प्रथम संधिप्रकाश मेल, फिर रे ध लेने वाला मेल और तदनन्तर मृदु ग नि युक्त मेल। यह क्रम कौनसे रसिक और मार्मिक मनुष्यों के मनमें, अपने पूर्वजों के प्रति, आदर भाव उत्पन्न नहीं करेगा? कहीं कुछ अपवाद को छोड़कर अपनी पद्धति की सारी व्यवस्था स्थूल मान से इसी क्रम के अनुसार है, यह मानना अनुचित न होगा। कोई-कोई तो ऐसी मजे की कल्पना करते हैं कि ये तीन जोड़ी मानो अपने संगीत वृक्ष की तीन मुख्य शाखा ही हैं। इस प्रत्येक शाखा में दो-दो उपशाखा जोड़ें तो अपने नौ थाटों की सुव्यवस्था लग जायेगी। शेष बचे हुए 'टोड़ी' थाट को वह एक मिश्र और अनियमित मेल कहते हैं, अस्तु। अब हम पूर्वी थाट जन्य रागों पर विचार करते हैं। यह संधि प्रकाश थाट होने से भैरव थाट के रागों का विवेचन करते समय उनमें आये हुए कुछ मूल तत्वों का तथा अन्य आवश्यक बातों का कहीं-कहीं मुझे निर्देशन करना पड़ेगा। ऐसा होने से विषय अधिक समाधान कारक होकर स्पष्ट होगा और उससे तुम्हारा हित ही होगा।

प्रश्न—बहुत उत्तम। जो आपको हमारे हित के लिये उपयोगी जान पड़े, उसे खुशी से कहिये। "पूर्वी" थाट के स्वर हमें ज्ञात हैं, अतः उससे आगे चलने दीजिये।

उत्तर—हाँ, मैं भी ऐसा ही करने वाला था। "पूर्वी" थाट से उत्पन्न होने वाले जो सायंगेय राग हैं, वे सूर्यास्त से घंटा, डेढ़ घंटा पहिले शुरू करने का रिवाज अपने यहाँ है।

प्रश्न—ठीक है, क्यों कि यह संधि प्रकाश थाट है। इन रागों को शुरू करने के पहले, अपने गायक क्या-क्या गाते रहते हैं?

उत्तर—वे बहुधा कोमल गांधार और निषाद ग्रहण करने वाले राग उस समय गाते रहते हैं।

प्रश्न—ऐसे रागों से एक दम पूर्वी थाट के रागों में जाना विचित्र सा लगता होगा, ठीक है न ?

उत्तर—वैसा जरूर हुआ होता परन्तु अपने पंडित बड़े दूरदर्शी थे, वहाँ उन्होंने एक उत्तम योजना कर रक्खी है।

प्रश्न—वह क्या ?

उत्तर—वहां उन्होंने "मुलतानी" नामक एक बहुत ही मधुर प्रवेशक राग योजित किया है। उनकी यह योजना बड़ी मार्मिक है। इसमें संशय नहीं। दोपहर के बाद "पीलू, बरवा, धानी, धनाश्री, भीमपलासी, पटमंजरी, प्रदीपकी, हंसकंकणी" वगैरह रागों को गाते-गाते आगे सन्धिप्रकाश रागों में शुरू होने के लिये एकाध प्रवेशक राग की आवश्यकता अपने ही आप उत्पन्न होती है। ऐसे समय में यह "मुलतानी" राग उस आवश्यकता को उत्तम रीति से पूरा करता है। यथा सम्भव अपने को मृदु गांधार और निषाद ग्रहण करने वालों रागों का विचार नहीं करना है। इसलिये मुलतानी राग का अधिक विवेचन यहां नहीं करेंगे, परन्तु एक छोटीसी, किन्तु महत्वपूर्ण बात की ओर तुम्हारा ध्यान आकर्षित करता हूँ और वह यह कि मुलतानी में एक गांधार के सिवाय बाकी के सभी स्वर प्रथम ही पूर्वी थाट के विद्यमान रहते हैं।

प्रश्न—कोई कहेगा कि वह कोमल गांधार मानो पिछले थाटों से पूर्वी थाट का मिलान ठीक कर देने के वास्ते ही किसी ने रखा है, ठीक है न ?

उत्तर—ठीक समझे। मैं यही कहने वाला था। ऐसी बातें पहिले-पहल देखने में साधारण सी दिखाई देती हैं तो भी उन चतुर-विद्यार्थियों के लिये मनोरंजक और महत्व की होती हैं। अपने सङ्गीत में ऐसी अनेक विशेषताऐं विचार करने के लिये निकलेंगी।

प्रश्न—यहां बीच ही में, एक प्रश्न पूछने की इच्छा होती है। सायंगेय सन्धिप्रकाश रागों में प्रवेश करने को जैसे यह मुलतानी राग है, वैसे ही प्रातःकाल के रागों में ले जाने वाला कोई प्रकार अपने पंडितों ने योजित कर रक्खा है क्या ?

उत्तर—यह तुम्हारा प्रश्न कुछ कठिन है। मुलतानी "तोड़ी" थाट का एक जन्य राग है। तुमको इसी थाट से उत्पन्न होने वाला उत्तरांग वादी राग वहां चाहिये था, ऐसा मालुम होता है। स्वयं "टोड़ी" राग जो अपने गायक आज गाते हैं वह उत्तरांग वादी जरूर है, परन्तु उसका समय प्रातःकाल नहीं है। वह राग अपने यहां सवेरे नौ-दस बजे गाया जाता है। "टोड़ी" राग उषाकाल में गाना अपने आज के गायकों को मान्य होगा, इसमें सन्देह है। पद्धति की दृष्टि से टोड़ी सरीखा तीव्र म, नि स्वर ग्रहण करने वाला प्रकार तुमको सवेरे दस बजे के समय में थोड़ा विसङ्गत ही मालुम देगा, परन्तु समाज में प्रचलित भावना को मान देकर चलने से अपना हित ही होगा। टोड़ी के दस बारह प्रकार हिन्दुस्तानी गायक गाते हैं। उनमें कोमल मध्यम लगने वाले भी बहुत हैं, यह आगे तुमको दिखाई देगा। कोमल मध्यम के लिये आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं क्योंकि प्राचीन ग्रन्थकार टोड़ी का थाट हिन्दुस्थानी भैरवी सरीखा मानते हैं, ऐसा मैंने पहिले कहा ही था। जिस टोड़ी प्रकार में भैरवी, आसावरी, जौनपुरी, गांधार, खट,

देशी वगैरह राग स्पष्ट मिश्रित हुए से दिखाई देंगे वह सवेरे दस बजे के समय गाना सुसङ्गत ही होगा। अब कोमल रे, ग, ध और तीव्र म, नि स्वर लगने वाली तोड़ी का प्रश्न रहेगा, परन्तु हम व्यवहार के अनुसार चलें वही अच्छा। हिन्दुस्थानी गायक मध्य रात्रि को कान्हड़ा गाकर फिर "मालकोश" राग गाते हैं, यह भी कह देता हूँ। उस राग का विचार आगे होगा ही। सवेरे का एकादि प्रवेशक राग होता तो अच्छा होता ऐसी तुम्हारी कल्पना ठीक ही है। कुछ दिवसों में अपने विद्वान कदाचित् तत्सम्बन्धी कोई युक्ति निकालेंगे। जैसे-जैसे सुशिक्षित सङ्गीत विद्वानों की धाक अशिक्षित कलावन्तों पर बैठेंगी, वैसे ही वैसे सुपरिणामकारक सुधार होते चलेंगे। समाज में जागृति तो अब सर्वत्र हुई ही है और छोटे-बड़े प्रयत्न भी चालू हैं। सङ्गीत की योग्यता जैसी पश्चिम की ओर मानी जाती है वैसी अपने यहां भी होनी चाहिये। सङ्गीत के विषय में Ritter साहब का कहा हुआ यह उद्गार बहुत मनोरंजक है:—

"Music is not an isolated art. It forms a most necessary link in the great family of arts. Its origin is to be looked for at the same source as that of the other arts. Its ideal functions are also the same.

Art in general is that magic instrumentality by means of which man's mind reveals to man's senses that mystery, "the Beautiful" The eye sees it; the ear hears it; the mind conceives it; our whole being feels the breath of God; but to penetrate in its full signification, that mystery, that charm which the "beautiful" thus exercises over us, is to penetrate the inconceivable ways of God. The sense of the beautiful is that God-like spark which the Creator has placed in the soul of man; and the necessity of giving it reality is that irresistible power which makes man an artist.

Not through one art-form does the idea of the beautiful reveal itself to us, but as in the whole creation, through many-sidedness. Though different in their forms, which are necessarily dictated by the material which every species of art employs in order to express itself, yet the one idea of the beautiful is contained in all arts.

To say that it requires more genius to create master-works in one art than in another, is certainly a wrong assertion. Shakespeare, Beethoven, Michael Angelo, Phidias, who can prove which one of these minds was the greatest? In the plastic arts the idea of the beautiful is expressed through outward forms. The eye serves the mind as interpreter of that ideal of which the artist finds models in the nature which surrounds him.

In Music, the world, with its emotions and feelings, is driven back on the heart. The ideal of the artist thus rests in his own

bosom. The idea of the beautiful is expressed through tone-forms, which the ear reveals to the mind. Thus though deeply felt by every man, music's real nature is less understood than that of the more realistic plastic arts; hence the dualism of which I have spoken before."

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—वह अपने समय के सङ्गीत की स्थिति के विषय में ऐसा कहते थे:—

"While the state of musical culture to-day offers many elements which justify the hopes of all lovers of music ; while everywhere we perceive much activity-united in many cases to promising talents-yet music is, by many intelligent people, scarcely regarded as an art. Many persons of tolerably liberal views still consider it merely as an accessory accomplishment, and would gladly banish it, if the prevailing superficial fashion (so much to be regretted) of knowing how to play or how to sing a little were not too strong to be resisted. And many consider music as an unfit occupation fos masculine minds. None of the other arts is encumbered with so many prejudices as music. Though accessible to every human being, its right position in the family of arts is, in many cases, under-rated; its philasophical and aesthetical meaning entirely overlooked or not understood at all.

While we possess many technical and aesthetical works on architecture, sculpture, painting, and peotry, within the comprehension of the general public, music has, as yet to struggle, in order to find its due and true place. That which, in a great measure, accounts for this state of things, is the one-sided education of our musicians themselves in general at least. Their whole attention is directed, in most instances, towards the technical side of musical art. Their appreciation or the history, the philosophy, of their art is a dark indistinct understanding and presentiment; and many of the false theories about music are due, in a great extent to their want of a more general knowledge and logical power. Thus the aesthetical side of music is entirely in the hands of philosophers and speculative minds, who have unfortunately not the necessary technical musical education, and whose theories, therefore, are built on sand. Or else it rests in the hands of amateur authors, who write about the art as their fancies lead them. Of course, there are honourable exceptions."

अपनी ओर आजतक वैसी स्थिति नहीं है, पर वे साहब आगे क्या कहते हैं सो सुनो—

In Poetry, the objective nature of the plastic arts and the subjectivity of music are, in an ideal sense, united. In reading the description of a palace, of a beautiful figure, of a landscape, our mind sees those objects in great reality; while at the same time, the peculiar mood in which these pictures, when associated with certain lyric and tragic situation place us, thrill our soul with emotions and feelings in a great degree similar to those awakened by music.

Thus the aim of all arts is the same, though every one of them arrives at its own ends by different roads. Every one of them possesses, more or less, its moral, refining ennobling qualities; every one of them can also be made the vehicle of demoralization, or to serve frivolous purposes. It is the true artist's mission to keep his ideal of the "beautiful" in all its forms, chaste and pure. Not by descending to the level of every day's trivialities will he fulfil this noble mission, but by lifting up his eyes towards the purifying atmosphere of the God-like ideal. Art is a wonderful mirror of man's intellectual and sensual life, elevated into the region of the beautiful. Its influence upon man's mind is thus ennobling, strengthening, elevating. Music is a member, and not the least, in the family of arts"

देखा ? यह कितना ऊँचा विचार है। हमारे यहां अभी यह विषय विद्वानों के हाथ में यथायोग्य रीति से आया नहीं है, इसलिये कुछ बातें तो अभी दूर ही हैं, परन्तु सङ्गीत की योग्यता इतरकाल से कम नहीं है; यह उन्होंने ठीक ही कहा है। यह समझ अपने यहां पहले समाज की होनी चाहिये। ऐसा होने पर सभी बातें अपने ही आप मिल जायेंगी।

प्रश्न—महाराज ! उक्त विद्वान का मत मुझे अक्षरशः पसन्द है। मैं तो और एक कदम आगे बढ़कर कहूँगा कि सङ्गीत जैसी श्रेष्ठ दूसरी कला ही नहीं।

उत्तर—ऐसा कहने वाले नहीं निकलेंगे यह तो मैं नहीं कह सकता, परन्तु इस विवाद में हम क्यों पड़ें ?

Blasserna कहता है:—"Music is certainly the least material of all the fine arts. There is no question in it, as in sculpture, of copying idealised nature; nor, as in painting, of uniting to the study of nature the geometrical idea of perspective, and the optical idea of colours and their contrasts. Even architecture has a larger basis in nature itself. The trunks of trees and

their branches, the grotto, the cavern, have suggested to the architect the first principles of his art, dictated to him by the wants of man and the conditions of the strength of materials; but in music nature offers scatcely anything. It is true it abounds in musical sounds, but the idea of musical interval is but little suggested by the song of birds; and the idea of simple ratios is almost entirely wanting, and without these two ideas no music can exist. Man has, therefore, been obliged to create for bimself his own instrument and this is the reason why music has attained its full development so much later than its sister arts.

अस्तु ! खैर, अब प्रस्तुत विषय की ओर लौटता हूँ। इस पूर्वी थाट में, मैं तुमको अच्छे बारह तेरह राग बताने वाला हूँ। उनके नाम हैं:—१ पूर्वी, २ श्री, ३ गौरी, ४ रेवा, ५ मालवी, ६ त्रिवेणी, ७ टंकी, ८ पूरियाधनाश्री, ९ जेतश्री, १० दीपक, ११ परज, १२ बसन्त, १३ विभास। इनमें से अन्तिम तीन राग सायंगेय प्रकारों में नहीं आते हैं। उनको प्रातःकाल गाने का रिवाज है।

प्रश्न—मालूम होता है वे उत्तराङ्ग प्रधान हैं ?

उत्तर—हां, उन रागों की सारी विचित्रता उत्तराङ्ग में होती है। वहां तार षड्ज को बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य कुशलता सौंपी हुई रहती है। क्या चमत्कार है, देखो सायंकाल के रागों में तार षड्ज को अथवा तार स्थान को किस तरह गौणत्व प्राप्त होता है और एक बार मध्य रात्रि पलट गई कि गायन का सारा मर्म उसी स्थान में दिखाई देता है। पर एक अर्थ से ऐसा हुआ तो आश्चर्य ही क्या ? कहा भी है—

प्राधान्यं स्याच्च पूर्वांगे पूर्वरात्र्यां सुलक्षितम्।
केन्द्रस्थानं ततः प्रायश्चलतीव क्रमात्पुरः ।।

ऐसा चमत्कार क्यों होता है ? यह प्रश्न अलग है। यह कदापि विवादग्रस्त ही होगा, परन्तु उसका आज हम निबटेरा करने को बैठे रहें सो नहीं। पद्धति की दृष्टि से ऐसे नियम हमारे लिये बड़े उपयोगी होते हैं। यह कोई भी अस्वीकार नहीं करेगा। गायक वादकों को भी वे अच्छी तरह मालुम होते हैं। अर्थात् उससे राग विस्तार आदि करने में बड़ी सहायता मिलती है। पूर्वी थाट के तेरह रागों में से प्रथमतः अब हम "पूर्वी" राग को ही सविस्तार लेते हैं। "पूर्वी" एक पूर्वाङ्ग प्रधान सायंगेय राग माना गया है और इसका वादी स्वर गांधार है। मैं कह चुका हूँ कि अङ्गों का प्राबल्य बहुधा मध्य सप्तक से निश्चित करने का व्यवहार अपने यहाँ है। और यह भी मैंने कहा था कि वह मंद्र और तार स्थान के गायनों में भी न रहने के कारण अपूर्ण सा रहता है। पूर्वी राग में वादित्व गांधार का होने से संवादित्व नियम

पूर्वक निषाद का ही आयेगा। ये दोनों स्वर पूर्वी में महत्व के हैं, यह तुम्हें भी दिखाई देगा। पूर्वी मेल के रागों की सुविधा के लिये दो वर्ग किये जाते हैं। १ पूर्वी अंग ग्रहण करने वाले राग, और २ श्री अंग ग्रहण करने वाले राग। ये वर्ग स्थूल दृष्टि से देखे गये हैं। श्री, गौरी, मालवी, त्रिवेणी, टंकी, वसंत, ये श्री अंग ग्रहण करने वाले राग समझे गये हैं। पूर्वी अङ्ग ग्रहण करने वाले रागों में गांधार और पंचम, इन स्वरों के उचित परिमाण की ओर ध्यान दिया जाता है और श्री अङ्ग ग्रहण करने वाले प्रकारों में रिषभ व पंचम स्वरों के परिमाण की ओर देखा जाता है। 'अङ्ग' यह शब्द मैं यहां बिल्कुल साधारण अर्थ से उपयोग में लेता हूँ। 'अङ्ग' यानी जिन स्वर समुदायों पर राग की पहिचान अथवा पकड़ रहती है, वह भाग 'अङ्ग' समझा जाय तो हानि नहीं। हमारे गायक वादक भी अनेक बार यह शब्द बोलते हैं अतः तुम्हारे लिये वह नवीन नहीं है। अनेक रागों के अङ्गों को विद्यार्थी उत्तम रीति से अभ्यास कर घोंट डालते हैं। उनका उपयोग राग विस्तार करने के समय सदैव होता रहता है। पिछले प्रसंग में भैरव और श्री राग का अङ्ग मैंने तुमको बताया था, ठीक है न? श्री राग के विषय में आगे हम बोलने ही वाले हैं, इसलिये जहाँ तक हो सके यहाँ पर उसके अङ्ग की अधिक चर्चा नहीं करेंगे। "सा रे़ रे़ सा" इस स्वर समुदाय में उस राग का मुख्य अङ्ग समाविष्ट हुआ है, ऐसा समझते हैं। ये स्वर भैरव में भी थे; परन्तु उस राग में इनका उच्चारण कैसा होता था, यह मैं बता ही चुका हूँ। श्री राग में यही स्वर एक विशिष्ट तरह से उच्चारित किये जाते हैं। कोई कहे कि श्रीराग संध्याकाल का प्रसिद्ध होने से ये स्वर किसी तरह भी उच्चारण किये जांय तो श्रोताओं को भैरव राग की भ्रांति उस संध्याकाल में कभी नहीं होगी, वह स्वीकार है, और यह भी ठीक है कि भैरव और श्री रागों में "सा रे़ रे़ सा" ये स्वर भिन्न-भिन्न तरह से गाये जाते हैं तथापि यह नहीं समझना चाहिए कि इन दोनों रागों में केवल इतना ही भेद है।

प्रश्न—नहीं नहीं, ऐसा हम क्यों समझेंगे? व्यक्त्यवलंबी और अलंकारिक स्वरों से ही रागों की परख हम बहुधा कभी नहीं करते।

उत्तर—ठीक कहते हो। श्री राग में ये स्वर कैसे लगते हैं? उसे शब्दों द्वारा इस तरह कहा जायेगा कि इन टुकड़ों में पहले रिषभ स्वर का उच्चारण करते समय नीचे के षड्ज का सूक्ष्म स्पर्श होता है और दूसरे रिषभ को आगे के गांधार का स्पर्श होता है। यह कृत्य मैं किस तरह प्रत्यक्ष करता हूँ वह ध्यान पूर्वक देखकर अपने ध्यान में रक्खो। जहां तुम दस-पाँच बार मेरे साथ बोले कि वे तुमको सहज ही बैठ जायेंगे। यह कण का विषय कुछ विवादग्रस्त भी होता है, परन्तु बहुत अनुचित कणों के लगाने से राग का रक्ति गुण अधिक कम हो सकता है; ऐसा विधान हमारे आगे कोई रक्खे तो उसको बेढङ्गा कहने की आवश्यकता नहीं। सूक्ष्म स्वरों के प्रयोग के विषय में भी मैंने तुमको ऐसा सूचित किया था, यह मुझे स्मरण है। अपनी वृत्ति सबसे मिलकर रहने की होनी चाहिये, किन्तु जहाँ त्रुटि का विधान ग्रन्थकारों पर थोपकर उनका निरर्थक अपकार होता हो वहाँ अपना प्रमाणिक मत प्रकट करना न्याय संगत ही होगा। परन्तु प्राचीन ग्रन्थकारों को विदित न होने का शोधन यदि हमारे किसी विद्वान द्वारा किया जाये तो उसकी ओर आदर से देखना और वह उचित होने से उसका सम्मान करना हमारा

कर्त्तव्य है। अस्तु, सायंगेय रागों में कुछ पूर्वी अङ्ग ग्रहण करने वाले राग और कुछ श्री अङ्ग ग्रहण करने वाले राग हैं, ऐसा हमने कहा था, ठीक है न? पूर्वी अङ्ग बिल्कुल सरल है, और उसे अब मैं कहूँगा ही। पूर्वी थाट का आश्रय राग पूर्वी है, यह तुम समझते ही हो। राग-जनकत्व हम थाट को देते हैं, यह भी तुमको विदित है। ऐसा करने से प्रत्येक सायंगेय रागों में पूर्वी का कौनसा अंश है यह दिखा देने की जबाबदेही नहीं रहती। दक्षिण की ओर भी ऐसी ही व्यवस्था है। पूर्वी राग की मुख्य पकड़ (अथवा अङ्ग भी कह सकते हैं) "नि, सा रे ग, म ग" यह गुणी लोग अपने शिष्यों को बहुधा सिखाते रहते हैं। यह टुकड़ा आया कि श्रोता बिना संदेह पूर्वी पहिचान लेते हैं ऐसा अनुभव किया जा चुका है। 'ग रे सा, नि रे सा' इस तरह से पूर्वी राग गायक अनेक बार शुरू करते हैं, परन्तु यह टुकड़ा पूर्वी का अङ्ग नहीं है। वह अन्य किसी राग का भी इशारा कर सकेगा। उदाहरणार्थ 'ग, रे सा, नि रे सा' इन स्वरों से 'पूरिया' राग का भी संकेत होगा।

प्रश्न—हम पूर्वी राग कैसे शुरू करें?

उत्तर—वह तुम ऐसा करो तो चल सकता है, देखो 'ग, रे सा, नि सा नि नि, सा रे ग म ग, रे ग, मग, रे सा, नि रे सा' इत्यादि। खूबी इतनी ही है कि नि, सा रे ग, और ग, म ग, रे ग, ये टुकड़े जितनी जल्दी अपने श्रोताओं के आगे रख सको, उतनी जल्दी रक्खो, परन्तु यह कृत्य बड़ी कुशलता से होना चाहिये। जो भाग अपने रागों में आपने उत्तम तैयार किये हुए हों, उन्हें गायन के शुरू में ही श्रोताओं के आगे मत रक्खो क्योंकि ऐसा करने से आगे चलकर श्रोता उसकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान भाग तुम से सुनने की आशा करेंगे, और वह तुम्हारे स्वर भंडार में निकलने सम्भव न होंगे। रागों को गाते हुए-आविर्भाव और तिरोभाव करके गायक अपना गाना कैसा मनोहर कर सकता है, यह कुछ कुछ मैंने सूचित किया ही है। जितना अभ्यास करो और उत्तम गायकों से जो-जो बारम्बार सुना जाय वह सब अंगाभिमुख हो जाता है। स्वर ज्ञान हो जाने से विद्यार्थियों को कुछ भी अड़चन नहीं होती। राग का विस्तार कैसा करें? इस विषय पर मैंने थोड़ा बहुत कहा ही है, और भी चाहिये तो बीच बीच में बताता जाऊंगा। संपूर्ण और सरल रागों का विस्तार करना विशेष कठिन नहीं होता। अब समझो कि तुमको पूर्वी राग ही गाना है तो कैसा करोगे? यह एक पूर्वांग वादी राग है, यह पहली बात। उसमें वादी स्वर गांधार है और वहाँ आरम्भ कैसे किया जाय, यह प्रश्न भी सहज ही मन में उत्पन्न होगा। उसका सीधा उत्तर है, गांधार और रिषभ जहाँ वादी होंगे, वहाँ उसी स्वर से आरम्भ किया हुआ प्रकार बुरा नहीं दिखाई देगा। मैं ख्याल गाने वालों की तान बाजी के विषय में अभी नहीं बोलता। मैं तुमको आलाप करने की स्थूल कल्पना देता हूँ। ख्याल गाने वालों को भी उपयोगी हो, ऐसी कुछ मनोहर तानें कही जा सकती हैं, परन्तु उन्हें पीछे देखेंगे। ख्याल गाते हुए तान कैसी लगानी चाहिए, यह मैंने अपने गुरु से एक बार पूछा था, ऐसा स्मरण होता है। उन्होंने हँसकर उत्तर दिया कि 'जिस प्रकार शांति के समय सिपाहियों से कराई हुई कवायद प्रत्यक्ष लड़ाई में गोलाओं की धड़धड़ाहट में एक ओर धरी रहती है, उसी तरह तालीम के समय सीखी हुई और बंधी बंधाई तानें महफिल में गायकों को विशेष

उपयोगी नहीं होतीं। अलबत्ता प्राथमिक व्यायाम में उसकी मदद ठीक है, परन्तु अन्त तक बंधी हुई तानों के भरोसे पर बैठा रहने वाला गायक नवसिखिया ही रहेगा। नित्य के अभ्यास से अन्तःस्फूर्ति उत्पन्न होनी चाहिये।" उनका ऐसा कहना थोड़ा बहुत सार्थक है, परन्तु मेरी राय में विद्यार्थियों को कुछ कुछ उपयोगी सूचना भी दी जा सकती हैं। इसीलिये मैंने कहा है कि गांधार से पूर्वी राग का प्रारम्भ करने में हानि नहीं दिखाई देती। साधारण नियम यह ध्यान में रहने दो कि जिन रागों का वादी स्वर पूर्वांग में होगा उनका प्रारम्भ उसी स्वर से किया हुआ अच्छा दिखाई देगा। षड्ज से वादी स्वर बहुत दूर पड़ गया होगा तो कुछ निराली योजना करनी पड़ेगी वहाँ संवादी स्वर से प्रारम्भ कर सको तो देखो। मैंने पीछे कहा ही है कि शुरू में लम्बी चौड़ी तान लगाने के झमेले में न पड़कर, प्रारम्भ में बिल्कुल छोटी छोटी तान लेकर षड्ज से जा मिलना। ऐसा करने पर जहाँ निषाद वर्जित नहीं है वहाँ वह स्वर लगाकर तान पूरी करनी चाहिए। अब हम पूर्वी में ऐसा ही करते हैं 'ग रे॒ सा, नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा' यह एक छोटी किन्तु सुन्दर तान हुई। उसमें ही एक और नया स्वर जोड़ते हैं, देखो, 'नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग, म ग, नि़ रे॒ ग, म ग, रे॒ ग, ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा।' वादी स्वर के बाहर यथा संभव हम नहीं जायेंगे। मंद्र स्थान में जाने की हमें अवश्य छुट्टी है, यह मैंने कहा ही है। वहाँ ही पहले छोटे छोटे टुकड़े रचे जांय और बारम्बार षड्ज पर सम (गीत की 'सम' नहीं) दिखायी जाय। ऐसी सम दिखाने से श्रोता अपने अधिकार में आने लगते हैं, और सम पर सिर हिलाने लगते हैं। तुम्हारे 'वर्ज्या-वर्ज्य नियम' तुम्हारी गंभीरता, तुम्हारी मंद गति, प्रत्येक स्वर समुदाय विचार करके लगाने क ी शैली, आदि बातें श्रोताओं को धीरे धीरे आकर्षित करने लगेंगी। देखो हम मंद्र स्थान में जाते हैं, नि़, सा, नि़ रे॒ नि़ ध॒ प़, ध॒ नि़, नि़, रे॒ सा, ग, म ग रे॒ ग, नि़ रे॒ सा। नि़ नि़, रे॒ नि़, ध॒नि़ ध॒ प़, मं प़, ध॒ नि़, प़ ध॒ नि़, ध॒ नि़ सा, नि़ नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग, म ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। मंद्र निषाद इस राग में एक महत्व का स्वर होने से उस पर अनेक तानें लगाकर तुमको पूरा करते बनेगा, जैसे नि़, ध॒ नि़, सा, नि़, रे॒ नि़, ध॒ नि़ ध॒ प़, नि़, मं प़ नि़ प़ नि़, सा, नि़, सा रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। पूर्वी राग में ऐसे मुकामों के स्थान चार मानते हैं, और वह सा ग, प, नि, ये हैं। प्रत्येक राग में मुकाम स्थान होंगे ही उनकी जानकारी हो तो राग विस्तार करने में बड़ी मदद मिलती है, यही नहीं बल्कि ऐसे पद्धतिबद्ध आलाप बहुत ही रक्तिदायक हो सकते हैं। प्रत्येक तान में किसी तरह स्वरों का उलट-पलट करते रहो। पूर्वी में गांधार स्वर को मुकाम स्वीकार कर इस तरह की तान होंगी, देखो—"ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, म ग, ग म रे॒ ग, मं ग, नि़ रे॒ ग म मं ग, म ग, रे॒ ग, मं ग, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा" इन तानों में मन्द्र स्थान के तानों को जोड़ देने से विस्तार क्षेत्र बहुत बढ़ जायेगा, जैसे—नि़ नि़, सा रे॒ ग, म ग, रे॒ ग, म मं ग म ग, नि़ रे॒ ग म रे॒ ग, ग म मं ग म रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, रे॒ सा; नि़ नि़, मं ध॒ नि़, रे॒ सा, नि़ नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा।" यह मैं तुमको यों ही नमूना दिखा रहा हूँ। रागों का शुद्ध रूप और उनकी खींचतान बारम्बार सुनने से अपनी धारणा शक्ति में वह कृत्य आप ही आप घुस जाता है, और नित्य अभ्यास से वही अपने मुख से आप ही आप बाहर निकलता है। अच्छा, अब हम पंचम स्थान का भी उपयोग करते हैं, देखो—"नि़ रे॒ ग मं प, ग मं प, मं प, रे॒ ग मं प, प, मं ग, म ग, नि़ नि़,

सा रे॒ ग, रे॒ ग, म ग, प, मं ग, नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, मं प, मं ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ नि़, रे॒ सा। आगे देखो—नि़ रे॒ ग मं प, मं प, ध॒ प, रे॒ ग मं प, नि नि ध॒ प, मं प, ध॒ मं प, नि ध॒ प, मं मं ग, म ग, रे॒ ग, मं ध॒ नि ध॒ प, मं ग, नि़ रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। नि़ नि़, सा रे॒ ग, म ग, ग म मं ग म, रे॒ ग, मं ध॒ प, नि ध॒ प, मं प ध॒ मं प मं ग, रे॒ ग, मं ध॒ मं ग, ग, रे॒ सा, नि़ नि़, सा रे॒ ग। देखा? ये सब कितने सरल काम हैं? राग का आलाप कैसे करना चाहिए यह मैंने तुमको आगे समझा दिया है, और प्रत्येक राग का विस्तार भी कर दिखाया है। अतः यह तुमको सहज ही करते बनेगा।

प्रश्न—आपका कहना सही है, परन्तु मजा यह है कि आप कहते हैं कि ये कृत्य सब सहज हैं परन्तु वे हमें सहज मालुम नहीं होते, इसलिये आपसे सुनने की अपेक्षा हमको सदैव रहती है। जाने ऐसा क्यों होता है?

उत्तर—उसका मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं मालुम पड़ता, तुम्हारे अन्दर अभी उतना धैर्य नहीं आया है, बस यही कारण है। अपने से बड़े गायक बड़ी-बड़ी तानें धड़ाधड़ लगाते रहते हैं, फिर तुम्हारे सरीखों को वह कठिन क्यों होंगी? मेरी राय में यदि बीच-बीच में तुम से ही राग विस्तार कराया जाये तो जो तुमको ऐसे विस्तार का भय मालुम पड़ता है वह निकल जायेगा। हां, ख्यालियों की तान-बाजी मात्र तुमको शीघ्र नहीं सधेगी, परन्तु उसके लिये भी एक युक्ति मैं तुम्हें बताने वाला हूं।

प्रश्न—वह कौनसी?

उत्तर—वह युक्ति कुछ मेरी निजी नहीं है। मेरे पास कुछ दिन हुए एक मुसलमान गवैया सङ्गीत शास्त्र सीखने के वास्ते आकर छः महीने रहा था। साथ ही अपना छोटा भान्जा भी वह लाया था। वह गवैया अच्छा "तानिया" (तान-बाजी में प्रवीण) था, परन्तु उसको राग नियम वगैरह सीखने की इच्छा थी। खैर, वह गवैया अपने भान्जे को इस पूर्वी राग की तानें रोज सिखाता था, उनमें से कुछ मुझे याद हैं, देखो—ग ग रे॒, ग ग रे॒ सा। नि़ सा ग ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग ग रे॒, ग ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग मं, ग मं ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग मं प मं, ग मं ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग मं प ध॒ प मं, ग मं ग- रे॒ सा। मं मं ग, मं मं ग, मं मं ग रे॒ सा। प प मं ग, मं मं ग रे॒, ग ग रे॒ सा। नि नि ध॒ नि, नि ध॒ प मं, ग मं प ध॒, ग मं ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग, मं मं ग रे॒ सा। नि़ रे॒ ग। नि़ रे॒ ग, म ग। नि़ रे॒ ग मं प, मं ग, म ग। प मं ग, म ग। नि़ रे॒ ग- मं प ध॒ प, मं ग, म ग। नि़ रे॒ ग मं प ध॒ नि ध॒ प मं, ग म ग। ग मं ध॒ ग मं ग रे॒ सा। नि़ सा ग मं, प ध॒ प ध॒ मं प। मं प ध॒, प ध॒ मं प। ध॒ नि़ सा रे॒ सा नि़। सारे॒ सारे॒ सारे॒ नि़ सा। सा रे॒ सा रे॒ नि़ सा। सा रे॒ नि़ सा। अधिक नहीं! ये तानें वह लड़का रोज सवेरे घण्टे दो घण्टे गाता था। अन्त में वह इतना तैयार हुआ कि मेरे जो मित्र मेरे पास कभी-कभी आते थे, वे "कौन गवैया गाता है" ऐसा मुझसे बारम्बार पूछते थे। ये तानें "दून की" (तैयारी की) हैं, ऐसा उस गवैये ने मुझसे कहा था। गला तैयार करने के लिये ऐसी तानें लड़कों को दिया करता हूँ, उसने यह भी कहा कि जो अच्छी तान हैं उन्हें भी आगे जोड़ दें तो बहुत सुन्दर।

प्रश्न—अर्थात् किस तरह?

उत्तर—वे बिलकुल सरल हैं। मैं उनमें से दो-चार तान जोड़कर अब दिखाता हूं, देखोः—

(१) नि़सा; गगरे॒सा, नि़सा गगरे॒ गगरे॒सा, नि़रे॒गम॑ प म॑ ग म॑ गरे॒ सा।

(२) नि़ रे॒ ग, नि़ रे॒ ग म ग, नि़ रे॒ ग म॑ प म॑ ग म ग, नि़ रे॒ ग म॑ प ध॒-प म॑ ग म ग, ग म॑ ध॒ ग म॑ ग रे॒ सा।

(३) म॑ म॑ ग म॑ म॑ ग रे॒ सा, सा रे॒ ग म॑ प ध॒ प म॑, ग म॑ प म॑ ग म॑, ग रे॒ सा।

(४) ग म म॑ म म॑ म म॑ म ग म, म म॑ म म॑ म ग म, म म॑ ग म, नि़ रे॒ ग म-म॑ म म॑, ग म, ग रे॒ सा।

(५) ग म॑ प म॑ ग, ग म॑ प ध॒ प म॑ ग, ग म॑ प ध॒ नि ध॒ प म॑ ग, नि नि ध॒ प, म॑ प ध॒ म॑ प। ग म॑ प ध॒ प ध॒ म॑ प, प ध॒ प ध॒ म॑ प, प ध॒ म॑ प, ग म॑ ध॒ ग म॑ ग रे॒ सा, नि़ नि़ सा रे॒ ग।

देखा यह भाग कितना सुलभ है? ये सब तैयारी की तान हैं।

प्रश्न—ये बहुत अच्छी हैं, और आपके कथन का मर्म भी हमारे ध्यान में आरहा है। परन्तु वह गीत में किस तरह जोड़ी जायेंगी? गीत में तो ताल रहती है न!

उत्तर—अभी तुम ताल की खटपट में मत पड़ो। गला उत्तम किस तरह तैयार होता है और राग विस्तार कैसे किया जाता है हमें यही देखना है। गवैया लोगों की प्रत्येक तान ताल में बिठायी हुई नहीं होती। तान बाजी करते हुए वे ताल की तरफ़ नहीं देखते बल्कि तान में से फिर स्थायी से मिलते समय वे उधर देखते हैं। अभी तुम्हारा विषय ताल का नहीं है। इनमें से बहुत सी तानें थाट बदल देने से भिन्न-भिन्न रागों की होंगी यह तुम समझते ही होगे। उदाहरणार्थ—"ग ग रे ग ग रे सा नि़ सा, नि़ रे ग म॑ प, रे ग रे सा, नि़ रे, ग म॑ प ध प म॑ ग रे ग रे सा रे सा"। ऐसे टुकड़े ईमन में क्या नहीं डाले जा सकते? अलबत्ता प्रत्येक राग के अङ्गों की ओर देखकर कार्य करना चाहिए। अस्तु, पूर्वी में सा, ग, प, नि इन मुकामों में सारा आनंद है, यह मैंने पहिले बताया ही है। पंचम का परिणाम गांधार की अपेक्षा अधिक न होजाय इसकी सावधानी रखनी होती है। पंचम उत्तराङ्ग का पहला ही स्वर होने से इतर अनुवादी स्वरों की अपेक्षा उसका व्यवहार विशेष होता है, इसलिये मैंने ऐसा कहा है।

प्रश्न—पंचम बढ़ेगा तो एकाध भिन्न रागों में जाने का भय होगा क्या?

उत्तर—हां, ऐसा होने से पूरिया धनाश्री का भास होने लगेगा, वह निकट का ही राग है। पंचम की तान लेते हुए बीच-बीच में कोमल मध्यम जिनमें होगा ऐसे टुकड़े लाते रहो, जैसे—नि़ नि़ सा रे॒ ग रे॒ ग, म ग, नि़ रे॒ ग, ग म म॑ ग म ग, रे॒ ग, प प म॑ म॑ ग म ग, रे॒ ग म॑ ध॒ म॑ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। नि़ रे॒ ग म॑ प, म॑ प, ध॒ ध॒ प, नि ध॒ प, म॑ प, म॑ ग, म, ग, नि़ रे॒ ग, म॑ ध॒ म॑ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒, सा। ध॒ ध॒ प प, म॑ प ध॒ म॑ प, म॑ ग, नि ध॒ प, सां नि ध॒ प, म॑ प ध॒ म॑ प, म॑ ग, नि़ रे॒ ग म॑ ध॒ म॑ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा।

प्रश्न—ये सब हमारे ध्यान में आगये। पूर्वी का अन्तरा हम कहां से और कैसे शुरू करें ?

उत्तर—पूर्वी का अन्तरा अधिकतर "ग ग म॑ ध॒ म॑ सां, सां रें॒ सां" अथवा
"म॑ ग म॑ ध॒ म॑ सां रें॒ सां" ऐसा शुरू करने में आता है। अन्तरा का दूसरा टुकड़ा
अपने नियम परिमाण से पंचम पर अवरोही वर्ण द्वारा समाप्त करने में आता है। तीसरे
टुकड़े की व्यवस्था ठीक तरह से लगानी होती है, यह मैं केवल पूर्वी ही के लिये कह
रहा हूँ सो नहीं, ये नियम इतर रागों के अन्तरों में भी थोड़ा बहुत लगाने योग्य है।
तीसरे टुकड़े की और अन्तिम टुकड़े की (यदि वह हो) व्यवस्था इस खूबी से होनी
चाहिए कि उसका मेल स्थाई के उठान से (प्रारम्भ से) सुसङ्गत दिखाई दे। कुछ
अन्तरे तीन टुकड़ों के और कुछ चार टुकड़ों के होते हैं। जहां स्थाई का प्रारम्भ पूर्वाङ्ग
में होगा, वहां अन्तरा उसी अङ्ग में लाकर समाप्त करना अच्छा दिखाई देगा और जहां
वह उत्तराङ्ग में है वहां पर न्यास पंचम पर किया हुआ सुन्दर लगेगा। परन्तु इसकी
बाबत कोई नियम निर्धारित कर लेना प्रस्तुत स्थिति में कठिन ही होगा। अन्तरा का
तीसरा टुकड़ा किसी-किसी गीत में तार स्थान की ओर ले जाना पड़ता है और किसी
गीत में उसी को मध्य षड्ज की ओर ले आना पड़ता है। मैं संचारी और आभोग के
विषय में नहीं बल्कि अन्तरे के पृथक-पृथक चरणों के विषय में कह रहा हूँ। तीसरे
टुकड़े की व्यवस्था चौथे टुकड़े पर कुछ अन्शों में अवलम्बित रहती है। तीसरा टुकड़ा
अवरोही वर्ण द्वारा नीचे लाया गया तो चौथा ऊंचा चढ़ाना पड़ता है, और तीसरा
ऊंचा लाया गया तो चौथा नीचे लाना पड़ता है। नीचे और ऊंचे यह शब्द मैंने जो
यहां स्तैमाल किये हैं इनसे तुम चक्कर में न पड़ना। सारी खूबी न्यास के मिलाने या
जोड़ने और स्थाई को प्रारम्भ से सुन्दर कर दिखाने में रहती है, यह भली प्रकार
समझ लेना है। अब आओ, तुम्हारे पूर्वी के अन्तरा की तान मैं बताता हूं उसे देखो:—

ग ग, म॑ ध॒ म॑, सां, सां, नि रें॒ सां। नि रें॒ गं रें॒ सां, नि नि, रें॒ नि ध॒ प।
प, म॑ म॑ ग ग, म॑ ध॒ नि रें॒ नि ध॒ प। सां नि ध॒ प म॑ ग, म॑ ग, रे॒ सा। तीसरे टुकड़े
में केवल—"म॑ म॑ ध॒ म॑ ग, ग, म॑ ग, रे॒ सा" ऐसा किया जाता है, और फिर चौथा
(यदि हो तो) "नि़ रे॒ ग म॑ प, म॑ ध॒ नि ध॒, प," ऐसा होगा' ध्यान में आया न? मैं
समझता हूं यह भाग थोड़ा बहुत मैंने तुमको पीछे भी बताया था, किन्तु इतना सविस्तार
वर्णन तब नहीं किया था। राग विस्तार करते समय पूर्वाङ्ग और उत्तराङ्ग की तानों को
पहिले प्रथक-प्रथक घोट कर तैयार करना चाहिए और फिर उनको आपस में जोड़ने का
अभ्यास करना चाहिए। उदाहरणार्थ पूर्वी में प्रथमतः ऐसे चलना चाहिए देखो:—

नि़ नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, म ग, ग, ग म म॑ ग म ग, रे॒ ग, म॑ म ग, नि़ रे॒
म म॑ ग म ग, सा ग रे॒, म ग, नि़ रे॒ म ग, रे॒ म ग, ग, ग रे॒, सा, नि़ रे॒ सा। फिर
आगे पंचम लेकर क्षेत्र को बढ़ने देना जैसे—प म॑ ग म ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, म ग, प प
म॑ म॑ ग म ग, ग म॑ प ग म ग, नि़ रे॒ ग म॑ प, ग म ग, आदि उत्तरांग में पूर्वाङ्ग के प्रमाण
से क्रम पूर्वक चलने देना चाहिए जैसे—प, प, म॑ ध॒ प, म॑ म॑ ग, ध॒ प, म॑ ध॒ नि ध॒ प, म॑ प
ध॒ म॑ प, नि, रें॒ नि ध॒, प, म॑ प, रे॒ ग म॑ प, ग म॑ प, नि नि ध॒, प, म॑ ध॒ नि, ध॒ नि ध॒ प,

प, प, मं मं ग, म ग, रे् ग मं ध मं ग, रे् ग, रे् सा, नि् रे् सा। मैं समझता हूँ इतना करने से तुमको साधारण काम चलाने के लायक विस्तार की कल्पना हो सकती है। आगे भिन्न-भिन्न रागों का विचार करने के समय प्रसङ्गानुसार यह विषय आने ही वाला है।

प्रश्न—पीछे आपने कहा था कि पूर्वी में पञ्चम अपने परिमाण से बाहर गया तो पूरिया धनाश्री का भास होगा, तो वहां हम कैसे करें ?

उत्तर—पूरिया धनाश्री राग जब मैं कहूँगा तब वह तुम्हें मालूम होगा। परन्तु एक सरल युक्ति मैंने बताई ही थी कि बीच-बीच में कोमल मध्यम लगने वाले टुकड़ों को लगाने से पूर्वी अलग की जा सकती है। पूरिया धनाश्री में पंचम वादी स्वर है इससे वह और भी प्रथक है। पूर्वी एक आलाप प्रधान राग माना जाता है तथा और भी बहुत से आश्रय रागों के बारे में ऐसा ही कहा जाता है। प्रचार में अपने गायक सभी रागों में आलाप नहीं करते। और मैं समझता हूं ऐसा करना ठीक भी नहीं होगा। अपने गायकों के कथनानुसार आलाप के राग पूर्वी, पूरिया, यमन, केदार, भूपाली, कामोद (क्वचित), दरबारी कान्हड़ा, मालकौंस, ललित, भैरव, टोड़ी, आसावरी, सारङ्ग, भीमपलासी, मुलतानी, हिंडोल ये कहे जायेंगे। इन रागों के स्वरूप बिल्कुल स्वतन्त्र होने के कारण वे आलाप के लिए सुविधा जनक होते हैं। सभी गायक आलाप नहीं कर सकते, यह तुम जानते ही हो। जो राग मैंने कहे हैं इनके बाहर के एकाध रागों में आलाप करने की फरमाइश किसी ने की तो गायक संकट में पड़ जाते हैं। कभी-कभी वे नाराज भी होते हैं। इस तरह का अनुभव मेरे एक मित्र ने मुझे बताय था, चाहो तो वह मैं तुम्हें भी बतादूं।

प्रश्न—कहिए, जरूर कहिए, उन्होंने क्या कहा ?

उत्तर—एक बार वे एक प्रसिद्धि प्राप्त नए बीनकार के पास अपने मेहमान को बीन सुनाने की इच्छा से गये थे। उस बीनकार को बिलकुल साधारण से दस-पांच राग ही बजा लेने का अभ्यास था, यह उन बेचारों को कतई मालुम नहीं था। बीनकार ने अपना बीन कंधे पर रखकर दो चार परदों पर मिजराब मारी तो मेरे उस मित्र को ऐसा मालुम पड़ा कि वे आगे "ईमन" राग को लेकर बहुत देर तक उसे घिसते रहेंगे। कहीं ऐसा न हो कि अपने मेहमान को कुछ नवीन सुनने को न मिले, इसलिए उन्होंने नम्रतापूर्वक बीनकार से 'छायानट' अथवा 'श्याम' इनमें से एकाध राग बजाने की प्रार्थना की।

प्रश्न—फिर उसने उनमें से कौनसा बजाया ?

उत्तर—बजाना तो एक ओर रहा, खाली फरमाइश से ही उसके आग लग गई।

प्रश्न—यह क्या महाराज ? क्रोध आने लायक उसमें कौन सी बात थी ?

उत्तर—मालुम होता है उसका रहस्य तुम्हारे ध्यान में नहीं आया। अजी, छायानट बजेगा कदाचित् दस पंद्रह मिनट, परन्तु बेचारे ईमन को चाहो तो २ घन्टे

घसीटते रहो। यही तो उसमें बड़ा फर्क है न? ध ध प प, रे ग म प, म ग म रे, सा रे सा ऽ, सा सा ग म, रे रे सा ऽ, सा रे सा नि़, ध़ ध़ प़ प़। प़ प़ रे रे, रे ग म प, ग ग म रे, सा रे सा ऽ। इतनी तानें किसी तरह खींच तानकर पूरी की जाएंगी, परन्तु आगे विस्तार कैसे किया जाय, यह अड़चन उसे पड़ी होगी। अच्छा, किसी तरह कुछ बजा भी दें तो फिर आगे कदाचित 'श्याम' की फर्माइश होने का डर था, और फिर वह राग छायानट के समान देखने में उपयोगी नहीं।

प्रश्न–अच्छा फिर उन्होंने कहा क्या?

उत्तर--उन्होंने कहा--तुम कैसे मूर्ख मनुष्य हो! फर्मायश करके आज तुमने मेरी तबियत को मिट्टी कर डाला। तुमको बिलकुल तमीज नहीं। इस जन्म में कभी तुमने बीन सुनी है क्या? बोलते हो छायानट बजाओ–श्याम बजाओ–तुमने छायानट और श्याम क्या कभी सुना था? उसे तुम पहचानते हो? तुमने आज मेरा दिमाग़ खराब कर दिया।

प्रश्न--फिर आगे?

उत्तर—आगे क्या? कन्धे पर से बीन तुरन्त उतार कर नीचे रखदी और पंखा लेकर अपने तपे हुए दिमाग़ को शांत करने लगा।

प्रश्न—और आपके मित्र व उनके मेहमान?

उत्तर--क्षण मात्र बैठने का सा ढङ्ग दिखाकर लौट आए, वे आगे क्या बोलते?

प्रश्न--यह विचित्र तांडव देखकर उनको आश्चर्य तो मालुम पड़ा होगा, और कदाचित बुरा भी लगा होगा?

उत्तर—हां, बुरा तो मालुम पड़ा ही, पर मेरे वे मित्र बहुत सभ्य और भले गृहस्थी थे, अतः उनको अपने स्वतः के बर्ताव पर ही दुख हुआ। हमने व्यर्थ ही उस बेचारे बजाने वाले को संकट में डाला, इसका उनको बड़ा पश्चाताप हुआ। परन्तु फिर हो ही क्या सकता था? यह बात जो मैं तुमसे कहता हूँ उसमें मेरा यह भी हेतु है कि तुम्हारे साथ कभी ऐसी घटना घटे तो वहां तुम क्या करोगे? यह तुम्हारी समझ में आजाय। ऐकाध गायक संध्याकाल में गाने के लिए शुरू-शुरू में "पूर्वी" राग की तैयारी करते हुए तुम्हें दिखाई दे, तो बीच ही में "गौरी" अथवा "जयतश्री" की फर्माइश उससे न करो। मैं तो समझता हूं कि फर्माइश की खटपट में अथवा बड़ी-बड़ी वाहवाही (दाद) देने के चक्कर में तुम बिलकुल न पड़ोगे तो ठीक होगा। चुपचाप सुनते रहने से तुम्हारा आनन्द कुछ कम नहीं हो जायेगा, अस्तु! पूर्वी में दोनों मध्यम लगाने की छुट्टी है, ऐसा मैंने पहिले सूचित किया ही था, उससे शायद तुम समझे होगे कि "ग म प" अथवा "प म ग" ऐसा सरल प्रयोग चाहे जब और चाहे जैसा करने के लिये इस राग में छुटी है, परन्तु ऐसा नहीं किया जायेगा।

प्रश्न—तो फिर हमें ठीक से समझा देना ही अच्छा होगा।

उत्तर--पूर्वी में कोमल मध्यम का प्रयोग बिलकुल मर्यादित और नियमित है, और एक अर्थ में वह ठीक ही है। उस समय शुद्ध मध्यम को स्वच्छन्दता पूर्वक नहीं चलने देना चाहिए। वह स्वर यदि थोड़े परिमाण से भी बाहर हुआ तो राग को बिलकुल नष्ट कर देगा। मैंने यमनकल्याण बताते समय तुमसे कहा ही था कि कोमल मध्यम का उसमें कैसा प्रयोग होता है।

प्रश्न--हां, हां! हमको अच्छी तरह याद है। आपने कहा था कि उस राग में कोमल मध्यम स्वर यों ही कहीं गांधार के संग "गमग" इस तरह से लगाया जाता है, वस्तुतः वह आरोह में भी नहीं और अवरोह में भी नहीं है।

उत्तर--ठीक है! तो फिर तुम्हारे इस पूर्वी राग के कोमल मध्यम की स्थिति भी प्रायः वैसी ही है, ऐसा कहें तो ठीक होगा। इस राग में भी 'गमप' अथवा 'पमग' ऐसा सरल प्रयोग नहीं किया जाता। पूर्वी में दोनों मध्यम एक में एक जोड़ दिये जाते हैं, यह पीछे मेरे गाये हुए विस्तार से तुम्हारे ध्यान में आया ही होगा, परन्तु वहां यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि ऐसा प्रयोग बारम्बार करने से शोभा नहीं देगा, उसे कहीं बीच-बीच में करने से ही राग की विचित्रता बढ़ेगी।

प्रश्न--यानी, एक अर्थ में यह कृत्य विष का उपयोग औषधि के रूप में करने जैसा ही है। मात्रा (परिमाण) में कुछ गलती हुई तो अनर्थ हो सकता है।

उत्तर--चाहो तो ऐसा ही समझ लो। प्रत्येक राग के सम्बन्ध में जो दस-बीस महत्व की बातें हैं विद्यार्थियों की जानकारी में वे जहां आगई तो बस ठीक है।

प्रश्न--ठहरिये तो, वे बातें कौनसी हैं?

उत्तर--घबराओ नहीं, वे कुछ नई नहीं हैं। वह सब बातें तुम्हारी जानी पहिचानी ही हैं, जैसे--१-थाट, २-जाति, ३-अङ्ग प्राधान्य, ४-वादी, ५-संवादी, ६-संगति, ७-मिश्रण, ८-वर्ज्य स्वर, ९-दुर्बल स्वर, १०-वक्रता, ११-आरोहावरोह, १२-पकड़, १३-विश्रान्ति स्थान, १४-उठान, १५-साधारण चलन, १६-अन्तरा का उठान, १७-मिलान, १८-प्राचीन ग्रन्थोक्त रूप व आधार, १९-प्रचलित रूप और आधार।

प्रश्न--यह तो आप प्रत्येक राग में कहते ही आए हैं। हां, अच्छी याद आई, हमारे मन में प्रत्येक राग सम्बन्धी ऐसी जानकारी रहे, इसके लिए यह जरूरी है कि आगे पीछे एक छोटा सा कोष्ठक ही अपने उपयोग के लिये बना लिया जाय। अपनी पद्धति का वह एक विशुद्ध तत्व होगा, ठीक है न?

उत्तर--मैं समझता हूँ, ऐसा एकाध कार्य तुम कर लोगे तो वह तुम्हारे लिए जरूर हितकारक होगा। फुर्सत मिलने पर मैं ही आगे पीछे वैसा एकाध कोष्ठक तुम्हारे लिए तैयार कर रक्खूंगा। यहां मुझे एक बात याद आई, उस दिन मैं पुण्डरीक विट्ठल की रागमाला पढ़ रहा था, उसमें यमनकल्याण की व्याख्या मुझे अच्छी मालूम हुई और उसे तुम्हें बताने के लिये मैंने निश्चय किया था, वह यह है, देखोः—

सत्रिः पूर्णो द्विनेत्राग्निगमरिगमनी राजवृन्दैः समेतो ।
गौरस्तांबूलवक्त्रः सिततरवसनः कंठरत्नैकमालः ॥
कंजाक्षः छत्रमूर्द्धोभयचरणयुतो रत्नसिंहासनस्थः ।
कल्याणो यम्मनाथः परिजनसहितोराजतेऽसौ दिनान्ते ॥

इस वर्णन में "ईमन कल्याण" यह संयुक्त नाम स्पष्ट है और उस नाम के राग में एक तीव्र मध्यम ही कहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह आधार हमारे लिये उपयोगी हो सकता है। हां तो, पूर्वी में कोमल मध्यम कैसा लगता है ? यह तुम समझ गये ? बता सकते हो ?

प्रश्न—वह विवादी स्वर के समान लगाया जाता है, ऐसा हम समझ कर चलें तो कैसा ?

उत्तर—ऐसा कहना किसी को पसन्द नहीं होगा। कारण बताता हूँ, कल्याण में वह मध्यम बिलकुल गौण था। वहां पर वह लगाने में नहीं आया तो चल सकता था, किन्तु यहां वैसा नहीं है। पूर्वी में तो उस स्वर से राग की सारी पहचान ही होती है। कुछ सरल श्रोता तो "ग म ग" इस छोटे से टुकड़े की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहते हैं। "नि, सा रे ग" इस टुकड़े को वे देखते भी नहीं हैं। मैं समझता हूं कि आज अपने यहां ऐसी धारणा होगई है कि "ग, म ग, ग म मं ग म ग" यह टुकड़ा जिसमें नहीं, वह पूर्वी राग ही नहीं। जब ऐसा है तो कोमल मध्यम को विवादी समझना किसी को भी पसन्द नहीं होगा ? क्यों, ठीक है न ! वहां उस मध्यम पर प्रतिबन्ध कोई भी स्वीकार नहीं करेगा, किन्तु "गमप" अथवा "पमग" ऐसा सरल और निर्भय प्रयोग पूर्वी में अशास्त्रीय और विसंगत ही होगा।

प्रश्न—यहां एक शंका मन में आई है। आप "नि, सा रे ग" यह टुकड़ा बारम्बार गाकर दिखाते हैं, तब वहां हमारे मन में एकदम कालिंगड़ा का भास क्यों होता है ?

उत्तर—तुम्हारी शंका वास्तव में मार्मिक है। किसी पण्डित का मत यह भी है कि सन्ध्या काल का यह पूर्वी राग प्रातर्गेय कालिङ्गड़ा का 'मित्र' है। उस राग में तीव्र मध्यम की कैद है। मुझे याद है कि एक गायक ने मुझे एकबार "नि नि, सा रे ग, म म ग, ग म प धु मं प, ग म ग, म ग रे सा" यह टुकड़ा गाकर कालिंगड़ा करके दिखाया था। "नि नि सा रे ग" यह भाग जब कालिंगड़ा में आये तो वह राग सायंगेय नहीं है, इसे याद रखना। इस विषय पर हमको आगे भी बोलना है, इसलिये यहां अधिक चर्चा ठीक नहीं होगी। कोई-कोई सूक्ष्म स्वरदर्शी पण्डित हमसे कहते हैं कि पूर्वी में आने वाला कोमल मध्यम, गांधार के अधिक निकट है; परन्तु उस प्रपंच में अभी तुम पड़ो ही मत ! खाली "नि नि, सा रे ग, म ग, ग म मं ग म ग, रे ग, मं ग, रे सा" इतने स्वर तुमने कहे कि श्रोता तुम्हारे राग को 'पूर्वी' कहेंगे। राग विस्तार करने की खूबी प्रसिद्ध तन्तकारों की लेनी चाहिए, ऐसा गुणीजन अपने शिष्यों से कहते रहते हैं। एक अर्थ में उनके इस उपदेश में कुछ सार भी है। तन्तकारों का विस्तार थोड़ा सिलसिलेवार होने से सहज

ही ध्यान में रखने योग्य होता है। वे लोग दो-दो चार-चार स्वर लेकर अनेक छोटी-छोटी सुन्दर तान उत्पन्न करते रहते हैं। तुम "बीन" बारम्बार सुनते रहते हो, इसलिये वह भाग तुम्हें भी दिखाई दिया होगा। अशिक्षित तन्तकारों को वादी संवादी स्वरों की और मुकाम की जानकारी कम होने के कारण उनके बजाने में भली बुरी तानों का मिश्रण हो जाने की सम्भावना तो रहती है, किन्तु रागों की 'बढ़त' करने की उनकी शैली अच्छी होती है। उदयपुर के जो प्रसिद्ध गायक मैंने बताये थे, उनकी सारी प्रसिद्धि इस आलाप में ही है। कहा जाता है वे स्वतः बीनकार हैं। हो सके तो तुम उनका गाना जरूर जाकर सुनो, ऐसी मैं सिफारिश करूंगा।

प्रश्न--तन्तकारों की बाबत आपने जो कहा है, वह ठीक है। हमने वजीरखां को वैसा करते हुए देखा है। अब हम उनके कामों की ओर अधिक ध्यान दिया करेंगे। पूर्वी राग बजाते हुए हमने उन्हें सुना है। मुश्किल यह है कि हम कुछ शंका करें तो वे समाधानकारक कुछ उत्तर नहीं देते हैं, राग नियम भी ठीक नहीं समझाते हैं। इस कारण ध्यान में क्या रक्खें और उसे कैसे रखवावें, यह हमारी समझ में नहीं आता। आपने कहा, उस तरह वे चार-चार पांच-पांच मन्द्र स्थान के स्वर लेकर उनके द्वारा कितने ही प्रकार निकालते रहते हैं।

उत्तर—वह मुझे मालुम है, मैं भी जब छोटा था सितार और बीन बजाता था। वजीरखां तो प्रसिद्ध ही हैं। कहां वे और कहां मैं। सारांश यह कि वे अपने राग का विस्तार जिस तरह करते हैं, उसे ठीक देखकर उसका जितना भाग ग्राह्य मालुम हो सके उतना खुशी से ग्रहण करो। कसबी और अनुभवी लोगों की प्रत्यक्ष कला का अनेक बार अच्छा उपयोग होता है। कभी-कभी वे बड़ी मार्मिक बात कह जाते हैं। मुझे याद है कि इस पूर्वी के गांधार निषाद के महत्व के विषय में बोलते हुए मेरे गुरु मुहम्मद खां एक बार झट बोल उठे थे कि 'पंडित जी ये दो सुर इस राग के सूरज और चांद समझ लीजिये। चांद सूरज के बिना जैसे दुनियां नहीं चल सकती, यही बात रागों की बाबत भी समझ लीजिये! आप देखेंगे कि प्रत्येक राग दो सुरों पर ही कायम होता है। वे दोनों सुर दो तरफ अपने अपने अनुवादी स्वरों को लेकर राग की खूबसूरती बढ़ाते रहते हैं। उनकी यह कल्पना मुझे बड़ी मजे की मालुम पड़ी। एक अर्थ में दरअसल प्रत्येक राग में वादी व संवादी स्वर सूर्य और चन्द्रमा के समान हैं। चन्द्रमा का प्रकाश जैसे सूर्य के अवलम्बन पर रहता है, उसी परिमाण से संवादी का महत्व वादी स्वर पर अवलंबित रहेगा। यह बातें छोड़कर अब हम कुछ ग्रन्थों का मत पूर्वी राग पर देखें 'राग विबोध' में 'सोमनाथ' कहता है:—

पूर्वी पूर्णा सांता गांशा षड्जग्रहा च सायाह्ने (मालवगौड मेले)

यहाँ थाट भैरव है, परन्तु 'पूर्वी' सायंगेय होने से उसमें तीव्र मध्यम का प्रयोग समझ में आयेगा। कोमल मध्यम मूल थाट का स्वर पंडितों ने रहने दिया होगा, ऐसा कोई कहते हैं। सोमनाथ ने अपने पांचवें विवेक में पूर्वी का नादात्मक स्वरूप कहा है, परन्तु उसे मैंने अभी किसी को गाते हुए नहीं सुना। अपने कुछ विद्वान उस दिशा में प्रयत्न

कर रहे हैं, ऐसा मैंने सुना है। सोमनाथ ने उस विवेक में बहुत चिन्ह बरते हैं इससे अड़चन उत्पन्न होती होगी ! उसने प्रथम अपने २३ जनक मेल देकर फिर लगभग ७५ जन्य रागों के देवात्मक और नादात्मक रूप कहे हैं ! वह भाग बड़ा ही दुर्बोध और कठिन हो गया है ! देवात्मक रूपों के तो अब दिन नहीं रहे, परन्तु उनके नादात्मक रूपों को कोई प्रचार में ला दिखाये, तो बहुत उपयोगी होंगे ! यह कार्य यद्यपि कठिन होगा तथापि असम्भव नहीं।

प्रश्न—देवतामय रूप अर्थात् राग-चित्र ही समझा जायेगा न ?

उत्तर—हां, चित्र के साथ रङ्ग का प्रश्न भी आयेगा ही, उसमें जो अड़चन है उसके विषय में मैंने दो शब्द बोले ही हैं। रागों की मूर्ति की निन्दा करके भावुक लोगों से व्यर्थ ही वैमनस्य बढ़ाते रहना हमारे लिये जरूरी नहीं। वह भाग तो विवाद ग्रस्त ही रहने योग्य है। रङ्ग का विषय पहले हमने कहां सीखा है ? उस विषय पर पश्चिम की ओर विशाल ग्रन्थ लिखे गये हैं, ऐसा कहा जाता है। उन्हें पढ़कर और प्रत्यक्ष प्रयोग करके एवं संस्कृत ग्रन्थकारों के वर्णनों से उनका मिलान करके कोई विद्वान कुछ लिखे तो उसका लोग उपकार मानेंगे। किन्तु यह स्पष्ट है कि वर्तमान काल में कोरी कल्पना नहीं चल सकेगी।

प्रश्न—सोमनाथ ने जो वर्णन दिया है वह कहीं से पुराना नकल किया है, ऐसा कह सकते हैं क्या ?

उत्तर—हो सकता है, सोमनाथ के विषय में मैंने अपना मत थोड़ा बहुत तुमको बताया ही है। मैं समझता हूँ देवता रूप को हम छोड़ ही दें तो अधिक सुरक्षित रहेंगे। सर्वज्ञता का दावा अपना नहीं है। प्राचीन कल्पना में क्या रहस्य है इसका निर्णय नहीं हो सकता, ऐसा हम मानकर चलें, तो विशेष हानि नहीं है। अपने प्राचीन शास्त्रकारों की कल्पना बेढङ्गी थी, ऐसा कहने से भी समाज का हित नहीं होगा। अलबत्ता ऐसे कठिन विषय का स्पष्टीकरण किसी विद्वान के द्वारा हो तो हमें विशेष आनन्द होगा, ऐसे स्पष्टीकरण से अपने प्राचीन ऋषियों का गौरव तो बढ़ेगा ही, साथ ही वह हमारे लिये समाधानकारक और उपयोगी भी होगा।

प्र०—आपका कथन ध्यान में आगया। यह देवतामय रूप, यह उसका रङ्ग, यह आधार, यह नियम, यह स्पष्टीकरण, यह उस रूप की नादात्मक रूप से एक वाक्यता ऐसा होना चाहिए, यही न ? परन्तु इस विषय पर अपने देश में किसी ने आज तक कुछ नहीं लिखा क्या ?

उत्तर—वैसे राजा साहेब टागोर ने एक जगह थोड़ा सा लिखा है, वह मैं तुम्हें पढ़कर सुनाता हूं, सुनो !

"The names and nature of the colours attributed to the notes are very nearly the same as given by Mr. George Field in his work "Chromatics" or the analogy, harmony and philosophy of colours.

They are given in juxtaposition as follows:—

Names of notes	Sanskrit colours	Field's colours.
Shadja	Black	Blue
Rishabha ...	Purple	Purple
Gandhar ...	Golden	Red
Madhyama ...	White	Orange
Panchama ...	Yellow	Yellow
Dhaiwata ...	Grey	Grey
Nishada ...	Green	Green.

(स्वर-वर्ण का संस्कृत श्लोक रत्नाकर में ऐसा कहा है:—

पद्माभः पिंजरः स्वर्णवर्णः कुन्दप्रभोऽसितः ।
पीतः कर्बुर इत्येषां × × × × ॥)

By means of the coloured diagrams Mr. Field has illustrated the analogy of the Definitive Scale of colours and the gamut of the musicians. 'Any one acquainted with both music and painting will not', remarks Mr. Field, 'find it difficult to carry these relations into figures and the forms of sciences universally.' And as the acuteness, tone and gravity of musical notes blend or run into each other through an infinite series in the Musical Scale, imparting melody to musical composition, so do the like infinite sequences of the tints, hues and shades of colours, impart mellowness or melody to colours and colouring. Upon these gradations and successions depend the sweetest effects of colours in nature and painting, so analogous to the melody of musical sounds, that we have not hesitated to call them the Melody of colours. × × It would be sufficient for the purpose of this book (The Musical Scales of the Hindus) to observe that the Sanskrit authorities on Music recognized the analogy and were perhaps to some extent guided by it in the determination of the concords or discords of notes."

यहां राजा साहेब ने कुछ अधिक खुलासा किया होता तो अच्छा होता। कौनसे संस्कृत ग्रन्थकार ने अपना रङ्ग ज्ञान कहां और कैसे बरता, उससे पढ़ने वालों को कौनसे नादमय स्वरूपों का बोध हुआ, यह उन्हें लिखना चाहिये था। सम्भव है–कलकत्ते की ओर इस विषय में कुछ जानकारी हो, परन्तु अपने यहां बहुत से विद्वानों का ऐसा मत है कि शार्ङ्गदेव और उसके बाद के संस्कृत ग्रन्थकार रङ्ग का यह रहस्य वास्तव में समझे ही न थे।

इतना ही नहीं, अपितु वे हमारे समान सीधे, भोले, भावुक और गतानुगतिक वृत्ति के लोग थे, ऐसा समझा जाय तो आश्चर्य नहीं। उनमें से कुछ ग्रन्थकारों ने रागों की मूर्ति चित्रित करना तो पसन्द नहीं किया, अलबत्ता स्वरों का रङ्ग वर्णन करने में कोई भी नहीं चूके। ठेठ नारदीय शिक्षा से ही रङ्ग परम्परा लगातार चालू है, उसका क्या उपाय है? यह प्रश्न केवल पाठकों की कल्पना पर छोड़ देना ही ठीक होगा।

प्रश्न—कदाचित् पाश्चात्य पंडितों की नवीन-नवीन शोधों का उपयोग करने के बाद यह समस्या कोई हल करेगा, यह आपने कहा ही है। हमको भी ऐसा ही प्रतीत होता है।

उत्तर—हां, ऐसा मैंने कहा था, उधर के शोध का उपयोग श्रुति, मूर्छना, ग्राम वगैरह के लिये अब कैसा होता है, यह तुम जानते ही हो। सोमनाथ के नादमय तथा देवतामय रूप के आधार से ही यह बात निकली थी न?

प्रश्न—हां, पीछे आप कह गये हैं कि, सोमनाथ का नादमय रूप अब बड़ा दुर्बोध हो गया है? किन्तु ऐसा क्यों हुआ, यह संक्षेप में कहेंगे क्या?

उत्तर—हाँ, चाहो तो कहता हूँ। उस पण्डित ने अपना नादमय रूप वर्णन करते हुए, चिन्हों की जो भरमार कर डाली है, उसे देखकर यह कहावत याद आती है कि "डरो नहीं परन्तु कुत्ता पागल है" स्वरलिपि के अभिमानी मेरे कुछ मित्र भी वह प्रकार देखकर कुछ निराश हुए, परन्तु "अपना ही दांत और अपना ही ओंठ" फिर करें क्या? सोमनाथ की निन्दा करें तो भारतीय नोटेशन की भी निन्दा होती है।

प्रश्न—सोमनाथ ने अड़चन में डालने वाला ऐसा क्या कार्य किया है? उसे हमको समझा देंगे क्या?

उत्तर—सोमनाथ ने खासकर पाठकों को अड़चन में डालने के लिये ही सब कुछ लिख रक्खा है, ऐसा मेरा कहना नहीं है। उसकी लिखी हुई बातें उस समय के नामों से आज प्रचार में न होने के कारण ही दुर्बोध हुई हैं, यह प्रत्यक्ष दिखाई देरहा है। भिन्न-भिन्न रागों को बजाते हुए जो अनेक प्रकार उसे दिखाई दिये उसने उनका सविस्तार वर्णन संस्कृत भाषा में लिख दिया। उसकी वर्णित भाषा सुन्दर सरल और सुगम है, परन्तु कोरे कागजी वर्णनों की सहायता से सब बजाने वालों का वादन एक समान बैठने की सम्भावना कम होने से अड़चन उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सोमनाथ के समय में आज जैसे विद्यालय नहीं थे। छापने की सुविधा भी ऐसी नहीं थी, तो उसका चिन्ह और उसका वर्णन आगे कौन चलावे?

प्रश्न—परन्तु आपने कहा था कि सोमनाथ दक्षिण का पंडित था। तब क्या उसके वर्णन किये हुए वादन प्रकार दक्षिण की ओर दृष्टिगत नहीं हो सकते? उधर के लोग अपनी सङ्गीत परम्परा उत्तम रखते आते हैं ऐसा आपने बताया ही था।

उत्तर—हां, तुम्हारा यह कहना किसी प्रकार उचित हो सकता है। उधर इन वादन प्रकारों में से कुछ-कुछ अवश्य मिलेंगे। कोई उधर से लाकर अपने यहाँ प्रचलित करे तो हित ही होगा।

प्रश्न—सोमनाथ ने ऐसे कितने प्रकार कहे हैं?

उत्तर—अच्छे प्रकार तो बीस-बाईस हैं। मैं उन्हें तुमको बताता हूँ—

प्रत्यान्वपूर्वहतयः पीडादोलनविकर्षगमकानि।
कंपो घर्षणमुद्रे स्पर्शो नैम्न्यप्लुतिद्रुतयः॥
परतोच्चताऽथ निजते शममृदुकठिनानि विशंतिद्व्यधिका।
वादनभेदपदानां वीणायां लक्षणं क्रमतः॥

१-प्रतिहति, २-आहति, ३-अनुहति, ४-अहति, ५-पीडा, ६-दोलन, ७-विकर्ष, ८-गमक, ९-कंप, १०-घर्षण, ११-मुद्रा, १२-स्पर्श, १३-नैम्न्य, १४-प्लुति, १५-द्रुति, १६-परता, १७-उच्चता, १८-निजता, १९-शम, २०-मृदु, २१-कठिन। निजता के दो प्रकार कहे हैं, इन प्रत्येक प्रकार का एक-एक सांकेतिक चिन्ह भी दिया है।

प्रश्न—आपकी बताई हुई अड़चन की कल्पना अब हमको थोड़ी-थोड़ी हो रही है। जब तक ये प्रकार उत्तम रीति से समाज में प्रविष्ट होकर लोकप्रिय न हों, तब तक सोमनाथ का नादमय रूप वास्तव में स्पष्ट नहीं हो सकेगा! परन्तु इन वादन प्रकारों का लक्षण वह कैसा कहता है, उसे भी संक्षेप में हमें आप बतायेंगे क्या?

उत्तर—चाहते हो तो कुछ कहे देता हूँ।

"कंठसंवादिन्यां वीणायां तान् क्रमेण लक्षयितुं प्रतिजानाति"—

प्रतिहतिरंतद्रुतमुच्छलनवतो हतियुगाद्गभीररवः।
आहतिरन्यध्वनने हतिं विनान्यस्वराश्रावः॥

प्रतिहतिः—हतियुगात् तंत्रीनखाघातद्वयात् हेतोः गंभीररवः हुंकारशब्दानुकारी गंभीरध्वनिः प्रतिहतिः। कीदृशात् अन्तः मध्ये द्रुतं अतिशीघ्रं उच्छलनवत्। एकमाघातं कृत्वा अतिशीघ्रं किंचिदंगुल्युच्छालनेन किंचिदेव पूर्वस्वरप्रदर्शने तत्समकालं द्वितीयाघातात् हुंकारसमध्वनिः।

अहतिः—अपरस्वरस्य रणने नखाघातं विना तेनैव ध्वननेन अव्यवहितस्य वा व्यवहितस्य परस्वरस्य प्रदर्शनं।

अनुहतिरेकहतेः प्रतिहतिवत्सैव त्वहतिरघातात्स्यात्।
पीडा पीड्यविमुक्तिर्दोलनमाकर्षणागमने॥

अनुहतिः—एकनखाघातादेव प्रतिहतिवत् गंभीरध्वनिः एकमेवाघातं कृत्वा अतिशीघ्रमेव किंचिदंगुलेरुच्छालनेन किंचित्पूर्वस्वरं प्रदर्श्य तदाच्छादनेन हुंकारसमध्वनिः।

अहतिः—सैव अनुहतिरेव आघातात् नखाघातं विना गंभीरध्वनिरित्येव अहतिः स्यात्।

पीडा—पीडा अंगुल्युदरेण अग्रिमनखरं गाढं संस्पृश्य तत्समकालमेव पूर्वस्वरप्रदर्शनं।

दोलनं—आकर्षणं विकर्षणं च आगमनं निवर्तनं च।

इस प्रकार सोमनाथ ने कुछ लक्षण कहे हैं, उन सबों को अब मैं नहीं कहता। दक्षिण में इनमें से बहुत से प्रकार प्रचलित हैं, ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न—सोमनाथ ने पूर्वी का देवात्मक रूप कैसा कहा है?

उत्तर—उसने वहां ऐसा कहा है—

यावकयुकरचरणा बद्धाभरणा कृतेशहृद्धरणा।
दूर्वाभतनुरखर्वा चार्वी बहुगर्विता पूर्वी॥

दूसरी एक "पौरवी" नामक रागिणी रागविबोध में है, उसका लक्षण ऐसा है—

सन्यासग्रहमांशा स्वल्परिपा पौरवी लसेत्प्रातः। (भैरवमेले)

प्रश्न—यह अपना प्रकार नहीं दिखाई देता, ठीक है न?

उत्तर—नहीं, वह अपना नहीं है।

प्रश्न—सोमनाथ पंडित ने कब और कौन से स्थान में प्रसिद्धि पायी? यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है क्या?

उत्तर—वह अपने ग्रन्थ के अन्त में ऐसा कहता है—

कुदहनतिथिगणितशके सौम्याब्दस्येषमासि शुचिपक्षे।
सोमेऽग्नितिथौ रविभेऽकरोदमुं मौद्गलिः सोमः॥

इस श्लोक से ग्रन्थ रचना की तिथि मात्र स्पष्ट होती है, उसका निवास स्थान ग्रंथ में नहीं बताया। मैं समझता हूँ, सोमनाथ भी अनेक हुए होंगे! उस दिन मैंने 'Dekkan Poets' नाम की एक पुस्तक देखी थी, उसमें भी एक सोमनाथ था, वह अपना पंडित न होगा, कारण वहां ऐसा कहा हुआ था—

'Somnath Bhatta was a Telagu Brahmin and inhabitant of Tana Lunka in the district of Rajmahendri; the pundits of that place say that he was born there in the twelfth century of Shaliwahana and was long in indigent circumstances, having inherited from his

ancestors only a small portion of land, which had been given them by the former ruler of that country × × ×"

यह पंडित भी अच्छा विद्वान था, इसमें संशय नहीं, क्योंकि वहाँ यह भी कहा है–

Somnath Bhatta proceeded to Benares, where, he diligently studied for the space of twenty years, philosophy, theology, and the liberal arts. When he was a perfect master in all those branches of the Sciences he returned to his native country; and on his way, visited severally the rajas Tekkale, Mandas, and Chakeli and exhibited his learning and talents before them. × × After this Somnath established a school of philosophy and enjoyed a considerable degree of reputation. He wrote a commentary on the Meemansa philosophy and this work is called Somnatheeyam. He had several children and died at the age of sixty in his native town. His descendants are still living."

प्रश्न—यह विद्वान अपना सोमनाथ पंडित तो नहीं होगा; क्योंकि यह बारहवीं शताब्दी में कहा गया है। फिर इसने "राग विबोध" ग्रन्थ लिखा ऐसा भी उल्लेख नहीं आया।

उत्तर—हाँ, यह ठीक है। अस्तु, 'सारामृत' कार ने पूर्वी का वर्णन ऐसा किया है–

मेलान्मालवगौलीयाज्जातोऽयं पूर्विरागकः।
तृतीयप्रहरे गेयः पूर्णः षड्जग्रहांशकः॥

रागतरंगिण्याम्:—

इमनस्वरसंस्थाने निषादप्रथमांश्रुतिम्।
गृह्णाति धैवतश्चैषा पूर्वायाः स्वरसंस्थितिः॥

गांधारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, मध्यमः पंचमस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, निषादः षड्जस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति, धैवतश्च निषादस्यैकां श्रुतिं गृह्णाति तदा पूर्व्याः संस्थानम्।

पारिजातेः—गौरीमेलसमुत्पन्ना षड्जोद्ग्राहसमन्विता।
न्यासांशगस्वरोपेता पूर्वी सा सुखदायिनी॥
तत्रैवः—कोमलौ च रिधौ यत्र गनी यत्र च तीव्रकौ।
मश्च तीव्रतरः प्रोक्तः पूर्वीसारंगके पुनः॥
ऋषभोद्ग्राहसंपन्ने गपौ न्यासांशकौ मतौ॥

यह प्रकार अपने पूर्वी के बहुत ही निकट जायेगा, परन्तु नाम अपरिचित है। "स्वरमेलकलानिधि" में रामामात्य ने पूर्वी ऐसा कहा है—

मेलान्मालवगौलीयाज्जातोऽयं पूर्विसंज्ञिकः ।
तृतीयप्रहरे गेयः पूर्णः षड्जग्रहांशकः ॥

यहाँ थाट मालवगौड़ कहा है, यानी उसमें तीव्र मध्यम नहीं है। यह ध्यान में आयेगा ही, परन्तु स्वरूप सन्धिप्रकाश का है, और समय तृतीय प्रहर का स्पष्ट है।

चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणे:—

शुद्धगौडश्च कर्णाटो मालवः पूर्विकः क्रमात् ।
एते चत्वारः श्रीरागकुमाराः परिकीर्तिताः ॥
श्वेताम्बरो गजारूढो धनुर्विद्यातिकौशलः ।
सुगात्रो भिन्नवर्णःस्यात् स प्रोक्तः पूर्विकस्तथा ॥

रागलक्षणे:—

मायामालवमेलाच्च जातः पूर्वीतिनामकः ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेव च ॥

सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।

मि० बनर्जी अपने "गीतसूत्रसार" में कहते हैं, पूर्वी में कोमल रि ध और दोनों मध्यम होते हैं, उसका समय दिन का चौथा प्रहर है। उनका ऐसा कहना ठीक है, सुरेन्द्रमोहन टैगौर ने अपने 'सङ्गीतसार' ग्रन्थ में "पूर्वी" और "पौरवी" एक ही प्रकार समझ कर उसको सम्पूर्ण मानकर दर्पण का आधार कहा है।

प्रश्न—और उसका प्रत्यक्ष स्वरूप ?

उत्तर—उसे उन्होंने ऐसा लिखा है:—

"नि़ सा नि़ सा रे ग, म ग, ग मं प प प प ध मं ग, म ग, ग मं ध मं ग, म ग, सा ग रे सा, सा नि़ सा रे नि़ ध़ नि़ ध़ ध़ प़, प़ मं़ मं़ ध़ मं़ ग़, म़ ग़ रे़ ग़ रे़ नि़़ सा़ ग़ मं़ ध़ सा सा सा रे ग रे सा" स्थाई। आगे फिर अन्तरा बनाकर विस्तार कर दिखाया है।

वह भाग मैं अब तुमसे नहीं कहता। मेरा अनुमान तो ऐसा है कि यह राग स्वरूप क्षेत्रमोहन स्वामी ने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों के आधार से बिलकुल न लिखा होगा। इसे उन्होंने अपने किसी नवीन गवैया की सहायता से तैयार किया होगा। मेरा यह अनुमान कदाचित् ग़लत भी हो, परन्तु उनका कहा हुआ आधार उनके उपयोग में आने योग्य नहीं है, यह विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है।

प्रश्न—यानी यह प्रचलित नया स्वरूप प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों के मत्थे मढ़ने जैसा कुछ-कुछ हुआ है, क्यों? परन्तु ऐसी बातों से हमको कौतूहल ही मालुम हो रहा है।

उत्तर—वास्तव में ऐसा ही प्रतीत होता है। ऐसे उदाहरण मैंने पहिले भी तुमको दिये हैं। स्वामी के इस आधार को हम एक ओर रख, उनके दिए हुए प्रचलित राग रूपों को कहीं-कहीं उपयोग हो तो करते जांय, तो ठीक होगा।

प्रश्न—यह तो ठीक है, किन्तु अभी-अभी बताए हुए स्वरूप में धैवत तीव्र क्य , आया ?

उत्तर—उधर तुम्हारा ध्यान गया क्या ? पूर्वी में कोई तीव्र धैवत भी मानते हैं, किन्तु हम वैसा नहीं करेंगे। उत्तर की ओर प्रवास करते हुए मैंने वह प्रकार सुना था। प्रसिद्ध मतभेदों से अपना कोई झगड़ा नहीं। बङ्गाल प्रान्त में दोनों प्रकार होंगे, ऐसा कहें तो झगड़ा निबटा !

"प्रदर्शिन्याम्:—

पूर्वीरागश्च संपूर्णः सग्रहः सार्वकालिकः।"

यह व्यंकटमखी का मत है, ऐसा दीक्षित कहते हैं। परन्तु यह श्लोक 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में नहीं है, वह व्यंकटमखी के किसी और एकाध ग्रन्थ में से नकल किया होगा। पुण्डरीक ने क्या चार ग्रंथ अलग-अलग नहीं लिखे थे? चतुर्दण्डिप्रकाशिका में व्यंकटमखी ने जो ५४ राग सविस्तार दिये हैं, वह मैंने तुमको बताये ही हैं। उन्होंने अपने रागों का अन्श स्वरों की शैली से कैसा सुन्दर वर्गीकरण किया है, उसे देखो न ? हमको ऐसा ही पण्डित चाहिए, ऐसे विद्वान सर्वदा मान पायेंगे व्यंकटमखी के राग अपने आज के प्रचार से भले ही न मिलें, परन्तु अपने लिखने में उसने कहीं भी संदिग्धता नहीं रहने दी है, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा।

प्रश्न—अपने वर्तमान हिन्दुस्तानी रागों का ऐसा एकाध वर्गीकरण किया जाता तो कितना अच्छा होता ?

उत्तर—आगे पीछे ऐसा करने वाले भी निकलेंगे, परन्तु राग रूपों के विषय में, समाज को पहले एक मत होने का प्रयत्न होना चाहिए।

प्रश्न—यह तो ध्यान में आया, किन्तु जरा ठहरें तो, बीच ही में आई हुई एक शंका आपसे पूछ लेता हूँ। वादी-सम्वादी स्वरों में इतनी श्रुतियों का अन्तर होना चाहिए, ऐसा जो अपने यहां कहते हैं, वे तत्व औडव अथवा षाडव रागों को लगाते समय श्रुतियों का विभाजन किस तरह करते होंगे ? एकाध स्वर वर्जित हुआ तो उसकी श्रुतियों का क्या होगा ?

उ०—इसी प्रकार की शंका मैंने "चतुर्दंडिप्रकाशिका" में की हुई एक बार देखी थी।

प्र०—यह कैसी थी ? और उसका समाधान वहाँ कैसा किया है ?

उ०—वहां ऐसा कहा है:—

पाडवौडवरागेषु वर्ज्यन्ते ये स्वराः पुनः ।
तदाश्रयश्रुतीनां किं त्यागः किं वोत्तरान्वयः ॥
अत्रेदमुत्तरं ब्रूमो वर्जनीयस्वराश्रयाः ।
श्रुतयो नैव वर्ज्यन्ते न च यांत्युत्तरस्वरान् ॥
किंतु वर्ज्यस्वरेष्वेवाधस्तिष्ठंति हि ताः पुनः।
संभवंत्युपयोगिन्यः श्रुतीनां गणनाक्रमे ॥
प्रतिमेलं च यत्सप्तनियतस्वरसिद्धये ।
द्वाविंशतिश्रुतीनामप्यवश्यं भाव इष्यते ॥

अस्तु, मैं तुमसे कहता आया हूँ कि, व्यङ्कटमखी दक्षिण की ओर एक अपूर्व पंडित हो गए हैं। उन्होंने अपने समय के प्रसिद्ध बहुत से ग्रन्थ देखे थे, ऐसा प्रत्यक्ष है। यहाँ एक बात की ओर तुम्हारा ध्यान और खींचता हूं। तुमको याद होगा कि पिछले समय 'राग लक्षण' ग्रन्थ को भी मैंने दक्षिण के वर्तमान आधार ग्रन्थों में गिन लिया था। वह ग्रन्थ कब और किसने लिखा, यह मुझे मिली हुई प्रतिलिपि से ज्ञात नहीं होता, परन्तु आज तुम दक्षिण में जावो तो तुमको उस ग्रन्थ के अनुसार ही अधिक स्थानों में प्रचार दिखाई देगा। वह ग्रन्थ 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' के बाद का होगा, ऐसा मेरा मत है। होसके तो आगे तुम्हीं शोध करना। "राग-लक्षण" के जनक मेलों का नाम 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में वर्णित नामों से भी अनेक स्थानों में भिन्न है।

प्र०—व्यङ्कटमखी के ७२ मेलों के नाम आप हमें बतायेंगे क्या ? इतर सङ्गीत पद्धति आप हमसे कहते आये हैं, इसीलिये ऐसा कहता हूं।

उ०—उन मेलों का नाम 'चतुर्दण्डिप्रकाशिका' में ऐसा कहा है:—

कनकांबरिरागः स्यात् फेनद्युतिस्ततः परम् ।
गानसामवराली च भानुमतीति रागकः ॥
मनोरंजनिकारागस्तनुकीर्तिस्ततः परम् ।
सेनाग्रणीर्जनीतोडिः स्याद् ध्वनिभिन्नषड्जकः ॥
नटाभरणरागश्च कोकिलारवमेव च ।
रूपवती रागो गेयहेजुज्जीराग एव च ॥
वाटीवसंतभैरवी मायामालवगौलक : ।
स्यात्तोयवेगवाहिनी छायावती ततः परम् ॥

जयशुद्धमालवी स्याज्झंकारभ्रमरीति च ।
नारीरीतिगौलरागः किरणावलिरागकः ॥
श्रीरागः स्याद्गौरिवेलावली वीरवसंतकः ।
स्याच्छरावतिका रागास्तरंगिणी ततः परम् ॥
सौरसेना च रागोऽथ हरिकेदारगौलकः ।
शङ्कराभरणो धीरो नागाभरण एव च ॥
कलावती रागचूड़ामणिर्गंगातरंगिणी ।
भोगच्छायानाटशैलदेशाक्षीचलनाटकाः ॥
एते पूर्वाङ्गरागाश्च ह्युत्तरांगानथ ब्रुवे ॥
सौगंधिनी जगन्मोहनोऽथ झालीवरालिका ।
नभोमणिः कुंभिनी च रविक्रिया ततः परम् ॥
गीर्वाणी च भवानी च शैवपंतुवरालिका ।
स्तवराजोऽथ सौवीरा रागो जीवंतिका तथा ॥
धवलांगो नाम देशी काशीरामक्रिया तथा ।
रमामनोहरी रागो गमकक्रियरागकः ।
वंशावती श्यामला च चामरा च समद्युतिः ।
देशीसिंहरवो धामवती नैषधरागकः ॥
स्यादतः कुंतलो रागो रतिप्रियः ततः परम् ।
गीतप्रिया रागभूषावती कल्याणशांतकः ॥
चतुरंगिणी संतानमंजरी ज्योतिरागकः ।
धौतपंचमरागश्च नासामणिस्ततः परम् ॥
कुसुमाकररागोऽथ रसमंजरिरागकः ।
द्विसप्ततिरिमे रागाः सर्वे रागांगसंज्ञिकाः ।

(इति रागांगरागाः)

इन ७२ मेल कर्त्ताओं को व्यङ्कटमखी "रागांगराग" कहता है। रत्नाकर पद्धति तो नष्ट हो गई थी, इस वास्ते ग्राम रागादिक प्रपंच वर्णन करना उसने उचित नहीं समझा। उस समय ऐसा समझा जाता था कि 'रागांगराग' बिलकुल पहिली प्रति के राग हैं, यह मैंने कहा ही था। व्यङ्कटमखी की इच्छा समस्त सङ्गीत को उत्तम व्यवस्थित करने की थी। इसलिए उसने अपने ७२ सम्पूर्ण जनक मेलों को 'रागांगराग' यह संज्ञा दी होगी, ऐसा मालुम होता है।

प्र०—और उपाङ्गादिराग उसने कैसे कहे हैं?

उ०—उनके विषय में वह कहता है।

उपांगरागा उच्यंते तत्तन्मेलसमुद्भवाः ।
गानसामवराल्यास्तु मेले पूर्ववरालिका ॥
भिन्नपंचमरागश्च रागद्वयमितीरितम् ।
जनितोडीरागमेले रागो नागवरालिका ॥
भाषांगरागपुन्नागवरालीराग ईरितः ।
ध्वनिभिन्नषड्जमेले रागो मोहननाटकः ॥
भूपालकोदयरविचंद्रिके च प्रकीर्तिताः ।
वसंतभैरवीमेले जातो ललितपंचमः ॥
मायामालवगौलस्य मेले सालंगनाटकः ।
छायागौलोऽथ मांगल्यकैशिकी मेचरंजिका ॥
गुंमकांभोजी टकश्च नादरामक्रिया तथा ।
पाडी च रेवगुप्तिः कंनडवंगालगौलकौ ॥
ललितो गुर्जरी गुंडक्रिया मल्लहरीति च ।
बौल्यार्द्रदेशिका रागो ह्यथ भाषांगमुच्यते ॥
सौराष्ट्रः पूर्विका गौडिपंतुमारुवसंज्ञकः ।
सावेरीरागमालवपंचमौ पूर्णपंचमः ॥
मार्गदेशी रामकलिः पर्जगौरीवसंतकाः ।
वेगवाहिनिमेले तु जातो भाषांगभैरवः ॥
नारीरीतिगौलमेले जातो हिंदोलरागकः ।
नागगांधारिरानंदभैरवी तदनंतरम् ॥
घंटारवो मार्गहिंदोलो हिंदोलवसंतकः ।
आभेरी चैवोपांगश्च ह्यथ भाषांग मुच्यते ।
भैरव्याहरी धन्यासी गोपिका च वसंतकः ॥
अथ श्रीरागमेले तु मणिरंगस्ततः परम् ।
स्यात्सालगभैरवी च शुद्धधन्यासिरागकः ॥
रागः कंनडगौलश्च शुद्धदेशी ततः परम् ।
देवगांधाररागश्च मालवश्रीत्युपांगकाः ॥
भाषांगश्रीरंजनी च काफीरागो हुशानिका ।
वृन्दावनी सैंधवी कानरा माध्वमनोहरी ॥

स्यान्मध्यमावती देवमनोहरी ततः परम् ।
नाटकुरंजीरागश्च ह्येते भाषांगसंज्ञिकाः ॥
अथ केदारगौलस्य मेले तु बलहंसकः ।
रागोऽथ माहुरी देवक्रियांधाली च रागकाः ॥
छायातरंगिणी नारायणगौळा च रागकौ ।
नटनारायणीरागो ह्यथ भाषांगमुच्यते ॥
भाषांगरागाः कांभोजी कन्नडेशमनोहरी ।
सोरटी च येरुकुलकांभोज्यठाण इत्यपि ॥
नीलांबरी पुनरेते रागा भाषांगसंज्ञिकाः ।
शंकराभरणे मेले जाता रागाः कुरंजिका ॥
नारायणी चारभी च रागः शुद्धवसंतकः ।
स्यान्नारायणदेशाची सामो वै पूर्वगौलकः ॥
नागध्वनीत्युपांगश्च अथ भाषांगमुच्यते ।
जलाहरी बेगडश्च पूर्णचंद्रिकरागकः ॥
सारस्वतमनोहारी केदारो नवरोजिका ।
शैवपंतुवरालिश्च सिंधुरामक्रिया तथा ॥
अथ रामक्रियामेले कुमुदक्रियदीपकौ ।
शांतकल्याणिमेले तु यम्नाकल्याणिमोहनौ ॥

अथ घनरागाः ।

घनरागा नाटगौलो वराली गौलिरेव च ।
श्रीराग आरभिश्चैव मालवश्रीस्ततः परम् ॥
रीतिगौलोऽष्टरागाश्च घनरागाः प्रकीर्तिताः ॥

इति घनरागाः ।

अथ रक्तिरागाः ।

भैरवी केदारगौलः कल्याणी च ततः परम् ।
कांभोजी तोड्येरुकुलकांभोजीराग एव च
पुंनागो बेगडः शंकराभरणस्तथैव च ।
पंतुवराली बिलहरी चाथ नवरोजिका ॥
मध्यमावती धन्यासी सौराष्ट्रिकाऽपि मोहनः ।

शुद्धसावेरिसावेरी आनंदभैरवाहरी ॥
घंटारवः कंनडश्च नीलांबरी मुखारिका ।
नाटकुरंजीसारंगहुशानीगौलिपंतुकाः ॥
गुंभकांभोजीभूपालो रागो मंगलकौशिकी ।
मल्लारी देवगांधारी नादरामक्रिया पुनः ॥
आसावेरी पूर्वी गौरी सैंधवी मार्गरागकाः ॥

अथ देशीयरागाः ।

सुरटी दरबारश्च नायकी यमुना च सा ।
पूर्व्याकल्याणयठाणोऽपि वृन्दावनी जुजावती ॥
देवगांधारपरज् रामकल्यथ शाहना ।
भैरवश्च वसंतश्च गौरी तोडी विभासकः ॥
हंवीरश्च बिलावेली धनाश्रीश्च मलारिका ।
ककुभो मांझिका पूर्वी ह्येते देशीयरागकाः ॥

इन राग नामों में अनेक राग नये और अनेक पुराने हैं। मालुम होता है ये सभी देशी राग अपनी पद्धति में हैं। कल्याणी मेल में 'यम्ना कल्याण' ऐसा संयुक्त नाम स्पष्ट है। उधर तुम्हारा ध्यान गया ही होगा। अलबत; व्याकरण शास्त्र की दृष्टि से अथवा छंद-शास्त्र की दृष्टि से व्यंकटमखी के ये श्लोक कहीं-कहीं दूषित ठहरेंगे। परन्तु ऐसे उपयोगी ग्रंथ में वैसे दोषों की ओर कोई देखेगा ही नहीं, केवल कल्पवृक्ष की भांति ही पाठक उसे पसन्द करेंगे यह भी मैं नहीं कहता, परन्तु विषय स्पष्टीकरण के लिये कहीं-कहीं कुछ क्लिष्ट और शिथिल प्रयोग भी हों तो वे जरूर क्षम्य होंगे, ऐसा मैं कहूँगा। व्यंकटमखी ने अपने समय का संगीत उत्तम व्यवस्थित कर वर्णन किया है, ऐसा दक्षिण की ओर कहा जाता है। और उनका ऐसा समझना उचित ही है।

'राग लक्षण' ग्रन्थ अब छपकर प्रकाशित हो गया है, इसलिये उसके ७२ मेलों के नाम मैं नहीं कहता। अपने संस्कृत ग्रन्थकारों पर एक आरोप यह लगाया जाता है कि वे अपने पाठकों को ऐतिहासिक महत्व की जानकारी नहीं देते हैं। कुछ अंश में यह दोष उनके मत्थे मढ़ा जा सकता है, तथापि यह भी मानना पड़ेगा कि अनेक ग्रन्थकार अपने-अपने समय का संगीत सुव्यवस्थित रूप से लिखने का यत्न करते हैं। हमारी ओर के संगीत ग्रन्थों में कुछ धार्मिक भावना ठूंस देने की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है, वह शोचनीय है। योग, वेदान्तिक शास्त्र अच्छी तरह पढ़े बिना संगीत का विषय कोई समझेगा ही नहीं, ऐसा कहना अनुचित होगा। तब ऐसे गहन विषयों की जानकारी संगीत ग्रन्थों में न हो तो भी चल सकता है। मेरा कहना यह है कि किस लेखक का हम कौनसा ग्रन्थ देखें और उसमें से क्या सार निकालें तथा किस प्रमाण से निकालें, इतना ही जो लिख सकें तो पढ़ने वाले उनका उपकार मानेंगे। संस्कृत की गंध भी जिसमें न हो, ऐसे लेखकों को शरीर की नाड़ी और चक्र के चक्कर में पड़ने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं। मैं समझता हूँ, ऐसा कार्य पाश्चात्य लेखक नहीं करते। अपने को सुसंगत, साधार

सुबोध और प्रामाणिक इतिहास चाहिये, और ऐसा होने पर लेखकों की प्रामाणिक गलती भी पाठक बड़ी उदारता से क्षमा कर देते हैं।

प्रश्न—परन्तु बंगाल में पाश्चात्य शैली पर संगीत का इतिहास लिखा गया है, यह आपने पहिले कहा था, तथा उसका एक अवतरण भी आपने पढ़कर सुनाया था ?

उत्तर—हां, मुझे स्मरण है कि, मैंने टैगौर साहब के "Universal History of Music" नामक ग्रन्थ से वह अवतरण पढ़कर सुनाया था। उस लेखक का प्रयत्न कुछ अच्छा है, परन्तु जो मैं कहता हूँ उस दृष्टि से विशेष समाधान कारक यह प्रयत्न ठहरेगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। निदान, उसमें दी हुई प्राचीन संगीत की ऐतिहासिक जानकारी बहुत उपयोगी होगी, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि उस ग्रन्थ के अन्त में "Appendix" और "Addenda" के रूप में जो दस बीस पृष्ठ हैं, उनमें दी हुई कोई-कोई कल्पना और सुझाव विचित्र व नवीन हैं।

प्रश्न—वह क्या ?

उत्तर—उसमें से कुछ बताता हूँ, सुनो:—

"It has been stated that there are three gramas in Hindu Music, vix. The Sa grama; the Ga grama, and the Ma grama. The reason why the three notes Sa, Ga, and Ma, and no others have been selected to represent the three gramas is that it is the (three) scales of these three notes which between them furnish, to use the language of the Pianoforte, the seven white keys and the five black keys of the diapason. Thus when Sa (c) is made the keynote the seven white keys are obtained. When Ga (E) is made the keynote, four of the black keys are obtained. ... When Ma (F) is made the keynot the fifth black key is obtained, viz. Ni (B) flat, which represents the F of that scale. आगे ग्रन्थकार स्वयं ही कहता है कि, "It should be noted however, that the above represent the popular version of the functions of the three gramas For what constitutes the three gramas strictly according to the system of Hindu Music, as laid down in the Sanskrit treatises of old, the curious may be referred to the "Musical Scales of the Hindus" and "Six Principal Ragas of the Hindus" by the author."

प्रश्न—वहां क्या लिखा है ?

उत्तर—मालूम होता है, प्राचीन सङ्गीत में ग्राम का उपयोग कैसा होता था, यह बात वह साहब समझे ही नहीं। मैं वह पुस्तक ही पढ़कर तुम्हें आगे सुनाऊंगा। आज की अपनी पद्धति में ग्रामों का महत्व न होने से यहां पर उसकी चर्चा हम छोड़ ही दें! अब दूसरी एक कल्पना देखो:—The number of original Ragas (melody-types) was fixed at six, probably because the first six notes of the heptachord, respectively, stand as their Vadi. Thus, नटनारायण=वादी सा; मेघ=वादी रे; श्री=वादी ग; पंचम=वादी म; भैरव=वादी प; वसन्त=वादी ध। The fact of the seventh note B being kept out of count is partly corroborative of the remark generally made that the pentatonic Scale was in common use in Asia at a very early period.

प्रश्न—अपने इस मत का वे कुछ आधार भी कहते हैं क्या ?

उत्तर—सो मुझे कहीं नहीं दिखाई दिया, परन्तु ऐसी युक्तियों के आधार की क्या आवश्यकता है ? अच्छा, आगे अपने नवरसों पर एक मनोरंजक युक्ति उन्होंने कैसी दी है, सो देखो:—

"The order in which some of the Sanscrit writers have enumerated the Rasas chimes in with the theory of evolution. शृङ्गार (love) is a feeling common to all sentient beings, and lies at the root of the law of procreation. Even such small specimens of animated nature as flies are governed by this sentiment. The next in order is वीर (heroism) which is observed in the next higher stages, of created beings such as mice and snakes which are known to fight with each other. The third in the gradation is करुण (tenderness). This feeling is non-existent in the lower creations such as fish, frogs, mice, snakes &c., which are known to lat up their young ones. The sentiment called रौद्र (anger) which comes next is found in the next higher grades of living beings such as dogs, lions and tigers. Then comes हास्य (mirth). This is confined to the highest creation, man. भयानक (terror). The feeling of the terror is that of man in a state of barbarism in which any thing grand or awe in spiring in nature or art becomes to him an object of terror. बीभत्स (disgust) is the feeling of man when he has made strides in the path of civilization. अद्भुत (surprise) sentiment is realized by man only when he has reached the summits of civilization. शान्त (quiescence) is the highest development of human feeling and its exclusion from the domain of music is due, perhaps, to the fact that it is not capable of being reflected by the art". अब अधिक नहीं पढ़ते, यह सारा मत तुमको स्वीकार करना ही चाहिये, ऐसा नहीं समझना।

प्रश्न—आपने कहा था कि टैगौर साहब की दी हुई प्राचीन सङ्गीत की जानकारी विशेष समाधानकारक नहीं है, तो वह जानकारी कैसी है, उसे हमको बतायेंगे क्या ?

उत्तर—चाहिए तो कहता हूं। सुनो—प्रथमत: काल दृष्टि से सङ्गीत के इतिहास के उन्होंने तीन भाग किये हैं। (1) The Hindu Period. (2) The Mahomedan Period. (3) The British Period. और फिर प्रत्येक काल में सङ्गीत कैसा था, यह बताने का उन्होंने प्रयत्न किया है। अब Hindu Period का उनका इतिहास सुनो:—

"With the Hindus Music is of Divine origin. In fact it is considered as Divinity itself. Before the creation of the world an

all-pervading sound rang through space. Brahma the Creato, Vishnu the Preserver, and Mahadeva the Destroyer who comprise the Hindu Triad, were not only fond of music but were practical Musicians themselves. Vishnu holds the Shankha in one of his hands, and this Shankha according to some of the Puranas was one of the valuable articles or gems recovered from the Deep at the churning of the Ocean. On one occasion Vishnu is said to have been so charmed with the vocal performances of Mahadeo that he began to melt and thus gave birth to the sacred Ganges. Mahadeva invented the Pinaka, the father of stringed instrumeuts. It was cut of his five months that fiive of our original Rags of Hindu Music were produced, the sixth springing from the mouth of his consort Parwati, these being respectively Shree, Vasant, Bhairava, Panchama, Megha, and Natnarayana. After slaying the Demon Tripur, Mahadeva was so much elated with joy that he began to dance and Brahma prepared the drum, with which he asked Ganesha to keep time, out of the earth saturated with the Demon's blood, his skin serving as the skin with which the instrument was covered at the two ends It is stated that Mahadeva composed the Shankara Vijaya in commemoration of this victory. Brahma added six Raginees to each of the principal Rags and began to impart a knowledge of music to five of his pupils. Of these Huhu and Tumburu, the inventor of Tambura, cultivated and spread the knowledge of music. Rambha the celestial dancer learnt and taught dancing. Narad and Bharat practised the theory of music. Each of these composed a treatise, but the one composed by Bharat had currency on earth. It was he who out of the combination of the 6 Rags and 36 Raginees composed 48 Raginees and designated them as their children. Innumerable combinations followed and it is said that each of the 16000 milkmaids with whom Vishnu in his incarnation of Krishna in Dwapar Yuga held dalliance in Brindaban composed a Raginee for his delectation. × × Brahma created the four Vedas and out of them four Upavedas of which Gandharva was one. This was evolved from the Sama Veda."

प्रश्न—और आगे, "सामवेदादिदं गीतं संजग्राह पितामहः" जान पड़ता है।

उत्तर—ठहरो ठहरो, आगे देखो—

"Coming to ihe heroic ages described in the Ramayan and Mahabharat, it will be found that music was cultivated and encouraged

by the Princes and the people. It is related that Bhagiratha escorted the river Ganges from her heavenly residence to the terrestrial earth, blowing a counch all along the journey."

प्रश्न—महाराज यह कैसा प्राचीन सङ्गीत का इतिहास? मैं तो समझता था कि हमारे मूल स्वर कितने, कौन से और क्यों? वेद से उन्हें कैसे और किसने निकाला? अपने शुद्ध स्वर सप्तक कैसे-कैसे बनते गये? "राग" शब्द प्रचार में कैसे और कब आया था? मूल राग कितने थे? रागों का सम्बन्ध महादेव जी से लगाने का क्या तात्पर्य था? रागिनी और पुत्र इनकी आवश्यकता कैसे उत्पन्न हुई, और उनका समय कौनसा? रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से क्यों लगाया गया? सामवेद के पश्चात् कितने समय के बाद अपना सङ्गीत निकला था? दक्षिण का सङ्गीत पहले कहां से आया था? ऐसे प्रश्नों की चिकित्सा उन साहब द्वारा हुई होगी, परन्तु वैसा स्पष्टीकरण कुछ नहीं दिखाई देता है। खाली असम्बद्ध, अविश्वसनीय, असमंजस और निरुपयोगी दंतकथाओं से विद्यार्थियों का यदि क्षणभर मनोरंजन हुआ भी तो इससे उनकी क्या भलाई हुई? भारतीय युद्ध में पांडवादिकों ने शंख फूंका, वृन्दावन में वंशी द्वारा गोपियां मोहित हुईं, इन बातों को सुनकर हम जैसे विद्यार्थी सङ्गीत का इतिहास कैसे मालुम कर सकेंगे? हम अपने हृदय की भावना खुले दिल से आपके सामने रखते हैं, इसके लिये क्षमा करेंगे।

उत्तर—कोई हर्ज नहीं, तुमसे मैं नाराज नहीं हूँ, पर यह तो देखो, कि जब पुरातन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं, अथवा जो हैं उनमें तुम कहते हो उस विषय पर कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता, अथवा अपने पुराणों में से क्रमबद्ध एवं सन्तोषप्रद जानकारी मिलने योग्य नहीं है, तब बेचारे इतिहास लेखक और कहां से लिखेंगे? तुमने व्यर्थ ही शीघ्रता की। मैं पौराणिक कथाओं को छोड़कर शीघ्र ही नाटकीय काल में तुमको लेजाने वाला था। इतना ही नहीं, तुमको विश्वास करा देता कि 'मृच्छकटिक' और 'मालविकाग्निमित्र' इत्यादि नाटकों से आये हुए उल्लेखों द्वारा किसी भी समझदार मनुष्य को दिखाई देगा कि उस समय में अपने देश में उच्चकुल की स्त्रियां भी सङ्गीत का अभ्यास करती थीं। अलबत्ता वे क्या गाती थीं, अपने रागों में कैसे-कैसे स्वर लगाती थीं, कौनसे ग्रन्थों का आधार ग्रहण करती थीं, आदि जानकारी इतिहास में नहीं मिलने की और ऐसी जानकारी उन नाटकों में भी नहीं है तो इसका क्या इलाज है? लेखक को तो जितनी जानकारी मिल सकेगी उतनी ही वह संग्रह करेगा, अधिक कहां से लायेगा।

प्रश्न—जान पड़ता है, कि अपने हृदयगत भाव हम उचित रूप से व्यक्त नहीं कर सके। हम टैगोर साहेब के प्रयत्न को बिलकुल दोष नहीं देते। उन्होंने जानकारी प्राप्त करने के लिये बहुत कोशिश की होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैं तो यही कहने वाला था कि उसे प्राचीन सङ्गीत का इतिहास नहीं कहा जा सकता। आप ही देखें कि एक बार महादेव जी आनन्द से नाचने लगे और उनका वह नाच देख विष्णु जी तुरन्त ही पानी हो गये फिर उस पानी से गङ्गा नदी हुई और वह नीचे मृत्युलोक में उतरी, और उसको भागीरथ लेकर चले। त्रिपुरासुर के रक्त से मिट्टी भिगोयी गई, ब्रह्मदेव ने उस मिट्टी का पखावज बनाया और गणेश जी ने ताल दिया। ऐसे वर्णन से पाठक, प्राचीन इतिहास को

कैसे समझ सकेंगे ? इन बातों का रहस्य क्या है ? इसे कैसे समझा जाय ? हम कुछ प्रमाण न मांगते हुए नम्रतापूर्वक स्वीकार करने के लिये तैयार हैं कि ब्रह्मा जी से लेकर शार्ङ्गदेव-पर्यन्त हमारे इस भारतवर्ष में सर्वत्र सङ्गीत की रुचि थी, तो फिर Hindu Period का इतिहास समाप्त ही समझना चाहिए न ?

उत्तर—तुम्हारा यह प्रश्न तो बड़ा विचित्र है ! इसका सरल उत्तर मैं क्या दूं ? यदि मैं हाँ कहदूँ तो भी ठीक न होगा, यदि Hindu Period में विशेष कुछ नहीं है तो भी इतर भागों की जानकारी तो विशेष उपयोगी है । मैं तो कहता हूँ कि उस साहब ने बहुत परिश्रम किया है, और उसका यह ग्रन्थ तुम एक बार पूरा पढ़ जाओ तो अच्छा ही है । मुझे जान पड़ता है Mahomedan और British Period के सम्बन्ध में उन्होंने जो अपना इतिहास कहा है उसे पढ़ने से तुमको बड़ी उपयोगी जानकारी मिल सकेगी ।

प्रश्न—अच्छा, वह ग्रन्थ हम जरूर पढ़ेंगे । हमारा सङ्गीत देवताओं के द्वारा लोगों में आया, यह बात वह ग्रन्थकार स्पष्ट लिखता है क्या ?

उत्तर—हां, इस विषय में शार्ङ्गदेव क्या कहता है, देखो—

नाट्यवेदं ददौ पूर्वं भरताय चतुर्मुखः ।
ततश्च भरतः सार्धं गंधर्वाप्सरसां गणैः ॥
नाट्यं नृत्यं तथा नृत्तमग्रे शंभोः प्रयुक्तवान् ॥
प्रयोगमुद्धतं स्मृत्वा स्वप्रयुक्तं ततो हरः ।
तंडुना स्वगणाग्रण्या भरताय न्यदीदिशत् ॥
लास्यमस्याग्रतः प्रीत्या पार्वत्या समदीदिशत् ।
बुद्ध्वाऽथ तांडवं तंडोर्मर्त्येभ्यो मुनयोऽवदन् ॥
पार्वती त्वनुशास्ति स्म लास्यं बाणात्मजानुषाम् ।
तया द्वारवतीगोप्यस्ताभिः सौराष्ट्रयोषितः ॥
ताभिस्तु शिक्षिता नार्यो नानाजनपदास्पदाः ।
एवं परंपराप्राप्तमेतल्लोके प्रतिष्ठितम् ॥

भरत ने ब्रह्मा जी से नाट्य वेद किस तरह प्राप्त किया, वह सब "भरत नाटय शास्त्र" के प्रारम्भ में सविस्तार कहा है । किन्तु अब हम उस दिशा की ओर घूमें ही नहीं तो अच्छा होगा । हमको अब पूर्वी राग समाप्त करना चाहिये । उसका वर्णन प्रचार के अनुसार चतुर पण्डित ने इस प्रकार किया है:—

शास्त्रे रामक्रियासंज्ञो मेलः पूर्वीति लक्ष्यके ।
कर्नाटकीयपद्धत्यां वर्धनी कामपूर्विका ॥

एतन्मेलसमुत्पन्ना स्यात्पूर्वी सुखदायिनी ।
सायंगेयाऽथ संपूर्णा गांधारांशपरिष्कृता ॥
व्यवहारप्रसिद्धैषा श्रीरागस्य कुटुंबिनी ।
अतः सुनिश्चितं गानं दिनांतेऽतिमनोहरम् ॥
श्रीरागेह्यृषभो वादी गांधारोऽत्र समीरितः ।
उद्धारोऽस्या भवेद्युक्तः श्रीरागामंतरं ततः ॥
प्रयोगः शुद्धमस्यात्र सह गेन मतो मनाक् ।
प्रतिलोमे न मे भाति रक्तिहानिकरो ध्रुवम् ॥
केषुचिच्छास्त्रग्रन्थेषु रागिणीयं निरूपिता ।
प्रस्फुटं भैरवे मेले शुद्धमध्यममंडिता ॥
तीव्रमोऽपेक्षितोऽवश्यं सायंगेयत्वसूचकः ।
अतो मन्ये समादिष्टौ विदग्धैर्मध्यमावुभौ ॥
वैचित्र्यं तीव्रमस्य स्याद्दिनांते सर्वसंमतम् ।
उपकारी भवेच्छुद्धमध्यमो रागनिर्णये ॥
केचित्पूर्व्यां वदंतीह धैवतं तीव्रसंज्ञकम् ।
न मेऽभीष्टं विधानं तद्बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥

इस श्लोक की बहुत सी बातें मैंने तुमको प्रथम ही बतादी हैं, इस वास्ते उन्हें तुम सहज में ही समझोगे। अब अपने प्रचलित पूर्वी राग के स्वरूप का समर्थन करने वाला कुछ और आधार देखलें—

पूर्वीरागः सकलविदितः कोमलाभ्यां रिधाभ्यां ।
मध्यस्तीव्रो मृदुरपि सदैवात्र तीव्रौ गनी स्तः ॥
गो वाद्यत्र प्रविलसति तत्साहचर्ये निषादः ।
संपूर्णोऽसौ सरसविबुधैः सायमेव प्रगीतः ॥ कल्पद्रुमांकुरे ।
मृदू रिधौ मध्यमौ द्वौ वादिसंवादिनौ गनी ।
पूर्वीरागः सायमुक्तः पूर्णारोहावरोहणः ॥ चंद्रिकायाम् ।
कोमल रिध तीवरगनी दोऊ मध्यम लाग ।
गनि वादीसंवादितें बनत पूरवी राग ॥ चंद्रिकासार ।

Capt. Day साहब ने पूर्वी का आरोह-अवरोह इस प्रकार कहा है। सा रे ग म प धु नि प सां। सां नि धु प म ग रे सा। और उसके अवयवी भूत राग मालव और गौरी बताये हैं।

'राधागोविन्द-सङ्गीतसार' में ऐसा रूप दिया है—सा रे॒ ग म॑ प म॑ ग, प, सा ग, रे॒ ग म॑ प, नि ध॒ प, म॑ ग, रे॒ सा, सा रे॒ सा। इसमें कोमल म उस ग्रन्थकार ने नहीं दिया।

सङ्गीतकल्पद्रुमकार कृष्णानन्द व्यास क्या कहता है वह भी सुनो—

"निद्रालसंयुक्तकपटेनकांतं तृतीयप्रहरे सुभूषणा च सौंदर्यलावण्यसुष्ट मृगाक्षी सा पूर्वी दीपकरागिणीयम् ॥ मालश्री श्री संयुक्तपुरिया च धनाश्रिका पूर्वी जायते यत्र तृतीयप्रहरात्परं। मध्यमांशगृहन्यासससंपूर्णा हनुमन्मते पुरवी प्रियमृगाक्षी दीपकस्य च वल्लभा!"

तानसेन के नाम से जो एक "राग माला" छपी है उसमें ऐसा कहा है—

> **गौरी मालव जोगतें राग पूरवी होइ।**
> **रागरंग सब शोधके गावत है सब कोइ॥**

इस पुस्तक में रत्नाकर के स्वराध्याय का प्रथम हिन्दी भाषान्तर है और वहां के राग समझने योग्य न होने से रागाध्याय अपनी ओर से लगाया है, उसमें रागों का मिश्रण बताया गया है। आगे प्रकीर्णकाध्याय के कुछ भाग का हिन्दी रूपान्तर किया है।

प्रश्न—यह ग्रन्थ तानसेन ने लिखा है क्या?

उत्तर—ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। किसी ने उसे लिखकर तानसेन का नाम उसमें दे दिया है। संस्कृत जानने वालों को उसके स्वराध्याय की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। रागाध्याय में "रागमिलाप" कहा है। वह भाग कहीं-कहीं उपयोगी होगा। अब पूर्वी राग की दो एक छोटी "सरगम' तुमको बता देता हूँ, वह सुनो—

पूर्वी-त्रिताल

सा ध॒ म॑ प । ग म ग रे॒ । म ग ऽ रे॒ । ग म॑ प ऽ ।
प ध॒ म॑ प । ग म ग ऽ । रे॒ ग ऽ म॑ । ग रे॒ सा ऽ ।
नि़ नि़ सा रे॒ । ग ऽ म ग । म॑ ध॒ रें॒ नि । ध॒ नि ध॒ प ।
प ध॒ म॑ प । ग म ग रे॒ । म ग ऽ रे॒ । ग म॑ प ऽ ।

अन्तरा—

ग ग म॑ ध॒ । म॑ सां ऽ सां । नि रें॒ गं रें॒ । सां रें॒ नि ध॒ ।
रें॒ नि ध॒ नि । ध॒ प ध॒ प । म॑ प म॑ ग । म॑ ग रे॒ सा ।
नि़ नि़ सा रे॒ । ग ऽ म ग । म॑ ध॒ रें॒ नि । ध॒ नि ध॒ प ॥

पूर्वी-झपताल

नि़ रे॒ । ग ग म॑ । ग रे॒ । ग रे॒ सा ।
नि़ नि़ । सा रे॒ ग । रे॒ ग । म ग ग ।
म॑ ग । म॑ ध॒ म॑ । रें॒ नि । ध॒ नि ध॒ ।
प म॑ । ग म॑ ध॒ । म॑ ग । रे॒ रे॒ सा ।

अन्तरा—

मं ग । मं ध मं । सां ऽ । नि रें सां ।
नि रें । गं रें सां । नि रें । नि ध प ।
मं ध । नि सां रें । नि रें । नि ध प ।
मं ध । नि ध प । मं ग । रे रे सा ।

अब फिर थोड़ा सा विस्तार कर इस राग को पूरा करते हैं:—ग रे सा, नि़, रे सा, नि़ नि़, सा रे ग, म ग, रे ग ग, रे सा, नि़, रे सा। नि़ नि़, सा रे ग, रे ग, नि़, रे ग, ग म रे ग, नि़ रे ग म ग, मं म ग म ग, नि़ रे ग, मं ग, ग रे सा, नि़ रे सा। नि़ नि़, रे नि़ ध़ प़, म़ ध़ नि़ ध़ प़, म़ प़, ध़ नि़, ध़ प़, नि़ सा, नि़, सा, रे ग, मं ग, रे ग, रे सा, नि़, रे सा। नि़ नि़, सा रे ग, म ग, ग म मं ग म ग, रे ग, ध, प, मं मं ग म ग, रे ग मं ध मं ग, रे ग, रे सा, नि़, रे सा। सा, नि़ सा, नि़ रे ग रे सा, रे ग रे सा, नि़ रे ग म रे ग, रे सा, मं मं ग ग, रे ग रे सा, प मं ग, मं ग, रे ग मं ध मं ग, रे ग, रे सा, नि रें नि ध प, मं प, नि ध प, मं प ध मं प, मं ग, म ग, रे ग, ध मं ग, म ग, रे ग, ध मं ग, ग, रे सा, नि़, रे सा। नि़ रे ग मं प, मं प, ध प, मं प नि ध, प, मं प ध मं प, मं ग म ग, नि रें नि ध, प, मं मं ग, म ग, रे ग मं नि मं मं, ग, रे ग, रे सा, नि़ रे सा।

ग ग मं ध मं, सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, नि नि, रें नि ध प, मं प, मं ध, नि, ध नि ध प, मं मं, प, नि ध प, मं ध मं ग, म ग, नि़ रे ग, मं ध मं ग, रे ग, रे सा, नि़, रे सा।

सा सा, प प, मं ध प, मं प, नि ध प, सां, नि ध प, मं मं ध ध मं मं ग ग, मं ग, रे ग मं ध मं ग, रे ग, रे सा।

ग ग, मं ध, सां, सां, नि रें सां, गं रें सां, नि रें गं मं गं, रें सां, नि रें गं रें सां, नि, रें नि ध प, मं मं ध, रें नि ध प, मं ध मं, मं ग, रे ग, ध मं ग, रे ग, रे सा, नि़, रे सा।

इस तरह से छोटे-बड़े सैकड़ों स्वर समुदाय रचकर अच्छी, जोरदार परन्तु मधुर आवाज से गाते जाओ, इससे तुम्हारे श्रोता जरूर सन्तुष्ट होंगे।

प्रश्न—यह राग हम भली प्रकार समझ गये। अब अगला लीजिये?

———

श्री राग

उत्तर—अच्छा, अब हम 'श्री राग' लेते हैं। श्री राग अपने यहाँ एक बहुत ही प्राचीन और प्रसिद्ध राग समझा जाता है ? अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में यह एक अति मधुर और स्वतंत्र प्रकार है, ऐसा भी कह सकते हैं। बहुत से प्रशंसित गवैये उसे गाते हैं। तुमको यह जानकर आश्चर्य होगा कि श्री राग का थाट पूर्वी है यह बात ग्रन्थों के आधार से सिद्ध करने वाले पंडित तुमको सौ में पांच भी नहीं मिलेंगे।

प्रश्न—क्यों भला ?

उत्तर—उसे मैं अब कहने ही वाला हूँ। तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बहुत कठिन नहीं। मैंने कहीं कहीं कहा है कि अपने बहुत से ग्रन्थकार श्री राग के लक्षण में साधारण गांधार और कैशिक निषाद होना मानते हैं। वे स्वर अपने कोमल गांधार और कोमल निषाद होने से वह थाट काफी के समान सिद्ध होता है।

प्रश्न—अर्थात् 'अहोवली' काफी समझी जायगी न ?

उत्तर—अवश्य ! अब यह भी एक प्रश्न उत्पन्न होना संभव है तथापि अपनी स्वर रचना में २६६⅔ का रि और ४०० का ध के लिये ग्रन्थ का प्रमाण नहीं है, ऐसा भी कहने वाले हैं, यह ध्यान में रक्खो। मैं श्री राग का थाट 'अहोवली' काफी ही कहने वाला था, परन्तु श्री का थाट काफी मानने वाले ग्रन्थकार अधिकतर दक्षिण के हैं। वहां पर आज का प्रचलित संगीत उन ग्रन्थों के अनुसार है! अपने यहाँ यानी उत्तर की ओर केवल श्री राग, पूर्वी थाट के स्वरां से गाने का रिवाज है। यह प्रचार इधर कब और कैसे शुरू हुआ होगा यह एक मनोरंजक प्रश्न है। उसका भी थोड़ा सा विचार हम करते हैं।

प्रश्न—उत्तर के आधार ग्रन्थ तो 'संगीत-पारिजात' और 'रागतरंगिणी' हैं, ऐसा हमारे ध्यान में है।

उत्तर—सो ठीक ही है। उस मत का भी विचार हमको करना होगा और उसे हम करने वाले भी हैं। हम धीरे धीरे आगे चलते हैं, क्योंकि ऐसे महत्व के विषय पर शांत चित्त से विचार करना चाहिये। आज दक्षिण की ओर अपने 'काफी' थाट का नाम 'खरहरप्रिया' है। यह नाम 'राग लक्षण' ग्रन्थ में स्पष्ट है। इतर ग्रन्थकार उदाहरणार्थ रामामात्य सोमनाथ, व्यंकटमखी, तुलाजी, पुंडरीक वगैरह इस थाट को श्रीराग मेल कहते हैं।

प्रश्न—'खरहरप्रिय' यह नाम कान में कुछ विलक्षण सा ही लगता है ठीक है न ?

उत्तर—सो बुरा नहीं; परन्तु इन नामों के विषय में विस्तृत व्याख्या मैंने अभी तक नहीं की है। धीरशंकराभरण, हरिकांभोजी, मेचकल्याणी, माया मालवगौड़ वगैरह नाम भी तुमको मैंने बताये थे, परन्तु अभी कुछ और कहने को रह गये हैं। खरहरप्रिया यह नाम कवि ने खास किसी विशिष्ट प्रयोजन साधने के लिये पसन्द किया है। उस नाम के पहले दो अक्षर जो तुमको अपरिचित और विलक्षण से लगते हैं वे ही वस्तुतः अधिक महत्व के हैं। दक्षिण में ७२ मेलों की रचना है यह तुम जानते ही हो। इन

पहले दो अक्षरों का सम्बन्ध वहां के उन वर्गीकरणों से है। ये अक्षर कान में पड़े कि वहां के पंडित मेल का 'नंबर' (क्रमिक स्थान) पहचान लेते हैं और उन्हीं के द्वारा उनके स्वर भी खोज लेते हैं।

प्रश्न—तो फिर यह मनोरंजक योजना हमें जरूर समझनी चाहिये।

उत्तर—उससे थोड़ा विषयांतर होगा परन्तु मैं समझता हूँ कि इस विषय में भी कुछ कह दिया जाय तो हानि नहीं होगी, साथ ही साथ दक्षिण के ७२ मेलों का संपूर्ण नाम ग्राम बताना आवश्यक होगा तभी वह जानकारी की कुञ्जी हाथ लगेगी। दक्षिण के थाटों के नाम बड़ी कुशलता से रखे गये हैं। ऐसा मैंने कहा ही था। अब उसकी कुञ्जी बताता हूँ उसे वहां 'कटपयादिसंज्ञा' कहते हैं। इस शब्द में 'क, ट, प, य' इन अक्षरों का महत्व है। यहाँ तुमको मैं पहले "कादिनवं, टादिनवं, पादिपंच, याद्यष्ट" ये चार शब्द ठीक तरह से ध्यान में रखने के लिये कहूँगा। क्योंकि इन्हीं के द्वारा सारा जोड़-तोड़ बैठाया गया है।

प्रश्न—परन्तु इन शब्दों से क्या समझा जाय?

उत्तर—वही अब कहता हूँ। अपने मूलाक्षरों के जो पांच वर्ग हैं उनका इशारा पंडित लोग "कचटतप" ऐसे शब्दों से प्रायः करते हैं। अब यहां "कादिनवं" इस शब्द का अर्थ ऐसा समझा जायगा कि "क" अक्षर से नौ अक्षरों की जो पंक्ति है वह कादिनवं कही जाती है और ट से लेकर नौ अक्षरों का समुदाय 'टादिनवं' समझा जाता है। बाकी के दो शब्दों का अर्थ भी इसी तरह समझ लो। प्रारंभ के अक्षर को १ मानकर बाकी के अगले अक्षरों की सूचित की हुई संख्या (अथवा अङ्क) सहज ही ध्यान में आयेंगे।

प्रश्न—तो फिर 'कादिनवं' अर्थात क=१, ख=२, ग=३, घ=४, ङ=५, च=६, छ=७, ज=८, झ=९, ऐसा समझा जायेगा? इसी तरह 'याद्यष्ट' 'या' अक्षर से ८ अक्षरों की पंक्ति अर्थात् य=१, र=२, ल=३, व=४, श=५, ष=६, स=७ ह=८ ऐसा समझा जायेगा?

उत्तर—तुम बिल्कुल ठीक समझे। अब इन अक्षरों का उपयोग कहता हूं। दक्षिण के ७२ थाटों में से चाहे जौन सा थाट लेकर उनके दो अक्षरों को खोज कर वहाँ इन संख्याओं का उपयोग करो। तो उस थाट का क्रम नम्बर तत्काल निकलेगा।

प्रश्न—हम "खरहरप्रिया" यही नाम लेते हैं, 'ख' मानी दो और 'र' मानी भी दो हैं, तो २२ इस थाट का नंबर हुआ।

उत्तर—तुमने ठीक कहा। उपरोक्त उदाहरण में दोनों अङ्क समान हैं, परन्तु जहाँ ऐसा न हो वहाँ संस्कृत पंडितों का प्रसिद्ध नियम "अंकानाम वामको गतिः" लगाओ तो ठीक संख्या मिलेगी। यह नियम तुम "मायामालवगौड़", "धीरशंकराभरण", "हरि-कांभोजी", "कनकांगी" वगैरह नामों में लगा देखो तो अधिक स्पष्ट होगा।

प्रश्न—"मायामालवगौड़"=५, १=१५, "धीरशंकराभरण"=९, २=२९, "हरिकांभोजी"=८, २=२८ "कनकांगी"=१, ०=०१=१ यही न? यह गणित हमारे ध्यान में ठीक आया है ऐसा जान पड़ता है।

उत्तर—शाबाश, तुम ठीक समझे। यह कुञ्जी Chinu Swamy पंडित अपने Oriental Music में किस प्रकार कहते हैं, देखो—

"A different name has been assigned to each of the seventy-two modes, and to help the memory in recalling their serial numbers and signatures, the first two syllables of each name have been so ingenio-usly and dexterously fitted in as to make them subserve the purposes of an easy formula, called the Katapayadi Sangna, which is briefly expressed by the words,

Kadinava । Tadinava । Padipancha । Yadyashta

The method of applying this formula, which is based on the principal letters of the alphabet, is so curiously characteristic of the love of Orientals for mysticism and cccultation that a brief explanat-ion of it will not be altogether out of place or uninteresting. The letters of the alphabet are divided off into sections as shown below and each letter is identified with the number under which it falls. The letter N placed under O represents that whenever N occurs, a zero should be taken instead of a number;

	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
Kadinava—	K,	KH,	G,	GH,	NG,	CH,	CHH,	J,	JH,	GN.
Tadinava—	T,	TH,	D,	DH,	N,	T,	TH.	D,	DH,	N,
Padipancha—	P,	PH,	B,	BH,	M,	.	.	.	.	.
Yadyshta—	Y,	R,	L,	W,	S,	SH,	S.	H,	.	.

If then it is desired to find out to which serial number and therefore to which signature a given Melakarta (That) belongs, all that has to be done is to take the first two syllables of the name and see under what corresponding numbers in the table the initial letters fall, and then to reverse the natural order of these numbers according to the Sanscrit usage, which generally neglects the Savya or regular sequence of numbers in favour of their Apasavya or inverse order."

जब यह भाग अच्छी तरह तुम्हारी समझ में आ गया है, तो और आगे कहना व्यर्थ होगा। इन बातों को देख कर दक्षिणी पंडितों के लिये अपने मन में बड़ा आदर उत्पन्न होता है और उनको कुछ नहीं आता था, ऐसा कहने में सङ्कोच मालुम पड़ता है। अस्तु, अब अपने विषय की ओर लौटता हूं। दक्षिण की ओर श्री राग के स्वरों के सम्बन्ध में कहीं मतभेद नहीं दिखाई देता, अपने उत्तर प्रान्त के गायकों में भी श्री राग

का थाट पूर्वी मानने के विषय में विशेष मतभेद नहीं दिखाई देता। कोई अति कोमल की बात भी कहते हैं परन्तु उधर हमें अभी विशेष ध्यान नहीं देना है। हम जो रूप गाते हैं वह बहुत मनोहर है, इसे कोई भी स्वीकार करेगा।

प्रश्न—दक्षिण के पंडित श्री राग का आरोहावरोह कैसा मानते हैं?

उत्तर—वे ऐसा मानते हैं:—सा रे म प नि सां। सां नि प ध नि प म रे ग रे सा। वे अपना नियम "आरोहे गधवर्ज्यं च पूर्णवक्रावरोहकम्" ऐसा कहते हैं। पूर्वी थाट में श्री राग गाने वाले अपने गायक आरोह में गांधार और धैवत वर्जित करते हैं परन्तु अवरोह सीधा और सम्पूर्ण रखते हैं।

प्रश्न—अपने यहाँ श्री राग के समान दिखाई देने वाला, यानी जिससे श्री का भ्रम हो सके ऐसा दूसरा कोई राग है क्या?

उत्तर—वैसा एक राग है, और उसका नाम "गौरी" है। यह नाम तुमने सुना ही होगा। इस राग के विषय में अभी मैंने कुछ कहा नहीं, परन्तु मैं पूर्वी थाट की गौरी कह रहा हूँ। श्री और गौरी राग के लक्षणों के विषय में अपने गायकों में बारम्बार विवाद उत्पन्न होता है। गौरी के विषय में मैं आगे बोलने ही वाला हूं।

प्रश्न—कोई हानि नहीं। अच्छा, वह दक्षिण का श्री राग अपने उत्तर के किस राग के समान लगता होगा?

उत्तर—वह कुछ-कुछ अपने सारङ्ग के समान लगता है। सारङ्ग के विषय में मैंने पीछे बड़हंस पर कुछ कहा है। हमारे समाज के एक गायक ने दक्षिण के श्री राग की कथा एक बार हमें सुनाई थी। तुम्हारे इस प्रश्न से वह मुझे याद आ गई है। उसने कहा-"मैं कुछ वर्ष हुए दशहरा के उत्सव में मैसूर गया था। वहां उस उत्सव में हमारे उत्तर के बड़े-बड़े गुणी लोग प्रति वर्ष जाते रहते हैं, और वहाँ के महाराजा की ओर से उनका यथायोग्य सन्मान होता है। महाराजा के पास सङ्गीत कुशल गुणी लोग भी रहते हैं। नियमानुसार एक दिन मेरा मुजरा हुआ। सभा में मुझसे श्री राग गाने की फर्माइश हुई। मैंने तुरन्त "गजरवा बाजे" यह स्थाई शुरू की। उसे समाप्त कर "ए री हूं तो आसन गइली पास न" यह ली, परन्तु वहाँ के लोग रजामन्द से नहीं मालुम हुए। मैंने अपने "नेम धर्म प्रमाण से" अपनी समझ से अच्छी 'फिरत' की, पर उसका परिणाम अच्छा नहीं दिखाई दिया। इतने में, मेरे पास ही वहाँ के जो एक प्रसिद्ध बीनकार बैठे थे, उन्होंने मुझे धीरे से इशारा किया कि, खां साहब, तुम अपना 'बिंदरावनी सारङ्ग' शुरू करो, तो तुम्हारा काम होगा। यह सूचना पाते ही मैंने तत्काल वह सारङ्ग शुरू किया, और देखता हूं तो वहाँ के सारे "तिलङ्गी" आनन्द से मानो झूमने लगे। महाराज ने मुझे अच्छी बख्शिश भी दी।" कहने का तात्पर्य इतना ही है कि दक्षिण का श्रीराग अपने एकाध सारङ्ग प्रकार के समान दिखाई देता है।

प्रश्न—आपने पहिले कहा था कि श्री और गौरी राग के विषय में वादकों में मतभेद उत्पन्न होता है। ऐसा भला क्यों होता होगा? जबकि ग्रन्थों में 'श्री' और 'गौरी' के थाट भिन्न हैं।

उत्तर--तुम्हारी शङ्का उचित है। वहाँ ग्रन्थकारों का दोष है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह अड़चन अथवा वह विवाद अपने आज के प्रचार के कारण हैं। ये दोनों राग आज पूर्वी थाट में गाये जाते हैं। इतना ही नहीं पर उन दोनों में "आरोहे गध वर्ज्यं स्यात्" यह नियम अपने गायक मानने लगे हैं, तो फिर विवाद होगा ही, ठीक है न? वह सब अब धीरे-धीरे तुम आगे देखोगे ही। हम इस राग का विचार अलग अलग करेंगे, तो सुविधाजनक होगा। उनको एक साथ कहने लगूंगा तो तुम्हारे लिये व्यर्थ ही भ्रम में पड़ने की संभावना है।

प्रश्न--यह भी ठीक है। तो फिर अपने श्री राग का वर्णन ही पहले चलने दीजिये। उसकी यथा संभव जानकारी मुझे हुई तो गौरी का भेद शीघ्र ध्यान में आ जायेगा। आप 'श्री' के विषय में ही कहिए।

उत्तर--हां, वैसा ही करता हूं। मैंने पीछे कहा ही था कि पूर्वी थाट के रागों में तुमको दो मुख्य अङ्ग दिखाई देने योग्य हैं। १ श्री अङ्ग और २ पूर्वी अङ्ग। उन अङ्गों के स्वर भी मैंने तुम्हें बताये थे। इसी तरह मैंने इस थाट के रागों के स्थूल दृष्टि से दो ही वर्ग किये थे। तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि अपने कुछ ग्रन्थकारों ने भी मालवी, त्रिवेणी, गौरी और टंकी, इन्हें श्री राग की भार्याओं में गिना है।

प्रश्न--श्री राग का थाट काफी मानने से, ये उसकी भार्या कैसे शोभा देंगी?

उत्तर--ठीक है, तुम्हारा प्रश्न वाजिब है। जो श्रीराग का थाट 'पूर्वी' मानेंगे, उनके कहने में भी कुछ अर्थ दिखाई देगा! दक्षिण की ओर राग-रागिनी की रचना नहीं है, यह मैंने कहा ही है। यह विचार शैली उत्तर प्रान्त की है, ऐसी साधारण समझ है, परन्तु इस विषय पर हम निरर्थक छानबीन करते हुए नहीं बैठे रहेंगे। मालवी, त्रिवेणी वगैरह रागों में थोड़ा सा श्री अङ्ग दिखलाया जाता है। इतना ही अभी ध्यान में रक्खो, तो काफी होगा। उन रागों का नियम बिलकुल स्वतन्त्र है। श्रीराग की प्रकृति सदैव गम्भीर रखने का प्रयत्न करो। इस राग के आरोह में गांधार और धैवत वर्जित करने का प्रचार है, वहां रिषभ और पंचम इन दो स्वरों पर सारी खूबी है। इस राग का विस्तार करते हुए प्रसिद्ध गायक षड्ज, रिषभ और पंचम इन पर मुकाम करते हुए बारम्बार पाये जाते हैं और वह ठीक भी है। धैवत तो बढ़ नहीं सकता और मध्यम तथा निषाद सहायक स्वर रहते हैं। श्रीराग सिखाते हुए "रे॒, रे॒, सा", "ध॒ ध॒ प" ये दो स्वर समुदाय विद्यार्थीगण खूब रटकर तैयार करते हैं, क्योंकि इन्हीं पर यह सारा राग निर्भर है। पहले रिषभ के प्रारम्भ में जैसे षड्ज का 'कण' है, उसी प्रमाण से पहले धैवत पर पंचम का कण है। दूसरे 'रे' पर गांधार का कण है और दूसरे धैवत पर निषाद का कण है। जिसको यह स्वर समुदाय उत्तम सध गया उसको श्रीराग आगया, यह कहा जायेगा। ये दो समुदाय मींड से 'रे॒ रे॒, सा ध॒, ध॒ प' इस तरह जोड़ने में आये कि वहां श्री राग लुप्त होकर भैरव उत्पन्न होगा। भैरव के रिषभ में ऊपर का कण होता है, यह स्वीकार है, परन्तु वह मींड श्रोताओं को अवश्य भ्रम में डालती है। कोई मार्मिक हमसे ऐसा कहते हैं कि भैरव में रिषभ और धैवत का आन्दोलन बिलकुल स्पष्ट रागवाचक है, उसे सावकाश करके श्रीराग को बचाते हैं। उनके इस कथन में भी कुछ

तथ्य है। कुछ लोग श्रीराग में रे ध अति कोमल मानते हैं, परन्तु मैं समझता हूँ श्रीराग के पहिचानने में इतने झंझट की आवश्यकता नहीं है। भैरव में "म ग रे, सा" यह टुकड़ा मधुर और स्वतन्त्र है। श्रीराग में "प, मं, रे रे सा" यह भाग मेरे साथ दस-बीस बार बोलो तो श्रीराग की खूबी तुम्हारे ध्यान में आ जायेगी। देखो, इस टुकड़े में मध्यम से मींड द्वारा रिषभ का स्पर्श नहीं हुआ।

प्रश्न—ऐसा करने से रिषभ का कण अच्छा नहीं लगेगा, ठीक है न?

उत्तर—वह तुम्हारे ध्यान में ठीक आया। अब मैं "सा, रे रे सा, ध़ प़" यही स्वर एक बार भैरव में और एक बार श्रीराग में गाकर दिखाता हूँ, "सा, रे, रे, साध़ प़" वह भैरव है। "सा, रे रे, सा, ध़ ध़ प़" यह श्रीराग है। आगे षड्ज में मिलने का प्रकार स्वतन्त्र ही है। "म़ प़, ध़, नि़ सा" ऐसा भैरव में होगा, और "मं़ प़, नि़, सा" ऐसा श्री राग में होगा। मानव हृदय ऐसा चमत्कारिक है कि उस पर मुख्य रागांग की छाप एक बार पड़ी कि वह दृढ़ होकर बैठ गई। इसी लिये तो अपने गायक प्रायः ऐसा करते हैं कि जिस भाग में वादी स्वर स्पष्ट हो और राग दर्शाने योग्य स्वरावली हो, वह भाग जितना जल्दी लाया जा सके उतनी ही जल्दी श्रोताओं के सम्मुख ले आते हैं। यह "कसब" का भाग है। कोई कोई तो वादी स्वर से ही राग का प्रारम्भ करते हुए मिलेंगे, यह मैंने कहा ही है।

प्रश्न—हम श्री राग कैसे शुरू करें?

उत्तर—इस राग में 'सा, रे, प' ये तीन मुकाम मैंने पहिले बताये ही हैं। मध्यम और निषाद, इन परावलम्बी स्वरों पर मुकाम नहीं किया जा सकता, उन पर तान लेते हुए यों ही चाहो तो ठहर सकते हो, परन्तु मध्यमान्त या निषादांत तानें शोभा नहीं देंगी, जैसे 'मं़ प़ नि़, सा,' इस तरह निषाद पर थोड़ा ठहर कर षड्ज से मिला जाय तो ठीक रहेगा। श्री राग में गांधार अवरोह में स्पष्ट लगाया जाता है, किंतु उसके लगाने में भी कुछ गायक बड़ी खूबी दिखाते हैं। गांधार के नीचे मध्यम का कण लगाने से जो परिणाम होता है, वह ऊपर से तीव्र मध्यम का कण लगाने से भी कुछ निराला ही होता है। अब मैं रिषभ का कण लेकर "सा, रे रे, सा, ग रे रे, सा" यह स्वर किस प्रकार कहता हूं सो देखो। यही स्वर मैं यदि मध्यम के कण से गाऊं तो वहाँ परिणाम भिन्न होगा, तथापि इन कणों के विवादग्रस्त झंझट में तुम्हें डालने की मेरी इच्छा नहीं। कोई कहेगा, श्री राग में गांधार का नीचे का कण लगाओ और कोई इसका उल्टा कहेगा। चलो, अब हम श्री राग शुरू करते हैं—"सा, रे रे सा, नि़, सा रे रे सा ग रे रे सा, नि़, रे नि़ ध़ प़, मं़ प़ नि़, सा, रे सा, मं ग रे, ग रे, रे सा, नि़, रे सा। रे प मं प, ध प, नि ध प, मं प ध मं ग रे, प मं ग रे, मं ग रे, ग रे सा. नि़, रे सा। ध़ ध़ प़, मं़ प़, नि़ ध़ प़, मं़ प़, नि़ सा, रे रे, मं ग रे, ग रे सा, सा रे सा," । इस तरह से तुम राग विस्तार शुरू करो तो बुरा नहीं मालुम पड़ेगा, ऐसा मैं समझता हूँ। इस राग में बीच-बीच में रिषभ और पंचम की सङ्गति करने में आती है और वह बहुत ही अच्छी दिखाई देती है, जैसे—"रे रे प, प, मं ध, प, मं ग रे, प मं ग रे, ग रे सा, सा रे सा"।

प्रश्न—श्री राग में वादी रिषभ है न?

उत्तर—हाँ, किन्तु कोई पंचम को भी वादित्व देते हैं। मेरे गुरू वादी रिषभ और सम्वादी पंचम मानते हैं। एक गायक ने सम्वादी धैवत लगा कर गौरी से श्री राग को अलग करके दिखाया था। परन्तु हम रिप सम्वाद को ही मानते हैं। श्री राग के आरोह में धैवत वर्जित करने से जलद तान लेने वालों को बड़ी अड़चन पड़ती है। इस लिये वे उस नियम का उलंघन करते हुए अनेक बार तुमको मिलेंगे, परन्तु राग नियम संभाल कर उत्तम गाना अधिक मूल्यवान माना जायेगा।

प्रश्न—उस गायक ने समझा होगा कि संध्या काल का समय होने तथा श्रोताओं का ध्यान रिषभ और पंचम स्वर की ओर लगे रहने से हमारे किये हुए धैवत का स्पर्श "प्रच्छादित" स्वर के नाते से अथवा "मनाकस्पर्शः" के रूप में यह धींगा धींगी चल जायेगी। ठीक है न?

उत्तर—कदाचित उसकी समझ वैसी रही हो। यदि वे थोड़ा सा धैवत लगाते हैं तो गांधार को नियमानुसार वर्जित करते हैं, तब श्री और गौरी इन दोनों रागों में क्या गड़बड़ी रह जायेगी। इतर इस थाट के रागों के आरोह में गांधार वर्जित नहीं है, अतः वे 'मं प धु नि सां' ऐसी तान श्री राग में कभी नहीं लगाते, यह भी ध्यान में रखना चाहिये। वे कहीं कहीं 'मं धु नि सां' ऐसा कर जाते हैं, परन्तु धैवत का परिमाण आंकने के लिये तार रिषभ पर खास तौर से थोड़ा ठहर जाते हैं और वहीं से फिर 'रें, सां, नि, रें नि धु प, प, मं धु मं ग रे, रे सा' इस तरह से उतरते हैं। श्री राग का विस्तार पहले छोटी-छोटी तानों से किया जाता है। इस राग में रिषभ की तानें रागवाचक होती हैं, इस लिये उन्हें अच्छी तरह साधना चाहिये। 'सा रे, सा, ग रे, मं ग रे, सा, नि़ रे सा; सा, प, प, मं धु प, धु मं ग रे, मं ग रे, ग रे, सा; रे रे ग रे, सा, रे, मं प, मं धु मं ग रे, मं ग रे, सा'। यह तान मेरे साथ दो चार बार कहो तो तुरन्त बैठ जायेगी। श्री राग में तुमको मन्द्र स्थान में ही अच्छी तरह घूमते हुए बनेगा, परन्तु वहां तीव्र मध्यम के नीचे जाने में प्रयास करना पड़ेगा। गायक भी उस स्वर के नीचे क्वचित ही जाते हैं। तंतकारों को ऐसा सहज करते बनता है। मंद्र सप्तक की तानें अधिकतर अपने मध्य सप्तक के उत्तरांग की ही होती हैं। किन्तु तंतकारों के विषय में हमें विशेष नहीं कहना है। मैं तुम्हें गवैयों की बात कहता हूँ। इस लिये मंद्र स्थान की मर्यादा मैंने गवैयों की दृष्टि से कही है। अपने प्राचीन पंडितों ने भी तो गवैयों की सुविधा देख कर ही मर्यादा कायम की है। किसी सुसंस्कृत गायक को मंद्र स्थान के सभी स्वर कुशलता पूर्वक लगाते बनें तो भी वह उन्हें न लगावे, ऐसा मैं नहीं कहता। उम्र के लिहाज से आवाज नीची ऊँची जाती है यह तुम्हें ज्ञात ही है। अच्छा अब थोड़ा थोड़ा श्री राग का विस्तार करो तो देखूं? प्रथम श्री राग का कायम अंग गाकर दिखाओ और उसके बाद फिर क्रम से मध्य सप्तक के पंचम पर्यन्त जाकर 'श्री अङ्ग' का जोड़ (आलाप) समाप्त करो। आगे फिर मंद्र सप्तक में प्रवेश करो। छोटी तान दो, तीन, चार स्वरों के क्रम से और पुनः क्रम छोड़ कर रचते चलो, बस। इसकी बाबत पहिले मैंने बताया ही है। ऐसे विस्तार को कोई-कोई गायक 'खंडमेरु की वजे से' ऐसा कहते हैं।

प्रश्न—मैं प्रयत्न करके देखता हूँ—"सा, रे रे, सा, नि़ सा, ग रे, मं ग रे, सा, नि़ रे सा; सा, नि़, रे नि़ धृ प़, नि़ धृ प़, मं प़, धृ प़ मं प़ नि़, प़ नि़, सा, रे सा, मं ग रे, सा,

नि़ रे, सा; सा, रे रे, मं प, मं धु प, नि धु प, मं प धु मं प मं ग, रे, मं ग, रे, ग रे, रे, सा, नि़ रे सा; नि़ सा, रे सा, ग रे, मं ग रे, प मं ग रे, रे सा;" इस तरह चलेगा क्या ?

उत्तर—मैं समझता हूं श्री राग में यह अशुद्ध नहीं माना जायगा। पञ्चम को मुकाम मान कर तान कैसी रक्खोगे ?

प्रश्न—वहाँ ऐसा करूंगा, "रे रे मं प, रे मं प, धुप, मं प धु प, नि धु प, सां नि धु प, मं प धु मं प, मं ग, रे, मं ग रे, रे सा"।

उत्तर—चल सकता है। एक बार नियम समझ लेने से कुशल विद्यार्थियों को ऐसी बातें समझने में कितनी देर लगेगी ? जो लोग धैवत के नियम की ओर थोड़ा बहुत दुर्लक्ष्य करते हैं, वे 'सा, रे रे सा, मं प, धु प, मं धु नि धु प, सां नि धु प, मं प धु मं ग रे, प मं ग रे, ग रे, सा नि़ रे सा । सा, रे रे सा, प, प, मं प, धु प, नि धु प, मं धु नि रें नि धु प, सां, नि धु प, मं मं, धु मं ग रे, मं ग रे, ग रे, रे सा, नि़ रे सा'। ऐसा करते हैं। यहां रिषभ का क्या विलक्षण परिणाम है, देखा न ? धैवत आरोह में लगा तो भी राग की छाप वैसी ही कायम रह सकती है, ठीक है न ? वहाँ एक खूबी यह भी ध्यान में रखनी चाहिये कि वादी जिस अङ्ग में होगा, उस अङ्ग में चल सके तो ढील डाल न करने की सावधानी अवश्य रखनी चाहिये। इससे इन अङ्गों के छोटे-मोटे दोष कुछ देखे जा सकते हैं। इसी समझ से अपने गायक भी आरोह में धैवत कहीं-कहीं रखते हैं। यदि तुम्हें यह पसन्द हो तो तुम भी धैवत का मर्यादित प्रयोग वैसा करते जाओ, परन्तु जो कुछ करो उसे सोच समझ कर करना ही उचित होगा। एकाध बार धैवत का प्रयोग अधिक हुआ दिखाई दे तो तुरन्त पंचम पर ठहर कर पूर्वी राग की रागवाचक तान शुरू कर देना, इससे श्रोताओं को विसङ्गति नहीं मालुम पड़ेगी।

प्रश्न—अर्थात् 'धु धु प, मं प धु प, मं धु नि धु, प, रें नि धु प, प, प, मं धु मं ग रे, मं ग रे, ग रे, रे, सा नि़ रे, सा' ऐसा करना पड़ेगा ?

उत्तर—शाबाश, तुम ठीक समझे। आरोह में धैवत लगाना पसन्द न करें तो मेहनत कम होगी, यह स्पष्ट ही है। परन्तु यह सुविधा के ऊपर निर्भर है। अस्तु, भैरव राग का वर्णन करते हुए मैंने तुम से कहा था कि गाने की सुविधा के लिये गायक कभी-कभी आरोह में रिषभ स्वर छोड़ देते हैं, उसकी तुम्हें याद है क्या ?

प्रश्न—हाँ, हमने 'सा, ग, म प धु, प, भैरव का यह प्रसिद्ध उठान अच्छी तरह ध्यान में रख लिया है, परन्तु तनिक ठहरिये, आपकी बातों से एक प्रश्न हमको सूझा है। इस श्री राग में रिषभ स्वर तो आरोह में सदैव आने वाला है, फिर यहाँ नि़ सा रे मं प' ऐसी सरल और शीघ्र तान लेने की सुविधा कैसे होगी ?

उत्तर—तुम्हारी यह शंका उचित ही है। परन्तु श्रीराग में ऐसी जल्दी की तानें अपने गायक बहुधा लगाते ही नहीं। वे उसके टुकड़े करते हैं, जैसे 'सा, रे सा' अथवा

'नि सा, रे सा रे' यह एक टुकड़ा होता है। यह टुकड़ा गाकर वे कुछ ठहरते हैं और फिर 'मं, प, प धु प' ऐसा करते हैं। वस्तुतः यह टुकड़ा तो श्रीराग की जान है। भैरव में आरोह करते हुए यदि कभी-कभी रिषभ छोड़ा गया, तो वह स्वर आरोह में वर्जित नहीं माना जाता, यह तुमको मालुम ही है। 'नि रे ग म प धु नि सां' यह तान भैरव में तुमको बारंबार दिखाई देगी। श्री राग में 'सा रे, रे सा, मं प' ये स्वर साधे जायं और योग्य रीति से उच्चारण किये जायं तो राग रूप स्पष्ट दिखाई देने लगता है। भैरव में इसका उल्टा प्रकार करने से राग स्पष्ट होगा, जैसे 'प, म ग रे, रे सा'।

प्रश्न—यानी एक आरोह में जाहिर होगा और दूसरा अवरोह में स्पष्ट दिखाई देगा, यही न ?

उत्तर—हाँ, मैं ऐसा ही सूचित करने वाला था। श्री राग का विस्तार अधिकतर मध्य और मंद्र सप्तक में करो। तार षड्ज के आगे रिषभ तक जाकर पुनः मध्य पंचम पर गायक जब ठहरता है तब बहुत ही सुन्दर दिखाई देता है। 'मं प, नि, सां, रें रें सां, सां, नि धु प, मं प, धु मं ग रे, रे, सा' यह तान श्री राग में बहुत शोभा देती है। कोई कहते हैं कि गौरी के रे, धु, स्वर श्री राग के रे, धु, स्वरों की अपेक्षा अधिक कोमल होते हैं, परन्तु यह खटपट हमारे लिये सम्भव नहीं है। इस विषय में एक बार मुझसे एक व्यक्ति ने कहा भी था "Right singing must depend upon right Intonation"; परन्तु "Which is the right intonation ?," "Which will be your model ?" यह विवाद खड़ा रहेगा।

प्रश्न—वहाँ कोई कहेगा कि इस प्रश्न का उत्तर आधुनिक नादशास्त्र देगा, परन्तु वहाँ फिर अपने पुराने ग्रन्थ और गायकों को संकट में पड़ने का प्रसंग उत्पन्न होगा, और कदाचित नवीन संगीत नियम स्थापित करने की भी आवश्यकता उत्पन्न होगी, ठीक है न ?

उत्तर—यह अड़चन तुम्हारे ध्यान में खूब आई। उसके विषय में मैंने पहिले कहा ही है—अपना विषय 'लक्ष्य संगीत' है, 'भावी संगीत' नहीं। अभी तो हम बारह स्वरों के ही आधार से चलेंगे और शीघ्रता के लिये वे ही अधिक सुविधाजनक होंगे।

प्रश्न—ठीक है। श्री राग का अन्तरा कैसे शुरू करते हैं ?

उत्तर—वह ऐसे किया जाता है:—'प प, मं धु प, नि, सां, नि, रें गं रें सां, नि नि, सां, रें नि धु प' कोई ऐसा कहते हैं 'सा सा रे रे सा, नि, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां' इत्यादि। श्री राग में 'प, धु मं ग रे, ग रे, सा' ये स्वर मैं कितनी सावधानी से गाता हूँ, सो देखो ! यह टुकड़ा मेरे साथ साथ बोलकर अच्छी तरह से बिठालो; क्योंकि यह मार्मिक भाग है।

प्रश्न—अन्तरा गाकर आगे किस तरह मिलना होगा ?

उत्तर—उसे ऐसा करो, 'मं धु प, नि, सां, रें सां, नि रें गं रें सां, नि, रें नि धु प, प, मं धु मं ग रे, प मं ग रे, ग रे, रे, सा' पूर्वी में अन्तरा गंधार से शुरू किया जाता है, वैसा यहाँ नहीं हो सकता क्योंकि वह स्वर आरोह में नहीं आता। श्री राग का संचारी और आभोग तुमको स्वयं निर्माण करना आता ही है।

प्रश्न—उसे भी आप कहदें तो अच्छा होगा, इससे आपका उचारण और आपका विश्राम स्थान हमारे ध्यान में आजायगा।

उत्तर—अच्छा तो कहता हूँ, सुनोः—"सा सा, प, प, मं मं, धु, प, मं, प, नि धु प, मं धु मं ग रे, मं ग रे, सा, नि रे ग रे, सा, सा रे, सा (संचारी)। मं मं धु धु, प, नि, सां, सां रें सां, नि, रें गं रें सां, नि सां, रें नि धु प, सा सा, प, प, मं प, रें नि धु प, मं धु मं ग रे, मं ग रे, रे सा, (आभोग)"। अब इस राग की कल्पना तुमको यथेष्ट हुई होगी। इसमें शुरू-शुरू में धड़ाधड़ तान कभी मत लेना। यह राग अप्रसिद्ध अथवा दुर्लभ नहीं है, तथापि गाने में बड़ी कुशलता रखनी पड़ती है। बड़े घराने के गायक इसमें उत्तमोत्तम ध्रुपद गाते हैं। मैं तुमको भी कुछ ध्रुपद श्री राग के आगे चलकर बताऊंगा। श्री राग को पूर्वी थाट में किसने और कब सम्मिलित किया ? यह प्रश्न बड़े झंझट का है, परन्तु यह राग इस थाट में बहुत ही शोभा देता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। आश्चर्य यह है कि अपने पारिजात और तरंगिणी ग्रन्थों में श्री राग का थाट पूर्वी नहीं है।

प्रश्न—तो फिर यह परिवर्तन हुआ तो कहाँ और किस तरह ? तथा वह किसने किया ?

उत्तर—यह प्रश्न कठिन ही है। दंत कथा पर विश्वास किया जाय तो अकबर बादशाह के समय तक तो दीपक राग प्रचार में होना ही चाहिये, क्योंकि उसी की आज्ञा से कोई गायक दीपक से जल मरा, ऐसी एक दन्त कथा हम सुन चुके हैं। उसमें कितनी सचाई है, यह कदाचित "आइने अकबरी" में मिलेगा, परन्तु इस पंचायत में हमको नहीं पड़ना है। श्रीराग पूर्वी थाट में कब और किसके द्वारा आया, यह अपना विषय था। कोई कहेगा कि श्रीराग का थाट पहले "काफी" निर्धारित करने में ही कदाचित भूल हो गई है, संभव है ऐसा हुआ हो, परन्तु ऐसा कहने वालों को ग्रन्थ-वाक्यों का सरल और यथार्थ बोध करके दिखाना होगा।

प्रश्न—परन्तु वे और कौनसा ग्रन्थ लायेंगे ? दक्षिण के ग्रन्थों में तो उनको आधार मिलेगा ही नहीं, और उत्तर के ग्रन्थ तो पारिजात और तरंगिणी यही हैं न ?

उत्तर—तुमको अड़चन तो पड़ेगी, इसमें कोई शक नहीं, परन्तु यह न भूलना चाहिए कि हम संस्कृत ग्रन्थाधार के विषय में कहते हैं। हिंदी और मुसलमानी ग्रन्थों में श्री राग "पूर्वी" थाट में जरूर मिलेगा।

प्रश्न—परन्तु उन ग्रंथों का आधार तो संस्कृत ग्रंथ ही होंगे न ?

उत्तर—मेरे मत से उन्होंने संस्कृत ग्रन्थों का ही आधार लिया होगा, परन्तु मुझे उर्दू और फारसी आती नहीं, यह मैंने कहा ही था। हाँ, अच्छी याद आई—उत्तर के एक शहर में एक मुसलमान तंतकार ने मुझसे एक बार बड़े मजे का विवाद किया था।

प्रश्न—वह क्या ?

उत्तर—इस श्रीराग के स्वरों से ही बात शुरू हुई थी, उस संभाषण का सार तुमको संक्षेप में बताता हूँ।

"मैं—खां साहेब, तुम श्री राग में कौन से स्वर लगाते हो?

वह—हम अति कोमल रे, तीव्रतम ग, तीव्र म, कोमल ध, तीव्रतम नि, ये स्वर लगाते हैं।

मैं—और पूर्वी में?

वह—पूर्वी में हम अति कोमल रे, तीव्र ग, कोमल और तीव्रतम म, तीव्रतम ध, और तीव्र नि यह स्वर लगाते हैं।

मैं—अच्छा, भैरव में कौन से स्वर लगाते हो?

वह—भैरव में अति कोमल रे, तीव्रतर ग, शुद्ध म, कोमल ध और तीव्र नि लगाते हैं।

मैं—तुम किस संस्कृत ग्रन्थ का आधार लेते हो? मैं ऐसे आधार समस्त देश भर में खोजता फिरता हूँ।

वह—संस्कृत ग्रन्थ की हमको क्या जरूरत है? हमारे अरबी और फारसी ग्रन्थ नहीं हैं क्या?

मैं—परन्तु उन ग्रंथों ने तो संस्कृत ग्रन्थों का ही आधार लिया होगा न?

वह—किसलिये? सङ्गीत तो सारे जहान की विद्या है। संस्कृत वालों ने ही कदाचित उन अरबी और परशियन ग्रन्थों से आधार लिये हों तो कौन कह सकता है। इधर के 'बावन' नामक राग को संस्कृत वालों ने 'भैरों' किया है 'माकस' राग को 'मालकंस' किया है। संस्कृत ग्रन्थों की हमको बिल्कुल परवाह नहीं है।

मैं—खां साहेब, तो फिर तुम्हारे उस स्वतंत्र ग्रन्थ में सात स्वरों के नाम खरज, रिखब, गांधार न होंगे? वे अरबी के होंगे?

वह—सुरों के नाम तो वे ही हैं, उसका कारण मैं क्या कहूँ, उन्हें वे लिखने वाले जानेंगे।"

इसके बाद खां साहेब से मैंने आगे विवाद नहीं किया। उस बीनकार ने एक पुस्तक भी लिखी है वह उर्दू में है। उस पुस्तक में भिन्न-भिन्न रागों में लगने वाले सूक्ष्म स्वर उसने लिख रक्खे हैं, ऐसा समझा जाता है। उसे मैं आगे तुमको दिखाऊँगा।

प्रश्न—उसका आधार?

उत्तर—आधार, मेरी समझ से इतर कुछ मुसलमानी ग्रन्थों का होगा अथवा स्वयं हाथ और मुख का। परन्तु उसने बोलते-बोलते "तोफे-तुल-हिंद" इस परशियन ग्रन्थ का भी नाम लिया था, ऐसा मुझे याद आता है। मुसलमानी ग्रन्थों में सूक्ष्म स्वर हमको कहीं-कहीं कहे हुए मिल जाते हैं, यह मैंने पहिले कहा ही था। नवीन कल्पना से अपना कोई विवाद नहीं। संस्कृत ग्रन्थों में ऐसी गड़बड़ी नहीं है, यही हमारा कहना है और कुछ नहीं। अस्तु, दक्षिण के ग्रन्थों में श्रीराग को पूर्वी थाट में डालने का आधार नहीं मिलता है, यह हम पहिले कह चुके हैं।

प्रश्न—अब रहगई बात उत्तर प्रान्त के ग्रन्थों की। उन ग्रन्थों का शुद्ध थाट काफी है, तब उनके लक्षण में रे ध कोमल और ग म नि तीव्र, यह स्वर किसी को सिद्ध करने चाहिये, यही न ?

उत्तर—हां ठीक है। अच्छा, पारिजात में देखा जाय तो अहोबल ने श्रीराग का वर्णन कुछ विलक्षण ही कर रक्खा है।

प्रश्न—वह कैसा ?

उत्तर—देखो, वह कहता है:—

रित्रयोद्ग्राहसंयुक्तः षड्जोद्ग्राहोऽथवा मतः।
श्रीरागस्तीव्रगांधार आरोहे गधवर्जितः ॥

प्रश्न—यहां हमको रे, ध कौनसा लगाना होगा ? कोमल लगावें ऐसा तो श्लोक में कहा नहीं, तो फिर वे शुद्ध ही रहेंगे, ठीक है न ? पुनः गांधार तीव्र कहा है, परन्तु निषाद शुद्ध ही रहेगा, तब क्या श्रीराग का थाट अहोबल पंडित खमाज सरीखा मानता है ? यह मत कदाचित् दक्षिण के पंडितों को भी ग्राह्य नहीं होगा। यह स्थिति अति प्राचीन होगी, ऐसा भी कोई कैसे कह सकता है क्योंकि अहोबल बहुत प्राचीन नहीं है, ऐसा आपने कहा ही था।

उत्तर—सो ठीक है। यह अहोबल 'विद्यारण्य' के बहुत पीछे हुआ होगा, क्योंकि उसकी लिखी हुई ईशान स्तुति में विद्यारण्य को शंकराचार्य का अवतार वर्णन किया है। अहोबल ने श्रीराग को खमाज के थाट में कैसे लिया, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, तथापि तीव्र गांधार को उसने कहीं से लिया होगा, इस पर कुछ तर्क किया जा सकता है।

प्रश्न—उसने दक्षिण के ग्रन्थों में "साधारण ग" कहा हुआ देखकर उसे तीव्र नाम दिया होगा ? उस गांधार के विषय में उसकी ऐसी भूल की बाबत आपने हमें बताया भी था।

उत्तर—मैं वैसा ही तर्क करने वाला था, अस्तु—अहोबल ने अपना स्वतः का थाट "शुद्ध काफी" माना और भ्रमवश दक्षिण के ग्रन्थों का भी वैसा ही समझा, यह मैंने सूचित किया था। वह प्रत्यक्ष सङ्गीत तो जानता ही था और चालाक भी था, इसीलिये कुछ नया कुछ पुराना मिलाकर जैसा आज के अपने ग्रन्थकार करते हैं वैसा ही कुछ उसने लिख दिया होगा, ऐसा कोई भी कह सकता है।

प्रश्न—हमारे देखने में जो ग्रन्थ आये, उनमें श्रीराग का थाट "पूर्वी" कहीं भी हमको दिखाई नहीं दिया, ऐसा स्वीकार करके हम आगे चलें न ?

उत्तर—बहुत से ग्रन्थों की परिभाषा अब तुम समझने ही लगे हो, तो अब इस राग पर संस्कृत ग्रन्थकार क्या-क्या कहते हैं, उसे तुम्हीं देखलो तो अच्छा है। जहां अड़चन हो वहाँ हमसे पूछो।

प्रश्न—अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।

उत्तर—'सङ्गीत रत्नाकर' में पांच गीतों में बटे हुए ग्राम रागों में "श्रीराग" नहीं है। वहां "राग" शीर्षक के नीचे जो बीस राग कहे हैं उनमें "श्री" का नाम मिलता है, श्रीराग का लक्षण वहां ऐसा है।

"षड्जे षाड्जीसमुद्भूतं श्रीरागं स्वल्पपंचमम्।
सन्यासांशग्रहं मंद्रगांधारं तारमध्यमम्।
समशेषस्वरं वीरे शास्ति श्रीकरणाग्रणीः॥

"समस्वरत्व" किसे कहते हैं, यह मैंने पीछे कहा ही है। उपरोक्त लक्षण के प्रमाण से कौनसा थाट होता है, ऐसा प्रश्न मैंने मथुरा के एक प्रसिद्ध पंडित से किया था, वे स्वयं एक ग्रन्थकार थे। उन्होंने कहा--"षड्जे षाड्जीसमुद्भूतं" यदि ऐसा है तो उसका काफी थाट होगा, परन्तु वह स्वरूप प्रचार से बिलकुल विसङ्गत होगा।" दक्षिण पद्धति की जानकारी उन्हें बिलकुल नहीं थी। इस श्लोक पर कल्लिनाथ पंडित द्वारा की हुई टीका भी विचार करने योग्य है।

प्रश्न--वह कैसी है?

उत्तर--वह कहता है, "श्रीरागे गांधारनिषादयोर्मध्यमषड्जादिमैकैकश्रुत्याक्रमणेन त्रिश्रुतित्वे शास्त्रविहितेऽपि षड्जमध्यमयोरशास्त्रविहितत्रिश्रुतित्वकरणेन कौशिकयोरवैशसम्। तथापि ऋषभधैवतयोर्गांधारनिषादादिमश्रुत्याक्रमणेन प्रत्येकं चुतुःश्रुतित्वं वा शास्त्रविहितम्।"

प्रश्न--इसका विषय अच्छी तरह समझ में नहीं आया, कृपया अधिक स्पष्ट करके कहिये।

उत्तर--कहता हूँ। पहले तुम अपने 'काफी' थाट के चित्र की भली प्रकार से मन में कल्पना करो और फिर मैं जो कहूँ उसे धीरे-धीरे ठीक तरह ध्यान में रक्खो। काफी थाट के गांधार और निषाद स्वरों के प्राचीन नाम कौनसे हैं, बताओ तो?

प्रश्न--वह "साधारण ग" और "कौशिक नि" होंगे।

उत्तर--ठीक है। उन प्रत्येक स्वरों में श्रुति कितनी हैं?

प्रश्न—श्रुति तीन-तीन होंगी, क्योंकि शुद्ध ग, नि स्वरों की मूलतः दो-दो श्रुति शास्त्रोक्त हैं। यह स्वर एक-एक श्रुति तीव्र होकर "साधारण" और "कैशिक" होते हैं। यह हम अच्छी तरह समझ चुके हैं।

उत्तर--ठीक है, अब थोड़ी देर के लिये अपनी इस समझ को शार्ङ्गदेव के विकृत प्रकरण में लगाकर देखो। शार्ङ्गदेव की विचार शैली ऐसी ही थी अथवा कुछ प्रथक थी, यह प्रश्न विवादग्रस्त है, परन्तु मैं तुमको कल्लिनाथ की टीका का भावार्थ समझाता हूँ, यह ध्यान में रक्खो। निषाद कैशिक हुआ तो उसका परिणाम अगले स्वरों पर कौनसा होगा?

प्रश्न--जान पड़ता है, षड्ज "च्युत" होगा और उसकी अन्तिम श्रुति रिषभ से मिलकर चतुःश्रुतिक रे (विकृत) होगी, क्योंकि--

च्युतोऽच्युतो द्विधा षड्जो द्विश्रुतिर्विकृतो भवेत् ।

यह नियम आपने बताया था। शास्त्र नियम कहें तो विकृत अवस्था में षड्ज दो श्रुति का अवश्य होना चाहिये, ऐसा हमने ध्यान में रक्खा था। निषाद एक श्रुति आगे गया तो षड्ज की मूल अवस्था (चतुः श्रुतिकत्व) रहती नहीं, क्योंकि कैशिक नि के पास से वह स्वर फिर तीन श्रुति पर रहेगा औह यह अन्तर शास्त्र सम्मत नहीं होगा।

उत्तर—शाबाश ! तुम बिलकुल ठीक कहते हो। यही विचारशैली साधारण गांधार के बारे में भी समझ लो, वहां मध्यम विकृत अथवा च्युत होगा, ठीक है न ? तब यह निश्चित हुआ कि साधारण ग और कैशिक नि के प्रसङ्ग में शुद्ध म और शुद्ध सा, इन स्वरों का शास्त्र निहित स्थान मानें तो च्युत म और च्युत सा (द्विश्रुतिक) होने चाहिये। अब पण्डित कल्लिनाथ अपने समय की परिस्थिति उस टीका में कैसी कहता है सो देखो—"श्रीरागे गांधार निषादयोः"........इत्यादि (भावार्थ) श्रीराग में गांधार और निषाद स्वरों ने अनुक्रम से अगले मध्यम और षड्ज स्वरों की पहली एक-एक श्रुति ली, तो वे त्रिश्रुतिक स्वर (साधारण ग और कैशिक नि) शास्त्रोक्त होते, परन्तु ऐसे प्रसङ्ग में उनके अगले मध्यम और षड्ज स्वरों का शात्रोक्त स्थान कौनसा है, बता सकोगे ?

प्रश्न--वह च्युत मध्यम और च्युत षड्ज होंगे।

उत्तर—तो फिर कल्लिनाथ क्या कहता है, सो देखो। जब त्रिश्रुतिक ग, नि (अथवा कैशिक ग, नि) श्रीराग में हुए तो अगले म और सा, स्वर अपने स्थान से नहीं हिलेंगे अर्थात् वे शास्त्रोक्त शुद्ध स्थान में वैसे ही रहेंगे। इसके अतिरिक्त एक बात और देखो "तत्रापि ऋषभधैवतयोः" इ०—उसी श्रीराग में ऋषभ और धैवत स्वर अगले गंधार और निषाद स्वरों की पहली श्रुति, अनुक्रम से लेने पर चतुःश्रुतिक रे और चतुःश्रुतिक ध होते हैं और शास्त्र दृष्टि से वे बाधक नहीं समझे जाते।

प्रश्न--यह चमत्कार भी खूब है। शार्ङ्गदेव की परिभाषा के अनुसार चतुःश्रुतिक रे, ध को शुद्ध रे, ध मानेंगे और कल्लिनाथ के चतुःश्रुतिक रे, ध, शुद्ध स्वरों की अगली श्रुतियों की ध्वनि होंगे।

उत्तर--यह सब तुम ठीक समझे। तो अब तुम्हें अपने कल्लिनाथ के समय की कुछ परिस्थिति दिखाई नहीं दी क्या ? उसके समय का सम्पूर्ण सङ्गीत एक ही सप्तक में सब विकृत मानकर उत्पन्न होता होगा। सा - म - प - ये स्वर अपने शुद्ध स्थान से कभी न हिलते थे। चतुःश्रुतिक रे, ध स्वर गांधार और धैवत की पहली श्रुति माने जाते थे। इस प्रकार उसका 'श्री थाट' आज का अपना हिन्दुस्थानी 'काफी थाट' है, यह बात दिखाई नहीं देती क्या ?

प्रश्न--अब हमें वह बिलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ती है। परन्तु जब ऐसा है, तो शुद्ध रे, ध स्वरों का स्थान हमारे हिन्दुस्थानी तीव्र रे, ध स्वरों के नीचे (कल्लिनाथ की सम्मति से) होना चाहिए, वह ध्वनि कौनसी होगी ?

उत्तर--यही विषय आज अपने पण्डितों के सामने है। वे कहते हैं कि वह ध्वनि २६६३ रे और ४०० ध होगी और उनको त्रिश्रुतिक रे तथा (शुद्ध) स्वीकार करेंगे।

प्रश्न--परन्तु फिर कोमल रे, ध स्वर (उनके नीचे की ध्वनि) जो अपने सङ्गीत में अति रक्तिदायक स्वर माने जाते हैं, उनकी व्यवस्था वे क्या करते हैं ? उनको अपने ग्रन्थ में वे कौनसी और कैसी जगह देते हैं ?

उ०--वैसी व्यवस्था दक्षिण के ग्रन्थों में तो वे नहीं दिखा सके और पारिजात तथा तरंगिणी ग्रन्थों में वे कहते हैं कि वे शुद्ध स्वर सम्मत नहीं हैं, इस प्रकार दोनों ओर से एक अड़चन खड़ी होगई जिसका जिक्र मैं पहले ही कर चुका था।

प्रश्न--ठीक है ! अब हम अपने विषय की ओर लौटें तो अच्छा ! शार्ङ्गदेव के 'रत्नाकर' से ये दक्षिण के पण्डित अपना नाता जोड़ने का प्रयत्न किस प्रकार करते हैं, यह श्रीराग के उदाहरण द्वारा भली प्रकार स्पष्ट है ! और उनके उत्तराधिकारी (अर्थात् अपने पण्डितों के मत से उत्तर के ग्रन्थकार) उनका नाम भी लेते हुए लजाते हैं, क्या तमाशा है महाराज ?

उत्तर--हां, ऐसा ही है। मैं कह चुका हूं कि दक्षिण के ग्रन्थकार "रत्नाकर" का शुद्ध थाट 'मुखारी' अथवा 'कनकांगी' जैसा मानते हैं। उदाहरणार्थः--

सारामृतेः--

सर्वेषु रागमेलेषु मुखारीमेल आदिमः ।
शुद्धैः सप्तस्वरैर्युक्तो मुखारीमेल ईरितः ॥
अस्मिन्मेले मुखारी च ग्रामरागाश्च केचन ।
लोके प्रसिद्धनामायं शास्त्रसिद्धाभिधस्त्वसौ ।
शुद्धसाधारित इति तुलजेंद्रेण निश्चितः ॥

रामामात्य का भी मत ऐसा था, क्योंकि उसने अपना "मुखारी" मेल बताकर आगे ऐसा कहा है:--

अस्मिन्मेले मुखारी च ग्रामरागाश्च केचन ।
संमतः शुद्ध इत्येष शार्ङ्गदेवविपश्चितः ॥

अस्तु, श्रीराग के विषय में ग्रन्थकार क्या कहते हैं ? उसका जिक्र हम कर रहे थे।

स्वरमेलकलानिधौः--

शुद्धषड्जः पंचश्रुतिरिषभश्च तथापरः ।
स्यात्साधारणगांधारः शुद्धौपंचममध्यमौ ॥
पंचश्रुतिधैवतश्च कैशिक्याख्यनिषादकः ।
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः श्रीरागस्य च मेलकः ॥

× × × ×

श्रीरागः सग्रहः सांशः सन्यासो गधवर्जितः ।
औडवोऽपि भवेद्रागः कदाचित् गधसंयुतः ॥
सायान्हे गीयतामेष सर्वसंपत्प्रदायकः ॥

प्रश्न—यहां 'गधसंयुतः" ऐसा कहा है, तो क्या कोई आरोह में ग ध वर्जित करने के नियम की ओर दुर्लक्ष्य नहीं करेगा ?

उत्तर—आरोह में गांधार लगाने से उनका श्रीराग सुधरेगा तो नहीं। "मं, धु, नि, सां" ऐसा प्रयोग कहीं-कहीं दीखता है, यह मैंने कहा ही था। मेरे गुरु ग, धु स्वर वर्ज्य करते थे, अब आगे चलें। सारामृतेः—

मेलोद्भवेषु रागेषु श्रीरागोऽत्र चिरंतनैः ।
ग्रामराग इति प्रोक्तो रागांगमिति कैश्चन ॥
श्रीरागो रागराजोऽयं सर्वसंपत्प्रदायकः ।
इत्युच्यते तत्र लक्ष्म तुलजेंद्रेण धीमता ॥
श्रीरागः परिपूर्णः सग्रहांशन्याससंयुतः ।
गेयःसायाह्नसमये ह्यथ तानविवर्जितः ॥
शुद्धाः स्युः सदपाः पंचश्रुती ऋषभधैवतौ ।
साधारणाख्यगांधारः कैशिक्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तो यो मेलस्तत्र चादिमः ।
श्रीरागस्तन्मेलजातानुद्दिशामीह कांश्चन ॥

इन दोनों ग्रन्थकारों का श्रीराग मेल 'काफी' है, वह अलग बताने की आवश्यकता नहीं। सङ्गीतदर्पणेः—

श्रीरागः स च विख्यातः सत्रयेणविभूषितः ।
पूर्णः सर्वगुणोपेतो मूर्छना प्रथमा मता ॥
केचित्तु कथयंत्येनमृषभत्रयसंयुतम् ॥
अष्टादशाब्दः स्मरचारुमूर्तिः ।
धीरोल्लसत्पल्लवकर्णपूरः ॥
षड्जादिसेव्योऽरुणवस्त्रधारी ।
श्रीराग एष चितिपालमूर्तिः ॥

दर्पण के विषय में मैंने अनेक बार कहा है कि दामोदर पण्डित ने तो जाति प्रकरण बिलकुल छोड़ दिया है, तो फिर उसके रागों का थाट केवल मूर्छना के द्वारा निकलना चाहिये।

प्रश्न--मूर्छना तो उत्तर मन्द्रा है और "ऋषभत्रयसंयुतम्" कहा है, अतः कोई पूछेगा कि रिषभ की मूर्छना यह हो सकेगी ?

उत्तर—सो तो ठीक है। परन्तु पहले मूल का शुद्ध स्वर कौन सा है ? यह विवाद मिटना चाहिये न ? बङ्गाल की ओर प्रवास करते समय मुझे एक खाँ साहेब मिले। उन्होंने 'दर्पण' का उपयोग जैसा किया, उसे देख कर मुझे आश्चर्य मालुम पड़ा !

प्र०--उन्होंने इसका कैसा उपयोग किया था ?

उ०--उन्होंने दर्पण के आधार से एक उर्दू ग्रन्थ लिखा था और उस ग्रन्थ पर मेरा उनका मत अनुकूल होना चाहिये था, मुझे उर्दू आती नहीं थी इस कारण मैंने उनको अपना रागाध्याय सुनाने के लिये कहा। श्रुति, मूर्छना, ग्राम, ये विषय तो उनके मुख पर ही थे। मेरी विनती पर उन्होंने प्रथम भैरव और श्रीराग का लक्षण पढ़ा। भैरव के लक्षण में—"इसमें सातों स्वर लगते हैं, वादी सुर धैवत है, रिषभ धैवत अति कोमल हैं" इस प्रकार का वर्णन दिखाई दिया।

प्र०—दर्पण का मत तो वह कदाचित् नहीं होगा ?

उ०--मजा यह कि इस वर्णन के साथ नागरी लिपि में सङ्गीत दर्पण का भैरव का लक्षण बताने वाला श्लोक उन्होंने अपनी पुस्तक में उतार डाला था।

प्र०--फिर आपने उनसे वैसा करने का कारण पूछा था क्या ?

उ०—वह मैंने तुरन्त ही पूछा और साथ ही मैंने यह भी कहा कि उनका वर्णन उस श्लोकसे बिलकुल विसङ्गत है। इस पर वे हँस कर बोले 'पण्डित जी, अब वह पहला गाना बजाना कहाँ है ? मुझे कुछ आधारों की जरूरत थी, इसलिये ऐसा करना पड़ा, मैं संसकीरत नहीं जानता ये शलोक मेरे एक दोस्त ने लिख दिया है, आप कहते हो कि इन शलोकों में कुछ और ही लिखा है। ये भी तो है कि हमारे मुसलमान गाने बजाने वाले लोग नागरी पढ़ नहीं सकते और कभी पढ़ भी लेवें तो उसका अर्थ नहीं समझेंगे, जो संस्कीरत पढ़ेंगे वे उर्दू न समझेंगे और जो उर्दू पढ़ेंगे वे संस्कीरत नहीं समझेंगे'।

प्र०—शाबाश, यानी पढ़ने वालों को फँसाना ? पर कुछ पढ़ने वालों को उर्दू व संस्कृत दोनों ही आती हों तो ? वहाँ उनको सङ्गीत नहीं आता, यह कहना पड़ेगा, क्यों ?

उ०—वह तुम कुछ भी समझो, मैंने उनके ग्रन्थ पर अनुकूल मत नहीं दिया। श्री राग का भी स्वरूप उस ग्रन्थकार ने आज के अपने व्यवहार का ही लिखा था, परन्तु

आधार सङ्गीत दर्पण के श्लोकों का लिया था। अपने कोई-कोई लेखक ऐसा करते हैं तो वह कुछ-कुछ धूर्तपन ही कहा जायगा। कारण, वे लिखते तो अनाप-शनाप हैं परन्तु अपना आधार छिपा लेते हैं, अस्तु—अब श्री राग का विवेचन आगे चलाता हूँ। हरिवल्लभ पण्डित अपने दर्पण में ऐसा कहते हैं:—

रागाभूषित अंग सब संपूरन परिमान ।
तीन पेहर पर गाइये सकल गुनी सग्यान ॥

अपने कल्पद्रुमकार ने भी यह हिन्दी दर्पण का भाग बहुत कुछ अपनी विशाल पुस्तक में शामिल किया है; वहां श्री राग का वर्णन ऐसा मिलता है —

बैस किशोर मनोहर मूरत मेंनहुतें जनको मन मोहे ।
केलिकलामें प्रवीन नवीन रसालकी मंजरि श्रोतन सोहे ॥
सेवे सदा खडजादिक सातों अनंग जगे नित ही जित जोंहे ।
लाल धरे पट भूपतिसो हरिवल्लभ राग सिरी समको है ॥

उदाहरण—'रे म प नि सां नि ध प म ग रे प म ग रे' इस उदाहरण में रि ध कोमल और ग म नि तीव्र करने से अपना प्रचलित रूप उत्पन्न होगा।

रागमालायाम्:—

नाभौ जातः पृथिव्यां ललितमृदुतनुः शुभ्रवस्त्रश्च गौरो ।
राजेते पाणिपद्मे बहुतरतरला राजयः षट्पदानाम् ॥
अस्य श्रीरागनाम्नः स्फटिकमणिमयी भांति कंठे च माला ।
ग्रीष्मे गायंति चैनं पुनरपि शिशिरे वासरांते महांतः ॥

क्षेत्र मोहन स्वामी ने "सङ्गीत-सार" में इस राग का विस्तार ऐसा कर दिखाया है, देखो—

"नि़ सा, रे़ सा, रे़ नि, मं ध़ प मं प, नि सा, सा, ग रे़, मं प ध़ मं ग रे़" इत्यादि।

प्र०—उनके कहे हुये यह स्वरूप आपके बताये हुये नियमों की दृष्टि से सही मालुम होते हैं, ठीक है न?

उत्तर—ठीक है। उन्होंने जहां ग्रन्थाधार कहा है, वहां और ही आनन्द आता है।

प्र०—कैसा? वे क्या कहते हैं?

उत्तर—वे ऐसा कहते हैं—"सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मत से यह श्रीराग आदि-राग माना जाता है, परन्तु भरत मुनि इस राग को अपने वर्गीकरण में पाँचवां नम्बर देते हैं। सब मिल कर सोमेश्वर, कल्लिनाथ, दामोदर वगैरह पण्डित इस राग को सम्पूर्ण ही मानते हैं। श्री राग की जाति के विषय में हनुमान मत से किसी भी ग्रन्थ-कार का विरोध नहीं दिखता।

प्र०—यह कैसा लक्षण? राग में स्वर कौन से लगेंगे यह स्पष्टीकरण छोड़कर पूर्णत्वापूर्णत्व पर ऐसा कटाक्ष किसलिये करना चाहिये था? उनकी ग्रन्थ सम्बन्धी जानकारी तो हम निरुपयोगी ही कहेंगे। मालुम होता है, यह बात शायद उस बेचारे को ज्ञात ही नहीं थी कि कल्लिनाथ श्री राग का थाट काफ़ी मानता था। कल्लिनाथ श्री राग सम्पूर्ण मानता है, केवल इतना आधार उनके पूर्वी थाट के रूप का क्या समर्थन करेगा?

उ०—सोमेश्वर और हनुमान इनके ग्रन्थ कौन से थे? सो उसने कहा ही नहीं! अब विश्वनाथ पण्डित का स्पष्टीकरण सुनो—"अब प्रसिद्ध राग लक्षण शार्ङ्गदेव कहे हैं। षड्ज ग्राम में वीर रस में श्री राग जो है, ताहि कहे हैं। कैसो श्रीराग है? षाड्जी जो स्वर जाति ताते उत्पन्न है। स्वल्प है पञ्चम स्वर जामें। षड्ज है न्यास, अंश, ग्रह स्वर जामें, मन्द्र है गांधार जामें, तार है मध्यम जामें, समान है बाकी स्वर जामें।" इतनी जानकारी देने पर थाट के सिवाय पाठकों को क्या मिलेगा, यह विश्वनाथ को मालूम पड़ा होगा या नहीं, कौन जाने!

प्र०—यह प्रकार देख हमको तो हँसी आती है महाराज!

उ०—खुशी से हँसो, मुझे उस पर आपत्ति नहीं है। मैं विश्वनाथ का बचाव बिलकुल नहीं कर सकता। अब 'राधागोविन्द सङ्गीत सार' में श्री राग की जन्म कथा सुनो—

"शिव जी के पंचम ईशान मुख सों श्री राग भयो। देवतान के वर देवे के अर्थ यह लक्ष्मी नारायण रूप हैं। देवतान ने याको श्रवण करके सब मनोरथ पाये। अथ स्वरूप, लिख्यते। अठारह बरस की अवस्था है। काम हूं ते मनोहर जाकी मूर्ति है—"

प्र०—यह 'दर्पण' के श्लोक का भाषांतर नहीं है क्या?

उ०—पहिचान गए क्या? यह वही है। कुछ अधिक जानकारी जो है वह इस प्रकार है—

"अथ श्री राग की परीक्षा लिख्यते। जो कोई आदमी मर गयो होय, अरु वाके आगे श्री राग गाइये। जो गाइवे सों वह मर्‍यो आदमी चैतन्य होय तब श्रीराग सांचो जानिये। अनूपविलास और सङ्गीत पारिजात सें रिषभ, ग्रहांश न्यास, षड्ज।" इस कलियुग में तो ऐसी फल प्राप्ति नहीं देखी जाती। अब श्री राग का प्रभाव घट गया है; ऐसा भी कोई चाहे तो कह सकता है।

प्र०--श्रीराग का स्वरूप सङ्गीत-सार में कैसा कहा है ?

उ०--वहाँ ऐसा है—'रे प ध प, म ग म ग, रे प रे ग, रे नि रे सा'।

प्र०--यानी श्रीराग भैरव थाट में ?

उ०--ऐसा ही दिखता है। मध्यम 'उतरी' कही है तो थाट भैरव का ही होगा, यह राग संध्याकाल का है, तो पढ़ने वाले तीव्र मध्यम कर लेंगे, ऐसा ग्रंथकार ने सोचा होगा। पूर्वी में उसने तीव्र मध्यम स्पष्ट कहा है।

प्र०--पूर्वी का स्वर स्वरूप कैसा कहा है ?

उ०—ऐसा है, 'सा, रे ग मं प, मं ग प, सा ग रे ग मं, प, नि, ध प मं ग रे सा, सा रे सा' यह स्वरूप व्यवहारिक दृष्टि से ठीक है। हिन्दी ग्रन्थों की जो बातें तुम समझ सकते हो और जो व्यवहार में उपयोगी हों, उन्हें तुम आदर पूर्वक स्वीकार करो। जो खुद ग्रन्थकार की मदद के बिना समझ में नहीं आने वाली हैं, उन्हें दुर्बोध शीर्षक के नीचे अलग लिख रक्खो, झगड़ा मिटा।

रागविबोधे—

श्रीरागमेलके रिस्तीव्रः साधारणोऽथ धस्तीव्रः ।
कैशिक्यपि शुचिसमपा मेलादस्माद्भवंत्येते ॥

× × ×

र्यंशग्रहः प्रदोषे श्रीरागो गतधगो न वा सांतः ॥

यह राग काफी थाट का ही समझो। आज दक्षिण की ओर चतुःश्रुति रिषभ की संज्ञा प्रचार में है। उसकी ध्वनि २७० के रिषभ सरीखी उधर मानी जाती है। ध तीव्र है, याने वह दक्षिण का चतुःश्रुति ध समझो "न वा" इस शब्द से-किसी के मत में-श्रीराग सम्पूर्ण माना जाता है। रामामात्य ने "क्वचित् गधसंयुतः" ऐसा कहा था, वह तुम्हारे ध्यान में होगा ही।

चन्द्रोदये:—

चतुःश्रुती यत्र रिधौ भवेतां
साधारणो गोऽपि च कैशिकी निः ॥
तथा विशुद्धाः समपा भवंति
श्रीरागकस्याभिहितः स मेलः ॥
सांशग्रहांतो धविवर्जितो वा
श्रीरागनामास्तमिते रवौ स्यात् ॥

नृत्यनिर्णये:—

शृङ्गारी सुन्दरस्तत्पुरुषवदनजः कंठनक्षत्रमाला ।
श्रीरागः श्वेतवासाः प्रथमगतिगता धैवतो रिर्गनी स्युः ॥
आरोहे धैवतोनस्त्वगमधयुतः सत्रिपूर्णोऽत्र गौरो ।
ग्रीष्मे सायं सुनृत्ये विलसति सरसं हस्तलग्नालिपक्षः ॥

हृदयप्रकाशे:—

संपूर्णो रिषभादिः स्यादारोहे धगवर्जितः ।
रिपंचमांशः श्रीरागः शांतः कंपेन शोभितः ॥

यह मत अच्छा दीखता है। ये नियम पूर्वी थाट वाले श्रीराग में ठीक बैठेंगे। "अनूपविलास" में भावभट्ट ने एक सरगम "वाग्गेयकारोक्ता" कहकर ऐसी दी है।

सा, रे॒ सा, म॑ प, म॑ म॑ प प, ध॒ प म॑ प, रे॒ रे॒ ग ग रे॒, प नि सां रें॒, म॑ प ध॒ म॑ प म॑-म॑ रे॒ रे॒ ग ग रे॒, रे॒ म॑ प, नि प म॑ प, ध॒ प म॑ म॑ प म॑ ग रे॒ रे॒ नि॒ सा, रे॒ रे॒ प म॑ रे॒ रे॒, ग रे॒, सा। इस सरगम में विकृत चिन्ह मेरे लगाये हुए हैं।

प्रश्न—मालुम होता है, भावभट्ट ने अनूपविलास में "श्री" का स्वतन्त्र लक्षण नहीं दिया है ?

उत्तर—उसने रत्नाकर, रागमंजरी, चन्द्रोदय, नृत्यनिर्णय, हृदयप्रकाश, पारिजात और रागविबोध इन ग्रन्थों का लक्षण उतार लिया है, उनमें से अधिकतर मैंने तुमको बताये ही हैं। ठहरो! रागमंजरी का लक्षण तो छूट ही गया। वह ऐसा है—

धरिन्येकैकगतिका गस्तृतीयगतिर्यदा ।
श्रीरागमेल एष स्यात् श्रीरागाद्या ह्यनेकशः ॥
श्रीरागः सत्रिकः सायं धगौ वा श्रीरसप्रदः ॥

मेरी कापी में जैसा श्लोक है वैसा मैं कहता हूँ। यह लक्षण अहोबल के श्री राग लक्षण से मिला देखो। अनूपरत्नाकर में भावभट्ट ने जो अपने बीस थाट कहे हैं। उनमें श्रीमेल का लक्षण उसने ऐसा ही दिया है।

रागतरंगिणीकार ने केवल एक बात महत्व की कही है और वह तुमको अवश्य ध्यान में रखनी होगी।

प्रश्न—वह कौनसी ?

उत्तर—उसने श्रीराग का थाट "कर्णाट" कहा है। यह ठीक है, परन्तु "श्रीगौरी" नामक एक अन्य राग उसने गौरी थाट में रक्खा है।

प्रश्न—तो फिर श्रीराग का सम्बन्ध गौरी थाट से जोड़ने वाला आधार अपने को यह थोड़ा बहुत मिला तो सही। "श्री गौरी" राग को ही आगे कदाचित् "श्री" कहने लगे होंगे और सन्ध्याकाल का राग होने से उसमें तीव्र म सम्मिलित हुआ होगा।

उत्तर—वैसा कदाचित् हुआ ही होगा। किन्तु उत्तर के स्वरूप का यह भी थोड़ा बहुत आधार होगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

प्रश्न—तरंगिणीकार ने "कर्णाट थाट" कैसा वर्णन किया है ?

उत्तर—तुम्हारा यह भी प्रश्न विचारणीय है। मेरी नक़ल के वर्णन में कुछ शब्द छूट गये हैं, ऐसा दिखता है। वहाँ पर कहा है—

"शुद्धेपु सप्तस्वरेपु गांधारस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति तदा कानराख्यातं कर्णाटसंस्थानं भवेत् इत्यर्थः" इसमें गृह्णाति इस क्रिया पद का कर्त्ता नहीं दिखता है। मेरे शास्त्री कहते हैं- "गांधारो मस्य श्रुतिद्वयं गृह्णाति" ऐसा समझो। दूसरी नक़ल मिलने तक यह अर्थ तुम चाहो तो स्वीकार करलो।

प्रश्न—मैं समझता हूँ, ऐसा अर्थ भी बिलकुल कोई बेढङ्गा नहीं माना जायगा। उस दृष्टि से यह खमाज थाट नहीं होगा क्या ? अहोबल का श्रीराग भी ऐसा नहीं था क्या ? और ये दोनों उत्तर प्रान्त के ग्रन्थकार हैं।

उत्तर—हां, उधर तुमने मेरा ध्यान अच्छा खींचा, पर इस कर्णाट थाट में लोचन ने कोई-कोई राग विलक्षण ही रक्खे हैं, वह कहता है—

षाडवः कानरो रागो देशीविख्यातिमागतः।
बागीश्वरीकानरश्च खंबाइची तु रागिणी॥
सोरठः परजो मारुर्जैजयंती तथा परा।
ककुभापि च कामोदः कामोदी लोकमोहिनी॥
केदारी रागिणी रम्या गौरः स्यान् मालकौशिकः।
हिंदोलः सुघरायी स्याददाणो रागसत्तमः॥
गौरकानरनामा च श्रीरागश्च सुखावहः।
कर्णाटसंस्थितावेते रागाः संतीति निश्चितम्॥

वर्तमान हिन्दुस्थानी सङ्गीत की दृष्टि से यह वर्गीकरण अनेक स्थानों पर अयोग्य साबित होगा।

प्रश्न—यह ध्यान में आगया। अब हमको अपने प्रचलित स्वरूप के समर्थक आधार कहिये।

उ०—लो, कहता हूँ—

पूर्वीमेलसमुत्पन्नः श्रीरागो लक्ष्यसंमतः ।
शास्त्रे ख्याता तदुत्पत्तिर्हरप्रियाव्हमेलने ॥
आरोहे गधहीनत्वं रागेऽत्र बहुसंमतम् ।
पूर्णत्वमवरोहे स्यान्नियमेनातिरक्तिदम् ॥
ऋषभोऽत्र मतो वादी संवादी पंचमो भवेत् ।
काचीद्व्यत्यय प्राहुन तत्रापि विसङ्गतिः ॥
गंभीरप्रकृतिर्नित्यं विलंबितलयान्वितः ।
अवश्यं स्याद्दिनांतेऽसौ भुक्तिमुक्तिप्रदो नृणाम् ॥

कल्पद्रुमांकुरेः--

श्रीरागः कथितोऽत्र तीव्रनिगमोऽस्मिन् कोमलौ धर्षभौ
वादी पंचम ईरितो मधुरसंवादी मतश्चर्षभः ॥
आरोहे तु धगौ न संस्पृशति संपूर्णोऽवरोहे सदा
गीतोऽवश्यमसौ दिनान्त्यसमये संभुक्तिमुक्तिप्रदः ॥

चंद्रिकायाम्:--

यत्र तीव्रा गमनयो वादिसंवादिनौ परी ।
आरोहे न गधौ सायं श्रीरागो गीयते बुधैः ॥

चंद्रिकासारः--

कोमल रिध तीवर निगम रिपसंवादीवादि ।
धग वरजे आरोहि में यह श्रीराग अनादि ॥

अब इस राग में एक दो "सरगम" कहकर थोड़ा सा विस्तार भी कर दिखाता हूं ।

सरगम—श्रीराग, चौताल

रें॒ रें॒ । सां सां । नि सां । नि रें॒ । नि ध॒ । प प

म॑ म॑ । प ध॒ । म॑ ग । रे॒ ग । रे॒ रे॒ । सा ऽ

नि़ सा । रे॒ रे॒ । म॑ प । ध॒ प । नि नि । सां ऽ

सां रें॒ । सां नि । ध॒ प । म॑ ग । रे॒ ग । रे॒ सा

अन्तरा—

प प । ध॒ प । नि नि । सां ऽ । नि रें॒ । सां ऽ

नि नि । रें॒ गं । रें॒ सां । नि सां । नि ध॒ । प प

म॑ म॑ । प नि । सां ऽ । रें॒ रें॒ । सां नि । ध॒ प

म॑ प । नि ध॒ । प म॑ । ग रे॒ । ग रे॒ । सा ऽ

सरगम—श्रीराग, चौताल

रे रे । सा ऽ । नि़ सा । रे रे । सा रे । रे सा
नि़ रे । ग रे । सा ऽ । नि़ रे । नि़ ध़ । प़ प़
मं़ प़ । नि़ नि़ । सा ऽ । रे रे । मं ग । रे सा
मं ध । मं ग । रे रे । मं ग । रे ग । रे सा

अन्तरा—

सा सा । रे रे । सा ऽ । नि नि । रें रें । सां ऽ
नि नि । रें गं । रें सां । नि रें । नि ध । प प
मं प । नि नि । सां ऽ । नि सां । नि ध । प प
मं मं । प नि । ध प । मं ग । रे ग । रे सा

सरगम—श्रीराग, त्रिताल

सा रे सा ऽ । प ऽ ऽ प । मं ध मं ग । रे रे सा ऽ
नि़ रे ग रे । सा ऽ प मं । ग रे प मं । ग रे सा ऽ

अन्तरा—

प प ध प । सां ऽ सां ऽ । नि रें गं रें । सां नि ध प
मं प नि सां । रें नि ध प । मं ध मं ग । रे ग रे सा

स्वर विस्तार—

रेरेसा, नि़सा, रेरेसा, नि़रेगरेसा, गरेगरेसा, नि़सा, मंगरे, गरेसा, नि़रेसा। सा, नि़नि़, रेनि़ध़प़, मं़प़, ध़प़, नि़ध़प़, नि़नि़, रेसा, गरे, मंगरे, धमंगरे, गरेसा, नि़रेसा; नि़सा, रेरेसा, गरेसा, नि़सागरेसा, गरेमंगरेसा, नि़रेसा, गरेमंगरे, धमंगरे, गरे, सा, नि़रेसा; नि़रेसा, प, प, मंधप, मंगरे, निध, प, मंगरे, रेपमंगरे, गरेसा, नि़रेसा; प, पधप, सां, सांरेंसां, निरेंगंरेंसां, रेंनिध, प, मंधप, निरेंनिधप, मंमंधमंगरे, निधपमंगरे, मंगरे, गरेसा, नि़रेसा। बीनकार बीच–बीच में ऐसे टुकड़े बजाते रहते हैं। देखो—रेरेसासा, गरेसासा, नि़रेसागरेसारेसा, रेरेपपमंपधप, मंधमंग, रेगरेसा। नि़सारेसा, गरेसासा, नि़रेगरे, सानि़ध़प़, मं़ध़प़नि़, सासारेसा, मंगरेमं, गरेसासा। रेरेसासा, पपमंप, मंपधप, निधपप, मंपनिरें, निधपप, मंमंपध, मंगरेसा, निधपमं, गगरेसा।

प्रश्न—श्रीराग तो हम भली प्रकार समझ गए। अब कौनसा राग लेंगे ?

उत्तर—मैं समझता हूं, अब हम 'गौरी' लें तो बहुत सुविधाजनक होगा। अपने यहां गौरी के विषय में हमेशा विवाद उत्पन्न होता रहता है, यह भी एक बड़ा प्राचीन राग माना जाता है तो इसका समाधान कारक स्पष्टीकरण होना भी अच्छा ही है।

——

राग गौरी

प्रश्न—आप पहिले कह ही चुके हैं कि गौरी और श्रीराग में अनेक बार भ्रम होने की सम्भावना रहती है।

उत्तर—हां, वह भी विवाद का एक कारण होता है और भी दो एक महत्व की बातें हैं, उन्हें मैं अब कहूंगा ही। इस गौरी की चर्चा तुमको अच्छी तरह ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए। मैंने तुमको कई बार बताया है कि अपने अधिकतर प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकार गौरी का थाट भैरव के समान बताते हैं। सम्भवतः मैंने तुमको यह भी कहा था कि गौरी राग सायंगेय मानने से उसमें तीव्र मध्यम को स्थान मिला होगा। हमारे सामने अब ऐसा प्रश्न आने वाला है कि आज हम गौरी कैसे गायें?

प्रश्न—हां, वह प्रश्न अवश्य मन में आवेगा।

उत्तर—यह मैं जानता हूं। उसका ही निर्णय अब शान्त चित्त से हम करने वाले हैं। उत्तम रास्ता तो यही है कि 'लक्ष्य-सङ्गीत' के ग्रंथकार का उपदेश स्वीकार कर अपना व्यवहार क़ायम करें। और जहां तक हो सके झगड़ा करना बन्द करदें, ऐसा ही वह हमेशा कहता आया है। यह सङ्गीत परिवर्तनशील है, इसलिये भिन्न-भिन्न कारणों से उसमें रद्दोबदल आप ही आप होती चली गयी तो आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं। एक ही राग के भिन्न-भिन्न रूप मनोहर होकर समाज को प्रिय हो गये हैं तो उसमें एकदम शास्त्रोक्त सिद्धान्त की दुहाई देकर दोष निकालने की खटपट नहीं करनी चाहिए। वहां सुरक्षित मार्ग यही है कि सब ग्रन्थों का आधार लोगों के सामने रखकर और मतभेद भी स्पष्ट कहकर अपना जो मत हो उसे कह देना चाहिए। हमारा प्रकार सही और तुम्हारा ग़लत है, ऐसे विवाद से बचना ही ठीक होगा। मैं समझता हूँ, आज तुमको इस गौरी राग के दो तीन प्रकार तो मानने ही होंगे। एक भैरव थाट का और दूसरा पूर्वी थाट का, यह तो तुम्हारे ध्यान में आगये होंगे।

प्रश्न—यानी एक कोमल मध्यम लगने वाला और दूसरा तीव्र मध्यम लगने वाला, यही न?

उत्तर—हां, वैसा ही समझ लो। संध्याकाल के पूर्वी थाट वाले प्रकार को 'श्री गौरी' नाम रागतरंगिणीकार ने जो दिया है यद्यपि वह अच्छा है, परन्तु ऐसा संयुक्त नाम प्रचार में दिखाई नहीं देता।

प्रश्न—लेकिन भैरव थाट का गौरी राग थोड़ा बहुत भैरव के समान नहीं लगेगा क्या?

उत्तर—नहीं-नहीं, ऐसी चिन्ता तुमको करने की बिलकुल जरूरत नहीं। अपने गायक-वादक बहुत ही मर्मज्ञ थे। भैरव किस स्थान पर प्रगट होता है, यह उनको भली प्रकार विदित था। इसलिये उस स्थान का वे विशेष ध्यान रखते थे। गौरी का शास्त्रोक्त नियम ही कुछ ऐसी खूबी का है कि इसे संभाल कर गाया जाय तो भैरव बिलकुल नहीं

दीखेगा। गौरी गाते समय कौन-कौन से रागांगों को दूर रखने की सावधानी रखनी पड़ती है, वह मैं अब कहता हूँ, देखो—तुमने 'जोगिया' राग सीखा, उसमें "धु, प, म, रे, सा" ऐसा एक टुकड़ा तुम्हारी दृष्टि में पड़ा था, ठीक है न? जोगिया का आरोह 'सा, रे म, म, प प' ऐसा था। गौरी के आरोह में ध, ग वर्ज्य करने की आज्ञा ग्रन्थों में है, तो उसमें ये दोनों तानें आ सकती हैं, ऐसा वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम की दृष्टि से मालूम पड़ता है।

प्रश्न--ठीक है! मैं समझता हूं, गुणक्री के आरोह और अवरोह में भी गांधार नहीं है, पर इन दोनों रागों को बचाकर गौरी गाने में विशेषता होगी।

उत्तर—हां, गौरी राग को बड़ी युक्ति और सावधानी से सायंगेय स्वरूप लेकर गाने के लिये गायक सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। उसके टुकड़े फिर छोटे हों या बड़े, उन्हें सायंकाल के अनुकूल ढालना चाहिए। गौरी में भैरवांग उत्पन्न न होने पाये इसकी सावधानी रक्खें, तो बताओ भैरव थाट के कितने राग दूर हो सकेंगे?

प्रश्न—मैं समझता हूँ—भैरव, रामकली, प्रभात, गुणक्री, शिवमतभैरव, आनन्दभैरव, अहीरभैरव ये तो तत्काल दूर होंगे ही।

उत्तर—ठीक कहा तुमने! अब रहे कालिंगड़ा, जोगिया, सौराष्ट्र वगैरह राग। सौराष्ट्र में दो तीन अङ्ग जो मिश्रित हैं, उनमें भैरवांग स्पष्ट है न? वह सौराष्ट्र को गौरी के पास कभी नहीं आने देगा। जहां जोगिया की 'धु म' सङ्गति आई वहां गौरी समाप्त। विभास में जब मध्यम-निषाद ही नहीं हैं, तो ऐसे प्रकारों की ओर तो देखने की आवश्यकता ही नहीं—अब रह गया कालिंगड़ा। उसका गौरी से जो झगड़ा रहेगा, वह तुमको आज भी प्रचार में अनेक बार दीखेगा। किसी गायक से तुम गौरी की फर्माइश करो तो वह तुरन्त ही 'धु प धु म प म ग, सा, नि, सा रे ग' ऐसा आरम्भ करेगा। यहां शुरू में ही तुमको कालिंगड़ा का भास जरूर होगा।

प्रश्न--परन्तु यह सब उनके अज्ञान का ही फल है न? ऐसी गौरी वे कैसे गाते होंगे बाबा? उनसे कोई खुलासा क्यों नहीं पूछता?

उत्तर—वह खुलासा कोई सरल कार्य नहीं। जो उनके शिष्य होंगे, वे बेचारे पहले तो ऐसा प्रश्न पूछने में ही डरेंगे और किसी ने साहस करके पूछा भी तो जवाब तैयार है।

प्रश्न--वह कौनसा?

उत्तर—"वालिद की बांधी हुई चीज है। यह हम वर्षों से बल्कि छोटेपन से गाते चले आते हैं। जिनको सुना, सो इसी तौर पर गाते सुना। हमारे मामू भी इसी तरह से गाते थे। क्या हमारे राग को आप गलत कहते हो? आपका कौनसा मत है? आपका उस्ताद कौन है? आप अपनी चीज तो गाकर सुनावो, हमने तो अपने वालिद से इसी तरह से सीखा है, तुम चाहे सो कहो।" मैं समझता हूं, उस गायक का ऐसा

कहना कुछ अन्शों में सही है। गायन सीखने की शैली ऐसे गवैयों की निराली होती है। हां तो, गौरी को थोड़ा बहुत कालिंगड़ा के समान स्वरूप क्यों दिया जाता है, इस विषय पर हम बातें कर रहे थे..........। यहां एक बात और ध्यान में रखना, वह यह कि जब किसी गायक ने अपनी गौरी कालिंगड़ा के समान गाई हो, तब उसको खराब या अशुद्ध कहने की ग़लती कभी मत करना।

प्रश्न—हम समझ गये। जब अपने ग्रन्थकार धड़ल्ले से गौरी का थाट भैरव बता रहे हैं, तब उसका थोड़ा बहुत स्वरूप आना सम्भव ही है।

उ०—ठीक है, तो भैरव थाट के स्वरों से गौरी स्वतन्त्र रखना होगा और ऐसा करने में ग्रन्थकार अपना नियम बताता ही है कि गौरी के आरोह में गांधार और धैवत वर्ज्य हैं।

प्रश्न--तो फिर वह श्रीराग न हो जायगा? किन्तु नहीं-नहीं, श्रीराग का मध्यम तीव्र है, इसलिए वह तो नहीं होगा। तो फिर गौरी का साधारण स्वरूप 'सा रे॒ म प, ध॒ ध॒ प प, म प ध॒ प, म ग रे॒ सा' क्या ऐसा होगा?

उ०--नहीं-नहीं, यह टुकड़ा जब तुम गांधार धैवत का नियम संभाल कर गाओगे तब सुनने वालों को गौरी राग नहीं जान पड़ेगा।

प्रश्न--क्यों भला? गांधार धैवत अवरोह में हम खासकर रखते हैं। हां-हां हमारे टुकड़े में प्रातःकाल के रागों की थोड़ी छाया दिखाई पड़ती है, ठीक है न?

उत्तर—यह कारण तुम्हारे ध्यान में खूब आया। इससे वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम भी टूटता है। तुम्हारे प्रकार में तो सायंगेयत्व आना चाहिये। साथ ही योग्य अङ्गों में योग्य स्वर रचना भी होनी चाहिये। कालिंगड़ा, जोगिया, गुणक्री ये सब उत्तरांग प्रधान राग हैं और ये प्रसिद्ध भी हैं। गौरी सायंगेय राग होने से उसका सारा वैचित्र्य पूर्वाङ्ग में होना चाहिये। पूर्वाङ्ग का क्षेत्र षड्ज से लेकर पंचम तक माना जाता है और उत्तरांग का क्षेत्र तार षड्ज से लेकर मध्यम तक गिना जाता है, यह अनुभव से अपने कसबी गायक, वादक समझते ही हैं। गौरी, श्रीराग की एक प्रसिद्ध रागिनी है जब ऐसा भी सुनने में आता है तो जहाँ तक हो सका उस राग की छाया गौरी में ले आने की उनकी प्रवृति हुई तो कोई आश्चर्य नहीं। श्रीराग का मुख्य अङ्ग बहुधा 'सा, रे॒ रे॒, सा' इन स्वर समुदायों में अधिकतर व्यक्त होता है। इसलिये किसी तरह इन्हें गौरी में लाने की चेष्टा करके कोई गायक गाने लगे तो उसके लिये यह स्वर समुदाय उपयोगी होगा:—

सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ सा, ग रे॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा, नि़ सा, ग रे॒, ग रे॒, सा, नि़ ध़ नि़ सा, रे॒ रे॒ ग रे॒, म ग, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा; नि़ सा, ग म, प म, ग रे॒ म ग रे॒, रे॒ सा, ध॒ प, म, रे॒ ग, म ग, रे॒ रे॒, सा, नि़ सा, रे॒ सा; नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, ध़ ध़, नि़ ध़ ध़, नि़, सा, ग, म, रे॒ ग म, प म, रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, म ग रे॒ ग म, रे॒ ग म, प प, ध॒ प म, रे॒ रे॒, ग, म ग रे॒, सा, ध़, नि़ सा, ध॒ प म, रे॒ ग म, ग, रे॒ रे॒, सा, नि़ रे॒ सा।

फिर भी इसमें हमने गौरी का नियम अभी अच्छी तरह पालन नहीं किया। पंचम के आगे जा कर तार सप्तक के स्वरों में घूम फिर कर पुनः अपना राग, कालिंगड़ा से भी अलग रखना वास्तव में बहुत कुशलता का काम है। कुछ गायक आरोह में तीव्र म लेकर अन्तरा गाते हैं और फिर कालिंगड़ा का अङ्ग कायम करते हैं। वे जानते हैं कि संध्या-काल के समय कोई कालिंगड़ा नहीं गाता और ऐसी ही समाज में दृढ़ भावना है। इसलिये यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अपना गाया हुआ प्रकार सुनने वालों को गौरी जरूर मालूम पड़े। गौरी के नियम साध कर तुम भी कुछ स्वर समुदायों की रचना करो, देखूँ कैसे करते हो ?

प्रश्न—प्रयत्न कर देखता हूँ—सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ सा, रे॒ ग रे॒, सा, ग रे॒ म ग, रे॒, रे॒ सा, नि़ सा नि़ नि़ रे॒, नि़ ध़ प़, नि़, सा, रे॒ रे॒, ग रे॒, म म, रे॒ ग, रे॒, रे॒, सा; नि़ रे॒ सा, नि़ सा, ध़ नि़ सा, प़ ध़ नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ सा, रे॒ ग रे॒, सा, म, रे॒ ग, रे॒ म ग, रे॒ ग रे॒, सा, नि़ रे॒, सा;

नि़ सा, रे॒ रे॒, ग रे॒, म ग रे॒, प म, रे॒ ग, रे॒, ध॒ प म रे॒ ग, रे॒, म ग रे॒, सा, नि़ रे॒ सा सा; ध॒ ध॒ प, म, ध॒, प, म, रे॒, म, ग रे॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा। ऐसा चल सकता है क्या गौरी में ?

उत्तर—मैं समझता हूँ, तुम्हारे ये स्वर समुदाय अशुद्ध तो नहीं ठहरेंगे, परन्तु अपने सभी गायक इतने ध्यान से अपने गौरी की तान संभालेंगे, ऐसी आशा उनसे नहीं करनी चाहिये। इस तरह की 'फिरत' करना उनके लिये बहुत ही मुश्किल होगी। धैवत गांधार के नियम की तोड़ मोड़ भी अनेक बार तुम्हारी नजर में पड़ेगी तथापि कालिंगड़ा से गौरी अलग दिखाई दे, इसलिये गायक लोग मन्द्र स्थान के निषाद का उपयोग एक विशिष्ट तरह से करते हैं। एक अनुभवी गायक ने तो मुझे खुले दिल से कहा कि 'रे॒ रे॒ सा, नि़ ध़ नि़,' इस टुकड़े से श्रोताओं के मन में थोड़ा बहुत पूरिया का भास उत्पन्न होने दो और फिर खुशी से कालिंगड़ा का अङ्ग दाखिल करो तो इस युक्ति से राग अच्छा दिखाई देगा। मार्मिक लोग कहते हैं कि गौरी का सारा आनन्द मन्द्र स्थान के पंचम से लेकर मध्य स्थान के पंचम तक के क्षेत्र में दिखाने का प्रयत्न करो। मंद्र म और मध्य ध॒, ये स्वर भी कहीं-कहीं अवश्य लगाने होंगे परन्तु राग वैचित्र्य सबका सब उसी क्षेत्र में रहने दो। उसके ऐसा कहने में भी कुछ अर्थ है। अपने गायक 'सा नि़ ध़ नि़, रे॒ ग रे॒ म, ग रे॒ सा रे॒ नि़, सा' यह गौरी की एक प्रसिद्ध तान अपने संग्रह में रखते हैं। एक गायक ने मुझसे कहा—'पंडित जी, गौरी को तुम दुपहर का कालिंगड़ा समझ लो'। मेरी राय में कालिंगड़ा के समान संपूर्ण प्रकार गाकर फिर उसमें 'नि़ ध़ नि़' स्वर समुदाय की मदद से गौरी संशोधन-करने के झंझट की अपेक्षा आरोह में गांधार धैवत न लगाने का नियम पालना अधिक संतोषजनक होगा। वैसे गाना सरल नहीं, यह मैंने कहा ही है, परन्तु राग भिन्नत्व स्पष्ट है। इस रीति से अपने शास्त्रोक्त रूपों के अति निकट भी जा सकते हैं। भैरव थाट के गौरी का चतुर पंडित ने किस तरह वर्णन किया है, देखो—

मेले मालवगौडस्य गौरी शास्त्रेषु लक्षिता ।
ऋषभांशग्रहन्यासा सायंगेयैव संमता ॥
आरोहणे धगोना स्यात् संपूर्णा च विलोमके ।
मंद्रमध्यस्वरैस्तस्या गानं स्यादतिरक्तिदम् ॥
मंद्रस्थस्य निषादस्य वैचित्र्यं चाद्भुतं मतम् ।
श्रोतारः प्रायशस्तत्र कुर्वाति रागनिर्णयम् ॥

उसका यह कथन मुझ को सही जान पड़ता है। आगे वह गौरी स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ मतभेद कहता है, उसे भी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिए।

प्रश्न—वह कौन सा ?

उत्तर—वह ऐसा है—

कैश्चिदत्र समादिष्टं गांधारस्यैव वर्जनम् ।
यतः स्यात् प्रस्फुटा गौर्याः श्रीरागादेः प्रभिन्नता ।
निर्दिशंति पुनः केचित् समूलं गधवर्जनम् ।
संत्यन्ये ये संगिरंति पंचमस्यैव लंघनम् ॥
गौड्यधगा तथा र्यंशा सोमनाथेन भाषिता ॥
तल्लक्षणापरा चैती सायंगेयेति कीर्तिता ॥
यद्यप्येतन्मतानैक्यं व्यवहारे समीक्षितम् ।
श्रीरागांगप्रधानत्वं लक्ष्यते बहुसंमतम् ॥

प्रश्न—गौरी में सम्वादी कौनसा स्वर रक्खा जायगा ? वादी तो रिषभ कहा है ?

उत्तर—मेरी राय में तो सम्वादी पंचम अच्छा दिखाई देगा। अस्तु, गौरी में अनेक बार तीव्र म लिया हुआ दिखाई देगा, यह मैंने सूचित किया ही है। कोई-कोई गौरी तीव्र म स्वर से गाते हैं और कोई दोनों मध्यम लगाते हैं। जो तीव्र म लेकर और शुद्ध म वर्ज्य करके गाते हैं, उनको अपना राग पूरियाधनाश्री, जैतश्री, मालवी वगैरह रागों से अलग रखने की चिन्ता करनी पड़ती है और जो दोनों मध्यम लगाते हैं उनको पूर्वी के निकटवर्ती राग दूर रखने पड़ते हैं। 'नि़ ध़ नि़' यह स्वर समुदाय योग्य स्थानों पर बरतें तो पूरिया अच्छी तरह दूर किया जा सकता है। यह विवेचन अब तुम्हारे ध्यान में भी आया होगा। गौरी में निषाद पर बड़े चमत्कारिक ढङ्ग से कलाकृति दिखाईजाती है। 'नि़, सा रे॒ ग;' ऐसा करने से पूर्वी स्पष्ट दीखेगी, यह मैंने कहा ही था। यह टुकड़ा गौरी में भी आता है, पर गौरी में "नि़ नि़, सा, रे॒ ग रे॒ म ग रे॒ सा रे॒ नि़, सा।"

ऐसा बीच-बीच में करें तो परिणाम निराला होगा। 'म, म, ध॒ ध॒ प, म, रे॒ ग;' ऐसा गौरी में अच्छा दिखता है, किन्तु यह पूर्वी में हानिकारक होगा।

प्रश्न—मैं समझता हूँ, 'म, म, रे॒ ग, सा नि़' यहीं से ही निराला स्वरूप दीखने लगता है।

उत्तर—हाँ, वह भी ठीक है। आरोह में धैवत वर्ज्य करने का नियम श्रीराग में तोड़ देते हैं, ऐसा मैंने कहा था। गौरी में तो गांधार तोड़ा हुआ पाया जाता है।

प्र०—जो लोग एक तीव्र मध्यम ही लेकर गौरी गाते हैं वे कैसा करते हैं?

उत्तर—वे ऐसा करते हैं "सा नि़ ध़॒ नि़, रे॒ ग रे॒ म॑, ग रे॒ सा रे॒, नि़ नि़ सा ऽ। सा सा प प, म॑ म॑ प ध॒, म॑ ग ऽ रे॒, सा नि़ ध़॒ नि़ । ध़॒ ध़॒ म॑ ध़॒, नि़ नि़ सा ऽ, रे॒ रे॒ सा म॑, ग रे॒ सा ऽ। सा सा प प, म॑ म॑ प ध॒, म॑ ग रे॒ म॑, ग रे॒ सा ऽ।" वास्तव में यह पूर्वी तो नहीं हो सकती। श्रीराग में "सा नि़ ध़॒ नि़" ऐसी तान बहुधा नहीं लेते। यह सब गड़बड़ श्रीराग को पूर्वी थाट में डालने से होने लगी है, ऐसा भी किसी का मत है। कोई गायक गौरी में दोनों मध्यम लगा कर श्री और पूर्वी दूर करते हैं।

प्र०—वैसा करने से श्रीराग जरूर दूर होगा, किन्तु पूर्वी में दोनों मध्यम आते हैं, ऐसा आपने कहा था। कोई श्रुति भेद भी माना जाता है क्या?

उ०—ऐसा भी कोई मानते तो हैं, परन्तु वहाँ एक और युक्ति वे जोड़ते हैं। मैं अब जो स्वर गाऊँगा उसमें कोमल मध्यम और गांधार स्वर किस तरह लगाता हूँ सो देखो—"नि़ ध़॒ नि़" यह टुकड़ा भी ठीक तरह से देखो। "सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ ध़॒ नि़, म॑ ध़॒ नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ रे॒ ग ग, म, रे॒ ग, म ग रे॒, सा, रे॒ नि़ ध़॒ नि़, म॑ ध़॒ नि़ सा, रे॒, सा; नि़ रे॒ ग ग म म, रे॒ ग, प म, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग म म॑ म, रे॒ ग, रे॒, सा, नि़ ध़॒ नि़, म ध़॒ नि़, सा, ध़॒ नि़ सा, रे॒ सा, म प म रे॒ ग, म, रे॒, सा" तुम्हारे समान बुद्धिमानों को इतना इशारा पर्याप्त है, ठीक है न?

प्र०—वह बिलकुल स्वतंत्र है। अच्छा तो पूर्वी थाट का राग गौरी चतुर पण्डित ने कैसा कहा है?

उ०—उसे वह ऐसा कहता है:—

पूर्वीमेले समादिष्टा द्वितीया गौरिका पुनः।
आरोहे गधहीना स्यादवरोहे गवर्जिता ॥
ऋषभोऽत्र भवेद्वादी सहचारी तु पंचमः।
गानमस्याः समीचीनं लोके सायं समीरितम् ॥

उसने अपने राग से गांधार समूल निकाल डाला, ऐसा करने से अवरोह में गांधार लगने वाला श्रीराग पृथक होगा ही। मैंने ऐसा प्रकार सुना है, तथा उसके दो-एक गीत भी मुझे आते हैं। गांधार वर्ज्य करके श्रीराग के अङ्ग से तुम इस राग का विस्तार करो तो देखूँ—

प्र०—मैं ऐसा करता हूँ—"नि रे सा, रे रे सा, नि सा, नि ध प, नि सा, रे रे सा, रे सा, म प, प, ध ध प, म रे, रे रे, सा; सा रे नि सा, रे नि सा, रे सा, म म प प, ध म प म रे, प म प, नि ध प, म प ध म प म रे, प म रे, म प, रे, रे सा, सा रे सा; म प नि सा, रे रे सा, ध प नि सा, प नि सा, रे रे म रे, प म रे, रे, सा, सा रे सा।" ऐसा अच्छा लगेगा क्या ?

उ०—अन्तरा कैसा रक्खोगे ?

प्र०—यहाँ, प प ध ध प म प, नि नि रें सां, नि सां रें रें सां, नि रें नि ध प, म प ध ध प, म प म रे, सा रे, रें नि ध प, म रे, रे, सा; यह चल सकता है क्या ?

उ०—मैं समझता हूँ, ऐसा प्रकार अशुद्ध नहीं होगा, पर इस तरह का गौरी राग तुमको कदाचित् ही दिखाई देगा। यह भी कहे देता हूँ कि सारी खूबी श्री और पूर्वी राग बचाने में है। यह बात ध्यान में रख कर गौरी गाते चलो।

प्र०—पीछे आप सोमनाथ का 'चैती गौरी' राग कह चुके हैं, तो उसमें भी "अधगा" ऐसा लक्षण बताया था, तो क्या इनमें कुछ गड़बड़ नहीं होगी।

उ०—तुम्हारे कहने का कुछ अर्थ हो सकता है किन्तु पहले यह देखो कि जब ग ध स्वर सोमनाथ ने आरोह-अवरोह में बिलकुल छोड़े तो तुम्हारे श्री पूर्वी और गौरी राग अलग नहीं हुये क्या ? फिर गड़बड़ कैसी ? हाँ, सोमनाथ के दोनों गौरी जब पृथक रखने होंगे तब थोड़ी कठिनाई पड़ेगी। उसने 'गौड़ी" और "चैती" इन दोनों रागों में गांधार और धैवत वर्जित किये हैं, वह कहता है:—

"गौड्यधगा सायाह्ने र्य्यंशा चैती च सांतादिः।"

इस वाक्य में दोनों प्रकारों का स्पष्टीकरण उसने किया है।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—कोई कहता है 'चैती गौडी च अधगा र्य्यंशा सांतादिः सायाह्ने' ऐसा अर्थ लगाओ और कोई कहता है कि गौडी और चैती दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार समझो।

प्र०—आपकी इस विषय में क्या सम्मति है ?

उ०—रागतरंगिणीकार ने 'चैती गौरी' ऐसा एक राग कहा है, सम्भवतः इसीलिये सोमनाथ ने 'चैतीगौरी' ही कहा होगा। यह कथन अनुचित नहीं दिखाई देगा।

प्रचार में अपने हिन्दुस्तानी गायक गौरी और चैतीगौरी ऐसे भिन्न-भिन्न प्रकार कहते हुए पाये जाते हैं।

प्र०—चैती गौरी को अलग मानने वाले उक्त श्लोक का अर्थ कैसा करते हैं ?

उ०—वे ऐसा करते हैं ?

"गौडी अधगा र्‍यंशा सांतादिः । चैती च तथैव अधगा इ. ।"

ग्रन्थकार ने अपने आर्या छन्द पर कैसी टीका की है, देखो—'गौडी चैती चाधागा गांधारधैवतरहिता र्‍यंशा ऋषभांशा सांतादिः षडजग्रहन्यासा अनयोः अंशस्य ग्रहत्वमपि क्वचित् । अत्र केषांचित्तुल्यमेलग्रहांशन्यासत्वेऽपि स्वरूपभेदो वक्ष्यमाणवादन-विशेषादिति ग्रन्थकृत् स्वयमेवाग्रे कथयिष्यति इमे मालवगौडमेले ।' अस्तु, अपने को इस चर्चा में नहीं पड़ना चाहिये। सोमनाथ की व्याख्या तुमको रुकावट नहीं डालती, यह मैंने कहा ही है। चतुर पंडित ने श्री और गौरी इनमें गांधार का ही भेद रक्खा है, यह तुमको सहज ही दिखाई देगा। यह भेद हुआ तो उन दोनों रागों में रिषभ वादी और पञ्चम सम्वादी स्वीकार करने में हानि नहीं। उसने गौरी के विषय में कैसे-कैसे मतभेद निकाले हैं, एवं इस विषय पर अपना तर्क कहा है। वह चाहो तो कहता हूँ। उसका भावार्थ तो मैंने तुमको पहले ही बता दिया है।

प्र०--देखें तो सही, वह क्या कहते हैं ?

उ०—वह कहता है—

श्रीरागः पंडितैः पूर्वैः काफीमेले सुलक्षितः ।
आरोहणे धगत्यक्तः संपूर्णोऽप्यवरोहणे ॥
गौरी पुनर्मता तैश्च मेले मालवगौडके ।
धगोनारोहणे नित्यमवरोहे समग्रिका ॥
युक्तं नु लक्षणं चैतत्तत्कालवर्तिलक्ष्यतः ।
मेलभेदे ह्यवश्यं स्याद्रूपभेदस्य संभवः ॥
मते तूत्तरकालीने संगीतपरिवर्तनात् ।
रागावेतावुभावुक्तौ पूर्वीमेलसमाश्रितौ ॥
एकमेलाश्रितत्वे स्यात् समाने लक्षणे ततः ।
अवश्यं गायनं कष्टमतो वैमत्यसंभवः ॥

प्र०—अजी, वैमत्य ही क्या, पर गायकों की खिल्ली उड़ाने की कहिये न ?

उ०--ठीक है, और इसीलिये तो चतुर पंडित कहता है--

"निपुणा गायनाः केचिद्द्विमध्यमप्रयोजनात् ।
श्रीरागांगमनुवृत्य रागिणीमुद्धरंति ते ॥"

अन्य मतभेद जो उसने कहे हैं उन्हें मैंने पीछे कहा ही है। जो गायक गौरी में पंचम पूर्ण रूप से वर्ज्य करने का नियम कहते हैं, उनको अपना राग 'पूरिया' और 'मारवा' से सावधानी पूर्वक बचाना पड़ेगा। अलबत्ता ये राग इस पूर्वी थाट में नहीं हैं; परन्तु पंचम लोप होने से वे कुछ निकट दिखाई देंगे।

प्र०—पर "आरोहेगधवर्जनम्" यह गौरी का नियम पुनः रहा न?

उ०—हाँ, ठीक है। पंचम वर्ज्य करके एवं गौरी का नियम पालन करके एक चमत्कारिक प्रकार कैसा उत्पन्न होगा उसे देखो—"सा, रे रे सा, ग रे सा, नि़ सा, रे रे सा, मं रे ग रे सा, मं ध मं ग रे, मं ग रे, ग रे सा, नि़ रे सा; नि़ रे ग रे, ध मं ग रे, नि ध मं ग रे, मं ग रे, रे सा, सा रे सा; मं ध मं, सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, रें नि, मं ध मं ग रे, ग रे सा"। ऐसा एक 'मारवा' नामक राग भी दिखाई देने योग्य है। परन्तु उसमें गांधार और धैवत आरोह में वर्जित नहीं होते और धैवत हम उसमें तीव्र ही मानते हैं। इस प्रकार में रिषभ स्पष्ट श्रीराग वाला दिखलाना चाहिये। अस्तु—कोई पण्डित कहते हैं कि गौरी में वादी रिषभ और संवादी पंचम रक्खो और श्रीराग में इसका उल्टा प्रकार करो। यह मत भी तुम ध्यान में यों ही रहने दो, तो फिर अब मित्रवर! गौरी के सम्बन्ध में अधिक कहने को विशेष कुछ नहीं रहा। श्रीराग के विषय में बोलते वक्त गौरी के सम्बन्ध में मैं बीच-बीच में बोलता ही रहा हूं। तुमको जो निर्णय करना है वह इतना ही कि श्री अङ्ग, पूर्वी अङ्ग, पूरिया अङ्ग, कालिंगड़ा अङ्ग, ऐसे जो पृथक-पृथक अङ्ग गौरी में दिखाई पड़ने योग्य हैं, उनमें से हम कौन से अङ्ग का गौरी राग पसन्द करें?

प्र०—आपने बिलकुल हमारे मन की बात कहदी।

उ०—प्रचार में तुमको दो प्रकार जरूर दिखाई देंगे, (१) पूरिया अङ्ग की गौरी और (२) कालिंगड़ा अङ्ग की गौरी। मैं समझता हूँ ये दोनों प्रकार तुम तैयार कर डालो तो कोई हर्ज नहीं। भैरव थाट के आरोहण में ग, ध वर्ज्य करके अथवा श्री अङ्ग का प्रकार गांधार समूल वर्ज्य करके गाना अधिक शास्त्रोक्त पर, अधिक कठिन होगा। समस्त प्रकारों का नमूना अब तुमने देखा ही है। साधारण श्रेणी के गायक तुमको कालिंगड़ा अङ्ग का गौरी प्रकार बारम्बार सुनायेंगे। उसके आरोहावरोह में वे ग, ध वर्ज्य नहीं करेंगे। मैं खुद गायन को नियमबद्ध ही पसन्द करता हूं, ग्रन्थों में जो उपयोगी नियम हैं और वे स्वीकार करने योग्य भी हैं, तो फिर उनकी उपेक्षा क्यों की जाय? हाँ, जहां पर प्रचार इतना बदल गया हो कि तुम ग्रन्थोक्त स्वरूप गाकर मूर्ख समझे जाओ तो वहां प्रचार को ही मान देने में बुद्धिमानी होगी परन्तु गौरी की बात वैसी नहीं। धैवत के नियम की कुछ ढील ढाल हो तो अधिक हानि कोई नहीं मानेगा।

प्र०—यानी "सा नि़ ध़ नि़, रे ग रे म, ग रे सा रे, नि़ नि़ सा ऽ; म़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, म म रे ग, रे, सा; म प ध प म, रे ग, रे रे सा, नि़ ध़ नि़, सा, म प ध प म, ध प म, रे ग, रे सा" इस तरह के स्वर समुदाय योग्य रीति से हमको बरतने आने चाहिये। बोलो?

उ०--हाँ, ये स्वर समुदाय गौरी में बहुत ही महत्व पायेंगे। एक सितारिया को मैंने गौरी बजाने को कहा था। उसने "स धु प धु, म प म ग, रे सा धृ नि, सा रे नि सा। म प धु प, म ग रे ग, रे सा धृ नि, सा ऽ रे सा। धृ धृ नि सा, रे रे सा सा, म म रे ग, रे रे सा सा।" इस तरह से शुरू किया। मुझे जिन्होंने सितार बजाना पहले सिखाया वे गौरी की एक गत ऐसे बताते थे—"सा नि धृ नि, रे ग रे मं, ग रे सा रे, नि नि सा ऽ। सा सा प प, मं ध मं ग, रे रे सा ऽ। धृ धृ मं धृ, नि नि सा ऽ, रे रे सा ग, रे सा नि सा। सा सा प प, मं धु मं ग, रे ग रे सा, सा नि धृ नि।" यह भी स्वतंत्र प्रकार है। अस्तु, आओ, अब हम कुछ शास्त्राधार देख जावें।

रत्नाकरः—

हिंदोलभाषा गौडी स्यात् षड्जन्यासग्रहांशिका।
पंचमोत्पन्नगमकबहुला धरिवर्जिता ॥
षड्जमंद्रा प्रयोक्तव्या प्रियसंभाषणे बुधैः।
ग्रहांशन्यासषड्जान्या गौडी मालवकैशिके ॥
मतंगोक्ता तारमंद्रषड्जभूरिनिषादभाक्।
प्रयोज्या रणरणके वीरे त्वन्यैः प्रयुज्यते ॥

शार्ङ्गदेव के हिन्दोल की व्याख्या ऐसी है:—

धैवत्यार्षभिकावर्ज्यस्वरनामकजातिजः।
हिंदोलको रिधत्यक्तः षड्जन्यासग्रहांशकः ॥
आरोहिणि प्रसन्नाद्ये शुद्धमध्याख्यमूर्छनः।
काकलीकलितो गेयो वीरे रौद्रेऽद्भुते रसे ॥

शार्ङ्गदेव के बाद के कुछ ग्रन्थकार हिंदोल का थाट हिन्दुस्थानी आसावरी जैसा मानते हैं, यह तुम्हें विदित ही है। कल्लिनाथ ने हिंदोल पर ऐसी टीका की है (पृष्ठ १६४ रत्नाकर, आनन्दाश्रम प्रति) "तथा हिंदोलस्यापि--धैवत्यार्षभिकावर्ज्यस्वर-नामकजातिजः। इ.। इति लक्षणवशादत्र स्वरनामकजातीनां षाड्जीगांधारीमध्य-मापंचमीनिषादीनां ग्रहणेन ग्रामद्वयजात्युत्पन्नत्वे सति रिधत्यक्ततानकत्वान्मध्यमग्राम-संबंधे साक्षादवगते तथाच प्रयोगे चतुःश्रुतिकपंचमोपलंभात् षड्जग्रामसंबंधे च साक्षादवगते द्विग्राम इति विशेषणमुपपन्नम्। येषां मते धैवतलोपो नेष्टः पंचमलोप इष्यते तन्मते षड्जग्रामाश्रित एवायं। केवलऋषभलोपपक्षेऽपि चतुःश्रुतिकपंचमोपलंभात् षड्जग्रामसंबंध एव। यथाह मतंगः--भरतकोहलादि-भिराचार्यैर्धैवतलोपस्या निष्टत्वात् केचित् षड्जग्रामाश्रित एवायमिति मन्यंते।"

प्र०—क्यों जी, जाति, मूर्छना, ग्राम की यह अड़चन कल्लिनाथ के समय में भी बहुत थी, क्या ऐसा इन विवादों से नहीं दिखाई देता?

उ०--वह तो मैं पहले ही से कहता आया हूं। उसी उलझन को दूर करने के लिये अपने पंडितों की यह खटपट है। शाङ्गदेव के राग लक्षण कल्लिनाथ के समय के प्रचार में नहीं लगते थे, यह तो प्रत्यक्ष है ही। वह उस समय के उत्तर प्रांत के प्रचार में लगते थे, यह अपने पण्डितों को ग्रन्थों द्वारा सिद्ध करना चाहिये। कल्लिनाथ के समय में त्रिश्रुतिक पंचम नहीं होता था, अतः समस्त सङ्गीत एक ही ग्राम में होता था, यह दिखाई देता ही है। राजा साहब टैगोर के पास कल्लिनाथ पंडित का कोई स्वतंत्र ग्रन्थ है, ऐसा मैंने सुना है। जब कभी तुम्हारा कलकत्ते जाना हो तो उस सद्गृहस्थ से परिचय प्राप्त करके उस ग्रन्थ को देखो। कदाचित् वह ग्रन्थ 'रत्नाकर' पर कुछ प्रकाश डाल सके।

प्रश्न--परन्तु क्या 'सङ्गीत—सार' में उन्होंने उस ग्रन्थ का कुछ उपयोग नहीं किया?

उत्तर-उन्होंने अपनी गौरी पूर्वी थाट में ही कही है और उसका स्वरूप ऐसा दिया है- "नि़ सा नि़ रे॒ ग रे॒ सा, ध॒ सा नि़ रे॒ नि़ म॑ ध॒ प़ म॑ ग़ × × ग म॑ प ग, सा ग रे॒ ग, प म॑ प ध॒ म ग, सा रे॒ ग रे॒ सा; ।" म॑ म॑ प नि प नि सां, सां रें॒ सां रें॒ गं रें॒ सां प सां रें॒ नि, म॑ ध॒ प म॑, प नि सां नि ध॒, म॑ प म॑, म प ध॒ म, ग म प ग, सा ग रे॒ ग प म॑ प ध॒ म ग सा रे॒ ग रे॒ सा।"

प्रश्न—इसमें तो दोनों मध्यम दीखते हैं। यह रूप कुछ-कुछ पूर्वी के समान दिखाई देगा, ठीक है न?

उत्तर—हाँ, वह ऐसा ही दिखता है ठीक है, परन्तु अपना विषय उनके आधार ग्रन्थ पर था। आधार के विषय में वे कहते हैं—"कल्लिनाथ के मत में गौरी संपूर्ण है, कोई ग्रन्थकार गौरी में रे, प वर्जित करने को कहते हैं। सङ्गीत नारायण में पंचम वर्ज्य कहा है।

प्रश्न—वह सब ठीक है, पर गौरी का थाट?

उत्तर—उसके विषय में वे कुछ कहते नहीं। उसे पाठकों पर ही छोड़ देना यद्यपि संतोषजनक नहीं है, तथापि उन्होंने अपने गौरी का थाट "पूर्वी" दिया ही है। कल्लिनाथ और सोमेश्वर के ग्रन्थ तुमको प्रत्यक्ष मिलें तो अधिक खुलासा होगा, अस्तु। यह पूर्व की ओर के सङ्गीतसार के 'गौरी' का वर्णन हुआ। अब अपने राजा प्रतापसिंह क्या कहते हैं, सो देखो (सङ्गीतसार पृष्ठ ३५)

"अथ मालकंस की तीसरी रागिनी गौरी ताकी उत्पत्ति लिख्यते। गौरी हूकों शिवजी ने वामदेव मुख सों गायके मालकंस की छाया जुक्त देखी मालकंस को दीनी। अथ गौरी को स्वरूप लिख्यते। गौर वरण तरुण जाकी अवस्था है। मधुर बचन बोले है। कान में आँब के मौर धरे है। कोकिल कोसो जाको कंठ स्वर है। शास्त्र में तो याह सात स्वरन में गाई है। स रि ग म प ध नि स। सम्पूर्ण है। या रागिनी को दिन

मूंदेसूं लेके घड़ी एक रात्रि जाय तहाँ ताँई गाइये ।×। अनूपविलास में सम्पूरण। ग्रहांश रिषभ न्यास षड्ज ॥ आलापचारी ॥

"रे म प नि सां रें सां नि धु मं रे ग रे सा। नि मं धृ नि रे नि रे ग रे नि रे सा।"

यह प्रकार औडव-सम्पूर्ण है, क्योंकि इसमें गांधार धैवत आरोह में वर्ज्य किये हैं, यह दीखता ही है। मध्यम दोनों हैं। शुद्ध म आरोह में लिया है।

प्रश्न—यह राग वर्णन प्रतापसिंह कहां से लाये?

उत्तर—वह "सङ्गीत दर्पण" का होगा, क्योंकि दामोदर कहता है:—

निवेशयंती श्रवणेऽवतंसम् ।
आम्रांकुरं कोकिलनादरम्यम् ॥
श्यामा मधुस्यंदिसुसूक्ष्मनादा ।
गौरीयमुक्ता किल कोहलेन ॥

परन्तु उसने गौरी का लक्षण ऐसा कहा है:—

ग्रहांशन्यासषड्जा स्याद्रिपवर्ज्या सुखप्रदा ।
मूर्छना प्रथमा ज्ञेया गौरी सर्वांगसुन्दरी ॥

प्रश्न—प्रतापसिंह ने तो 'ग, ध' स्वर आरोह में छोड़े थे, ठीक है न?

उत्तर—ठीक है, अब हरिवल्लभ अपने दर्पण में क्या कहता है सो देखो:—

अन्श न्यास रु षड्जतें धगसुरहीन बताई ।
मूर्छना पहिली बहुरी तीन प्रहर पर गाई ॥
कान रसालकि मंजरि राजत कोकिलतें कलकंठ गही है ।
गोरिसि सूरत मोदिनि मूरत सूरतिमें रसरीत गही है ॥
केलि कुतूहलमें नितही रति आनंद में अतही उमगी है ।
भूखन चीरवने तनमें हरिवल्लभ रागनि गौरि कही है ॥

स्वरूप.

"म प प ध ध प ध नि प ग स रि प ग रि स ध रि ग रि"

प्रश्न—हां, यह वर्णन सङ्गीतसार के मत से बहुत ही मिलता है, पर क्या हरिवल्लभ प्रतापसिंह से पहिले हुआ था? यह कैसे सिद्ध किया जाय?

उत्तर—तुम्हारी शंका स्वाभाविक ही है। उसका भी निर्णय तुम्हें आगे करना होगा। कल्पद्रुमकार ने भी गौरी का वर्णन किया है और वह इस प्रकार है:—

खरजग्रह सरिगमपधनि औडव रिधसुरहीन।
शरद दिवस चौथे प्रहर गौरी गात प्रवीन॥
सीसको फूल जड़ावजड़्यो अनुराग भर्यो मुखचन्द विराजे।
बालरसालकि मंजरि कान धरी मकराकृत कुण्डल राजे॥
अम्बर श्वेत मनोहर भूषण उज्वल अङ्ग महा छवि छाजे।
गौरि गुमान भरी गतिसों अति रंग दिखावत है पतिकाजे॥

यह कविता तुम्हारे लिये उपयोगी साबित होगी, इसलिए मैंने कही है सो बात नहीं। पर अपने लेखक योग्य ग्रन्थ ज्ञान न होने से कैसी-कैसी तुक लड़ाने लगे यह तुमको मालुम हो जाय, इसलिये कहता हूँ। वस्तुतः ऐसे वर्णनों की प्रत्यक्ष कीमत एक कौड़ी भी जैसी न होगी, परन्तु यह स्पष्ट कहने का साहस आज कौन करेगा? अपने गायक बेचारे यह सब वर्णन कंठस्थ करके उसे विभिन्न अवसरों पर अपने भावुक श्रोताओं के आगे रखते हैं। देखो तोः—

प्रथम नाभितें धुनि उठे ताको शुद्ध उचार।
तीन ग्राम ताके भये मंद्र मध्य अरु तार॥
मंद्र हृदयतें जानिये मध्य कंठतें होय।
उपजे तार कपालतें भेद कहें कवि लोय॥

ऐसे सौ दो सौ दोहे जिनमें स्वरों का नाम, गांव, जानवर, द्वीप वगैरह वर्णित हैं एकाध गायक ने गम्भीर होकर अपने निरक्षर शिष्य के आगे लुढ़का दिये, तब उस शिष्य पर उनका कैसा विलक्षण परिणाम होगा? और यदि तुम्हारे जैसे साक्षर हुए तो उन्हें ऐसे श्लोक सुनायेंगेः—

अस्ति ब्रह्म चिदानंदं स्वयंज्योतिर्निरंजनम्।
ईश्वरोऽलिंगमित्युक्तमद्वितीयमजं विभुम्॥
निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरमनश्वरम्।
सर्वशक्ति च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः॥
अनाद्यविद्योपहता यथाऽग्नेर्विस्फुलिंगकाः।
दार्वाद्युपाधिसंभिन्नास्ते कर्मभिरनादिभिः॥

× × × ×

प्रश्न—इसे सुनकर हम तो कहेंगे कि गुरु जी! ऐसे गहन विषय में गोते लगाये बिना सङ्गीत शास्त्र हमारी समझ में नहीं आयेगा क्या? यदि ऐसा है तो वेदान्त आदि विषय का अभ्यास हमें कराइये।

उत्तर—अस्तु! अब हम अपने विषय की ओर लौटते हैं। सङ्गीतसार में "चैत्रगौरी, शुद्ध गौरी, पूर्वी गौरी" ऐसे और भी प्रकार दिए हैं। इनमें से इस ग्रन्थ में केवल चैत्रगौरी का स्वर स्वरूप ही दिया है।

प्रश्न—वह कैसा है ?

उत्तर—सा रे॒ म प म प प म रे॒ सा नि सा नि प म रे॒ नि सा रे॒ सा। इस प्रकार में मध्यम कोमल होकर ग, ध स्वर बिलकुल वर्ज्य हैं। ग्रन्थों में यह श्रीराग का पुत्र माना गया है। रामामात्य ने "गौली" ऐसा कहा है, यथा:—

श्रीरागो भैरवी गौली धन्यासी शुद्धभैरवी।

× × ×

एवमाद्याश्च कतिचिद्रागा मेलोद्भवास्ततः ॥

गौली का सविस्तार लक्षण उसने नहीं दिया। रामामात्य के कुछ राग इतर ग्रंथकारों के रागों से नहीं मिलते, यह तुम जानते ही हो।

चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणे:—

श्रीरागस्य स्त्रियः पंच गौडी कोलाहली तथा।
आंधाली द्राविडी मालूकौशिकीति प्रकीर्तिताः॥

रागलक्षणे:—

मायामालवगौलाच्च मेलाज्जातः सुनामकः।
गौरीराग इति प्रोक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे गधवर्ज्यं चाप्यवरोहे समग्रकम्॥
सा रे॒ म प नि सां। सां नि ध॒ प म ग रे॒ सा.

सङ्गीतसंप्रदायप्रदर्शिन्याम्:—

गौरीरागः सग्रहोऽयं सायंकाले प्रगीयते।
च्युतपंचमसंयोज्यो गीयते गायकोत्तमैः॥

यह राग चतुर्दण्डिप्रकाशिका में नहीं है। सङ्गीतसंप्रदायप्रदर्शिनीकार ने व्यंकटमखी का आधार कहा है। अन्तिम पंक्ति में 'च्युतपंचमसंयुक्तो' ऐसा होता तो कुछ अधिक शोभा देता। प्रदर्शिनीकार ने गौरी राग मायामालव में कहकर उसमें च्युतपंचम लगाने को कहा है, यह बात ध्यान में रखने की है।

रागमालायाम्:—

श्यामा गौरतनुर्विशालनयना सिंदूरयुक्तालका
हस्तन्यस्तसरोरुहा प्रणयिनी सर्वाङ्गतः सुन्दरी॥
सर्वाभूषणयुक्तचित्रवसना सुस्निग्धकेशी वरं
द्वेधोक्ता त्रिवर्णी ततोऽत्र पुरवी गौडी त्वनेका स्मृता॥

पुंडरीककृतरागमालायाम्:—

रामक्रीमेलजा या धगपरिरहिता सत्रिका षोडशाढ्या ।
चित्रं वस्त्रं दधाना करधृतकमलाकर्णनेत्रा सुकेशी ॥
चैत्री मुल्तानिपूर्वीत्रयमनपुरीकर्पटीभिश्च सार्धं ।
संक्रीडंती दिनांते चतुररतिकला गौरदेहा तु गौडी ॥

रामक्री का थाट भैरव है, यह मैं पहिले कह चुका हूं।

पारिजातेः—

रिस्वरादिस्वरारंभा रिकोमलधकोमला ।
गतीव्रा सा नितीव्रा च गौरी न्यंशस्वरा मता ॥
आरोहे गधहीना सा निकंपनमनोहरा ।
आरोहे यदि गांधोरो मध्यमावधिमूर्छना ॥

यह वर्णन अपने प्रचार के बहुत ही निकट है। एक गायक ने आखिरी पंक्ति का ऐसा अर्थ किया था, "आरोह में जब गांधार लगाना हो, तब तुम मध्यम तक तान लिया करो।"

प्र०—वह कैसे ?

उ०—उसने ऐसी युक्ति बताई, "नि, सा रे॒ ग, म ग रे॒ ग, म रे॒ ग, रे॒, रे॒ सा; नि रे॒ सा। नि रे॒ ग रे॒ सा, म, म, रे॒ ग म, ग रे॒ ग, रे॒ सा, प म ग, रे॒ ग, म ग रे॒ ग, म, ग रे॒ सा; नि रे॒ सा" ऐसा करने से एक बिलकुल स्वतंत्र रूप अवश्य पैदा होगा, यह बुरा भी नहीं, "ग म प ध॒ म प, म ग," केवल ऐसी तान नहीं चलेगी। रागतरंगिणीकार का गौरी थाट तो अपना भैरव थाट ही है। वह कहता है—"सायंकालस्तु कालो वै गौरीरागस्य भूतले। निशामुखे तु कल्याणः केदारस्तु महानिशि॥" उसका कहना ठीक है।

सद्रागचंद्रोदयेः—

सांशग्रहा सांतवती धगाभ्यां
रिक्ता दिनान्ते विहिता तु गौडी ॥

नारदसंहितायाम्:—

प्रसादमाना शिवभाविनी सा।
गायंत्यशेषं पिककाकलीभिः ॥
श्यामा रसज्ञा किल दिव्यरूपा।
गौरी गभीरा विधिनोपसृष्टा ॥

संगीतसारसंग्रहे:—

ग्रहांशन्यासषड्जा स्याद्गौडी मालवकौशिकात् ।
वीरशृङ्गारयोर्गेया सकंपान्दोलितस्वरा ॥
तुरंगशुचिहरिचंदनपंके
रतिसहितं मन्मथं पुरः कृत्वा ।
गौरतनुर्बहुविधिना
गौडी परिपूजयंत्येषा ॥

रागमंजर्याम्:—

निगौ तृतीयगतिकौ गौडीमेल: प्रकीर्तित: ।
षड्जत्रिका धगत्यक्ता सायं गौडी विराजते ॥

हृदयप्रकाशे:—

रिधयो: कोमलत्वात्तु गनितीव्रतरत्वत: ।
चतुर्भिर्विकृतैर्गौरी मुल्तानी च धनाश्रिका ॥
श्रीरागश्चैव पट्टरागश्चैत्री गौरी वसंतक: ।

प्र०—यह श्लोक हमें बहुत महत्व पूर्ण मालूम होता है। इसमें जो राग कहे गये हैं, उन सबों में रि, ग, ध, नि, विकृत हैं, ऐसी ग्रन्थकार की सूचना है। इस ग्रन्थकार के समय श्रीराग में रि, ध कोमल और ग, नि तीव्रतर हुये थे, यह बात इस श्लोक से साबित नहीं होती क्या ?

उ०—इधर तुम्हारा ध्यान खूब गया। यह विषय अब मैं तुम्हारे आगे रखने ही वाला था। इससे संभवत: यह भी सिद्ध हो सकता है कि "हृदयप्रकाश" उत्तर का ग्रन्थ है। उसका भावभट्ट ने अपने अनूपविलास में जो प्रमाण के बतौर आधार लिया है वह मैं विभिन्न स्थानों पर कहता ही आया हूँ। वह ग्रन्थ 'बीकानेर' की लाइब्रेरी में है। वहाँ के अधिकारियों से उसकी एक नकल तुम आगे प्राप्त करना। तरंगिणी भी उत्तर का ग्रन्थ है, उसमें भी गौरी, मुल्तानी, धनाश्री, श्रीगौरी, पट्, चैतीगौरी, बसन्त, ये सब राग गौरी थाट में सम्मिलित किये गये हैं, यह एक महत्व का विषय है। हृदयप्रकाश का शुद्ध थाट संभवत: उत्तर का ही होगा।

प्र०—हमारे आज के श्रीराग को संधिप्रकाश रूप देने वाला यह आधार आज मिला, यह देखकर हमें सन्तोष होता है।

उ०—हाँ, ठीक है। श्रीराग कहते समय मैंने इस श्लोक के लक्षण पूर्ति के लिये हृदय प्रकाश का श्लोक कहा था, उसे जोड़ो तो ऐसा होगा:—

रिधयोः कोमलत्वात्तु गनितीव्रतरत्वतः ।
चतुर्भिर्विकृतैर्गौरी × × × × ॥
संपूर्णो ऋषभादिः स्यादारोहे धगवर्जितः ।
रिपंचमांशः श्रीरागः शांतः कंपेन शोभितः ॥

भावभट्ट ने अपने "अनूपरत्नाकर" में गौरी के अनेक भेद कहे हैं, जैसे:—

प्रथमा शुद्धगौडी स्यात् गौडीभेदान् ब्रुवेऽधुना ।
आसावरीमेलनेन जोगिया परिकीर्तिता ॥
नायकी पौरवीयुक्ता खुमरी नायकीयुता ।
सैव चैत्रीति विख्याता गौरी त्रिश्रारसंयुता ॥
त्रावणीसहिता सैव कथिताधुनिकैर्बुधैः ।
मालवी देवगांधारयुक्ता गौरी प्रकीर्तिता ॥
श्रीगौरी पूर्विकायुक्ता द्विविधा परिकीर्तिता ॥
एवं चाष्टविधा गौरी, गौडभेदानथ ब्रुवे ॥

किसी भी मार्मिक गायक द्वारा इन श्लोकों के आधार से सहज में ही कुछ नये राग उत्पन्न किये जा सकते हैं और कुछ पुरानों को उचित नियमबद्ध किया जा सकता है। परन्तु अभी तुम्हारा यह विषय नहीं।

प्र०—गौरी के विषय में हमें काफी जानकारी हो गई। अब एक बार स्वरों से उसका स्वरूप गा दीजिये, तो हमारे मन में यह अच्छी तरह से बैठ जायगा।

उत्तर—ठीक है। गौरी के प्रचिलित रूप का समर्थन करने वाले ये दो एक मत पहले कहदूं फिर उसे गाकर दिखाऊँगा।

कल्पद्रुमांकुरेः—

गौरीरागः प्रकटतरमाभाति तुल्यः श्रियैव
भेदः किंचिद्भवति चपरं वादिसंवादितोऽस्य ।
वादी चात्रर्षभ इति जगुः पंचमोऽमात्यवर्यः
सायं गीतः सुखयति मनो मंद्रनी रक्तिदोऽस्मिन् ॥

चंद्रिकायाम्:--

यस्यां गमनयस्तीव्रा वादिसंवादिनौ रिपौ ।
गौरी श्रीसदृशी पूर्णा सायंकालेऽभिगीयते ।।

गौरी के जो भिन्न-भिन्न प्रकार प्रचार में दीखने योग्य हैं, उन्हें मैं अब तुम्हें बताता हूं, सुनोः—

गौरी—झंपताल (पहिला प्रकार)

म॑	प	नि	नि	सां	रें॒	रें॒	सां	ऽ	सां
×									
नि	नि	सां	सां	रें॒	नि	सां	नि	ध॒	प
म॑	म॑	प	ध॒	प	नि	रें॒	नि	ध॒	प
म॑	प	नि	ध॒	प	म॑	प	रे॒	रे॒	सा

अन्तरा—

प	प	म॑	ध॒	प	सां	ऽ	नि	सां	सां
×									
नि	नि	सां	रें॒	सां	नि	सां	नि	ध॒	प
म॑	प	नि	नि	सां	रें॒	रें॒	सां	नि	ध॒
प	म॑	नि	ध॒	प	म॑	प	रे॒	रे॒	सा

विस्तार—

सा, नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, नि़ सा रे॒ सा, म॑ प, म॑ रे॒, म॑ रे॒ रे॒ सा, नि़ नि़ रे॒ सा । नि़ नि़ रे॒ नि़ ध़॒, प़ नि़ ध़॒ प़, म़॑ प़, नि़, प़ नि़, रे॒, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा । नि़ सा, रे॒ म॑ प, प, ध॒ प, नि ध॒ प, म॑ प ध॒ म॑ प, सां नि ध॒ प, म॑ म॑, रे॒, म॑ ध॒ म॑ रे॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा ।

प प म॑ ध॒ प, सां, सां, नि रें॒ सां, नि नि रें॒ रें॒ सां, नि सां, नि ध॒ प, म॑ म॑ प, नि रें॒ नि ध॒ प, म॑ प, नि ध॒ प, म॑, रे॒, ध॒ म॑ रे॒, म॑ रे॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा ।

सा सा प प, म॑ प, म॑ म॑ प ध॒, प, म॑ प, नि ध॒ प, म॑ ध॒ म॑ रे॒, म॑ रे॒, रे॒ सा; म॑ म॑ प, नि, नि सां, सां, नि रें॒ सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ नि ध॒ प, म॑ म॑ प, नि रें॒ नि ध॒ प, म॑ प, नि ध॒ प, म॑, रे॒, रे॒, सा, नि़ रे॒ सा ।

गौरी—(दूसरा प्रकार)

सा	नि़	ध़॒	नि़	रे॒	ग	रे॒	म॑	ग	रे॒	सा	रे॒	नि़	नि़	सा	ऽ
२				०				३				×			
सा	नि़	ध़॒	नि़	सा	सा	प	प	म॑	म॑	प	ध॒	म॑	ग	रे॒	म॑
२				०				३				×			
ग	रे॒	सा	नि़	रे॒	ग	रे॒	म॑	ग	रे॒	सा	रे॒	नि़	नि़	सा	ऽ
२				०				२				×			
सा	नि़	ध़॒	नि़												
२															

अन्तरा—

म॑ ध़ प़ सा । ऽ सा रे सा । नि़ नि़ सा ऽ । रे ग रे सा
सा सा प प । म॑ म॑ प ध । म॑ ग रे म॑ । ग रे सा नि़
रे ग रे म॑ । ग रे सा रे । नि़ नि़ सा ऽ । सा नि़ ध़ नि़

गौरी—त्रिताल (तीसरा प्रकार)

सा नि़ ध़ नि़ । रे ग रे म । ग रे सा रे । नि़ नि़ सा ऽ
३　　　　० 　　　　१　　　　×
। म म ग ग । म ध प म । रे ग ऽ रे
सा नि़ ध़ नि़ । रे ग रे म । ग रे सा रे । नि़ नि़ सा ऽ

अन्तरा—

म म ग म । प प ध प । ध ध प नि । ध प म म
सा रे म म । म ध प म । रे ग ऽ रे । सा नि़ ध़ नि़

गौरी—त्रिताल (चौथा प्रकार)

सा रे सा रे । नि़ सा नि़ ध़ । म॑ ध़ नि़ सा । रे रे सा ऽ
नि़ सा ग म । म॑ म ग म । रे ग ऽ म । ग रे सा ऽ

अन्तरा—

म॑ ध़ म॑ ध़ । नि़ नि़ सा ऽ । रे रे सा ऽ । नि़ नि़ ध़ नि़
रे रे ग ग । म म॑ ग म । रे ग ऽ म । ग रे सा ऽ

पाँचवां प्रकार ऐसा है:—

नि़ नि़ सा रे ग, रे ग रे, सा, नि़ रे सा। म, रे ग, रे सा, ध प म, प म रे ग, रे सा, नि़ सा, ध़ प़, म़ प़, नि़ सा, रे, रे सा। नि़ सा म म, रे ग रे, म, प म, रे ग, रे सा, ध ध प म, रे ग रे म, ग रे, सा, नि़ रे सा।

म म, प प, ध ध प, नि ध प, ध प म, रे ग, सां नि ध प, म, नि ध प म, रे ग, नि़, सा, रे ग, रे, प म ग, रे ग रे सा।

ऐसे कुछ कुछ प्रकार अपने सुनने में आते हैं। यह सारी अड़चन प्राचीन श्रीराग के पूर्वी थाट में आने के कारण उत्पन्न हुई होगी, ऐसा मालुम होता है।

प्र०—पंचम न लगने वाला एक प्रकार भी आपने बताया था न?

उ०—हाँ, वह ऐसा होगा—

सरगम—झंपताल

रे	रे	।	सा	ऽ	सा	।	ग	रे	।	सा	रे	सा
नि़	नि़	।	रे	ग	रे	।	सा	रे	।	नि़	ध़	ध़
म़	ध़	।	नि़	ध़	नि़	।	सा	ऽ	।	नि़	रे	सा
मं	मं	।	ध	मं	ग	।	रे	ग	।	रे	रे	सा

अन्तरा—

सा	रे	।	सा	नि	नि	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
नि	रें	।	गं	रें	सां	।	नि	नि	।	रें	नि	ध
मं	ध	।	नि	रें	गं	।	रें	सां	।	नि	रें	सां
रें	नि	।	ध	नि	ध	।	मं	ग	।	रे	रे	सा

यह तुम्हारे सुनने में शायद ही आया होगा। इसी तरह गांधार और धैवत बिलकुल वर्ज्य करने वाला प्रकार भी तुम्हें क्वचित् ही दिखाई देगा। और भी एक प्रकार जिसे हम कभी-कभी सुनते हैं, ऐसा है—

गौरी—झंपताल

मं	ध	।	नि	सां	सां	।	रें	रें	।	सां	ऽ	सां
नि	नि	।	सां	रें	सां	।	नि	सां	।	नि	ध	प
मं	प	।	ध	मं	ग	।	रे	ग	।	रे	रे	सा
सा	रे	।	सा	प	मं	।	ग	रे	।	ग	रे	सा

अन्तरा—

मं	प	।	नि	ऽ	नि	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
नि	रें	।	गं	रें	सां	।	नि	सां	।	नि	ध	प
मं	मं	।	ध	नि	सां	।	रें	रें	।	सां	ऽ	सां
ध	सां	।	नि	ध	प	।	मं	ग	।	रे	रे	सा

प्र०—इसमें, आरोह में धैवत लगाकर श्रीराग पृथक किया गया है ऐसा जान पड़ता है।

उ०—हां, ऐसा ही समझना होगा। गौरी के ये प्रकार सब भिन्न-भिन्न हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इनमें से जो तुमको पसन्द आयें सो लेलो। जिसे गाओ उसके नियम अच्छी तरह ध्यान में रक्खो। गौरी को श्रीराग का अङ्ग देने की चर्चा कई जगह तुम्हें दिखाई देगी, "मुहम्मद रजा" ने अपने 'नगमाते-आसफी" ग्रन्थ में गौरी को श्रीराग की एक रागिनी कहा है।

प्र०—उस ग्रन्थ की बाबत भी हमें कुछ बताइये न?

उत्तर—हाँ, चाहते हो तो उसे भी कहता हूँ, लो सुनो तो फिर:—

——

नग़माते आसफी

"हनुमान मत के प्रमाण से मुख्य ६ राग हैं। १ भैरव, २ मालकंस, ३ हिंदोल, ४ दीपक, ५ मेघ, ६ श्री। कुछ पंडितों के मत से प्रत्येक राग की ५ रागिनी हैं और कुछ के मत से ६ हैं। अब मैं प्रत्येक राग का परिवार कहता हूँ। "आलमशाह" के वक्त में लिखा गया ग्रन्थ "तोफेतुल हिंद" ऐसा कहता है:—

१ भैरव—औडव है और उसके स्वर ध नि स ग म, हैं। ग्रह धैवत है। समय प्रातःकाल है (मेरे मत से प्रचार में भैरव सम्पूर्ण है। जब यह प्रथम राग है और इतर रागों का जनक है, तो सम्पूर्ण होना ही उचित है, नहीं तो बाकी राग वह कैसे उत्पन्न करेगा ?)

२ मालकंस—संपूर्ण है, उसके स्वर सा रि ग म प ध नि ये हैं। ग्रह षड्ज है। यह शरद ऋतु में रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाया जाता है (मेरे मत से वह औडव है और उसमें रि प वर्जित हैं)

३ हिंदोल—औडव है। उसके स्वर हैं-स ग म ध नि, ग्रह षड्ज है। गीष्म ऋतु में प्रातःकाल गाया जाता है।

४ दीपक—सम्पूर्ण है। इसके स्वर स रि ग म प ध नि, ये हैं। ग्रह षड्ज है। वर्षा ऋतु में मध्याह्न के समय गाया जाता है।

५ मेघ—औडव है, इसके स्वर सा नि सा रे ग, ऐसे हैं। ग्रह धैवत है। वर्षा ऋतु में रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाया जाता है। (मेरे मत से इस राग में गांधार और धैवत वर्जित हैं। प्रचार भी ऐसा ही है। प्रचार में ग्रह रिषभ है। रिषभ के विशिष्ट प्रयोग से यह राग "मधमाद" राग से भी बचाया जा सकता है।)

१ भैरव की पांच रागिनी, हनुमान मत के प्रमाण से ऐसी हैं।

१ भैरव—सम्पूर्ण है, इसके स्वर हैं म प ध नि सा रे ग, ग्रह मध्यम है, शरद ऋतु है, समय प्रातःकाल।

२ बरारी—सम्पूर्ण है, इसके स्वर सा रि ग म प ध नि हैं। ग्रह षड्ज है। शरद ऋतु में दिन के अन्त में गाई जाती है।

३ मधमाद—सम्पूर्ण है और उसके स्वर हैं:—म ध नि सा रे ग। ग्रह मध्यम है। (मेरे मत से उसमें ग ध वर्ज्य हैं) शरद ऋतु में दिन के अन्त में गाई जाती है।

४ सिंधवी—सम्पूर्ण है, स्वर सा रे ग म प ध नि, ये हैं। ग्रह षड्ज है, शरद ऋतु में दिन के अन्त में गाई जाती है।

५ बङ्गाली—सम्पूर्ण है, उसके स्वर सा रि ग म प ध नि ये हैं। ग्रह षड्ज है। यह क्वचित् ही सुनने में आती है। शरद ऋतु में दिन के चौथे प्रहर में गाई जाती है।

२—मालकंस राग की ५ रागिनी

१ तोड़ी—सम्पूर्ण है। उसके स्वर स रि ग म प ध नि, ये हैं। ग्रह षड्ज है। दिन के पहले प्रहर में गाई जाती है।

२ गौरी—औड़व है। स्वर सा ग म ध नि, हैं। ग्रह षड्ज है। दिन के अन्तिम प्रहर में गाई जाती है। (मेरे मत से यह सम्पूर्ण है, क्योंकि आजकल इसमें सातों स्वर लगते हैं)

३ गुणकली—औड़व है। स्वर नि सा ग म प नि, ये हैं। ग्रह निषाद है। प्रातः-काल गाई जाती है।

४ खम्बावती—षाडव है और इसके स्वर ध नि सा रि ग म, ये हैं। ग्रह षड्ज है। मध्यरात्रि के बाद गाई जाती है।

५ कुकुभा—सम्पूर्ण है। स्वर ध नि सा रे ग म प, ये हैं। ग्रह धैवत है। प्रातकालः अथवा रात्रि के अन्तिम प्रहर में गाई जाती है।

३—हिंदोल की ५ रागिनी

१ रामकिरी—औड़व है। स्वर सा ग म प नि, ये हैं। ग्रह षड्ज है। बसन्त ऋतु में गाते हैं।

२ देशाख—षाड्व है। स्वर रचना सा ग म प ध नि, ये है। ग्रह गांधार है। वसन्त ऋतु में प्रातःकाल गाई जाती है।

३ ललिता—औडव है। इसके स्वर ध नि सा ग म, ये हैं। ग्रह धैवत है। वसन्त ऋतु में गाते हैं।

४ बिलावल—सम्पूर्ण है। स्वर ध नि सा रे ग म प, ये हैं। ध ग्रह, बसन्त ऋतु, प्रातःकाल।

५ पटमंजरी—सम्पूर्ण, स्वर प ध नि सा रे ग म प, ये हैं। पंचम ग्रह, बसन्त ऋतु मध्यरात्रि।

४—दीपक की ५ रागिनी

१ देशी—षाडव, रे ग म ध नि सा रे (मेरे मत में यह रागिनी सम्पूर्ण है और इसकी स्वर रचना सा रे म ग प ध नि, ऐसी है) ग्रह षड्ज, ग्रीष्म ऋतु, मध्याह्न।

२ कामोद—सम्पूर्ण, ध नि रे ग म प सा। ग्रह स्वर ध। ग्रीष्म ऋतु, मध्यरात्रि।

३ नट—सम्पूर्ण, सा नि ध प म ग रे। स ग्रह, ग्रीष्म, दिन का अन्तिम प्रहर।

४ केदार—औडव; नि सा ग म प। नि ग्रह, ग्रीष्म, मध्यरात्रि।

५ कानड़ा—सम्पूर्ण, नि सा रे ग म प ध। नि ग्रह, ग्रीष्म, रात्रि प्रथम प्रहर।

५—श्रीराग की पांच रागिनी

१-मालश्री—सम्पूर्ण, सा रे ग म प ध नि, (मेरे मत में औडव) हेमन्त, दिन का तीसरा प्रहर।

२-मारवा—षाडव, सा प ग म ध नि। सा ग्रह (मेरे मत में प वर्जित है और स्वर ध म ग रे सा नि होते हैं) हेमन्त, दिन के अन्त में।

३-धनाश्री--षाडव, सा प ध नि रे ग। सा ग्रह, दिन के अन्त में।

४-वसन्त--सम्पूर्ण, सा रे ग म प ध नि। सा ग्रह, वसन्त ऋतु, मध्य रात्रि।

५-आसावरी--औडव; ध नि सा म प। ध ग्रह; हेमन्त (मेरे मत में सम्पूर्ण ध प म ग रे सा नि) दिन का दूसरा प्रहर।

६—मेघ राग की पांच रागिनी

१-टंक--सम्पूर्ण; सा रे ग म प ध नि। सा ग्रह, वर्षा ऋतु, मध्य रात्रि।

२-मल्हार—औडव; ध नि रे ग म। ध ग्रह, वर्षा रितु, मध्य रात्रि।

(मेरे मत से इसे जब चाहो तब गाओ, प्रचार में सम्पूर्ण मानते हैं)

३-गुजरी—सम्पूर्ण, रे सा ग म प ध नि। रे ग्रह, वर्षा ऋतु, दिन का पहिला प्रहर।

४-भोपाली--सम्पूर्ण, सा ग म ध नि प रे। सा ग्रह, (मेरे मत से म वर्जित, प ग रे ध सा नि) वर्षा ऋतु, रात्रि का प्रथम प्रहर।

५-देशकार—सम्पूर्ण, सा रे ग म प ध नि। सा ग्रह, (मेरे मत से षाडव, म वर्जित, रे ग्रह, रे ग प ध नि सा) वर्षा ऋतु, रात्रि का अन्तिम प्रहर अथवा प्रातःकाल।

"तोफे-तुल-हिंद" में कल्लिनाथ के राग रागिनी निम्नलिखित बताये गये हैं:—

मुख्य राग ६ हैं। १-श्री, २-वसन्त, ३-पंचम, ४-भैरव, ५-मेघ, ६-नटनारायण। इनमें से श्री, भैरव और मेघ ये राग हनुमान मत में भी थे। वसन्त वहाँ रागिनी थी, पंचम और नटनारायण ये पुत्र थे। कल्लिनाथ मत में रागिनी ऐसी हैं—

"१-श्री--१ गौरी, २ कोलाहल, ३ धवल, ४ रुद्राणी, ५ मालकंस, ६ देवगांधार।

२-वसन्त—१ अंधाली, २ गुणकली, ३ पटमंजरी, ४ गौंडकिरी, ५ धांकी, ६ देवसाख।

३-पंचम—१ त्रिवेणी, २ स्तंभतीर्था, ३ आभीरी, ४ कुकुभ, ५ बरारी, ६ आसावरी"

प्र०—इस रागिनी का नाम हमको आपने पिछली बार बताया था न ?

उ०—संभवत: वह मैंने "सरमाये अशरत" में से बताई थी। तो फिर उसे यहां नहीं कहूँगा। अब आगे सुनो—

"कल्लिनाथ मत के "पुत्र" हनुमान मत जैसे ही हैं; परन्तु थोड़ा सा अन्तर है। इस मत में श्रीराग का पुत्र शंकरा के बजाय "गौड़" है और विहागड़ा तथा कल्याण के स्थान पर "अकड़" और "विकड़" पुत्र हैं। "विकड़" यह विहागड़ा ही का नामान्तर होगा। भैरव के पुत्रों में तिलक, पूरिया, पंचम और सूहा, इनके बदले में देवशाख, ललित, मालकंस और बिलावल कहे गये हैं। मेघ राग के पुत्रों में नटनारायण के स्थान पर शंकराभरण है एवं कल्याण, केदारा तथा मारू ये पुत्र कहे हुये हैं। शेष तीन रागों में ऐसा हुआ है कि हिंदोल के पुत्र बसन्त को दिये गए हैं और दीपक के पुत्र पंचम को दिये गए हैं तथा मालकंस के पुत्र नटनारायण के पास आये हैं। विभास के स्थान पर हिंदोल पुत्र गिना गया है। मारु और बड़हंस के स्थान पर दीपक और शुभ्रांग (पुत्रों में) आये हैं। इस तरह इन दोनों मतों में अन्तर पाया जाता है।

अब सोमेश्वर मत के विषय में बोलता हूं। इस मत में कल्लिनाथ मत के ही ६ राग हैं। उनकी रागिनी ऐसी कही हैं।

१-श्रीराग—१ मालवी, २ त्रिवेणी, ३ गौरी, ४ केदारी, ५ पहाड़ी, ६ मधुमाधवी।

२-बसन्त—१ देशी, २ देवगिरी, ३ बरारी, ४ तोड़िका, ५ पलाशी, ६ हिंदोली।

३-भैरव—१ भैरवी, २ गूजरी, ३ रेवा, ४ गुणकली, ५ बङ्गाली, ६ बहुली।

४-पंचम—१ विभास, २ भूपाली, ३ कर्णाटी, ४ बड़हंसिका, ५ बागेश्वरी, ६ पटमंजरी।

५-मेघ—१ मल्लार, २ सोरटी, ३ सावेरी, ४ कौशिकी (मालकंस) ५ गांधारी ६ हरश्रृंगारी।

६-नट नारायण—१ कामोद, २ कल्याण, ३ आभीरी, ४ नायकी, ५ सारंग ६ हमीर।

इस मत के पुत्र अधिकतर पिछले दोनों मत जैसे ही हैं, परन्तु कहीं-कहीं थोड़ा सा फर्क है। जैसे बड़हंस, कल्याण और सारङ्ग ये उन दो मतों में पुत्र थे। उसी तरह विभास जो वहाँ पुत्र था वह इस मत में रागिनी में दिखाई पड़ता है।

भरत मत के राग रागिनी पुत्र और भार्या हनुमान मत के प्रमाण से ही हैं।

भरत मत--

१-भैरव—१ मधुमाधवी, २ ललिता, ३ बरारी, ४ भैरवी, ५ बहुली।

२-मालकंस—१ गुजरी, २ विद्यावती, ३ तोड़ी, ४ खंबावती, ५ कुकभ।

३-हिंदोल—१ रामकली, २ मालवी, ३ आसावरी, ४ देवारी, ५ केकी (?)

४-दीपक—१ केदारी, २ गौरा, ३ रुद्रावती, ४ कामोद, ५ गुजरी।

५-श्री--१ सैंधवी, २ काफी, ३ ठुमरी, ४ विचित्रा, ५ सोहनी।

६-मेघ--१ मल्लारी, २ सारङ्गा, ३ देशी, ४ रतिवल्लभा, ५ कानरा।

१—भैरव पुत्र

१ देवसाख, २ यमन, ३ हरख, ४ माधव, ५ बिलावल, ६ मङ्गल (वा शुक्ल) ७ विभास, ८ पंचम।

पुत्रवधू

१ सूहा, २ बिलावली, ३ सोरटी, ४ कुमारी, ५ आंध्री, ६ बहुलगुजरी, ७ पटमंजरी ८ मारवी।

२--मालकंस पुत्र

१ गांधार, २ साल (?) ३ मकर, ४ तिर्बंजन, ५ शहाना, ६ माकांतवल्लभ, ७ मालीगौरा, ८ कामोद।

पुत्रवधू

१ धनाश्री, २ मालश्री, ३ जेतश्री, ४ सुघ्राई, ५ दुर्गा, ६ गांधारी, ७ भीमपलासी, ८ कामोदी।

३—हिंदोल पुत्र

१ वसन्त, २ मालव, ३ मारु, ४ कोसल, ५ भंखार, ६ लंकदहन, ७ नागदहन ८ धवल।

पुत्रवधू

१ लीलावती, २ कैरवी, ३ जेती, ४ तारावती, ५ त्रिवेणी, ६ पूर्वी, ७ देवगिरी, ८ सरस्वती।

४--दीपक पुत्र

१ खेम, २ टंक, ३ नटनारायण, ४ बिहागड़ा, ५ फरोदस्त, ६ रहसमङ्गल, ७ मङ्गलाष्टक, ८ अडाणा।

पुत्रवधू

१ मंगलगुजरी, २ जयजयवंती, ३ मालकंसी, ४ भोपाली, ५ मनोहरी, ६ अहीरी, ७ यमनी, ८ हंमीरा।

५--श्रीराग पुत्र

१ श्रीरावण, (त्रिवण?) २ कोलाहल, ३ सावंत, ४ शंकर, ५ खट, ६ बडहंस, ७ रागेश्वर, ८ देशाकार।

पुत्रवधू

१ विजिता, २ धीरांजनी, ३ कुम्भा, ४ सोहनी, ५ शारदा, ६ खेमा, ७ सखिवा, ८ सरस्वती।

६--मेघ पुत्र

१ कल्हार, २ बागीश्वरी, ३ शहाना, ४ पूरिया, ५ कानरा, ६ तिलक ७ अस्तंभ, ८ शंकराभरण।

पुत्रवधू

१ कर्णनाट, २ कडची, ३ कदंबनाट, ४ बिहारी, ५ परज, ६ मांझ, ७ पटमंजरी, ८ शुद्धनाट।

यहाँ यह भी बता देना उचित होगा कि उपरोक्त मतों के राग, रागिनी, पुत्र, भार्याओं के इतर ग्रन्थों में कहीं कहीं और भी नाम हैं। किसी राग का ग्रन्थ में कोई नाम है और प्रचार में कुछ और ही है। पुनः देश के प्रत्येक भाग में एक ही प्रकार के अलग अलग नाम हो सकते हैं। जैसे:--अपने कान्हड़ा को कोई "कर्णाटी" भी कहते हैं। कुछ ग्रन्थकार मुख्य तीन ही राग मानते हैं और प्रत्येक की ६-६ रागिनी मानते हैं। जैसे:--

१--मालकंस

१ कानडा, २ बागेश्री, ३ पूरिया, ४ खंबावती, ५ देशाख, ६ सुघ्राई।

२--हिंदोल

१ यमन, २ शंकरा, ३ बिहागड़ा, ४ परज, ५ भीमपलासी, ६ सिंदूरा।

३--दीपक

१ आसावरी, २ कुकुभ, ३ आभीरी, ४ सैंधवी, ५ पटमंजरी, ६ मनोहरी।

परन्तु मेरे मत से पहले चार मत (१) हनुमन्मत (२) कल्लिनाथमत (३) सोमेश्वर-मत (४) भरतमत ये ही मानने ठीक होंगे।

अब मैं अपने स्वतः के मत से राग रचना रागाध्याय कहता हूँ—यह मत नवाब साहब बहादुर 'आसफउद्दौला' और मेरे समय के सभी कलावन्तों को पसन्द है। मेरा वर्गीकरण इस आधार पर है कि रागों में और उनकी रागनियों में कुछ न कुछ समता अवश्य होनी चाहिए। वह समानता उनके स्वरों में अथवा श्रुतियों में या मूर्छना में, कहीं भी तो हो, ऐसा मेरा मत है। अपनी रचना मैंने अनेक प्रसिद्ध कलावन्तों के सामने रक्खी और वह उनको पसन्द आई। मुझे आश्चर्य होता है कि जिस रागिनी का राग से कुछ सम्बन्ध ही नहीं तो उन्हें रागों की भार्या बनाने में क्या चतुराई है? अपने प्राचीन मतों में सब ऐसा ही गड़बड़झाला हुआ है। मुख्य राग स्वर के उसके थोड़े ही राग रागनियों में प्राप्त होते हैं। बाकी के तो बिलकुल विसंगत दीखते हैं। इन बातों पर ध्यान रखते हुए मैंने ऐसा वर्गीकरण किया है:--

१ भैरव—१ भैरवी, २ रामकली, ३ गुजरी, ४ खट, ५ गांधारी, ६ आसावरी।

२ मालकंस—१ वागीश्वरी, २ तोड़ी, ३ देशी, ४ सूहा, ५ सुधराई, ६ मुलतानी।

३ हिंदोल—१ पूरिया, २ बसन्त, ३ ललिता, ४ पंचम, ५ धनाश्री, ६ मारवा।
४ श्री—१ गौरी, २ पूर्वी, ३ गौरा, ४ त्रिवण, ५ मालश्री, ६ जेतश्री।
५ मेघ—१ मधमाद, २ गौंड, ३ शुद्धसारङ्ग, ४ बड़हंस, ५ सावन्त, ६ सोरठ।
६ नट—१ छायानट, २ हमीर ३ कल्याण, ४ केदार, ५ बिहागड़ा, ६ यमन।

ऐसा करने का कारण !

१—भैरव की रागिनी

१ भैरवी और आभीरी (अहीरी) इन दोनों का स्वरूप मुख्य भैरव राग के स्वरूप से मिलता है। भैरव राग का गांधार शुद्ध है और इस रागिनी का कोमल है। कदाचित् भैरव राग को वह कोमल गांधार भी दिया जा सकता है।

२ रामकली—यह रागिनी अपने राग से बहुत ही मिलती है (यदि इसका गांधार भैरवी के गांधार के समान है तो)

३ गूजरी—यह रागिनी भी अपने राग से थोड़ी बहुत मिलती है, पर वह रामकली जैसी नहीं मिलने की।

४ खट—यह अपने राग से थोड़ी बहुत मिलेगी। इसका उच्चारण पंचम से होता है, इसलिए राग कुछ अलग रहता है।

५—गांधारी—राग से मिलती-जुलती है।

६ आसावरी—स्वरों से और उच्चार से राग से साम्य रखती है।

२—मालकंस की रागिनी

१ वागीश्वरी—इसके स्वर अधिकतर राग में वर्णित स्वरों के समान ही हैं। इसमें रे प वर्ज्य नहीं, यह भेद है।

२ तोड़ी—यह सम्पूर्ण है। इसके स्वर अधिकतर राग के ही हैं। किसी मत में राग सम्पूर्ण भी कहा है।

३ देशी—राग से बहुत मिलती है। मध्यम स्वर राग ही का है।

४ सूहा } राग के समान है, भेद केवल स्वर रचना का है, समानता कोमल
५ सुघराई } स्वरों में है।

६ मुलतानी—राग से मिलती है। म, नि स्वर राग मालकंस के ही हैं (?)

३—हिंदोल की रागिनी

१ पूरिया—राग से समानता रखती है। रागिनी में रे, प और तीव्र म हैं। पूरिया का म 'तीव्रतम' है।

२ बसन्त—अपने राग से सादृश्य रखती है, किन्तु इसमें में पंचम है और अति कोमल रे है।

३ ललित—अपने राग से मिलती है, परन्तु इसमें दोनों मध्यम और पंचम हैं।

४ पंचम—ललित रागिनी के समान ही होने से राग से सादृश्य रखती है।

५ धनाश्री--राग से मिलती है, पर इसमें रे, प हैं और स्वर रचना प्रथक है।

६ मारवा--राग से बहुत मिलती है, परन्तु इसमें रे, प होने से और 'रे' अधिक होने से राग भिन्न होता है।

४—श्रीराग की रागिनी

१ गौरी--यह अपने राग से बहुत मिलती है, पर इसकी रचना कुछ निराली है। रे, प स्वर बारम्बार आगे आते हैं।

२ पूर्वी--इसके स्वर अधिकतर श्रीराग के ही हैं, परन्तु इसका धैवत तीव्र है।

३ गौरा--इसमें शुद्ध मध्यम नहीं है, परन्तु रे, प और बाकी स्वर श्रीराग के समान हैं, इसका ध तीव्र है, श्री राग का कोमल है।

४ त्रिवण--यह षाड्व है और इसमें मध्यम वर्ज्य है, बाकी स्वरूप राग का ही है। रे स्वर मारवा के परिमाण से बारम्बार आता है, पर मारवा में मध्यम है।

५ मालश्री--इसकी स्वर रचना राग से मिलती है, पर इसमें रे, ध वर्ज्य हैं।

६ जेतश्री--राग से मिलती है, परन्तु इसका गांधार अधिक तीव्र है।

५—मेघ राग की रागिनी

१ मधमाद--इसमें पांच स्वर हैं, जो स्वयं राग के ही हैं। रिषभ की पुनरावृत्ति से राग निराला होता है। मधमाद का स्वरूप मेघ के समान है।

२ गौंड--मेघराग से इसके स्वर मिलते हैं, परन्तु ग, ध स्वर इसमें अधिक हैं, रागिनी में रे कोमल है।

३ शुद्धसारङ्ग--यह अपने राग से बहुत मिलती है। इसके ६ स्वर हैं। उनमें से पांच मेघ के ही हैं; परन्तु इसमें तीव्रतम ग और तीव्र ध आता है, इसलिये राग अलग रहता है। बिन्दरावनी में ग, ध वर्ज्य हैं। सारङ्ग में शुद्ध ग नहीं है। मेघ में ग ध वर्ज्य हैं।

४ बड़हंस--स्वर राग के ही हैं, पर रचना भिन्न है।

५ सामन्त--बिंदरावनी की तरह मुख्य राग से मिलती है; परन्तु इसमें वर्जित स्वरों की श्रुतियां किंचित आती हैं। कोई सामन्त के स्थान पर बिंदरावनी रखते हैं।

६ सोरठ--इसकी रचना राग की रचना से मिलती है; परन्तु इसमें ध आता है, जिससे राग पृथक होता है।

६—नट राग की रागिनी

१ छायानट--नट जैसी ही है, परन्तु इसमें थोड़ा हमीर का स्वरूप आता है उससे राग भिन्न होता है।

२ हम्मीर--स्वर रचना राग की स्वर रचना से भिन्न है।

३ कल्याण--इसके स्वर राग के ही हैं, परन्तु मध्यम न होने से भेद है।

४ विहागड़ा--राग से बहुत मिलती है, इसके और स्वर वैसे ही हैं।

५ यमन--स्वर राग के ही हैं, पर इसमें मध्यम से भेद उत्पन्न होता है।

६ केदार-स्वर राग के ही हैं, केवल रचना में भेद है।

इस तरह मुझे जो वर्गीकरण उचित प्रतीत हुआ, वह मैंने कहा।

प्रिय मित्र ! अब तुम उकता गये होगे, इसलिये इस ग्रन्थ का शेष भाग अब मैं नहीं कहना चाहता।

प्रश्न--उसमें आगे क्या है ?

उत्तर--आगे ग्रन्थकार ने अपने राग-रागिनी के स्वर और वादी सम्वादी बताये हैं।

प्रश्न--मैं समझता हूं, वह भाग भी हमारे लिए उपयोगी होगा। हमें थकावट बिल्कुल नहीं आई। हमें यह ग्रन्थ बहुत महत्वपूर्ण ज्ञात होता है। ग्रन्थकार ने अपने समय की स्थिति अच्छी तरह कही है, वैसे भी यह ग्रन्थ एक मुसलमान गायक का लिखा हुआ है, इसमें सूक्ष्म स्वरों का जहां-तहां उल्लेख मिलता है। अतः वह भाग भी कहदें तो बहुत अच्छा होगा। यह ग्रन्थकार शुद्ध 'बिलावल' मानता था, यह हमारे ध्यान में आता है।

उत्तर--ठीक है ! जब तुम्हारा आग्रह है तो आगे पढ़ता हूँ। सुनोः—

"अब मैं भैरव राग की प्रथम तान लिखता हूं। भैरव राग 'उत्तरायता' मूर्छना से उत्पन्न होता है। वह खरजग्राम की तीसरी मूर्छना है और उसका रूप 'ध़ नि़ सा रे ग म प' ऐसा है। ध ग्रह स्वर है। ग अन्श है, स न्यास है और धैवत वादी है। पहिली तान ऐसी है--ध़ नि़ स रे॒ ग म प म ग रे॒ स नि़ नि़ ध़ ध़ प़।

× × × ×

१—भैरव की रागिनी

१ भैरवी ×

२-रामकली—उच्चार कोमल धैवत से है। रे, ग, नि कोमल हैं। कभी तीव्र ग भी बरतते हैं। म, प शुद्ध हैं।

३-गुजरी—संपूर्ण, प वादी, रे सम्वादी, ग, ध अनुवादी, तीव्र रे विवादी, ग, ध, नि कोमल।

४-खट—सम्पूर्ण, सब स्वर कोमल, प वादी, ग सम्वादी, ध अनुवादी, जब कोई तीव्र स्वर बरता जाय तो वह विवादी !

५-गांधार—सब स्वर कोमल, म वादी, रे सम्वादी, कभी प अथवा ग सम्वादी।

६-आसावरी—म और प शुद्ध, बाकी के कोमल स्वर, ध वादी, रे सम्वादी, प अनुवादी; ग, नि यह भी अनुवादी होते हैं।

२—मालकंस की रागिनी

१-वागीश्वरी ×

२-तोड़ी—सम्पूर्ण, कुछ स्वर कोमल हैं। ग ग्रह और वादी है, प सम्वादी और अंश, ध न्यास और अनुवादी। इस धैवत पर ही इस रागिनी का रूप खुलता है। तान भी यहीं समाप्त होती हैं।

३-देशी—म वादी, प सम्वादी, ग, रे, नि अनुवादी, प और म शुद्ध और बाकी के स्वर कोमल हैं। थाट तोड़ी का है।

४-सूहा—प वादी, नि सम्वादी, ग ध म रे अनुवादी, ग कोमल, ध तीव्र, नि कोमल, बाकी के शुद्ध स्वर।

५-सुघराई—स्वर सूहा के ही हैं, परन्तु ध वादी, नि अथवा ग सम्वादी, प ग अनुवादी।

६-मुल्तानी—प वादी, म सम्वादी, नि अनुवादी, रे ग ध कोमल और अनुवादी।

३—हिंदोल की रागिनी

१-पूरिया ×

२-बसन्त—म वादी, प सम्वादी, रे ध अनुवादी, सा प शुद्ध, रे कोमल ग तीव्र, म शुद्ध और तीव्र, ध नि तीव्र, थाट हिंदोल के समान।

३-ललित--थाट बसन्त, ध वादी, प सम्वादी, ग म नि अनुवादी, प शुद्ध, रे कोमल, दोनों म, नि तीव्र।

४-पंचम—प वादी, ध सम्वादी, ग अनुवादी, स शुद्ध, रे कोमल, ग म ध नि तीव्र, थाट ललित और मारवा का।

५-धनाश्री—थाट मारवा, नि वादी, ग सम्वादी, प, ध अनुवादी, रे कोमल, ग तीव्र, म तीव्रतम, प शुद्ध, ध और नि तीव्र।

६-मारवा—ध वादी, ग सम्वादी, रे म अनुवादी, नि भी उसी तरह है। कोई प वर्ज्य करते हैं। रे कोमल, ग म ध नि तीव्र, थाट हिंदोल का।

४—श्रीराग की रागिनी

१-गौरी ×

२-पूर्वी—ग वादी, म सम्वादी, प ध इ० अनुवादी, रे कोमल, ग तीव्र, म दोनों ध नि तीव्र, सा प शुद्ध, थाट ललित के समान।

३-गौरा—प वादी, ध सम्वादी, ग म ध अनुवादी, रे कोमल, ग म ध नि तीव्र, थाट मारवा।

४-त्रिवण—रे वादी, प सम्वादी, ग ध नि अनुवादी, रे कोमल, ग म ध नि तीव्र, थाट मारवा।

५-मालश्री—ध और रे वर्ज्य, प वादी, ग सम्वादी, म नि अनुवादी, सा प शुद्ध, ग म नि तीव्र, थाट रे ध हीन धनाश्री का। कभी कभी धैवत लिया जाता है।

६-जेतश्री—ग वादी, प सम्वादी, ध नि अनुवादी, रे कोमल। प के सिवाय अन्य स्वर तीव्र, थाट जेत का।

५—मेघराग की रागिनी

१-मधमाद ×

२-गौंड—प वादी, म सम्वादी, रे ग ध नि अनुवादी, रे ग ध नि कोमल, म प शुद्ध, थाट कानडे का।

३-सारङ्ग—प वादी, ध सम्वादी, रे म नि अनुवादी, रे तीव्र, ग तीव्रतम, अथवा कोमल म। शुद्ध म और तीव्रतर म स्वर भी आते हैं। प शुद्ध, ध तीव्र, नि तीव्र, कोई मेघ की तीसरी रागिनी विंद्रावनी को बताते हैं। उसमें म प शुद्ध, रे तीव्र नि कोमल, प वादी, म संवादी, नि अनुवादी है, थाट मेघ का।

४-वडहंस—प वादी, म सम्वादी, रे नि अनुवादी, रे तीव्र, म प शुद्ध, नि कोमल।

५-सामंत—नि वादी, म सम्वादी, रे अनुवादी, सा प शुद्ध, नि कोमल, रे तीव्र, म शुद्ध, थाट विंद्रावनी का।

६-सोरठ—नि वादी, ध सम्वादी, रे म प अनुवादी, सा म प शुद्ध, नि कोमल, रे तीव्र, म शुद्ध, थाट विंद्रावनी के समान है, परन्तु धैवत होने से राग भेद होता है।

७—नटराग की रागिनी

१-छायानट ×

२-हमीर—प वादी, ग सम्वादी, रे प अनुवादी, रे तीव्र, ग म ध नि तीव्र, शुद्ध म भी आता है। सा प शुद्ध, थाट अलैया के समान।

३-कल्याण—ग वादी, रे सम्वादी, प अनुवादी, रे ग म ध नि तीव्र, सा प शुद्ध, थाट यमन।

४-केदार—प वादी, म सम्वादी, नि अनुवादी, सा प शुद्ध, ग तीव्र, म शुद्ध और तीव्र, ध नि तीव्र, रे सकारी, थाट हमीर के समान।

५-विहागड़ा—प वादी, ग संवादी, नि अनुवादी, सा प शुद्ध, रे ग ध नि तीव्र, म दोनों, थाट केदार का।

६-यमन—ग वादी, म सम्वादी, रे प ध नि अनुवादी, रे ग म ध नि तीव्र, सा प शुद्ध, थाट कल्याण का। कोई भूपाली को नट की एक रागिनी मानते हैं। उसमें प वादी, रे सम्वादी, ध नि अनुवादी, रे ग म ध नि तीव्र, सा प शुद्ध हैं।

प्र०—इस ग्रन्थकार द्वारा रे ध स्वर 'शुद्ध' कहते हुये हमको कहीं नहीं दिखाई पड़े। उसने जगह-जगह 'तीव्र' शब्द का प्रयोग किया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उसे २६६⅔ रे और ४०० ध, स्वरों का ज्ञान नहीं था, क्यों ?

उत्तर—इस विषय पर अपनी शंका का समाधान तुम स्वयं कर सकते हो। ये स्वर अब नये खोजे गये हैं ऐसा बहुतों का मत है। यह बात मैं प्रथम ही कह चुका हूँ।

प्र०—इस "आसफी" ग्रन्थ का लेखक अपने समस्त स्वर कैसे और कौन से मानता था ?

उत्तर—उसने उन्हें कहीं भी स्पष्ट नहीं कहा, परन्तु उत्तर की ओर जो रिवाज है, वह उसी का माना जाय तो वे ऐसे होंगे—१ सा, २ अति कोमल रे, ३ कोमल रे, ४ तीव्र रे, ५ अति कोमल ग, ६ कोमल ग, ७ तीव्र ग, ८ तीव्रतर ग, ९ तीव्रतम ग, १० शुद्ध म, ११ तीव्र म, १२ तीव्रतर म, १३ तीव्रतम म, १४ प, १५ अतिकोमल ध, १६ कोमल ध, १७ तीव्र ध, १८ अति कोमल नि, १९ कोमल नि, २० तीव्र नि, २१ तीव्रतर नि, २२ तीव्रतम नि, २३ सा। यह मैं यों ही अपनी याददाश्त से कहता हूँ। उत्तर की ओर दो एक पंडितों ने ऐसे नाम मुझे बताये थे, ऐसा ध्यान आता है।

प्र०—तो फिर यह स्वर व्यवस्था कुछ-कुछ पारिजात की तरह ही तो नहीं है ?

उत्तर—पूर्णरूप से वैसी नहीं। पारिजात के पूर्व ग, पूर्व नि, अनुपयुक्त होते हैं, इनके सिवाय बाकी नाम ठीक हैं।

प्रश्न—उत्तर की ओर इन स्वरों की आन्दोलन संख्या नई तरह से निर्धारित करने की चेष्टा अभी किसी ने नहीं की है क्या ?

उत्तर—यह प्रयास मैंने किसी ग्रन्थ में देखा तो नहीं। वहां भी तो २२ में से १२ स्वर ही अपने लिये मानते हैं, तो उन १० स्वरों का क्या गोरख धन्दा रहा ? मैं समझता हूँ २६६⅔ रे और ४०० ध, इन स्वरों को स्थान देने के लिये पहली श्रुति पर कदाचित् सा माना जायगा, परन्तु ये सब छोड़ो। अब छः राग और उनकी प्रत्येक पहली रागिनी के स्वर कहने को रह गये हैं। उन्हें कहता हूँ, सुनो—(ग्रन्थकार कहता है)।

"भैरव—ध़॒ नि़ सा रे॒ ग म प म ग रे॒ सा नि़ नि़ ध़॒ नि़ सा। तान के चार प्रकार होते हैं:-१ अस्थाई बरन, २ संचाई बरन, ३ आभोग बरन, ४ झुलती बरन। अस्थाई बरन के प्रसार में, षड्ज स्वर का अधिक प्रयोग होता है। उस बरन का उच्चार षड्ज से होता है। जैसे—सा ग रे॒ सा सा नि़ ध़॒ नि़ सा रे॒ सा रे॒ सा नि़ ध़॒ नि़ सा रे॒ सा नि़ ध़॒ नि़ सा ध़॒ नि़ सा ध़॒ नि़ सा सा नि़ ध़॒ प़ म़ ध़॒ नि़ सा म ग रे॒ सा म ग रे॒ सा सा रे॒ ग म प ध॒ प म ग रे॒ सा सा नि़ ध़॒ नि़ सा नि़ ध़॒ प़ म़ ध़॒ नि़ सा रे॒ सा। संचाई बरन का उभार बहुधा धैवत से और कभी-कभी प, म, अथवा ग स्वर से होता है। अस्थाई बरन अस्ताई के समान समझो और संचाई बरन अन्तरा के समान समझो। अन्तरा टीप तक अवश्य जाये, पर कुछ लोग ऐसा नियम नहीं मानते। मेरे मत से संचाई बरन की तानें तार स्थान में जरूर ले जायी जाँय। यह नियम क्वचित् ही टूटा हुआ दीखेगा। आलाप—

ने द्रे त नों - - - ने तं न आ - न री - ना - - न तो - - म।
धु नि सां सां सां नि सां सां सां सां नि सां सां धु नि धु प सा ग रे रे रे सा।

आभोग बरन का उच्चार ग अथवा म से होता है। इस बरन की तान क्वचित ही टीप में जाती है।

म धु धु धु प धु धु प धु नि धु म प प म ग रे म प म ग रे रे रे सा नि़ सा सा। झुलती बरन तान चाहे जिस स्वर से कही जा सकती है। जैसे—

सां सां सां रें सां धु नि सां प म ग ग ग म ग रे सा नि़ सा रे रे सा।

भैरवी तान (मार्गरूप)—धु प प म प म म ग ग रे सा नि़ ध़ म़ प़ ध़ सा सा सा।

मालकौंस प्रथम तान--म ग म म ग ग ग ग म म ग ग सा।

बागेसिरी तान--सा सा नि़ ध़ नि़ सा नि़ सा सा नि़ ध़ नि़ ध़ प़ म़ ध़ नि़ सा सा सा सा।

हिंडोल राग तान:--(इस राग में रे प वर्ज्य होकर कहीं-कहीं सकारी रे उपयोग में आता है) सा सा सा नि़ ध़ सा सा नि़ सा सा ग ग रे ग ग मं ग रे सा।

पूरिया तान—रे रे नि़ सा नि़ ध़ सा सा नि़ सा सा ग ग ग रे सा।
श्रीराग तान—प ग मं ग रे रे रे रे ग रे रे सा नि़ सा सा।
तोड़ी तान--प प मं मं ग रे रे ग रे मं मं ग रे ग ग रे सा।
मेघ तान—सा सा रे रे रे रे सा प रे रे रे प म रे रे रे सा सा रे रे रे सा।
मधमाद् तान--नि़ नि़ नि़ प म प म रे रे रे म प रे नि़ सा नि़ सा रे सा सा नि़ सा।
नटराग तान—म प ग ग रे ग रे ग रे सा सा सा रे रे सा।
छायानट तान--प प ग ग रे रे ग म प म रे रे सा सा रे सा।

अब मैं समझता हूं इस ग्रन्थ का मत तुम्हारे ध्यान में अच्छी तरह आ चुका होगा। अपनी हिन्दुस्थानी पद्धति के लिये यह ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी होगा। ठीक है न? इस ग्रंथकार की, वादी सम्वादी स्वरों के विषय में क्या समझ होगी, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु उसकी दी हुई उपर्युक्त जानकारी मनोरंजक है। किसी-किसी स्थान में आज का अपना प्रचार बदला हुआ है, परन्तु वह परिवर्तन सामयिक समझा जायगा। इसी तरह का थोड़ा बहुत ज्ञान तुमको 'सरमाय अशरत' नामक उर्दू ग्रन्थ में मिलना सम्भव है। इन ग्रन्थकारों को संस्कृत ग्रन्थों के द्वारा जानकारी प्राप्त हुई थी, यह बिलकुल नहीं दिखाई देता और वे ऐसा दावा भी कदाचित् नहीं करेंगे, यह मैं समझता हूँ।

प्रश्न--अब आगे कौनसा राग लिया जावेगा?

उत्तर--अब हम 'रेवा' राग का थोड़ा बहुत विचार करते हैं। यह नाम तुम्हारे लिये बिलकुल अपरिचित है, सो नहीं। भैरव थाट का 'विभास' कहते हुए इस राग का इशारा मैं थोड़ा सा कर गया हूं, मुझे याद है।

———

राग रेवा

प्रश्न--हां, वह हमें भी अब याद आता है। वह एक सायंगेय औड़व प्रकार 'सा रे॒ ग प ध॒' इन स्वरों से उत्पन्न होने वाला है। ऐसा आपने कहा था।

उत्तर--खूब ध्यान में रक्खा है। वही राग अब मैं कहता हूँ। 'रेवा' राग अपने यहां बहुत प्रसिद्ध नहीं है, तथापि यह अच्छे कुशल गायक वादकों के संग्रह में रहता है। ऐसा नहीं समझना कि यह विशेष कठिन प्रकार है, परन्तु यह मानना होगा कि अपने यहां इसका प्रचार अधिक नहीं है। यह राग विभास का सायंगेय 'जवाब' है, ऐसा अपने गायक हमको बताते हैं। इसमें मध्यम और निषाद वर्ज्य होने से गांधार और पंचम की संगति बहुत सुन्दर होती है। कसबी गायक 'प ग, प ध॒ प ग, प ग' यह स्वर ऐसी खूबी से लेते हैं कि उनके गाने में सायंगेयत्व हमें तुरन्त ही दिखाई देता है। पंचम को षड्ज का महत्व प्राप्त न होने पाये, इसी में सारी कुशलता है।

प्रश्न--ठीक है! उत्तरांग में यह पंचम स्वर षड्ज की जगह रहने योग्य होता है। वहां इस स्वर को षड्ज का महत्व मिला तो अवश्य ही प्रातर्गेयत्व दिखाई देने लगेगा यह हमारे ध्यान में खूब आगया है। भूपाली और देशकार की जैसी विचित्र जोड़ी है, उसी तरह यह रेवा और विभास की जोड़ी हमारे ध्यान में आई है। अब प्रश्न ऐसा है कि इस 'रेवा' राग को 'अङ्ग' कौनसा दिया जाय? पूर्वी थाट के रागों में 'श्री' अथवा 'पूर्वी' इनमें से एक अङ्ग होता है। ऐसा आपने कहा था?

उत्तर--मैं समझ गया, तुम्हारा प्रश्न उचित है। यह सायंगेय प्रकार है, इसलिये उन दो मुख्य अङ्गों में से एक इसमें रहने वाला ही है। मैंने यह राग पूर्वी अङ्ग से गाते हुए अनेक बार सुना है। इस राग में निषाद न होने से पूर्वी का अङ्ग युक्तिपूर्वक संभालना पड़ता है। एक युक्ति 'पूर्वी' अङ्ग संभालने की अपने गायक हमको ऐसी बताते हैं कि इस प्रकार के रागों में 'ग रे॒ ग' यह टुकड़ा जितना जल्द और जितना बारम्बार आवेगा उतना अच्छा। उनका यह कथन बहुत सार्थक प्रतीत होता है। यह भी मानना पड़ेगा कि इस टुकड़े में सायंगेयत्व सूचित करने की क्षमता है। मुझे याद है कि मेरे गुरु ने एकबार कहा था कि 'रेवा' राग को 'मुन्डी-पूर्वी' समझ कर गावो।

प्रश्न--यहां कैसा किया जावेगा?

उत्तर--वह विशेष कठिन नहीं है। पूर्वी में तुम 'ग रे॒ सा' नि॒ रे॒ सा, नि॒ नि॒, सा, रे॒ ग' ऐसा शुरू करते हो न? इसमें निषाद नहीं परन्तु सा, रे॒ ग, ये स्वर हैं अतः इनको उलट-पुलट कर थोड़ा बहुत पूर्वी का रङ्ग लाना पड़ता है। वैसा करने का प्रयत्न करो तो देखूँ?

प्रश्न—हम ऐसा करते हैं--"ग, रे॒ सा, सा, रे॒ सा, सा, रे॒ ग, ग रे॒ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, सा रे॒ सा, ग ग, सा रे॒ ग, रे॒ सा, ग रे॒ ग, रे॒ सा, रे॒ सा' यह चलेगा क्या?

उत्तर—मेरा कथन तुम्हारे ध्यान में बहुत जल्द आता है। अब सावधानी से बीच बीच में पंचम धैवत का भी प्रयोग कर देखो। परन्तु विभास की तरह "धु, प" ऐसा सावकाश प्रयोग कहीं न करना, नहीं तो 'रंग' बिगड़ेगा।

प्रश्न—न, वैसा सायंगेय रागों में किस तरह चलेगा? यह भाग हम ठीक संभालेंगे। अब इन तानों को देखिये, ये कैसी लगती हैं? 'सा रे ग, ग, रे ग, प ग, रे ग रे सा, सा रे सा, ग प ग, रे ग प, धु प ग, प ग रे ग प, धु प ग, प ग, रे ग, सा रे ग, धु प, ग प रे ग, ग रे, रे सा; सा, रे सा, ग रे सा, सा, सा, रे प ग, धु प, रे ग, प ग, ग, रे सा, ध़ रे सा, ग रे सा, ध़ ध़ प़ प़, ध़ सा, सा रे ग, प ग रे सा;" यहाँ हमने गांधार को प्रधानता दी है, यह भी कहे देता हूँ।

उत्तर—वह ठीक है। मुझे जान पड़ता है, यह तुम्हारा प्रकार सुन्दर दीखेगा। प्रायः इसी तरह से गाया हुआ यह राग तुमको दिखाई देगा। रेवा को श्रीराग का अङ्ग देकर गाने के लिये तुमको यदि कोई कहे तो कैसा करोगे, देखूँ?

प्रश्न—वहाँ हम. रिषभ और पंचम इन स्वरों पर राग का सारा भार रक्खेंगे। श्रीराग का गांधार अवरोह में है ही। रेवा में गांधार और धैवत, आरोह और अवरोह, इन दोनों में ही हैं। शुरू में तीव्र म नहीं है तो श्रीराग किसको मालूम पड़ेगा? तब फिर हम ऐसा विस्तार करेंगे, 'सा रे रे सा, ग रे, सा, सा, ध़ प़, प़ ध़, रे, रे, सा, प ग रे, ग रे, धु प, रे ग, प धु प ग रे, रे सा, सा, रे सा; प ग रे प, प, धु प, ग, धु प, ग, रे ग, रे. रे सा, सा रे सा, सा सा रे रे, ग रे, धु प ग रे प ग रे, सा, ध़ प़, सा, रे ग, प धु प ग, सां धु प ग, रे प धु प ग रे, रे, सा, सा रे सा; प धु प ग, रे. प, प, धु धु प, सां रें सां, धु प, ग प ग रे, धु प, रे ग, धु प ग रे, ग रे, सा, रे सा; सा सा रे रे, प प, धु प, सां रें सां, धु प ग, रे प प ग, रे, ग, सा रे सा, सा, रे सा" यह कैसा रहेगा?

उत्तर—यह तुम्हारा एक चमत्कारिक और नवीन ही प्रकार होगा। पूर्वी थाट में मध्यम न लगने वाले और भी एक दो राग हैं परन्तु उनमें निषाद वर्ज्य नहीं है। उनके विषय में आगे बोलना ही होगा। कोई गायक ऐसा कहता है कि रेवा राग को जब विभास का जवाब माना है तो उसमें रिषभ को वादी करना चाहिये।

प्रश्न—यानो उसके मत में वह श्री अङ्ग से गाया जाय?

उत्तर—हाँ वह ऐसा ही कहता है, परन्तु मैंने अनेक बार पूर्वी अङ्ग से ही गाते हुये सुना है। कुछ ग्रन्थकार षड्ज को वादी कहते हैं और पंचम को संवादी मानते हैं; परन्तु मध्य षड्ज का वादित्व आज की अपनी पद्धति में ऐसा चमकता हुआ नहीं दीखेगा।

प्रश्न—मालुम होता है अब एक सप्तक से सब राग उत्पन्न करने की व्यवस्था अमल में आने के कारण ग्रन्थकारों के लिये वादी स्वरों की कल्पना असुविधाजनक होती होगी।

उत्तर—ऐसा भी किसी का मत है। प्राचीन ग्रन्थकारों का वादी संवादी स्वर तत्त्व कुछ और ही था; यह बहुमत मैंने तुमको बताया ही है। अलबत्ता तार षड्ज के

वादित्व के विषय में तो हमें कुछ नहीं कहना है। मध्य षड्ज का वादित्व गाने बजाने में खास करके लक्ष्यवेध में उचित वैचित्र्य उत्पन्न करेगा कि नहीं। इस प्रश्न पर कदाचित मतभेद उत्पन्न हो सकता है। अपनी हिन्दुस्थानी पद्धति में षड्ज स्वर कभी वर्जित नहीं करते, यह हम जानते हैं। अपनी पद्धति में रागों का मुख्य अङ्ग बदलने वाले स्वर अथवा अपनी पद्धति के जीवभूत स्वर रे, ग, ध, नि, हैं, ऐसा मानने वाले आज अनेकों मिलेंगे और उनके कथन में कुछ सार भी है। शुद्ध मध्यम और पंचम स्वर को वादी करने से राग रूपों में स्पष्ट भेद हो सकता है, यह हम मानते हैं। तथापि अपनी प्रचलित राग संख्या का बड़ा हिस्सा हम ध्यान पूर्वक खोजेंगे तो हमें ऐसा अवश्य प्राप्त होगा कि अपने संगीत का वैचित्र्य अधिकतर रे, ग, ध, नि, इन स्वरों की स्थिति पर अवलम्बित रहता है। मैं अधिक विवाद में नहीं जाना चाहता। ऐसे विवादग्रस्त खास विषय पर बहुत व्यापक सिद्धांत निर्धारित करना भी साहस का काम है। जो मत मेरे कानों में आये हैं, उन्हें मैं कह देता हूँ। आगे तुम अपने स्वतः के अनुभव की धारणा से चलते जावो। मध्य षड्ज प्रत्येक राग में अधिक परिमाण से बरता जाता है, किन्तु तार षड्ज पर यह बात लागू नहीं होती। तार षड्ज जब एकाध राग में इधर उधर चमकने लगता है तब उसकी ओर श्रोताओं का ध्यान बड़ी जल्दी जाता है। सायंगेय रागों में तार षड्ज का बाहुल्य खटकता है, यह मैंने कहा ही था।

प्रश्न—हम तो उसे अपनी पद्धति का एक महत्वपूर्ण नियम ही समझकर चलते हैं।

उत्तर—कोई हानि नहीं। संध्याकाल के समय में सारा राग वैचित्र्य 'रे॒, ग, प' इन स्वरों पर रहता है। मेरा अनुभव है कि इन प्रत्येक स्वरों पर समाप्त की जाने वाली तानें बहुत ही मनोरंजक होती हैं। मेरे गुरु रेवा राग में गांधार का परिमाण अधिक रखते थे, तुम भी उसी तरह किये जावो। गांधार-पंचम संगति का प्रयोग उत्तम रीति से योग्य स्थानों पर करते जावो। सूक्ष्म विचार करने वाले तो यह भी कहते हैं कि 'ग प' और 'प-ग' ऐसा स्वर उच्चारने में भी प्रातर्गेयत्व और सायंगेयत्व दिखाया जा सकता है, परन्तु उतनी गहराई में जाने की अभी तुम्हें आवश्यकता नहीं है। शान्तचित्त से बारीक बातों की ओर देखने लगें तो अनेक चमत्कार दिखाई देने लगते हैं। ऐसा शोध करना यद्यपि बुरा नहीं है परन्तु वे सूक्ष्म बातें सभी को एक सी न दिखने के कारण झगड़ा उपस्थित होता है। भिन्न भिन्न संगति अपने ही आप बारंबार खोज कर देखनी चाहिये और उसका परिणाम ध्यान में रखना चाहिये। जिनका स्वर-ज्ञान उत्तम होगा उनकी समझ में ऐसी बातें अच्छी तरह आयेंगी। 'सा रे॒ ग, रे॒ ग प ग, ग प ग रे॒ सा, रे॒ ग' और 'ध॒, ध॒ प, ग प, ध॒ प ग, रे॒ सा' इन दोनों टुकड़ों में क्या भेद है? यह यकायक सभी के ध्यान में एक बराबर नहीं आवेगा। अस्तु, यह रेवा राग श्रीराग के बाद पूर्वी राग के पहले गाया जाय तो अधिक शोभा देता है, ऐसा कहते हैं। इसकी प्रकृति गंभीर नहीं। कोई कोई गायक सायंगेयत्व अधिक स्पष्ट दिखाने के लिये पंचम से गांधार पर आते हुये कहीं कहीं 'मींड' अथवा 'सूत' दिखलाते हैं। ऐसा करने से संध्याकाल का संकेत जरूर होगा, परन्तु पंचम का परिमाण उचित रूप से संभालना आवश्यक होगा। 'सा, रे॒ सा, ग प, प, ध॒, प, प ग, प, ध॒ प ग, रे॒ सा' ऐसा प्रकार श्रोताओं को तुरन्त ही विभास की ओर ले जायगा। रेवा में 'प़ प़ ध़॒ प़, सा, रे॒ सा, सा रे॒ ग, रे॒ ग, प ग, रे॒ ग

प, प धु प ग, ग प ग, रे सा' ये समुदाय अच्छे दिखाई देंगे। आरोह में जगह ब जगह रिषभ ले आने से सवेरे का रङ्ग दूर होता जायगा "सा रे ग, रे ग, ग प ग, रे ग, ग, रे सा" यह स्वर पहले खूब तैयार करने चाहिये। संक्षेप में कहा जा सकता है कि धैवत पंचम बढ़े तो राग गंभीर होकर प्रातःकाल का दिखाई देगा और रिषभ गांधार बढ़े तो उसका उल्टा नतीजा होगा। अर्थात्—इस राग में मध्यम निषाद न होने से जितना गांभीर्य उसमें आयेगा उतना ही उसका सायंगेयत्व कम होता जायगा। मेरे कहने का तात्पर्य तुम समझ गये होगे। नये-नये स्वर समुदाय रचकर देखें, और भिन्न-भिन्न तरह से वादी स्वर आगे लाकर उनका परिणाम बारीकी से अन्वेषण करने लगें तो अनेक बातों की ओर अपना लक्ष्य स्वतः ही जाता है। कभी-कभी तो उसे देखकर स्वयं ही कौतूहल मालूम पड़ता है। ऐसी बातों का मौखिक तथा शाब्दिक वर्णन उतना समाधान कारक नहीं होता। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना कि इस रेवा राग में भी ऐसा ही झमेला है। मैंने तो एक साधारण दृष्टि में पड़ने योग्य बात कही है।

प्रश्न—यह ध्यान में आ गया। शाब्दिक वर्णन वास्तव में भ्रम में डालते हैं। आप श्रीराग का अङ्ग हमको जब समझा रहे थे तब हमको भी थोड़ा बहुत भ्रम हुआ था। वह नीचे का "कण" और ऊपर का "कण" वगैरह सुनकर हम क्षण भर विचार में पड़ गये थे, परन्तु वह भाग आपने प्रत्यक्ष गाकर जब दिखाया तो हमारी अड़चन उसी समय दूर हो गई। अब आपके कथन का मर्म हमारे ध्यान में स्पष्ट आया है—'सा, रे रे सा, मं प, धु प, मं धु मं ग रे, मं ग रे, रे, सा' यह अङ्ग हम चाहे जैसा गाकर चाहें जिसे अच्छी तरह सिखा सकेंगे।

उत्तर—ठीक है। इसी लिये मेरे गुरु कहते थे कि उत्तम संस्कार होने के लिये वर्णन, लेख और प्रत्यक्ष श्रवण, इन तीनों साधनों की आवश्यकता है। मुझे उनका कहना बिलकुल सही मालुम पड़ता है। अस्तु, अब हम अपने विषय की ओर लौटते हैं। तुम्हारे ध्यान में आया ही होगा कि रेवा राग गाते हुए अपने को मन्द्र धैवत से मध्य धैवत तक अधिक परिमाण से फिरना है। मुख्य 'चलन' 'सा रे ग, रे ग, प ग. रे सा, प धु प, ग, रे ग, सा रे ग, रे सा, ऐसा रहेगा, अन्तरा प ग, प धु प, सां, सां, रें सां, रें गं रें सां, सां रें सां, धु प, प ग, प धु, रें रें सां, सां, धु प, ग, रे ग, धु प ग, रे सा' इस तरह से किया जा सकता है।

प्रश्न—रेवा राग का अपने सब संस्कृत ग्रन्थकार वर्णन करते हैं क्या?

उत्तर—अपने संस्कृत ग्रन्थों में 'रेवगुप्ति' और 'रेवा' ऐसे दो नाम हमारी नजर में आते हैं। ये दोनों एक ही राग के नाम हैं? इसका निर्णय आगे देखो:—शार्ङ्गदेव पंडित ने 'रेवगुप्ति' ऐसा नाम बरता है। उसके कहे हुए उपरागों में रेवगुप्ति' राग मिलता है। उसका लक्षण रत्नाकर में ऐसा कहा है—

षड्जग्रामे रेवगुप्तो मध्यमार्षभिकोद्भवः ।
रिग्रहांशो मध्यमान्तः प्रसन्नाद्यंतभूषितः ॥

रेवगुप्ति के लक्षण में मूर्छना नहीं कही है। 'आर्षभी' यह षड्ज ग्राम की एक जाति है और 'मध्यमा' मध्यम ग्राम की जाति कही है। 'मध्यमा' के विषय में शार्ङ्गदेव कहता है 'पंचमीमध्यमाषड्जमध्यमाख्यासु जातिषु। स्वरसाधारणं प्रोक्तं मुनिभिर्भरतादिभिः॥' इस व्याख्या से रेवगुप्ति का थाट भैरव हो सकेगा कि नहीं, यह देखना उपयोगी होगा। दक्षिण की ओर 'रेगुप्ति' अथवा 'रेवगुप्ति' यह राग आज मालवगौड थाट में ही माना जाता है।

प्रश्न—उधर के पण्डित रेवगुप्ति का आरोहावरोह कैसा मानते हैं?

उत्तर—वे ऐसा मानते हैं 'सा रे॒ ग प ध॒ सां। सां ध॒ प ग रे॒ सा।'

प्रश्न—तो फिर 'रेगुप्ति' 'रेवगुप्ति' 'रेवगुप्त' 'रेवा' ये सब एक ही राग के नाम होंगे, यह शंका ठीक नहीं क्या?

उत्तर—यह सही है, राग लक्षणकार कहता है:—

मायामालवगौलाच मेलाज्जातः सुनामकः।
रेवगुप्तिश्च रागश्च धन्यासं धांशकग्रहम्॥
आरोहेऽप्यवरोहे च मनिवर्ज्यं तथौडवम्।
सा रे॒ ग प ध॒ सां। सां ध॒ प ग रे॒ सा॥

दक्षिण के प्रकार का यह आधार अच्छा होगा।

प्रश्न—अपने उत्तर के स्वरूप का ऐसा एकाध प्रकार मिलता तो अच्छा होता।

उत्तर—अपने 'पारिजात' में क्या कहा है, देखो—

गौरीमेलसमुद्भूता षड्जोद्ग्राहेण मंडिता।
मनित्यक्ता सदा रेवा गपादियमलस्वरा॥

प्रश्न—हाँ, यह ठीक रहा। वादी षड्ज कहा हुआ दिखता है परन्तु शेष लक्षण अच्छे हैं। अब प्रश्न इतना ही रहा कि दक्षिण का 'रेवगुप्ति' और अहोबल का 'रेवा' राग इनमें कुछ सम्बन्ध कायम किया जा सकता है क्या?

उत्तर—इस विषय पर पारिजात में थोड़ा सा विवरण मिल सकता है, ऐसा मुझे ज्ञात होता है। राग समय वर्णन करते हुये अहोबल ऐसा कहता है (श्लोक३४२)

गुर्जरी रेवगुप्तिश्च कौमारी कज्जली तथा।
× × ×
एते रागाः प्रगीयंते प्रथमप्रहरोत्तरम्॥

इन श्लोकों के पहले दो श्लोकों में (३४०-४१) उसने प्रातः कालीन गाने के राग कहे हैं। आगे प्रत्यक्ष राग लक्षण कहते समय उसने रेवगुप्ति नाम स्तैमाल न करके 'रेवा' इतना ही नाम बरता है और उस राग का समय 'तृतीय प्रहरोत्तरम्' कहा है। इस से रेवगुप्ति का ही खंडित नाम 'रेवा' होगा ऐसा तर्क उपस्थित हो सकता है।

प्रश्न--परन्तु कोई कहेगा कि 'रेवगुप्ति' को वह प्रातःकाल का राग मानता होगा।

उत्तर--यह पारिजात में 'रेवगुप्ति' बिलकुल नहीं कहता। मैं समझता हूं उत्तर के प्रचार में 'रेवगुप्ति' राग का नाम 'रेवा' होगा और उसे अहोबल ने स्वीकार किया होगा। शार्ङ्गदेव पंडित 'रेवगुप्त' यह नाम कहता है। ऐसा मैंने पहिले कहा ही है।

प्रश्न--पर एक क्षण ठहरिये तो! 'लोचन' पंडित उत्तर का ही ग्रन्थाकार है, उसको यह राग विदित था क्या?

उत्तर--खूब याद दिलाई। लोचन पंडित ने भी नाम रेवा ही स्वीकार किया है और उस राग का थाट 'गौरी' (अपना भैरव) कहा है। वह कहता है--

रेवा च भट्टिहारिश्च पट्टरागश्च तथोत्तमः।
× × ×
गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः॥

प्रश्न--देखो क्या चमत्कार है? तरंगिणी और पारिजात इन दोनों उत्तर के ग्रन्थों में नाम 'रेवा' और थाट 'गौरी'?

उत्तर--यह बात विचार करने योग्य है, इसमें संशय नहीं। परन्तु ऐसे महत्वपूर्ण विषय की मीमांसा उचित प्रमाणों के अभाव में समाधान कारक होनी कठिन है। अपने मध्यकाल के ग्रन्थकार बुद्धिमान तो थे, परन्तु उन्होंने यथा-योग्य धैर्य नहीं दिखाया, ऐसा कहना पड़ता है। शास्त्र पुराना और वर्त्ताव नया, ऐसी आड़ी-तिरछी श्रृङ्खला डालने का प्रयत्न करके उन्होंने शोधकों का कार्य बड़ा ही दुष्कर कर दिया। अस्तु, आगे चलते हैं।

सारामृते:--

मेलान्मालवगौलीयादुद्भूतो रेवगुप्तकः।
मनिवर्ज्यो ह्यौडुवः सन्यासः सायं प्रगीयते॥

तुलाजी महाराज ने इस राग का ऐसा उदाहरण दिया है--"ध॒ प, ग प ध॒ सां, ध॒ ध॒ सां, ध॒ प, ग प ग रे॒, ग रे॒ सा। ध़ सा रे॒ ग रे॒ सा, ध़ सा। सा ध॒ ध॒, ध॒ प, ग ग रे॒ सा। रे॒ सा ध़ सा। ध़ सा रे॒ रे॒ ग रे॒ प ध॒ प ग रे॒ सा। सा ध़ प़ ग़ प़ ध़ सा, सा। प ध॒ सां, सां ध॒ ध॒ प ग प ग रे॒ सा। रे॒ सा, ध़ सा।"

प्रश्न--यह प्रकार हमको सवेरे का दिखाई देता है पर वह दक्षिण का है, ऐसा कहना होगा। रेवा में पूर्वाङ्ग प्रधान होना चाहिये, क्योंकि वह संध्याकाल का राग है।

उत्तर--ऐसा समझ कर चलने से कोई हानि नहीं!

सद्रागचन्द्रोदयेः--

न्यासांशरी रिग्रहिका विगेया
स्याद्रेवगुप्तिस्त्वसपा दिनान्ते ॥

यहां ग्रंथकार ने 'असपा' यह विशेषण क्या समझ कर रक्खा है? सो नहीं जान पड़ता। इस पद का स्पष्टीकरण उसने स्वतः कहीं किया होता तो अधिक समाधान-कारक होता।

प्रश्न--षड्ज और पंचम के सिवा बाकी स्वर विकृत हैं, कहीं ऐसा भाव तो उनके मन में नहीं था?

उत्तर—ऐसा अर्थ देने का आधार उसके ग्रन्थ में कहीं नहीं दिखाई देता। अस्तु, रामामात्य ने स्वरमेलकलानिधि में यह कहा है:--

शुद्धाः सरिमपाः शुद्धधनी गांधारकोऽतरः।
एतैः सप्तस्वरै रेवगुप्तिमेल उदाहृतः ॥
तस्मिन् रागो रेवगुप्तिः शुद्धरागाश्च केचन।
रत्नाकरीयमेलोत्थाः शार्ङ्गदेवेन लक्षिताः ॥
रिग्रहो रेवगुप्तिश्च रिन्यासो मनिवर्जितः।
औडवश्चरमे यामे दिवसस्य च गीयते ॥

प्रदर्शिन्याम्:-- (मालवगौलमेले)

औडवो रेवगुप्तिस्तु रिग्रहो मनिवर्जितः।
दिनस्य चरमे यामे गेयो गायकसत्तमैः ॥

चतुर्दण्डिकार ने यह राग हेजुज्जी थाट में रक्खा है, हेजुज्जी थाट उसने ऐसा कहा है:--

गांधारोऽतरनामान्ये स्वराः शुद्धाः प्रकीर्तिताः।
एतावत्स्वरसंभूतो हेजुज्जीमेल ईरितः ॥
षड्जे चतस्रः ऋषभे तिस्रो गे पंच मध्यमे।
एका स्यात् पे चतस्रः स्युर्धे तिस्रो द्वे निषादके ॥
इत्यस्य श्रुतयो ज्ञेया द्वाविंशतिरिति स्फुटम्।
अयं त्रयोदशो भेदो मेलप्रस्तारके भवेत् ॥

प्रश्न—याने रामामात्य का रेवगुप्ति मेल ही कहिये न ?

उत्तर—चाहो तो वैसा ही कहो। रामामात्य कहता है कि मेरे थाट शार्ङ्गदेव के थाटों से मिलते हैं, परन्तु वह अपने प्रमाण नहीं देता।

प्रश्न—व्यङ्कटमखी ने अपने श्लोकों में यह श्रुति कैसी कही है ?

उत्तर—वह तुम सहज ही समझ सकते हो। उसके हेजुज्जी थाट में सा, रे, म, प, ध ये स्वर शुद्ध हैं, अतः उनकी शास्त्रोक्त श्रुति संख्या उसने कही है। उसका अन्तर ग, इतर ग्रंथकारों के ग के आगे एक श्रुति होने से उसके ग में ५ श्रुति हुईं और शुद्ध म में एक ही रही, सब थाट में कुल २२ श्रुति हैं।

प्रश्न—आया ध्यान में। चलने दीजिए, आगे रेवगुप्ति का लक्षण कहिये ?

उत्तर—वह ऐसा है:—

अथर्षभग्रहाणां त्रिरागाणां लक्ष्म चक्ष्महे।

× × × ×

रेवगुप्तिस्तु हेजज्जीमेलोत्थो मनिवर्जनात्।
औडवश्चरमे यामे दिवसस्यैष गीयते ॥

अपने उत्तर रागों में तीव्र धैवत नहीं है और तीव्र निषाद चाहिये, यह ध्यान में आयेगा ही।

रागविबोधे:—

मेलेऽथ रेवगुप्तेर्भवंति षट् सरिमपधनयः शुद्धाः।
गोंतरसंज्ञश्चास्माद्रागाः स्यू रेवगुप्ताद्याः ॥

इसका शुद्ध धैवत ठीक स्थान पर रक्खें तो यह लक्षण रामामात्य के लक्षण से जरूर मिलेगा। प्रत्यक्ष रेवगुप्ति का लक्षण सुनो:—

असपा तु रेवगुप्तिः रिन्यासांशग्रहा भवेत् सायम्।

इस लक्षण में तुमको ध्यान में रखने योग्य कुछ दीखता है क्या ?

प्रश्न—इसके 'असपा' शब्द को देखकर आश्चर्य होता है। पुण्डरीक ने चन्द्रोदय में 'असपा' कहा था तो क्या उसे उसने सोमनाथ के ग्रंथ से लिया है ? ऐसा हो तो पुण्डरीक १५३१ के बाद हुआ होगा, ऐसा तर्क सहज में ही उठता है। पर किसने किसका लिया ? यही प्रश्न पहिले उपस्थित होगा।

उत्तर—हां, यह भी ठीक है। 'असपा' इस पद का स्पष्टीकरण सोमनाथ ने ऐसा किया है। "असपा षड्जपंचमहीना" (अर्थात्—षड्ज पंचम जिसमें न हों=असपा)

प्रश्न--रत्नाकर के 'रेवगुप्त' लक्षण पर टीका नहीं है क्या ?

उत्तर—कल्लिनाथ कहता है:--

"उपरागेषु षड्जग्रामे रेवगुप्तो मध्यमार्षभिकोद्भव इत्यत्रापि रेवगुप्तस्य चतुःश्रुतिकपंचमोपलंभात् षड्जग्रामसंबंध एव साक्षादवगतः । मध्यमग्रामसंबंधस्तु तारव्यापकत्वेनानुमेय इति ।" इसमें से कुछ उपयोगी तुमको नहीं मिलेगा। मुझे सन्देह है कि जब उसने समस्त रत्नाकर पर टीका की है तो उसको इस ग्रन्थ की उत्तम जानकारी होनी चाहिये, किन्तु ऐसा दीखता। निदान वैसा प्रमाण उपलब्ध नहीं। मेरे इस कथन से तुमको आश्चर्य नहीं होना चाहिये। रत्नाकर का हिन्दी भाषान्तर अपने आगे है ही, पर कल्लिनाथ के विषय में डरते-डरते ही मैं यह बातें कह रहा हूँ।

प्रश्न—अच्छा ! अपने प्रतापसिंह के सङ्गीतसार में रेवा राग है क्या ? वे तो बोलचाल में अपने उत्तर के ग्रन्थकार हैं, इसलिए पूछता हूँ।

उ०--उसने शार्ङ्गदेव के रागों के जो नाम उतार लिये है, उनमें से 'रेवगुप्ति' भी एक है, परन्तु उस राग के सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं दी। पारिजात के उसने अधिकतर राग अपने ग्रन्थ में लिए हैं, किन्तु इसे क्यों छोड़ दिया ? कौन जाने ?

प्रश्न--हां, अच्छी याद आई। हमारे मन में 'राधागोविन्द सङ्गीतसार' की रागरचना समझने की इच्छा है। उसे संक्षेप में कहा जा सकता है क्या ? प्राचीन पद्धति आप कहते आये हैं इसीलिए पूछता हूँ। हमको इस समय केवल स्वराध्याय और रागाध्याय की ही आवश्यकता है।

उ०—तुम्हारा उद्देश्य मैं समझ गया। उसे कहने में मेरी कुछ भी हानि नहीं। वह ग्रन्थ अब छप गया है, इसलिये उसमें वह रचना मिलेगी ही, सो बात नहीं। परन्तु प्रतापसिंह के बारे में तथा इस खास विषय पर दो शब्द कह देना उचित होगा। प्रतापसिंह को प्राचीन ग्रन्थों का स्वराध्याय और रागाध्याय समझ में नहीं आया था। अपनी ऐसी शंका मैंने तुमको पहले बताई थी, ठीक है न ?

प्रश्न--हाँ, आपने कहा था कि यद्यपि उसने रत्नाकर, दर्पण, पारिजात, अनूपविलास वगैरह ग्रन्थ देखे थे तथापि वह उनको अच्छी तरह समझा था, ऐसा उसके ग्रंथों से प्रकट नहीं होता।

उ०--यह बात तुमने अपने ध्यान में खूब रक्खी। मैं अब भी अपनी उसी बात पर जमा हुआ हूँ। उसका स्वराध्याय तो शार्ङ्गदेव के स्वराध्याय का बिलकुल हिन्दी भाषान्तर ही समझना चाहिए। रत्नाकर का वह अध्याय जिसकी समझ में आयेगा वह सङ्गीतसार का स्वराध्याय छोड़ देगा, ऐसी विचित्र स्थिति हो गई है।

प्रश्न—और स्वराध्याय जिसकी समझ में आयेगा वह आगे रागाध्याय समझ लेगा, ऐसा भी मानेंगे क्या ?

उ०--नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। भाग्य से स्वराध्याय और रागाध्याय में विशेष सम्बन्ध प्रतापसिंह ने नहीं रक्खा, शार्ङ्गदेव के रागाध्याय के प्रारम्भ में दिया हुआ रागों का नाम निर्देश उसने अधिकतर सङ्गीतसार में से उतार लिया है और

कहीं-कहीं कल्लिनाथ की टीका का हिन्दी भाषांतर किया हुआ भी हमको दिखाई देगा। परन्तु ऐसा मालुम होता है कि रत्नाकर के राग छोड़ने की हार्दिक इच्छा प्रतापसिंह की नहीं थी। इस दिशा में कहीं-कहीं दो-एक जगह कुछ तर्क भी उसने किये हैं, ऐसा दिखाई देता है, परन्तु स्वयं उसे ही संतोषजनक समाधान न होने के कारण, उसने ऐसी बातों को कुछ महत्व नहीं दिया। उदाहरणार्थ-भिन्नषडज का स्पष्टीकरण ही देख लो न? वह कहता है—"भिन्नषड्ज राग के स्वरन में षड्जस्वर भिन्न होय कहतें विकृत है। ××× । भिन्न चार प्रकार का है, १-श्रुतिभिन्न, २-जातिभिन्न, ३-स्वरभिन्न, ४-शुद्ध भिन्न; भिन्न कहिए विकृत ऐसे बारा विकृत अथवा बावीस विकृत अथवा बियाचालीसन में जो स्वर विकृत होय सो भिन्न जानिये यातें भिन्नषड्ज राग में षड्ज विकृत जानिये।'

प्र०—यानी भिन्न रिषभ, भिन्न गांधार, भिन्न मध्यम, भिन्न पंचम ऐसा राग होता जायगा?

उ०—कुछ ऐसा ही उनका मनोभाव प्रतीत होता है। औरों का मत ऐसा है कि "भिन्न" यह उपपद राग की गीति दिखलाने के लिये है। शुद्धा, भिन्ना, वेसरा, गौडी, साधारणी यह गीति तुमको विदित ही हैं, पर हम यहां रागाध्याय का विचार कर रहे हैं। मैं समझता हूँ प्रतापसिंह की समझ में रत्नाकर का एक भी राग उत्तम रीति से नहीं आया था। मैंने कहा ही था कि रत्नाकर का शुद्ध स्वर सप्तक कौनसा है यह बात भी वे नहीं समझ सके हैं।

प्र०—और यह अब भी विवादग्रस्त है, ऐसा भी तो आपने बारम्बार सूचित किया है।

उ०—हां, ठीक है। अब अपने पंडित उसे जानने के लिये प्रयत्नशील हैं। सङ्गीतसार के लेखक को तो इतना ज्ञान भी नहीं मालूम होता कि 'पारिजात' का थाट काफी है और 'अनूपविलास' का कनकांगी अथवा मुखारी है।

प्र०—आपने यह भी तो कहा था कि उसने रत्नाकर, दर्पण, अनूपविलास आदि ग्रन्थों का आधार अपने रागों में लिया है, इस कारण उसका ग्रन्थ विशेष उपयोगी नहीं?

उ०—हां, मैं ऐसा ही कहने वाला था, परन्तु सङ्गीत-सार का महत्व और उसका उपयोग और ही प्रकार से है। लगभग सौ-दोसौ वर्ष पूर्व जयपुर एक सङ्गीत प्रसिद्ध नगर था। वहां हिन्दुस्तान के प्रसिद्ध अनेक कलावन्त उस समय जयपुर दरबार की नौकरी में थे, ऐसी ख्याति हम सुनते हैं। दन्तकथा तो ऐसी है कि जयपुर जैसी "रागदारी" की ऊँची स्थिति उस समय हिन्दुस्तान में और किसी शहर में नहीं थी, पर इतना कहना अतिशयोक्ति भी होगी। अपना खास विषय इतना ही है कि प्रतापसिंह को प्रत्यक्ष गायक-वादकों की मदद यथेष्ट थी और उसका प्रतिबिम्ब 'सङ्गीतसार' में थोड़ा बहुत हमें दिखाई भी देता है। उन्होंने अपना ग्रन्थ लिखने में बड़ा ही चातुर्य दिखाया है।

प्र०—वह कैसा?

उ०—देखो, कहता हूँ। किन्तु यह भी ध्यान रहे कि यह मेरा निजी मत है और वह कदाचित् गलत भी हो सकता है। सङ्गीतसार ग्रन्थ कुल रत्नाकर के आधार पर

लिखना स्वीकार करने वाले लेखक को उसमें दिये हुए राग भी वर्णन करने आवश्यक थे। इसीलिये प्रतापसिंह ने उन सब रागों के केवल नाम मात्र उतार लिये। उनके थाट नियमों की जिनको जरूरत होगी वे खुद रत्नाकर ग्रन्थ में से खोज लेंगे, सम्भवतः ऐसा उसने सोचा होगा। उत्तरीय राग-रागिनी, पुत्र, पुत्रवधू इनकी मनोहर रचना देखकर किसका मन मोहित न होगा? ऐसी रचना कर डालने की उनके मन में ठीक ही आई, और फिर हनुमान मत की ओर झुकना भी जरूरी था परन्तु हनुमान मत का ग्रन्थ प्राप्त नहीं था, तो दर्पण का उन्होंने आश्रय लिया होगा। वहां मूर्ति तो सुन्दर थी पर लक्षण दुर्बोध थे। उनके समकालीन पण्डित सब "तीवरतर, तीवर, कोमल अतिकोमल, असली चढ़ी उतरी" विधान वाले थे तो फिर ऐसे ही नाम बरतने वाले जो ग्रन्थ पारिजात, अनूपविलास आदि प्राप्त थे, उनकी ही मदद लीगई। भावभट्ट ठहरा कर्णाटकी पंडित, उसने शुद्ध स्वर सप्तक दक्षिण का बरता, इस कारण फिर अड़चन आई। अहोबल के शुद्ध ग, नि लगते नहीं थे। फिर हनुमान मत में देखा तो पुत्र और पुत्रवधू दिखाई न दिये, और इनके बिना ग्रन्थ अपूर्ण रह जाने का भय था, तो ऐसी अड़चनें उपस्थित होने पर यह देखने का प्रयत्न किया कि इतर पूर्व कालीन पंडितों ने क्या प्रमाण दिया है? प्रयत्न करने पर दुष्प्राप्य क्या है? एक क्षेमकर्ण बाबा मिल गये और उनकी "रागमाला" ऐसे अवसर पर काम आई। उनके राग हनुमान मत के थे, उसका परिवार और कहीं का होगा। विसङ्गति के दोषी संसार में केवल हम ही नहीं, और भी होंगे। ऐसा सोच लिया। अस्तु, क्षेमकर्ण कहता है:—

रागादौ भैरवाख्यस्तदनु च गदितो मल्लिकोशिर्द्वितीयो।
हिंदोलो दीपकः श्रीरिह विबुधजनैरंबुदाख्यः क्रमेण॥
एकैकस्याष्ट पुत्राः सुललितनयनाः पंचभार्याः प्रसिद्धाः।
स्वे स्वे काले षडेते निजकुलसहिताः संपदं वो दिशंतु॥

फिर क्या पूछना? व्यवस्था करने में कितनी देर! दामोदर पंडित, अहोबल, भावभट्ट इनको साक्षी करके "शास्त्र तेरा और राग मेरा" इस नियम से तुरन्त ही रचना कर डाली। परन्तु देखना यह सब बातें मैं तार्किक दृष्टि से ही कह रहा हूं।

प्र०—क्षेमकर्ण की रागमाला, सङ्गीतसारकर्त्ता ने देखी थी, इसका क्या प्रमाण हो सकता है?

उ०—यह एक छोटी सी बात से प्रमाणित हो सकता है। अपने राग परिवार कहने वाले लेखक प्रत्येक राग के बहुधा आठ-आठ पुत्र कहते हैं, किन्तु क्षेमकर्ण ने श्रीराग के ६ पुत्र कहे हैं यथा:—

श्रीरागस्य वधूर्वक्ष्ये षडहं नव चात्मजान्।
विशेषात्सर्वरागेभ्यः पूर्वग्रन्थानुसारतः॥

प्रतापसिंह ने भी अपने सङ्गीतसार में श्रीराग के पुत्र ६ लिखे हैं। क्षेमकर्ण ने इतर रागों के पुत्र ऐसे कहे हैं:—

बंगालोऽप्यथ पंचमः खलु मधुर्हर्षश्चतुर्थो मतो ।
देशाख्यो ललितोऽथ भैरवयुतो वेलावलो माधवः ॥
मारुर्मेवाडमिष्टांगौ बर्बरश्चन्द्रकायकः ।
खोखरो भ्रमरानंदौ मालकौशिकनंदनाः ॥
अप्यष्टौ कमलाह्वयोऽथ कुसुमो रामः सुतः कुन्तलः ।
कालिंगो बहुलोऽपि पंचम इतो हेमालको दीपके ॥
पुत्राः सैंधवमालवाव्हय इतो गौडश्च गंभीरकः ।
श्रीरागे गुणसागरोऽथ विहगः कल्याणकुम्भौ गडः ॥
पुत्रास्तस्य नटोऽथ कानर इतः सारंगकेदारकौ ।
गुण्डो गुंडमलारको जलभृतो जालंधरः शंकरः ॥
अष्टौ मंगलचंद्रबिंबतनयौ शुभ्रांग आनंदको ।
हिंदोलस्य विभासवर्धनवसंताख्या विनोदः सुताः ॥

प्र०—सङ्गीतसार का वर्गीकरण भी बतायेंगे क्या ?

उ०—यह लो, बताता हूं—

१—भैरव राग

(रागिनी ५)

१-मध्यमादि २-भैरवी ३-बंगाली ४-बरारी ५-सैंधवी ।

(पुत्र ८)

१-बंगाल २-पंचम ३-मधुर ४-हरप ५-देशाख ६-ललित ७-बिलावल ८-माधव ।

२—मालकंस राग

(रागिनी ५)

१-टोड़ी २-खंबायची ३-गौरी ४-गुणकरी ५-कुकुभा ।

(पुत्र २)

१-नंदन २-खोखर ।

३—हिंदोल राग

(रागिनी ५)

१-बिलावली, २-रामकली ३-देसाख ४-पटमंजरी ५-ललित ।

(पुत्र ८)

१-बंगाल २-चन्द्रबिंब ३-शुभ्रांग ४-आनंद ५-बिभास ६-वर्धन ७-वसंत ८-विनोद ।

४—दीपक राग

(रागिनी ५)

१-केदारी २-कर्णाटी ३-देसीतोड़ी ४-कामोदी ५-नट।

(पुत्र ४)

१-कुसुम २-कुसुम ३-राम ४-कुन्तल (कमल)

५—श्री राग

(रागिनी ५)

१-वसन्त २-मालवी (मारवा) ३-मालश्री ४-असावरी ५-धनाश्री।

(पुत्र ९)

१-सैंधव २-मालव ३-गौड ४-गंभीर ५-गुणसागर ६-बिगड ७-कल्याण ८-कुम्भ ९-गड।

६—मेघराग

(रागिनी ५)

१-गौडमल्लारी २-देशकारी ३-भूपाली ४-गुर्जरी ५-श्रीटंकी।

(पुत्र ८)

१-नग २-कानरा ३-सारंग ४-केदार ५-गाडे ६-मल्लार ७-जालंधर ८-शंकर। ('नग' और 'गाडे' ये नाम विचित्र दीखते हैं। कदाचित् ये नट और गौंड होंगे) इन रागों पर ग्रन्थकार ने जगह ब जगह अपनी ओर से स्पष्टीकरण कर रक्खा है। रागमाला में राग, रागिनी और पुत्र इन सबों की मूर्ति का बहुत ही मनोहर वर्णन किया है, उसके काव्य की तारीफ कोई भी संस्कृत भाषी पंडित करेगा, ऐसा मैं समझता हूँ। उन सुन्दर श्लोकों का मधुर हिन्दी भाषान्तर महाराज ने यथाशक्ति कर डाला है। उसके लिये हम उनका आभार मानेंगे ही, परन्तु क्षेमकर्ण ने अपने रागों के स्वर रागमाला में नहीं कहे और वे सङ्गीतसार में कैसे छोड़े जा सकते थे ? ऐसा करने से सारा ग्रन्थ निरुपयोगी होजाता।

प्र०—फिर वे स्वर कैसे मिले ?

उ०—यहां कैसी चतुराई से काम लिया गया है, यह तुम्हीं देखो:—

उदाहरण:—

धत्ते ललाटे तिलकं च पीतं
शुभ्रांबरश्चंपकपुष्पमालः ।
तांबूलहस्तो द्युतिगौरदेहो
विलासिवेषो ललितः प्रदिष्टः ॥ (रागमालायाम्)

संगीतसार में:—

"शिवजी ने प्रसन्न होयके उन रागन में सों विभाग करिवे को अघोर नाम मुख सों गाइके भैरव की छाया युक्ति देखी वाको ललित नाम करिके भैरव को पुत्र दीनो।

अथ ललित को स्वरूप लिख्यते। जाके भाल में केसर को तिलक है। गले में चम्पा के फूलन की माला पहरे है। हात में पके नागरवेली के बीड़ा है। फूलवाडी की जाकी पोषाक है और बड़ो विलासी है। तरुण अवस्था है। मतवारे हाथी की सी चाल है। कामदेव सों सुन्दर है। ऐसो जो राग ताहीं ललित जानिये। शास्त्र में तो यह पाँच सुरन सों गायो है। स ग म ध नि स। यातें ओडव है। सूर्य के उदय समय में गावनो। यह तो याको वखत है और दिन के प्रथम पहर में चाहो तब गावो। याकी आलापचारी पाँच सुरन में किये राग बरतें। हिंदोलराग की पाँचवीं रागिनी ललिता तहाँ याको जंत्र है। इति भैरव कौ छठो पुत्र ललित संपूर्णम्।" यहाँ तुम्हीं कहोगे कि उन्होंने ये नवीन शास्त्र कहाँ से खोज निकाले?

प्रश्न—हाँ, यही मैं कहने वाला था। क्योंकि मूल श्लोक में वह हमको नहीं दिखाई दिया।

उत्तर—उसे उन्होंने 'संगीत दर्पण' से लिया है। देखो दर्पणकार कहता है—

रिपवर्ज्या च ललिता औड्वा सत्रया मता।
मूर्छना शुद्धमध्या स्यात् संपूर्णां केचिदूचिरे।
धैवतत्रयसंयुक्ता द्वितीया ललितामता ॥
सा ग म ध नि ॥ सा रे ग म प ध नि ॥ इ०

ऐसा किस तरह किया गया? इस प्रश्न पर वे कदाचित् कहेंगे, मुझे "मार्ग" स्वरूप नहीं चाहिये, "देशी" चाहिये। "मार्ग" और "देशी" इन शब्दों का स्पष्टीकरण उन्होंने कैसा कर रक्खा है, देखो? "देशी" कहिये जो अपनी इच्छा सों लोकनुरंजन के लिये चार श्रुति के स्वर को, अथवा तीन श्रुति के स्वर को, अथवा दोय श्रुति के स्वर को, घट बध श्रुतिन सों उचार करिये, सो जामें शास्त्र कौ नियम नहीं होय। ऐसे कहूँ कोमल अथवा तीव्र अथवा तीव्रतर अथवा तीव्रतम अथवा अतिकोमल। अपनी बुद्धिबल सों कीजिये सो रागन में देशी भाव जानिये और शास्त्र की रीति सों उचार कीजिये सो राग में मारगी भाव जानिये॥" और भी सुनना चाहो तो लो "देशी रागन को भरतादिक मुनि अनिबद्ध कहे हैं। अनिबद्ध कहिये शास्त्ररीति जामें नहीं होय।"

प्रश्न—इस तरह से माना जाय तो कहना चाहिये कि चाहे जिस राग को चाहे जिस तरह से गाकर मैं देशी रूप पसन्द करता हूँ, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्या?

उत्तर—ऐसे प्रश्नों का उत्तर कैसे दिया जा सकता है? तुम व्यर्थ ही घबरा गये। प्रतापसिंह ने सभी पुत्रों के स्वर नहीं कहे हैं, अनेक स्थानों पर "यह राग सुन्यो नहीं। जातें जंत्र बन्यो नहीं। जाकी सिवाय बुद्धि, सो बरत लीजो।" ऐसे गंभीर उद्गार भी उन्होंने उनके उपदेशों पर अमल करके प्रकट किये हैं। अपने कुछ तीव्र बुद्धि वाले लेखकों ने वह कमी भी पूरी कर डाली है, उसे देखकर वे महाराजा स्वर्ग में प्रसन्नता अनुभव कर रहे होंगे।

प्रश्न—तो फिर, राधागोविन्द संगीतसार के वर्णन से पाठकों को निराशा नहीं होगी क्या ?

उत्तर—तुम्हारे मन में ऐसा भाव आयेगा, यह मैं जानता था। तुम निराश न हो। उसमें पढ़ने वालों के लिये उपयोगी बातें भी हैं। जिन पाठकों को ऐसी अपेक्षा हो कि संगीतसार की मदद से हम संगीत रत्नाकर का अर्थ लगा सकेंगे, दर्पणादिक संस्कृत ग्रन्थों का संगीत समझ लेंगे, अपने प्रचलित रागों का संबंध ग्रन्थों से लगाने में समर्थ हो सकेंगे, आदि-आदि। उनको निराश जरूर होना पड़ेगा, परन्तु जिनको यह जानने की इच्छा हो कि अपने हिन्दुस्थानी प्रसिद्ध रागों के तथा कुछ प्रसिद्ध मुसलमानी प्रकारों के स्वर जयपुर के गायक सौ वर्ष पहिले कैसे मानते थे ? तो उनको वैसी जानकारी थोड़ी बहुत मिल सकती है। आज कान्हड़ा, सारंग, नट, तोड़ी, बिलावल, मल्हार, कल्याण, इनके अनेक प्रकार अपने गायक गाते हैं। उनको कुछ मदद संगीतसार, सरमाए अशरत, सुरतरंगिणी, कल्पद्रुम, आसफी, ऐसे ग्रन्थों से मिल सके तो आश्चर्य नहीं। भावभट्ट ने तो प्रचलित प्रकारों के नाम एकत्र कर डाले और उनके स्वर दिखाने का काम प्रतापसिंह ने अपने गायकों की मार्फत किया तो उसमें उन्होंने कुछ बुरा नहीं किया। हाँ, प्रत्येक राग का आड़ा-तिरछा संस्कृत आधार, उसका मर्म न समझते हुए भी जोड़ देने का जो उन्होंने प्रयास किया उसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। उनकी कही हुई उपयुक्त जानकारी का उपयोग हम अवश्य करेंगे। रत्नाकर के अन्य अध्यायों का अभ्यास करने वालों के लिये यह ग्रन्थ वास्तव में उपयोगी सिद्ध होगा। संस्कृत संगीत का, प्रचार से संबंध टूटे हुये कई शताब्दी बीत जाने के कारण प्रतापसिंह को संस्कृत ग्रन्थों का अच्छा अन्वेषण प्राप्त नहीं हो सका, इसका किसी को भी आश्चर्य नहीं होगा। प्रिय मित्र ! अब हम अपने विषय की ओर फिर लौटते हैं। मैं कुछ ग्रन्थों के विषय में बीच बीच में तुमको अपना मत बताता आया हूँ परन्तु वहाँ उनकी राग रचना नहीं कही थी, इसलिये उसको भी कहना उचित होगा।

संगीतलक्षणे:—(रेगुप्तिः)

शुद्धास्तु समपाश्चैव शुद्धौ रिषभधैवतौ ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
षाडवः सर्वयामेषु गीयते रेवगुप्तिकः ॥

संगीत दर्पणकार ने अपने रागाध्याय के अन्त में "रेवागूर्जरीवत्सदा" ऐसा कहा है, गुर्जरी राग भैरव थाट में अनेक ग्रन्थकार मानते हैं अतः यह छोटा सा वाक्य विचार करने योग्य है:—

रेवा कहि पटमंजरी गाइ गुनकली और ।
प्रातसमें ये गाइये इतने सुनि सिरमौर ॥

सुरतरंगिणी:—

अब इस अप्रसिद्ध राग के लिये और ग्रन्थाधार ढूँढते रहने की आवश्यकता नहीं इसका प्रचलित स्वरूप इस तरह ध्यान में रक्खो:—

पूर्वीमेलसमुद्भूता ख्याता रेवा सुखप्रदा ।
आरोहे चावरोहेऽपि मनिहीनैव संमता ॥
वर्जने निमयोः सिद्धा गपयोः संगतिः स्वयम् ।
षड्जांशा गांशिका वाऽसौ सायंगेया बुधैर्मता ॥
उत्तरांगप्रधानत्वे विभासांगं भवेत्स्फुटम् ।
परित्यागो मतस्तत्र निमयोरिति विश्रुतम् ॥
वादित्वे सति पूर्वांगे सायंगेयत्वमीरितम् ।
तत्पुनश्चेदुत्तरांगे प्रातर्गेयत्वमीप्सितम् ॥ (लक्ष्यसंगीते)

पूर्वीमेले भाति वर्ज्या मनिभ्यां ।
षड्जांशा वा गांशिका कैश्चिदुक्ता ॥
संवाद्यस्यां पंचमः संप्रदिष्टः ।
सेयं रेवा सायमेवाभिगीता ॥ (कल्पद्रुमांकुरे)
मनिहीना तु रेवा स्यात् कोमलर्षभधैवता ।
गांशा कैश्चित्तु षड्जांशा गीयते सायमेव हि ॥ चंद्रिकायाम्

प्रश्न—अब यह राग हमको थोड़ा सा गाकर दिखादें तो बड़ी कृपा हो।
उत्तर—अच्छा, सुनोः—

रेवा—सूलफाक (शूल ताल)

ग ग । रे सा । रे रे । सा रे । रे सा
×
सा रे । सा सा । ग प । ग रे । सा ऽ
सा रे । सा ग । प ग । धु प । ग ग
धु प । ग प । धु प । ग रे । सा ऽ

अन्तरा—

प प । ग प । धु प । सां ऽ । रें सां
×
सां रें । गं रें । सां ऽ । धु धु । प प
सा रे । सा ग । प प । सां ऽ । धु प
सां सां । धु प । धु प । ग रे । सा ऽ

रेवा—त्रिताल

प धु प प । ग रे सा रे । ग ऽ प ग । धु प ग ऽ
०
प धु प सां । ऽ प धु प । ग प धु प । ग रे सा ऽ

अन्तरा—

प प ध॒ प । सां ऽ सां ऽ । सां रें॒ गं रें॒ । सां ऽ ध॒ प
रें॒ रें॒ सां सां । ध॒ ध॒ प प । ग प ध॒ प । ग रे॒ सा ऽ

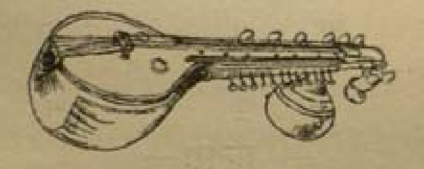
रेवा—त्रिताल

प ग ऽ रे॒ । सा ऽ सा रे॒ । ग ऽ ऽ ऽ । प प ग ऽ
० ×
ध़॒ ध़॒ प़ प़ । ध़॒ ध़॒ सा ऽ । रे॒ ग ऽ प । ग रे॒ सा ऽ
ऽ प ग रे॒ । सा ऽ सा रे॒ । ग ऽ ऽ ऽ । इ० ।

अन्तरा—

प ध॒ प सां । ऽ सां रें॒ सां । रें॒ गं ऽ पं । गं रें॒ सां ऽ
सां रें॒ सां सां । ध॒ ध॒ प प । प ग रे॒ प । ग रे॒ सा ऽ

प्रश्न—अब दूसरा कोई राग कहिये ?



राग मालवी

उत्तर--अब हम 'मालवी' राग लेते हैं। यह राग अप्रसिद्ध रागों में ही माना जाता है। संस्कृत ग्रन्थों में तो यह पाया जाता है, परन्तु आजकल प्रचार में अपने गवैये इसे क्वचित ही गाते हुए पाये जायेंगे। बहुतों को तो यह राग सुनने को भी नहीं मिला होगा। इस राग के स्वरूप के विषय में अपने संस्कृत ग्रन्थकारों में भी विभिन्न मत पाये जाते हैं। हमें यह भी मानना पड़ेगा कि हम जो मालवी का स्वरूप आज प्रचार में देखते हैं, वह ग्रन्थगत स्वरूप से भी बहुत भिन्न है। यह नवीन होने पर भी मनोवेधक है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रश्न--संस्कृत ग्रंथकार मालवी राग किस थाट में रखते हैं?

उत्तर--वह सब अब धीरे-धीरे तुम देखोगे ही। पर इतना पहले तुमको बताये देता हूं कि 'मालवी' का 'पूर्व थाट' कोई भी संस्कृत ग्रन्थकार नहीं कहता। यह राग वर्तमान गायक कैसा गाते हैं, पहले यह मैं कहूंगा, और फिर हम इतर विषयों पर विचार करेंगे!

प्रश्न--कोई हानि नहीं, ऐसा ही कीजिए। किसी तरह यह राग हम समझलें, तो बस!

उत्तर--अपना 'मालवी' प्रकार पूर्वी थाट का है, यह अलग बताने की आवश्यकता नहीं। मैंने पूर्वी, श्री, गौरी और रेवा, ऐसे जो चार राग कहे थे, वे राग मालवी से अलग किस तरह होंगे, सो कहता हूँ देखो—पूर्वी में दोनों मध्यम लिये जाते हैं, वैसा मालवी में नहीं होता। इसमें एक तीव्र मध्यम ही आता है। रेवा में मध्यम और निषाद समूल वर्ज्य हैं. मालवी में म है, निषाद केवल आरोह में नहीं है। श्रीराग के आरोह में ग ध स्वर नहीं हैं, वह नियम मालवी में बिलकुल नहीं लगता है। गौरी में भी गांधार का प्रयोग नियमित और मर्यादित होता है, किन्तु वैसा मालवी में नहीं होता।

प्रश्न--आया ध्यान में। तो फिर मालवी में हम कौन से स्थानों पर विशेष ध्यान दें?

उत्तर--मालवी के आरोह में निषाद दुर्बल रखना है और अवरोह में धैवत दुर्बल रक्खा जायगा। 'दुर्बल' शब्द का अर्थ 'वर्ज्य' नहीं है। अपने ग्रन्थकार यह शब्द 'मनाक् स्पर्शः' 'बारम्बार आगे न आया हुआ' 'झाँका गया' सुविधानुसार इन अर्थों में ही व्यवहृत करते हैं। कोई स्वर स्पष्ट वर्जित भी माने गये हैं। फिर भी सामाजिक रुचि की ओर देखकर अथवा गाने में उत्पन्न होने वाली अड़चनों को हटाने के लिये ऐसे स्वरों को गायक थोड़े परिमाण में लगाते हैं, यह हम अनेक बार देखते हैं। नियमों की जानकारी होते हुए भी विशिष्ट अवसरों पर उनको वैसा करना ही पड़ता है। कठोर नियम पालन की दृष्टि से कोई इस कृत्य को गौण ही कहेगा, परन्तु उससे यदि दरअसल

परिणाम अच्छा होता है तो चतुर गुणिजन इसको दोषास्पद नहीं मानते। इस विषय में मेरे गुरु का भी मुझे ऐसा ही मत दिखाई दिया। वे स्वयं मालवी के आरोह में निषाद वर्जित करना ही पसन्द करते थे। अवरोह में धैवत थोड़ा लगा दिया जाय तो भी चल सकता है, ऐसा वे कहते थे। मैं समझता हूँ यह निषाद का नियम एक तरह से हमको बहुत उपयोगी होगा। आरोहावरोह सम्पूर्ण करने से हमको अन्य रागों के साथ थोड़ी बहुत गड़बड़ी होनी सम्भव है। इस पूर्वी थाट में आरोह में निषाद वर्जित होने वाला दूसरा राग न होने से वह नियम कैसा सुविधाजनक हुआ है। यह नियम ध्रुवपद गायक अच्छा संभालते हैं। यद्यपि तानबाजी करने वाले लोगों को उससे कुछ विरोध होगा। अवरोह में धैवत लगाते हुए मैंने अनेक बार सुना है, किन्तु तुमको तो मैं अभी नियम से चलने को ही कहूँगा। एक बार तुम्हारी स्मरण शक्ति अच्छी होजाय तो फिर जो-जो तुमको योग्य मालूम दे, सो करते जाओ। अवरोह में कहीं-कहीं धैवत लगा भी लिया जाय तो मुझे अधिक हानि नहीं दिखाई देती, उसी तरह वह उत्तरांग का भाग भी है।

प्रश्न--तो फिर आरोह में नि वर्ज्य और अवरोह में ध वर्ज्य, यह नियम इस राग में हम स्वीकार करके चलना पसन्द करते हैं। अच्छा, अब मालवी राग को हम अङ्ग कौनसा दें ? यह भी एक महत्व का विषय है।

उ०—अपने गायक-वादक मालवी को श्रीराग की एक रागिनी मानते हैं और उसी राग के अङ्ग से उसे गाने का उनका प्रयत्न भी रहता है। इस कारण मैं समझता हूँ तुम भी वैसा ही करो तो अच्छा है। यह राग पूर्वी के पहले गाया जाय कि पीछे गाया जाय, इस प्रश्न पर कभी-कभी चर्चा हमें सुनने को मिलती है, पर तुमको इतनी गहराई में जाने की जरूरत नहीं। अच्छा, यदि मालवी तुमको श्रीराग के अङ्ग से गाना पड़े तो कैसा करोगे ? वह बताओ तो देखूं।

प्र०—मैं समझता हूं उस अङ्ग से गाने वाले को "सा, रे॒, रे॒, सा, ग प ग, रे॒, सा, सा रे॒ सा, रे॒ ग रे॒ प मं ग, रे॒ ग रे॒ सा, सा ग प ग, रे॒, मं ग रे॒ सा, सा, रे॒ ग प, मं प, मं ग रे॒, ग रे॒ सा" ऐसे स्वरसमुदाय बनाने में कोई हानि नहीं होगी, गांधार स्वर आरोह में लगाने के लिए छुट्टी है, ऐसा आपने कहा ही है।

उ०--नियम की दृष्टि से तुम्हारे लगाये हुए स्वर ठीक ही हैं। पंचम के आगे कैसा करोगे ?

प्र०--उस भाग में नियम संभाल कर रचना की जावेगी। अतः वहां "रे॒ ग, मं ध॒ सां, सां, सां रें॒ सां, रें॒ गं रें॒ सां, सां नि, प, मं ध॒ सां, नि प मं ग, प ग, रे॒ ग, रे॒, सा" कुछ इस प्रकार किया जावेगा, परन्तु यह भाग श्रीराग से जरूर भिन्न होगा, ठीक है न ?

उत्तर—तुम्हारा कहना अनुचित नहीं। अब राग के समूचे परिणाम और माधुर्य की ओर तुम्हारा ध्यान खींचना है। नियम संभालने के पश्चात् फिर राग का रक्ति गुण संभालने से गायक की कीमत अवश्य बढ़ती है। कुछ अशिक्षित और

बेढंगे लोगों की ऐसी भी समझ होती है कि रागों में नियम लगाने से वे बिलकुल बिगड़ जाते हैं, वैसी समझ तुम्हारी कभी न होगी, यह मुझे विश्वास है। राग में माधुर्य किस तरह लाया जाय, वह भी मैं कहने वाला था। हां तो, अपने राग का नियम किस स्थान पर है, यह पहले देखें और उतना ही टुकड़ा पहले हाथ में लें वह भाग सैकड़ों वार कहें, पहिले सावकाश कहें फिर जल्दी-जल्दी कहते जाँय। ऐसा करने से गला कहाँ अटकता है, वह कौनसा "कण" है, गला उसे अपने आप ले, तब उसे नोट कर लेना चाहिए। किस स्थान पर कौनसा राग पास में आता है और उसे हटाने के लिये हमको क्या-क्या करना होगा, यह भी देखते जांय। इस तरह राग का कुल भाग देख लें। पहिले परिश्रम से तैयार कर लेने के पश्चात फिर वह सुलभ हो जाता है और फिर अपने आप वह सामने आता रहता है, अर्थात् फिर वहाँ खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ता। पहले पहल तो ये बातें तुम धीरे-धीरे समझोगे परन्तु बारम्बार अभ्यास से वह सब हृदयंगम हो जाँयगी। अपने राग का परिणाम श्रोताओं पर कैसा होता है? इसका ध्यान गाने वाले को अवश्य रखना चाहिये। अस्तु, मालवी में पूर्वाङ्ग प्रबल होता है, क्यों कि यह राग संध्याकाल का है। इस राग को गाते हुये अपने कुछ गायक जो एक सरल युक्ति काम में लाते हैं, उसे यदि तुम भी स्तेमाल करो तो बड़ा अच्छा हो।

प्रश्न—वह कौनसी?

उत्तर—मालवी शुरू करने से पहले श्रीराग को ही सुशोभित करने का थोड़ा सा प्रयत्न करो, ऐसा करने से श्रोताओं के मन में श्रीराग का स्वरुप उत्पन्न होने लगेगा। पुनः शनैः शनैः आरोह में, बीच-बीच में गांधार दिखाने लगो। उसे सुन कर श्रोताओं को तुम्हारा राग श्रीराग के अङ्ग का एक विभिन्न प्रकार मालूम पड़ेगा। उसके आगे फिर वे तुम्हारे नियमों की ओर देखने लगेंगे और ऐसा होने से मालवी की ओर आप ही आप आजाँयगे।

प्रश्न—वह थोड़ा सा हमें प्रत्यक्ष करके दिखावें तो शीघ्र ध्यान में बैठ जाय?

उत्तर—अभी-अभी तुमने जो प्रयत्न किया था, वह बुरा नहीं था। वहां से ही ऐसे आगे चलो "रे॒, रे॒, सा, ग ग, प ग, रे॒, सा, सा रे॒, सा, नि़ प़, मं॑ ध़॒, रे॒, सा, रे॒ ग, मं॑ ग, प मं॑ ग, प ग, रे॒ रे॒ सा, ग, मं॑ ध॒, सां, सां, नि प ग, प ग, मं॑ ग रे॒, सा; प मं॑ ग प ग रे॒, सा, सा रे॒, सा, ग, मं॑ प, सां सां नि प ग मं॑ ग, रे॒, सा, सा रे॒ ग, मं॑ ध॒ सां, प ग, मं॑ ग, रे॒, सा" अपने गायक मालवी, गौरी, त्रिवेणी पूर्वी और टंकी, ये श्रीराग की पांच रागिनी मानते हैं।

प्रश्न—वह कौनसा मत?

उत्तर—मत के नाम-गाम में हमें नहीं जाना है। तथापि इस मत को वे 'इन्द्रप्रस्थ' मत कहेंगे। ये सब सन्धिप्रकाश राग हैं और उनमें से कुछ थोड़े से रागों में श्रीराग का अङ्ग है, इस वास्ते इस विधान में कुछ सार्थकता दिखाई देती है। तथापि इससे हम राग

रागनी प्रपंच का समर्थन अपने सिर नहीं लेंगे। अपने वर्तमान सन्धिप्रकाश रागों का कोई उत्तम वर्गीकरण पुरानी जमीन (पद्धति) पर करने को तैयार हो तो हमें उस से कोई विरोध नहीं। रे ध, ग नि, म नि, रे प, ग ध, इन स्वरों की जोड़ी योग्य नियमों से अपने भैरव, पूर्वी और मारवा थाट से बचा कर मार्मिक गायक वादक कितने ही नये नये मनोरंजक "रङ्ग" उत्पन्न कर सकेंगे। इस तरह उनके उत्पन्न किये हुए स्वरूपों को आगे चल कर उत्तम अङ्ग नियम और काल नियम देकर उन्हें कोई सुव्यवस्थित कर दे तो मैं समझता हूँ सङ्गीत का अत्यन्त उपकार होगा। जिनका मत ऐसा होगा कि रागों के आरोहावरोह तथा वादी आदि स्वरों पर अब कोई प्रतिबन्ध ही नहीं, उनको बाबत हमें कुछ नहीं कहना। मेरे उक्त विचार कुछ अपूर्व हैं सो बात नहीं। प्रातःकालीन थाट में शुद्ध म और सन्ध्याकाल के थाट में तीव्र म प्रविष्ट होने से समान आरोहावरोह के राग बिलकुल भिन्न स्वरूप पाते हैं, यह तथ्य मैं समझता हूँ और अपने यहां के सभी उत्तम गायक-वादक को भी विदित रहता है। वहीं पर और भिन्न-भिन्न वादी स्वर लगाने से वैचित्र्य का क्षेत्र अधिक विस्तृत हो सकेगा, यह उन्हें कदाचित् सूझता ही नहीं।

प्रश्न—आपके मनोगत भाव हमारे ध्यान में आ गये। उदाहरणार्थ—अपने भैरव थाट में जो शुद्ध मध्यम होता है, उसे निकाल कर उसकी जगह तीव्र मध्यम लगायें तो "पूर्वी" थाट होगा और इन दोनों थाटों में आपकी बताई हुई स्वर जोड़ियां वर्ज्य करते जाँय तो अनेक प्रातर्गेय और सायंगेय राग रूप उत्पन्न होंगे और उनमें फिर वादी स्वर बदलते चलें तो सङ्गीत का क्षेत्र अधिक बढ़ेगा, यही आपका कहना है न?

उत्तर—हाँ, यह सूचना मैंने पहिले तुमको विभिन्न शब्दों द्वारा दी है। खूबी यह हो कि प्रातःकाल का राग कान में पड़ते ही, वह सन्ध्याकाल के कौन से राग का जोड़ीदार है यह तत्काल ध्यान में आ जाय। भविष्य में अपने सङ्गीत की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये। ऐसी व्यवस्था साध्य होने से अनेक बातों की अनुकूलता होगी, यह कोई भी स्वीकार करेगा। किन्तु ऐसी बातें बिना समाज की सहानुभूति के नहीं हो सकतीं। वह सहानुभूति, नवीन रूप प्रत्यक्ष उत्पन्न कर और उसे मनोरंजक करके दिखाने से ही प्राप्त होगी। पर आजकल अपने सङ्गीत सम्बन्धी सुशिक्षित लोगों की वृत्ति कुछ विलक्षण सी प्रतीत होती है।

प्रश्न—वह कैसी?

उत्तर—कुछ तो केवल पाश्चात्य विद्वानों की ओर से आने वाले भविष्य के प्रकाश की आशा पर निर्भर रह कर स्वतः प्रयत्न करना छोड़ बैठे हैं। कुछ की स्थिति "न घर का न घाट का" ऐसी है, पर हम व्यर्थ की चर्चा में न जाते हुये अपने मालवी की ओर ही लौटते हैं। मालवी में अपने गायक बीच-बीच में गांधार पंचम की सङ्गति करते रहते हैं। इस राग का विस्तार बड़ी युक्ति से करना पड़ता है, क्यों कि उत्तरांग में नि और ध़ इन स्वरों का दौर्बल्य है। पूर्वाङ्ग में यद्यपि "सा रे़ ग मं प" ये सब स्वर हैं, तो भी उसमें उत्तराङ्ग की तानों से सुसङ्गति हो, ऐसे स्वर समुदाय उपस्थित करने पड़ते हैं। 'मं ध़ सां' इस टुकड़े की बजाय 'सा सा, ग' ऐसा नीचे का टुकड़ा अधिक शोभा देगा। 'सां नि, प' अथवा 'नि, मं ध़' इन टुकड़ों से 'प ग' की सङ्गति ठीक स्थान पर रखनी

पड़ती है, ऐसा करने से अल्प प्रमाण में मालश्री का रङ्ग पैदा होने लगता है; परन्तु मालश्री में रिषभ नहीं है, यह तुम जानते ही हो।

प्रश्न—यानी 'सां नि प, ग प ग, रे सा, सा ग, मं धु सां, सां नि प, मं ग, प ग, रे सा' कुल ऐसा स्वरूप दिखाई देगा?

उत्तर—हाँ, ऐसा कहो तो चल सकता है। गांधार पर जितना जितना विश्राम लें, उतना-उतना श्रीराग का अङ्ग कम होगा। कोई कहे कि गांधार को ही वादित्व दिया जाय तो अच्छा, परन्तु वहाँ बहुमत को मान देना ही उचित होगा। श्री अङ्ग का गांधार लंगड़ा चाहिये, ऐसा किसी ने प्रतिपादन किया तो वह कथन बिलकुल निराधार नहीं कहा जा सकता। 'मालवी' श्रीराग की रागिनी मानी गई है। संभवतः इसीलिये उस राग का अङ्ग वे स्वीकार करते होंगे। उस अङ्ग से चलना हो तो 'सा, रे रे सा, ग, प ग, रे सा, सा ग, मं धु सां, रें सां, नि प, ग, प ग, रे, मं ग, रे सा' ऐसा टुकड़ा जोड़ना पड़ेगा।

प्रश्न—कदाचित् इस अङ्ग में अवरोह करते हुये कहीं-कहीं थोड़ा धैवत का स्पर्श किया हुआ अच्छा दीखेगा 'सां नि प, मं धु मं ग रे, प ग, मं ग, रे सा, सा ग, मं धु रें सां' ऐसा ठीक नहीं होगा क्या?

उत्तर—मैं इसे बुरा नहीं कहता। रंजक, नियमित तथा सुसमंजस प्रकार हो तो वह दोषी नहीं हो सकता, ऐसा मेरा मत है। हम लक्ष्यसङ्गीतकार के मत से चलने वाले हैं, और वह ऐसा है—

पूर्वीमेले समादिष्टा मालवी रागिणी बुधैः।
आरोहे स्यान्निदौर्बल्यं प्रतिलोमे तु धस्य तत्॥
श्रीरागांगा यतो गेया वैचित्र्यं रिस्वरे स्फुटम्।
गानमस्या भवेत्सायं सर्वरक्तिप्रदायकम्॥
संधिप्रकाशगेयेषु संगतौ मधुरौ गपौ।
रागेऽत्रापि संप्रयुक्तौ गायकैस्तौ सपाटवम्॥

इस श्लोक में कहे हुये विषय अब तुमको मालूम ही हैं। चतुर पंडित अर्वाचीन सङ्गीत परिवर्तन का तिरस्कार करने वाला नहीं था। आगे कहता है—

अपूर्वं रूपकं त्वेतल्लक्ष्यज्ञैरनुशासितम्।
रक्तिदं संमतं यस्माद्ग्राह्यमेव मनीषिणाम्॥
ग्रन्थवाक्योल्लंघनेऽपि ये रागाः स्युर्जनप्रियाः।
मन्ये तेषामुपांगत्वं देश्यां नैवातिबाधकम्॥
अथवा मार्गमेनं हि समालंब्य पुरातनैः।
समुन्नीतं तदाचार्यैः संगीतमिति भाति मे॥

इस पण्डित का मत प्रमाणिक और उदार होता है यह मैं तुमसे कहता ही आया हूँ। दूसरा एक परिवर्तन मैं तुमको बताता आया हूँ वह यह है—

पूर्वी गौरी मालवी च ललिताव्हा पराजिका ।
वसंती रेवगुप्तिश्च शास्त्रे भैरवमेलजाः ॥
तथाप्येतेषु रूपेषु सर्वेषु लक्ष्यतेऽधुना ।
तीव्रमस्य प्रयोगस्तद्विचार्यं मर्मवेदिभिः ॥

प्रश्न—वह हमारे ध्यान में अच्छी तरह से है । मालवी भैरव थाट में बताई गई है, तो उसमें तीव्र मध्यम के आने पर कुछ भी आश्चर्य नहीं प्रतीत होता ?

उत्तर—ठीक है । अब हम यह देखेंगे कि मालवी कौन-कौन से ग्रन्थकारों ने किस किस प्रकार से वर्णन की है। मैंने तुमसे कहा ही है "टक्क" राग का थाट बहुमत से "भैरव" माना जाता है । शाङ्गदेव पण्डित कहता है—

धैवत्या मध्यमायाश्च संभूतष्टक्ककैशिकः ।
धैवतांशग्रहन्यासः काकल्यंतरराजितः ॥
सारोही सप्रसन्नादिरुत्तरायतयाऽन्वितः ॥
× × × × ×
मालवा तस्य भाषा स्याद्ग्रहांशन्यासधैवता ।
षड्जधौ सङ्गतौ तत्र स्यातामृषभपंचमौ ॥

शाङ्गदेव ने टक्क की भार्या २१ कही हैं, उनमें "मालवी" भी एक है। उस मालवी का लक्षण रत्नाकर में नहीं है, परन्तु कल्लिनाथ ने मतङ्ग मत से उसे दिया है, जैसे—

पधमिश्रा तदंतांशा मालवी टक्कसंभवा ।
रिहीना तारगांधारषड्जमध्यमकंपिता ॥

सङ्गीतसारामृते:—

मेलान्मालवगौलीयाट्टक्कभाषा तु मालवी ।
गधवर्ज्यौडुवा सायंगेया षड्जग्रहांशिका ॥

यहाँ मालवी का थाट भैरव कहा है। ग ध वर्ज्य (निदान आरोह में) करने से थोड़ा बहुत श्री और गौरी का स्वरूप निकट आयेगा । इसे सायंगेय कहा है, वह भी ठीक है। आजकल अपने प्रचार में ग ध वर्जित नहीं होते, यह तुम देख ही चुके हो।

सङ्गीतदर्पणे:—

औडवा मालवी ज्ञेया नित्रया रिपवर्जिता ।
रजनी मूर्छना चात्र काकलीस्वरमंडिता ॥

स्वकांतसंचुम्बितवक्त्रपद्मा
शुकद्युतिः कुन्डलिनी प्रमत्ता ।
संकेतशालां विशती प्रदोषे
मालाधरा मालविकेयमुक्ता ॥
नि सा ग म ध नि । मूर्छना ।

कल्पद्रुमे:—

पीनस्तनी शुभ्रविलासवेषा
नितंबबिंबप्रतिबद्धकांची ।
मुखारविंदा सुरगीतरम्या
नृत्यानुगा मालविका प्रवीणा ॥
धैवतांशग्रहन्यासा क्वचित् पंचमवर्जिता ॥
संध्याकाले सुष्टुतरा गीयते रागिणी त्विमा ॥

ध नि सा रे ग म नि ध ग म सा रे नि ध । ध म ग रे ग म ग रे सा नि ध ध म ग प सा नि रे ध प ग ।

अहोबल कहता है:—

रिधौ तु कोमलौ यत्र गनी तीव्रौ च मालवे ।
षड्जावरोहणोद्ग्राहे सरिन्यासांशशोभिते ॥

यह "मालव" राग का लक्षण है, मालवी का नहीं। मालव और मालवी को अहोबल क्या एक ही समझता था इसे कौन जाने। कदाचित् ऐसा हो क्यों कि "चत्वारिंशच्छतरागनिरूपणम्" ग्रन्थ में "मालव" श्रीराग का एक पुत्र माना गया है, जैसे—

शुद्धगौडश्च कर्णाटो मालवः पूर्विकः क्रमात् ।
एते चत्वारः श्रीरागकुमाराः परिकीर्तिताः ॥

प्र०—शुद्ध गौड का थाट क्या है ?

उत्तर—वह राग सोमनाथ ने ऐसा वर्णन किया है:—

'न्यल्पः प्रदोपशाली शुचिगौडः पांशसादिसन्यासः ॥' मालवगौडमेले ॥ तुमको यही थाट चाहिये था, ठीक है न? परन्तु सोमनाथ का श्रीराग काफ़ी थाट का है, यह ध्यान में रखना चाहिये। निरूपणकार ने "मालवी" नाम की एक रागिणी भी कही है। वह "हंसक" राग के पुत्र "नागध्वनि" की भार्या उसने बताई है।

प्र०—हंसक की और कौनसी पुत्र वधू उसने कही हैं?

उ०—वह ऐसी हैं—१ मालवी, २–श्यामकल्याणी, ३–देशाची, ४–बिलहरी।

प्र०—यह सब तीव्र रे ध लगने वाले राग तो नहीं होंगे?

उ०—दक्षिण की ओर इन्हें ऐसा ही मानते हैं।

प्र०—उधर के ग्रन्थों में मालवी कौन से थाट में रक्खी गई है?

उ०—सारामृत मत तो मैंने कहा ही है। कुछ ग्रन्थों में कांभोजी थाट में वह रक्खी गई है, सो अपना खमाज थाट होगा ऐसा मैं समझता हूं। चतुर पंडित की भी एक अच्छी युक्ति है, वह ऐसी है—

ग्रंथेषु केषुचित्तत्र कांभोजीमेलगा मता।
अतिवक्रस्वरूपाऽपि मालवी रागिणी ध्रुवम् ॥
मालवो भैरवोत्थोऽसौ तथा मालवगौडकः।
मालवीरूपभिन्नत्वाद्भिन्नावेव सतां मते ॥
मालवी टक्कभाषा या शास्त्रेषु परिकीर्तिता।
तस्या एव भवेदेतत्कदाचित् परिवर्तनम् ॥

ऐसी युक्ति बता कर पूर्वी थाट के रागों में दिखाई देने वाले दो प्रसिद्ध अङ्गों को उसने इस प्रकार सूचित किया है—

"श्रीरागांगाश्च पूर्व्यङ्गा रागाः सायं विशेषतः।
रिपसंवादयुक्ताद्या गनिसंवादजांतिमाः ॥"

वह भाग मैंने तुमको पहिले ही कह दिया है। कुछ लोग "मालवी" को हिन्दुस्थानी मारवा समझते हैं। संस्कृत ग्रन्थों में मालव, मालवा, मालवी, मारवी, मालवगौड, वगैरह नामों को देख कर जिसे जो चाहिये उसे वह पसंद करता होगा। अपने सङ्गीतसारकर्त्ता "मालवी" को "मारवा" समझते थे।

प्र०—वह किस आधार से?

उ०—उनके लिये भला कैसा आधार? वे कहते हैं, देखो—"शिवजी ने ईशान मुख सों (क्यों कि श्रीराग उसी मुख से निकला) गाइकें श्रीराग की छायायुक्ति देखी,

श्रीराग को (भार्या) दीनी। गौर सचिक्कन जाकी कांति है। कानन में कुण्डल पेहेरे है। और मानी है। तरुण स्त्री जाके मुख को चुम्बन करे है। कंठ में माला पेहेरे है।

प्र०—ठहरिये, ठहरिये, ये दर्पण के श्लोक का भाषान्तर है न ?

उत्तर—हाँ, वही है। आगे स्वरों का "जंत्र" है, वह अपने हिन्दुस्थानी मारवा का है। उसमें "धैवत" मात्र उत्तम कहा है, यानी कोमल से थोड़ा ऊपर और तीव्र से थोड़ा नीचे होगा ! इस ग्रन्थ में ४२ विकृत कह कर उनमें से "अन्तर ध" एक दो रागों में ग्रन्थकार ने बताया भी है, यह देखकर उसके विषय में किसको आदर उत्पन्न नहीं होगा ? उसका "जंत्र" मारवा का होने से हमको वह अभी नहीं चाहिये। पुण्डरीक ने अपने रागमाला में "मारवी" और "मालव" ऐसे दो भिन्न राग कहे हैं, वह भी विचार करने योग्य हैं। उनमें से "मारवी" को ही कोई "मालवी" समझते हैं। हिन्दुस्थानी मारवा में पंचम वर्ज्य होता है। पुण्डरीक का मालव "रिपपरिरहितः" कहा है, यह भी ध्यान में रखने योग्य है।

प्रश्न—और उसकी "मारवी" कैसी है ?

उत्तर—वह ऐसी है—

चंद्रास्या दीर्घकेशी त्वनलगतिनिगा सत्रिकास्ता रिधाभ्यां ।
हेमाभा दीर्घरूपा बहुविधकुसुमैर्भूषिता स्निग्धनेत्रा ॥
मेवाडस्याग्रजाता मृगशिशुनयना रक्तवस्त्रं दधाना
चेपद्धास्या स्तुवंती युधि नृपतिगणान् मारवी सा सदैव ॥

सारामृत में कहे हुये प्रकार में गांधार और धैवत वर्जित होते हैं और वह टक्क राग की एक भार्या मानी गई है, ऐसी हमें याद है। पुण्डरीक ने टक्क का वर्णन ऐसा किया है—

"नृत्यासक्तः सहिष्णुर्नयनगतिगनिःसादिमध्यांत पूर्णः"

पर उसके विषय में और एक बार बोलना ही होगा। पुण्डरीक के लक्षण में "मेवाड़" यह नाम आया है। प्रचार में "मेवाड़" और "माड़" ये अति निकट के प्रकार समझे जाते हैं, ऐसा शायद मैंने कहा था। राग विबोधकार मेवाड़ को श्रीराग के थाट में मानता है, पर उसे रहने दो। क्षेत्रमोहन स्वामी अपने 'संगीतसार' में मालवा और मारवा इन दोनों को एक ही समझ कर पंचम स्वर का त्याग करने का उपदेश देते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि प्रचलित मारवा का लक्षण वे मालव से लगाते होंगे। संगीतसारादिक ग्रन्थों का मत मैं देखता रहता हूँ, उसका कारण इतना ही है कि पूरब की ओर का प्रचार भी तुम्हारी समझ में आवे, एवं उस ग्रंथ में संस्कृत ग्रंथों का किस तरह आधार ग्रहण करने का प्रयत्न किया गया है यह भी तुम समझजाओ। अपनी ओर के लेखक संस्कृत ग्रंथों के बारे में नहीं लिखते तो फिर उनके मत की आलोचना करने का कुछ प्रयोजन नहीं। कल्पद्रुम और नादविनोद ये ग्रन्थ तो संस्कृत ग्रन्थों के अभिमानी हैं, इसलिये इनके विषय में बोलना आवश्यक है। क्षेत्रमोहन स्वामी अपने "मालव" राग के लिये संगीत नारायण

का आधार लेते हैं, क्योंकि उस ग्रन्थ में मालव की जाति "षाड्व" कही है। सोमेश्वर मालव सम्पूर्ण मानता है, यह भी उसने प्रमाणिक तौर से कहा है, परन्तु उस ग्रन्थ में मालव का थाट कौनसा कहा है, यह उन्होंने नहीं बताया।

प्रश्न—संगीतसार में मालव का धैवत कौनसा कहा है? और उसे वे कहाँ से लाये?

उत्तर—धैवत वे तीव्र ही लगाते हैं, वह उन्होंने प्राप्त कैसे किया? यह किस तरह बताया जाय? पर ठहरो! "मालवी नामक एक प्रकार उन्होंने संगीतसार में कहा है। उसका थाट वे मारवा ही मानते हैं, कोई मालवी को सम्पूर्ण प्रकार माने तो हम समझ लें कि उसका रूप संधिप्रकाश है। अब यही हमको देखना है।

प्रश्न—संगीतसार में "मालवी" कैसी दिखाई है?

उत्तर—वहाँ दिया हुआ रूप इस तरह का है—ध़ सा ध़ सा, ग ग रे॒, प ग रे॒ सा, नि़ सा नि़ रे॒ सा, नि़ सा ग ग मं प मं प, ध मं ग, सा ग रे॒, प ग रे॒ ग रे॒ सा॥ ग मं प, मं ध सां, सां, नि सां, नि रें॒ सां, मं प, मं ध, सां नि सां रें॒ नि ध, नि ध प, ग ग मं ध सां, सां नि सां, रें॒ नि ध, प, मं प मं प ध मं ग, सा ग रे॒ प, ग रे॒ सा रे॒ सा॥ इस प्रकार के निकटवर्ती राग अभी तुम जानते नहीं। इस वास्ते इस स्वरूप के विषय में अधिक बोलने की आवश्यकता नहीं है। तुम अपने यहाँ के प्रचार पर ही चलो तो ठीक होगा। प्रचलित मत के समर्थक चतुर पंडित का मत तो तुम देख ही गये हो। और दो तीन यह आधार लक्ष्य में रहने दोः—

कल्पद्रुमांकुरे

पूर्वीसंस्थानजन्याऽखिलविबुधमता मालवी रागिणीयं
प्रारोहे निर्निषादा भवति विकलिता धैवतेनावरोहे॥
वादी यत्रर्षभः संप्रविलसति तथा पंचमोऽमात्य इष्टः
संगत्या गस्य पस्याप्यतिरुचिरतरा गीयते सायमेव॥

चंद्रिकायाम्

पूर्वीमेलसमुत्पन्ना आरोहे निविवर्जिता।
रिपसंवादसंपन्ना मालवी सायमीरिता॥

चंद्रिकासार

कोमल धरि तीवर निगम रोहनमें नी नाहिं।
रिप वादीसंवादितें कहत मालवी ताहिं॥

यह नियम एकबार कंठस्थ हो जाय तो कुशल गायक को इससे बड़ी सहायता मिलती है। पूर्वी थाट का नाम लेते ही उसके रागों के दो अङ्ग गवैया की आँखों के सामने खड़े हो जाते हैं। फिर वर्ज्यावर्ज्य नियम देखते ही संगति ध्यान में आती है और कौनसे राग निकट आते हैं, यह भी दीखने लगता है। उदाहरणार्थ "सां, नि प" यह टुकड़ा शंकरा, बिहाग, मालश्री, इत्यादि रागों में भी आता है, ऐसी उसको याद

रहती है, तो उनमें से किस राग की छाया रहने दी जाय ? इस पर वह फिर विचार कर सकता है। मालश्री संध्याकाल का प्रकार है, कोई कहते हैं उसे पूर्वी थाट में रे ध वर्जित करके गाया जाय। यह मत गायक के मस्तिष्क में होंगे तो उसको कुछ और ही विचार धारा प्राप्त होगी। मालश्री की "प ग" संगति "नि प" स्वर लगाने का ढंग वगैरह, ऐसी बातें भी मालवी में सहायक हो सकती हैं क्या ? यह भी उसको दिखाई देगा। मालवी में "सा रे॒ ग म॑ प" ये पाँच स्वर उसकी काफी मदद कर सकेंगे।

प्रश्न—उसमें से अनेक समुदाय किये जा सकते हैं, ठीक है न ?

उत्तर—स्पष्ट है, उसके बीच-बीच में "प ग" संगति "म॑ ध॒ सां" "नि म॑" संगति तथा 'नि प, ग, प ग, रे॒ सा' ऐसा चमकता हुआ टुकड़ा योग्य रीति से लगाया जाय तो बिलकुल स्वतंत्र और विचित्र यह मालवी रूप उत्पन्न होगा। कोई मालवी का नियम सँभालकर पूर्वी अङ्ग से उसे गाये तो उससे भी हम झगड़ेंगे नहीं, वह गांधार को रिषभ की अपेक्षा अधिक आगे लायेगा। जैसे—"सा रे॒ ग, रे॒ ग, म॑ ग, सा रे॒ ग म॑ ग, म॑ ग, म॑ ध॒ सां, सां नि प, ग, म॑ ध॒ रें॒ सां, नि प ग, प ग रे॒ सा, सा ग" इस तरह से वह थोड़ा बहुत चलेगा, कहो न ? हम 'सा, रे॒ रे॒ सा, ग, म॑ ग, रे॒, सा, रे॒ प, म॑ ध॒ सां, नि प, ग प, ग, रे॒ सा, सा ग, म॑ ध॒ रें॒ सां, नि प ग, म॑ ग, रे॒ सा' ऐसा चाहें तो कर सकते हैं। 'सा रे॒ ग म॑ प' इन पाँच स्वरों से निकलने वाली अनेक तानें तो दोनों अङ्गों में साधारण होंगी, और वे आश्रय राग के भाग होंगे।

प्रश्न—यह आ गये समझ में। अब हमको इस राग में एकाध दूसरी "सरगम" कह दें तो उसी ढङ्ग से हम उसे बहुत अच्छी तरह गा सकेंगे।

उत्तर—कहता हूँ, लो—

मालवी—एकताल

सां	नि	।	प	म॑	।	ग	रे॒	।	प	म॑	।	ग	रे॒	।	सा	ऽ	।
सा	रे॒	।	सा	ऽ	।	ग	म॑	।	प	म॑	।	ग	रे॒	।	सा	ऽ	।
रे॒	रे॒	।	ग	रे॒	।	ग	म॑	।	प	प	।	म॑	ध॒	।	सां	ऽ	।
सां	रें॒	।	सां	नि	।	प	म॑	।	ग	रे॒	।	ग	रे॒	।	सा	ऽ	।

अन्तरा—

प	प	।	ग	ग	।	म॑	ध॒	।	सां	ऽ	।	रें॒	रें॒	।	सां	ऽ	।
रें॒	रें॒	।	गं	रें॒	।	सां	ऽ	।	सां	सां	।	रें॒	नि	।	प	प	।
प	म॑	।	ग	रे॒	।	ग	प	।	रें॒	रें॒	।	सां	ऽ	।	रें॒	सां	।
सां	नि	।	प	प	।	ग	रे॒	।	ग	प	।	ग	रे॒	।	सा	ऽ	॥

मालवी—झंपाताल

सां	नि	।	प	म॑	ग	।	प	ग	।	रे॒	रे॒	सा
सा	रे॒	।	सा	ग	म॑	।	प	म॑	।	ग	रे॒	सा
सा	सा	।	ग	म॑	ध॒	।	सां	ऽ	।	सां	रें॒	सां
सां	नि	।	प	ग	प	।	ग	ग	।	रे॒	रे॒	सा

अन्तरा—

ग	ग	।	मं	मं	ध	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
रें	रें	।	गं	गं	मं	।	गं	गं	।	रें	रें	सां
सां	सां	।	रें	रें	सां	।	नि	प	।	ग	ग	प
सां	नि	।	प	ग	प	।	ग	रे	।	ग	रे	सा

"मालवी" राग का साधारण 'चलन' ध्यान में रखने के लिये यह स्वरविस्तार उपयोगी होगा।

पग, रे, रे, सा, सारेसा, ग, मंग, रेग, मंध, रें, सां, सां, निप, ग, गमंग, रेसा, सारेसा। रेरेसा, रेरेगरेसा, पपगरेगमंगरे, सा, सारेग, मंग, मंधसां, रेंगंरेंसां, रेंसां, सांनिप, मंधरेंसां, निप, ग, पग, रेसा, सारेसा। सासागरेसा, रेग, पग, निपग, रेग, रेंसांनिपग, रेग, मंग, मंप, मंग, पगरेसा, साग, मंध, रेंसांनिपमंग, रेगमंप, मंग, रे, रे, सा। गग, मंग, रेसा, पमंग, पग, रे, सा, सारेसा, रेगरे, मंगरे, पमंगरे, रेसा, साग, मंधसां, सांनिप, मंग, रेग, पग, रे, सा। सारेसा।

पर तनिक ठहरो तो; अनूपसङ्गीतरत्नाकर में भावभट्ट पंडित ने 'मालवी' कैसी कही है, यह कहने को रह गया, वह कहता है:—

सत्रिका निविहीना वा सायं मालविकेरिता।

उदाहरण—सा ध प सा ग रे ग रे सा, सा रे ग रे ग रे सा, सा रे ग म सा, सा रे ग म प ग रे सा। सा रे ग म प ध प म ग रे सा। सा रे ग म प ध प म ग रे म ग रे ग रे सा। विकल्पेन। सा रे ग म प। ध नि सा। सा नि ध प म ग रे सा। सा नि ध प सा प म ग रे सा। × इत्यालापः।

प्र०—पर, मालवी का थाट कौनसा ?

उ०—उसका खुलासा करने को वे शायद भूल गए, ऐसा दीखता है। अब इसका क्या इलाज ? अपने को अनुकूल हो वैसा अर्थ लगा लो।

प्र०—यह राग तो हम समझ गए, अच्छा अब अगला लीजिये।

——

राग त्रिवेणी

उ०—अब हम 'त्रिवेणी' राग पर विचार करते हैं। यह राग हमें अनेक संस्कृत ग्रन्थों में दिखाई पड़ता है। किसी जगह 'त्रवणा' यह नाम मिलता है। इस राग का विचार करते समय हमें एक महत्वपूर्ण बात की ओर ध्यान रखना चाहिये, वह यह कि अपने ग्रन्थकार इस राग को सन्धिप्रकाश रूप देते हैं या कुछ और? त्रिवेणी राग यद्यपि अप्रसिद्ध रागों में नहीं गिना जाता, तथापि वह बार-बार अपने कानों में पड़ेगा यह भी नहीं कहा जा सकता। यह ठीक है कि ऊँचे घराने के गायक इसे अच्छा गाते हैं। वे इसे 'तिरवन' कहते हैं, जो 'त्रिवेणी' का अपभ्रंश समझा जायगा। यह प्रचलित नाम भी ध्यान में रखना होगा। त्रिवेणी के समान दीखने वाला दूसरा राग पूछा जाय तो वह 'टंकी' कहा जा सकता है, उसे मैं आगे बताऊँगा ही।

प्र०—यह राग किस बात में एक दूसरे के पास हैं?

उ०—बताता हूँ। प्रचार में अपने अनेक गायक इन दोनों रागों को मध्यम वर्जित षाडव राग मानते हैं। इसलिये थोड़ी अड़चन उत्पन्न होती है।

प्र०—ऐसा करने का वे क्या आधार दिखाते हैं?

उ०—आधार वे क्या दिखायेंगे। उनके प्रचार का आधार हम लोगों को ही देखना पड़ेगा। अहोबल पण्डित त्रिवेणी के लक्षण में 'मस्वरोज्झिता' ऐसा स्पष्ट कहता है। जैसे—

> गौरीमेलसमुत्पन्ना त्रिवेणी मस्वरोज्झिता।
> अवरोहणवेलायां षड्जोद्ग्राहांशरिस्वरा ॥

परन्तु अपने आधार में उसने मध्यम स्वर आरोहावरोह में खुशी से लगाया है और ऐसा करने का कारण बताया नहीं। मैंने त्रिवेणी सम्पूर्ण और षाडव दोनों तरह की गाते हुए सुना है। सम्पूर्ण प्रकार में मध्यम थोड़ा सा अवरोह में लगाते हुए देखा है, वह भी तीव्र।

प्र०—तीव्र ठीक है, क्योंकि यह राग सायंगेय है न?

उ०—हां यह राग संध्याकाल का ही है। मेरे गुरु को अहोबल का मत पसन्द था। उन्होंने मध्यम वर्जित त्रिवेणी मुझे गाकर भी दिखाया था।

प्र०—लक्ष्यसङ्गीतकार का मत कैसा है?

उ०—उसे भी मध्यम वर्ज्य करना पसन्द आया, क्योंकि उसके त्रिवेणी का लक्षण ऐसा है:—

> पूर्वीमेलसमुद्भूता त्रिवेणी लक्ष्यसंमता ।
> आरोहे चावरोहेऽपि मध्यमो वर्जितस्वरः ॥

तथापि प्रचार में कुछ गायक त्रिवेणी सम्पूर्ण गाते हैं, ऐसी उसकी जानकारी थी। क्योंकि वह कहता है:--

संपूर्णा रिग्रहांशाऽसौ सन्यासापि मता क्वचित्।
मदुर्बला हि लक्ष्ये स्यात्सर्वलोकप्रिया भृशम्॥

'मदुर्बला' यह शब्द उसने विशेष रूप से डाला है। इसकी सहायता से अवरोह में थोड़ा सा मध्यम का स्पर्श क्षम्य हो सकता है, यह तुम्हारे ध्यान में आयेगा ही।

प्र०--त्रिवेणी में वादी कौनसा है?

उ०--त्रिवेणी में थोड़ी बहुत श्रीराग की छाया आने दी जाय, ऐसा बहुमत है। इसलिये उसमें रे प स्वरों की जोड़ी प्रबल रहेगी, यह सहज में ही समझा जा सकता है। अतः हम लोग चतुर पण्डित का अनुसरण कर वादित्व रिषभ स्वर को ही दें, तो ठीक होगा। चतुर कहता है:--

श्रीरागांगा यतोऽभीष्टा लक्ष्यज्ञानां च सांप्रतम्।
वादित्वं रिस्वरस्यैव सुग्राह्यमिति भाति मे॥

पंचम को हम सम्वादी मानते हैं। त्रिवेणी में मध्यम वर्ज्य होने से गांधार और पंचम इनकी सङ्गति होगी ही और वह शोभा भी देती है।

प्र०--त्रिवेणी के समान दिखाई देने वाला 'टंकी' नामक राग है, ऐसा पीछे आपने कहा है। तो वह राग इससे अलग कैसे होगा? यह भी कहेंगे क्या?

उ०--उसे संक्षिप्त रूप से कहूंगा, क्योंकि 'टंकी' का सविस्तार वर्णन मैं फिर कहने वाला ही हूं। टंकी और त्रिवेणी ये दोनों राग पूर्वी थाट के हैं, यह तो निश्चित ही है। अब इनमें फर्क दिखाना है तो वर्ज्यावर्ज्य स्वरों में अथवा वादी-सम्वादी स्वरों में दिखाना होगा।

प्र०--वह स्पष्ट है। इन दो रागों में से एक में मध्यम लगाया जाय और दूसरे में उसे वर्जित किया जाय। किन्तु यह अड़चन चतुर पण्डित ने भी तो देखी होगी, वह उसका उपाय क्या बताता है?

उ०--मैं समझता हूँ कि उसका सविस्तार विधान तुम्हारे आगे मैं रखदूँ। उसमें से जितना तुमको ग्राह्य मालूम पड़े, उतना ले लो। वह कहता है:--

मालवी त्रिवणी गौरी पूर्वी टंकी तथैव च।
मता एता बुधैः पंच श्रीरागस्य वरांगनाः॥
पंचमो यत्र वादी स्यात् संवादी षड्जको भवेत्।
श्र्यंगसंभूषितत्वात्तु रिषभोऽमात्यको भवेत्॥

इसे सुनकर चौंकना नहीं। मैंने यह श्लोक उसके 'टंकी' राग के वर्णन से लिया है।

प्र०—हां, तब तो ठीक है। उनका कहना है कि पंचम वादी हो तो षड्ज सम्वादी होगा; परन्तु टंकी राग में श्रीराग का अङ्ग होने से सम्वादित्व रिषभ को देना अच्छा है, यही न?

उ०—हां, यह तुमने ठीक समझा। चतुर पन्डित ने भी ऐसा सूचित किया है कि त्रिवेणी में वादी रिषभ मानकर और टंकी में वादी पंचम मानकर राग भेद हो सकता है। आगे वह दो एक मतभेद कहता है:—

महीनामथवा पूर्णां केचिदन्ये विदो विदुः।

"म हीन" मानने से वह त्रिवेणी से मिल जायगा, अतः आगे कहता है—

त्रिवेण्यामृषभो वादी ह्यतः स्यात्तद्भिदा स्फुटा।
वादिभेदाद्रागभेद इति लक्ष्यविदां मतम्।
सर्वत्रैव सुप्रसिद्धं महद्वैचित्र्यकारकम्॥

तथापि एक अड़चन उसको मालूम पड़ी और वह यह कि प्रचार में गायक टंकी में मध्यम लगाने से नाराज़ होते हैं।

प्रश्न—फिर?

उत्तर—तब वह कहता है कि त्रिवेणी में थोड़ा सा मध्यम स्वीकार करने वाले लोगों के समान हम भी चाहें तो कर सकते हैं। यथा:—

तथापि स्पृश्यते लोके त्रिवेण्यां मध्यमो मनाक्।
विलोमे रागभेदार्थं भात्येतद्युक्तिसंगतम्॥

मैं भी तुमसे यही कहूंगा। चतुर पण्डित ने अपना मत स्पष्ट कहा है, वह प्रमाणिक होने से ग्राह्य हो तो बहुत ही अच्छा।

प्रश्न—टंकी को सम्पूर्ण मानने वाला आधार मिल सकता है, क्या?

उत्तर—हां, वह तो मिल भी सकता है। किन्तु टंकी में समूल मध्यम वर्जित करने का आधार मिलने में कठिनाई पड़ेगी। अब हम टंकी के विषय में आगे देखेंगे। त्रिवेणी में 'ग प' सङ्गति मधुर है, यह चतुर पंडित ने भी कहा है; यथा:—

संगतिर्गपयोः सिद्धा मध्यमस्य विवर्जनात्।
अवरोहेण वर्णेन कुर्यान्मानसरंजनम्॥

यह सङ्गति "प ग, रे॒ सा" ऐसे स्वर समुदाय में बहुत ही मधुर लगती है। 'धु, प, ग प, ग, रे॒ सा,' यह टुकड़ा प्रातःकालीन राग का आभास उत्पन्न करेगा।

प्रश्न—तो यहां तत्काल विभास दिखाई देगा, ठीक है न?

उत्तर—हां, तुमने ठीक पहिचाना। खैर, अब त्रिवेणी के प्रत्यक्ष स्वरूप के विषय में देखता हूं। वहां श्रीराग की छाया तो आनी चाहिए, ऐसा बहुमत है यह मैंने कहा ही था। इस दृष्टि से तुमको छोटी-छोटी तान लेने के लिये किसी ने कहा तो कैसे करोगे? बताओ तो?

प्रश्न—मैं ऐसे करूंगा—"सा, रे रे सा, ग रे सा, सा, रे सा, ग प ग रे सा, प मं ग रे, ग रे, सा; सा रे, सा, रे, प प, ग प ग रे, रे, सा; प प ध प ग रे, ग प ग रे, सा रे सा" ऐसा चल सकता है क्या?

उत्तर—इसमें कोई हानि नहीं दीखती। एक जगह जो थोड़ा सा मध्यम तुमने दिखलाया है, वह चतुर पण्डित की व्याख्या में से लिया मालूम पड़ता है।

प्रश्न—हां, त्रिवेणी में रिषभ को वादी कर के चाहे जितनी तानें हम लगा सकते हैं। आरोह में गांधार दिखाते ही श्रीराग दूर होगा, ठीक है न? आपने मध्यम वर्ज्य करने को कहा था, अतः वैसा ही करूँगा, नहीं तो एकाध स्थान पर उसे थोड़ा सा राग भेद के लिये रहने दूंगा।

उत्तर—मैं तुम्हारी रुचि में रुकावट नहीं डालूंगा। तुम अपना राग जितनी उत्तमता से गासको, गाओ। किन्तु जो कुछ करो यदि उसका समर्थन भी कर सको, तो मुझे संतोष होगा। गाते समय अनेक प्रकार की अड़चनें कैसे उत्पन्न होती हैं, यह अब तुम जानने लगे हो। नियमानुसार गाने में ही सब महत्व है, और कुछ नहीं। दूसरे किसी गायक ने अपना त्रिवेणी राग भिन्न तरह से गाया तब वह अपने राग में कौनसा रिषभ पालन करता है, यह भी देखते रहो। यदि उसका प्रकार भी तुमको ग्राह्य मालूम पड़े तो उसका भी संग्रह कर लो। इस युक्ति से तुम्हारे पास एक की बजाय दो हो जायंगे। कोई-कोई गायक त्रिवेणी में तीव्र धैवत लगाकर उसे टंकी से भी अलग करने का उपदेश देता है, परन्तु हम उसका यह मत स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसे मतभेद की बाबत चतुर पण्डित कहता है:—

अन्ये तां मारवामेले पंचमांशां ब्रुवंति ते।
सायंगेयां विकल्पेन बुधः कुर्याद्यथोचितम् ॥

प्रश्न—इसकी यह सरल वृत्ति हमें भी पसन्द है। ऐसी बातों में चतुर पण्डित दुराग्रह नहीं करता, इसलिये उससे किसी का झगड़ा भी नहीं हो सकता।

उत्तर—हां यह भी ठीक है, अस्तु! त्रिवेणी सम्बन्धी यह तीव्र धैवत का मतभेद ध्यान में रक्खो तो ठीक रहेगा।

प्रश्न—त्रिवेणी राग हम कहां से व कैसे शुरू करें?

उत्तर—त्रिवेणी का प्रारम्भ कोई रिषभ से करते हैं और कोई पंचम से। उसमें श्रीराग का अङ्ग आजाने के कारण ऐसा करना उचित ही है। इस राग में पंचम की अपेक्षा रिषभ की ओर अधिक लक्ष्य रखना होगा, ऐसा गुणीजन कहते हैं। अब श्रीराग के अङ्ग की कुछ तानें गाओ तो देखूं।

प्रश्न--उन्हें हम ऐसे गायेंगे "सा, रे रे, सा, रे सा, रे ग रे सा, प ग रे सा, नि सा, रे सा, नि ध प, नि सा, रे, प, प, ध प, ग रे, प ग रे सा," ठीक है न?

उत्तर--ठीक है! अब आरोह में हम कहीं-कहीं गांधार दिखावें. आओ चलो, "रे रे सा, नि रे सा, रे ग रे, प ग रे सा, ग प, प ध प, ग रे, ग प ग रे, रे सा; नि सा, रे रे सा, रे नि ध प, प ध नि सा, रे, ग रे, प ग रे, सा"। मन्द्र स्थान में बहुत नीचे जाने की जरूरत नहीं है। निषाद जगह व जगह सुन्दर व स्पष्ट दिखावो तो रेवा राग का भास श्रोताओं को न होगा।

प्रश्न--यह हमारे ध्यान में है। इसे हमने एक दो जगह लगाया भी था।

उत्तर--हां, वह मैंने देखा। रिषभ और पंचम अच्छी तरह चमकने दो। यदि श्री राग अधिक आने लगे तो "ग प ग, रे सा, सा रे सा, ग प, प, रे ग, प ग, रे सा" ऐसा टुकड़ा मिलाते जावो। उत्तरांग में "नि, रें नि ध प, नि ध प, सां नि ध प," यह तान सरल है ही, यहां श्रीराग दीखने लगे तो, "ध नि ध प, प ग, नि ध रें नि ध प, ध, नि सां नि ध प, ग, प ग, रे, प ग, रे, सा" यह विस्तार आगे लाकर रख दो तो राग भिन्नता स्पष्ट होगी। अभ्यास बड़ी विचित्र चीज है। रियाज करते-करते, मधुर और कर्णकटु की सूचना अपने कान स्वयं दे देते हैं। अपनी दौड़ जहाँ तक जासके कोशिश करो। सुन्दर रचना करने में हमको बिलकुल श्रम नहीं पड़ता। तीन चार सम्बद्ध स्वर कान में पड़े कि धड़ाधड़ अनेक प्रकार के रागांग उस जगह अपने सामने खड़े रहते हैं। उनमें से किसको कहाँ रक्खें, यह अपने आपको तत्काल मालूम पड़ने लगता है। वहाँ किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। त्रिवेणी में 'सा रे ग प ध नि सां' ये स्वर हैं। इस लम्बे टुकड़े के छोटे टुकड़े 'सा रे ग प' और 'ध नि सां' ये सहज ही होंगे, सही है न? अब पहले टुकड़े से ये तानें सहज ही मालूम पड़ेंगीः—

"नि सा, रे, सा, सा रे सा, ग रे, सा, नि रे ग रे, सा, प ग रे सा, रे ग, रे ग प, ग, नि रे सा, रे प, प, ग, प, रे, प, ग रे, ग रे, सा; नि रे ग प ग रे, प ग रे, रे ग रे, ग रे, सा, रे, रे, सा नि रे सा, रे, रे, प ग रे सा, रे प प, ग रे, प, रे ग, रे, सा"

प्रश्न—बस, बस। ये सब हम बहुत शीघ्र तैयार कर सकेंगे। किसी ने पूर्वी के अंग की तान लेने को कहा, तो 'नि सा रे ग, रे ग, प ग, रे ग प, प, ग, नि रे ग प ग, रे ग, रे सा' ऐसा हम करने लगेंगे। उत्तराङ्ग का टुकड़ा 'ध नि सां' है। इसमें तार स्थान का रिषभ जोड़ने से इसकी भी तानें तैयार हो सकती हैं।

उत्तर—ठीक समझे। इसी लिये तो मैंने कहा कि अभ्यास कुछ विलक्षण चीज है। ऐसा ही अपने गायक लोग भी कहते हैं। अब तुम अधिक मार्मिक होने लगे हो, यह देख हमें सन्तोष होता है। अभ्यास से सङ्गीत में मन इतना लीन अथवा तन्मय हो जाता है कि कभी-कभी उसको अन्य किसी भी विषय की ओर ले आना दुःसाध्य होता है,

किन्तु तुम अपना कर्त्तव्य एक तरफ रख कर रात दिन सङ्गीत के ही आधीन हो जावो, ऐसा उपदेश मैं कभी न दूंगा। ऐसा उपदेश तो केवल सङ्गीत द्वारा पेट पालने वाले अथवा इस विषय में अलौकिक प्रवीणता प्राप्त करने की इच्छा करने वाले ही कर सकते हैं, पर साधारण लोग ऐसा नहीं करते, यह भी मैं जानता हूँ, अस्तु। निषाद स्पष्ट दिखलाने को मैंने कहा ही है 'प ग, रे रे सा, नि रे ग, प ग, सा रे सा' इस भाग से पहले ही तुम्हारा राग खुलने लगेगा। हमारे गवैये कहते हैं कि श्रीराग के बिलकुल पास आने वाले वस्तुतः दो ही राग ध्यान में रखने योग्य हैं, और वे हैं--त्रिवेणी व टङ्की उनका यह कथन मुझे भी थोड़ा बहुत युक्ति-युक्त मालूम पड़ता है। गौरी राग आजकल कालिंगड़ा के अङ्ग से गाया हुआ अधिक दिखाई पड़ता है, यह मैंने कहा ही था। मालवी का उत्तराङ्ग श्रीराग के समान नहीं है और पूर्वाङ्ग में मध्यम दोनों ओर से लगाया जाता है, यह तुमको ज्ञात ही है। रेवा और पूर्वी रागों की ओर तो देखना ही नहीं है। अब त्रिवेणी और टंकी का झमेला रह गया। इन दोनों में से एक में तीव्र मध्यम लगाया कि वह भी अड़चन मिटी। तो फिर अब त्रिवेणी का विस्तार चलने दो, देखूँ;

प्र०—अच्छा, लीजिये करता हूं—"सा, रे रे सा, नि सा, रे सा, नि रे सा, नि रे ग, रे सा, सा रे ग, रे ग, प ग, रे ग प, ध प ग, रे, रे सा, नि रे सा। सा, रे नि ध प, नि ध प, ध नि रे सा, रे ग, प, नि ध प, सां नि ध प, मं ग रे, प ग रे, गरे, रे सा, नि रे सा। रे रे सा सा, ग रे सा, रे ग रे, प मं ग रे, रे ग प ध प ग रे, प ग रे, सा, नि रे सा"

उत्तर--राग विस्तार के नाते ये तुम्हारी तान ठीक हैं, ऐसा मैं कहूंगा। ज्यों-ज्यों 'नि रे ग, रे ग, रे रे, सा, नि रे सा, ग प ग रे, ध प ग रे, ग रे सा' ये टुकड़े खूबी से लगाओगे, त्यों-त्यों राग अच्छा खुलेगा।

प्र०--हमारे ध्यान में अब ये अच्छी तरह आ गये। श्रीराग के मुख्य नियम मोड़कर श्रीराग ही गाया है, कुछ अंशों में ऐसा ही कहा जायगा न? मध्यम लगाने का नियम हम चतुर पण्डित का स्वीकार करते हैं। और तद्भिन्न मत का तिरस्कार भी नहीं करेंगे, ठीक है न? 'रे रे सा, नि सा रे सा, रे ग रे सा, रे रे प प, ध ध प, नि ध प, ध नि ध प, ग रे, प, ग रे, रे सा; ध नि रे सा, नि रे सा, सा रे सा, ग प ग रे सा, ध नि ध प, ग रे सा' ऐसा हम करते जावें तो सुनने वाले त्रिवेणी या टङ्की इनके सिवा दूसरा कौनसा नाम देंगे? पर ऐसे दूसरे कोई प्रकार हुए तब हमारे प्रश्न का कोई अर्थ नहीं रहेगा, यह हम स्वीकार करते हैं।

उत्तर--मैं समझता हूँ, ऐसे दूसरे प्रकार और नहीं हैं। तुम वादी स्वर रिषभ कायम करते हो, उसे देखें तो तुम्हारा राग त्रिवेणी ही ठहरेगा। श्री अङ्ग के कई रागों में सा, रे, ग, प ये विश्रान्ति स्थान हैं, यह ध्यान में आयेगा ही। तथापि यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि गांधारांत तान जितनी कम होंगी, उतना ही अच्छा। त्रिवेणी में ईश्वरोपासना की चीजें अच्छी दिखाई देंगी। प्रचार में वे अच्छी चीजें तुमको मिलेंगी, यह

मैं नहीं कहता। पर मैंने राग की साधारण उपयोगिता कही है। स्वर और कविता में योग्य सङ्गति रखने का नियम अपने यहाँ कभी का टूट चुका है, वह फिर जुड़ जाय तो अच्छा है।

प्र०--प्रचार में कुछ गायक त्रिवेणी को सम्पूर्ण मानने वाले भी निकलेंगे, ऐसा आपने पीछे कहा था। वे सम्पूर्ण प्रकार कैसा गाते होंगे, इसकी कुछ कल्पना हमको दे सकते हैं क्या?

उत्तर--उनका प्रकार प्रायः 'सम्पूर्ण श्रीराग' के अनुसार समझ लो। उसका नमूना भी देखो, दिखाता हूँ 'प ग, रे॒, सा, सा रे॒, सा, रे॒ रे॒, प, प, प ध॒, प, मं ध॒ नि ध॒ प, प मं ग, मं ध॒ प, ग रे॒, ग रे॒ सा। सा रे॒ सा, प।'

प्र०--और आगे अन्तरा?

उ०--अंतरा ऐसा लेते हैं--'प ध॒ मं ध॒, नि सां, सां रें॒ सां, नि सां, नि रें॒ रें॒, ग रें॒ सां, रें॒ नि ध॒ प, रे॒ मं प, नि रें॒ नि ध॒ प, ध॒ मं प, ग मं ग, प ग रे॒ सा, रे॒ प।'

प्र०--हम त्रिवेणी का अन्तरा किस तरह शुरू करें?

उ०--वह 'प प, ध॒ प सां, सां रें॒ सां' कुछ ऐसा करोगे तो चल सकता है। अथवा 'प ग, प ध॒ प, सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ गं रें॒ सां, नि रें॒ नि ध॒ प, प मं ग, (अथवा प ग) रे॒, प, ग, रे॒, ग, रे॒ सा' इस तरह से करो, बस हो गया।

प्र०--कोई गायक पंचम से त्रिवेणी शुरू करते हैं, ऐसा आपने कहा था। वे लोग 'प, ग रे॒ सा, सा रे॒ सा, रे॒ प ग रे॒ सा, रे॒ ग, प प, ध॒ प, नि ध॒ प, प मं ग, रे॒ ग, रे॒, सा' ऐसा थोड़ा बहुत करते होंगे, ठीक है न?

उ०--हाँ, उसे तुमने ठीक समझा। 'नग़माते आसफ़ी' ग्रन्थ में 'त्रिवेणी' म-हीन षाडव मानी है, यह तुमको याद होगा ही। त्रिवेणी का स्वरूप श्रीराग के समान है, यह बात भी वहाँ कही गई है।

प्रश्न--हां, यह मुझे याद आता है। उस ग्रन्थकार का कहना सही है।

उत्तर-उसने वादी रिषभ और सम्वादी पंचम कहा है। उसका भी मत बुरा नहीं। 'सरमाए अशरत' ग्रन्थ में त्रिवेणी में धैवत तीव्र कहा है। हम अपने प्रचार और आचार को रखकर चलें तो ठीक है। 'सरमाए अशरत' ग्रन्थ को मुसलमान गायक इज्जत की नजर से देखते हैं, परन्तु उसका नियम वे अनेक बार खुद तोड़ते हैं, यह झूँठ नहीं।

प्रश्न--'सरमाए अशरत' ग्रन्थ में रागरचना कैसी है, और उसमें क्या कहा है?

उत्तर--मुझे उर्दू नहीं आती; परन्तु मेरे मुन्शी ने उसे जब मुझे पढ़कर सुनाया तब मैंने जो नोटकर लिया था, उसी से तुमको बता रहा हूँ--

हनुमन्मत

भैरव राग १

भैरव रागिनीः—१-बंगाली २-सैंधवी ३-भैरवी ४-वरारी ५-मधमादी।

भैरव पुत्रः—१-हरख २-तिलक ३-पूरिया (दिन की) ४-माधव ५-सुहा ६-वलनेह ७-मधु ८-पंचम।

भार्जाः—१-सुहा २-बिलावली ३-सोरटी ४-गांधारी ५-इंधायी (आंधाली) ६-बहुलगुजरी ७-पटमंजरी ८-बहिरवी।

मालकंस राग २

मालकंस रागिनीः—१-तोड़ी २-गुणकरी ३-गौरी ४-खंबावती ५-कुकव।

मालकंस पुत्रः—१-मारू २-मेवाड़ ३-बड़हंस ४-प्रवल ५-चंद्रक ६-नंद ७-मनोर-(मनोहर) ८-खोखर।

मालकंस भार्जाः—१-धनाश्री २-मालश्री ३-जेतश्री ४-सुघराई ५-दुर्गा ६-गांधारी ७-भीमपलासी ८-कामोदी।

हिंडोल राग ३

हिंडोल रागिनीः—१-रामकली २-देशाख ३-ललत ४-विलावल ५-पटमंजरी।

हिंडोल पुत्रः—१-चंद्रभानु २-मंगल ३-सुभा ४-आनंद ५-विनोद ६-परधुन ७-गौरा ८-विभास।

भार्जाः—१-लीलावती २-कैरवी ३-चेती ४-पूर्वी ५-पारावती ६-तिरवण ७-देवगिरी ८-सरस्वती।

दीपक राग ४

दीपक रागिनीः—१-देशी २-कामोदी ३-केदार ४-कानडा ५-नट।

दीपक पुत्रः—१-कुन्तल २-कमल ३-कुलंग ४-चंपक ५-कुसुम ६-राम ७-लहल ८-हेमाल।

भार्जाः—१-मंगलगूजरी २-मालगूजरी ३-जैजैवन्ती ४-भोपाली ५-मनोहरी ६-अहीरी ७-ऐमन ८-हमीर।

श्रीराग ५

श्री रागिनीः—१-मालश्री २-आसावरी ३-धनाश्री ४-वसंत ५-मारवा।

श्री पुत्रः—१-सिंदूरा २-मालव ३-गौड ४-गुणसागर ५-कुम्भ ६-गंभीर ७-शंकरा ८-बिहागड़ा।

भार्जा:--१-विजना २-ध्यानजी ३-कुम्भ ४-सोहनी ५-सर्वा ६-खेम ७-सहस्र-रेखा ८-सदासुती।

मेघराग ६

मेघरागिनी:--१-तनक २-मल्लार ३-गुजरी ४-भोपाली ५-देशकार।

मेघ पुत्रः-१-जलंधर २-सारङ्ग ३-नटनारायण ४-शंकराभरण ५-कल्याण ६-गांधार ७-शहाणा ८-गजधर।

भार्जा:-१-कंनडनाट २-कदंबनाद ३-बिहारी ४-मांझ ५-परज ६-नटमंजरी ७-शुद्धनाट ८-गावदी।

अब हम यह देखेंगे कि अपने प्राचीन ग्रन्थों में त्रिवेणी के विषय में क्या-क्या कहा है।

रत्नाकरे-

त्रवणा भिन्नषड्जस्य भाषा स्याद्धनिभूयसी।
धनिसैर्वलिता धांशग्रहन्यासा रिपोज्झिता ॥
गमद्विगुणिता मंद्रधैवता विजये मता ॥

इस पर कल्लिनाथ पंडित ने जो टीका की है, वह पढ़ने योग्य है। कल्लिनाथ ने रत्नाकर स्पष्ट समझा इसका प्रमाण नहीं मिलता, यह खेदपूर्वक बारम्बार कहना पड़ता है। उसका स्वतन्त्र ग्रन्थ मिले और उसमें अधिक स्पष्टीकरण किया हो तो आगे-पीछे तुम देखोगे ही। उसने मतङ्ग मतानुसार एक "त्रवणा" ऐसी कही है:—

त्रवणा टक्कभाषा सग्रहांतांशा रिपोज्झिता।
समंद्रा गमतारा सनिधभूरिदिंनांतिमे।
यामे गेया वीररसे गीयते रुद्रदेवता ॥

यहां त्रवणा का सम्बन्ध टक्क से है, उधर तुम्हारा ध्यान जायगा ही। मैंने पहिले कहा था कि "मालवी" नारद ने हंसक राग की पुत्रवधू मानी है। यह तुमको याद होगा ही। हंसक की भार्याओं में गौरी भी एक है। पुनः 'हंसक' टक्क का पिता माना गया है। कल्लिनाथ के मत से हंसक का लक्षण ऐसा है-"हंसको भिन्नषडजांगं धग्रहांशः सवर्जितः" हंसक का लक्षण नारद ने ऐसा कहा है--

कासारकेलिरसिकः कमलोत्संगवर्तनः।
कीर्तिमान् हंसको नाम रागराजो विराजते ॥

चंद्रिकायाम्-(माधवभट्ट प्रणीतायाम्)

शुद्धपंचमभाषान्या त्रवणा तत्समुद्भवा।
धैवतांशग्रहन्यासा रिपत्यक्ता इ. इ. ॥

शुद्ध पंचम राग का लक्षण रत्नाकर में ऐसा है--

मध्यमापंचमीजातः काकल्यंतरराजितः ।

प्रश्न--यहां फिर 'काकल्यंतरराजितः' आते ही हमारे मन में संधिप्रकाश थाट का संकेत अपने आप उत्पन्न होता है, कारण फिर कुछ भी हो ।

उत्तर--आगे सुनो ।

रागविबोधे:-

शुचिरामक्रीमेले मृदुमकतीव्रतमममृदुसाः शुद्धम् ।
सरिपधमियमत्र ललिताजेताश्रीत्रावणीदेश्यः ॥

प्रश्न--शुद्ध रामक्री मेल तो अपना पूर्वी थाट ही हुआ, इसलिये सोमनाथ का मत ध्यान में रखने योग्य है, ठीक है न ?

उत्तर--हां, उसे जरूर ध्यान में रक्खो , प्रत्यक्ष त्रिवेणी राग का लक्षण वह ऐसा कहता है--

सन्यासरिग्रहांशा संपूर्णा त्रावणी तु सायान्हे ।

हम मध्यम वर्ज्य करते हैं, यह आधार अहोबल का होगा । जो संपूर्ण प्रकार करते हैं उनके लिये यह आधार योग्य है । पर, सोमनाथ धैवत शुद्ध कहता है, उसे भी ध्यान में रखना होगा ।

सद्रागचंद्रोदये:-

शुद्धौ सरी शुद्धपधैवतौ चे—
न्मनामधेयो लघुपूर्वकश्च ॥
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चे—
द्विशुद्धरामक्रयभिधस्य मेलः ॥

यह पूर्वी थाट का वर्णन स्पष्ट है । आगे त्रिवेणी का लक्षण ऐसा है--

सांशग्रहा सांतयुता च पूर्णा ।
सा त्रावणी दीव्यति वासरांते ॥

प्र०—ये लेखक, केवल इतने वर्णन से ही क्या गा सकते होंगे ? उसी तरह 'अन्श' शब्द का अर्थ वे न जाने क्या समझते होंगे ।

उ०—सो अब कैसे कहा जा सकता है ? आगे चलते हैं ।

रागमालायाम्:—

ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।
कल्याण इति पंचैता देशिकारस्य सूनवः ॥

जातोऽघोराख्यवक्त्रात्त्रिगतिगनिगमाः सत्रिपूर्णोऽत्ररागो ।
रक्तांगः पद्मनेत्रः सितगजगमनो बाखरेजस्य मित्रम् ॥
कंठे मुक्तैकमालो धृतमुकुटशिरश्चित्रवासाः सखड्गो ।
मध्यान्हे योधसंघे सुललितशिशिरे देशिकारश्चकास्ति ॥
देशीसन्मेलजातस्त्रिविधसमपसः पूर्णरूपोऽतिगौरः ।
कंठे मौक्तेयमालो धृतमुकुटशिराश्चित्रवासश्च रम्यः ॥
पुष्पश्रीकुन्दहस्तो युवजनसहितो मन्मथानंदकर्ता ।
शृङ्गारी पण्यवीथ्यां तरुणतिरवणः शोभते सायमेषः ॥

प्र०—इस श्लोक में तो 'तिरवण' यह नाम भी है, इसीलिये अपने गायक तिरवण नाम लेते होंगे। परन्तु यह राग देशीमेल का है, ऐसा कहा है। अतः इस थाट के स्वर भी तो मालूम होने चाहिये।

उ०—सो थाट तुम पूर्वी का ही समझ लो। पहले श्लोक में 'बाखरेज' यह नाम तुमको थोड़ा अपरिचित लगेगा, परन्तु उसे तुमको मैंने खासतौर पर ध्यान में रखने के के लिये कहा है। मुसलमानी रागों को अपने सरल हृदय संस्कृत ग्रन्थकार खुशी से अपने ग्रन्थों में सम्मिलित करते हैं, उसका यह एक उदाहरण है। सोमनाथ पंडित ने 'रागविबोध' में कर्णाटगौड़मेल की टीका में परदा, हुसेनी, जुलुफ, मूसली, हिजेज, ईराख वगैरह मुसलमानी रागों का स्पष्ट उल्लेख किया है।

प्र०—उसने ऐसा क्यों किया है ?

उ०—कर्णाटगौड में कौन-कौन से राग मिलाने से ये प्रकार उत्पन्न होते हैं, यह सूचित करने का उसका उद्देश्य दिखाई देता है।

प्र०—तो क्या मुसलमान गायकों ने अपने दो-दो तीन-तीन राग इकट्ठे करके उन्हें संयुक्त प्रकारों का यावनिक नाम दिया है, ऐसा समझा जायगा ?

उ०—ऐसा क्यों कहते हो ? हम यह कहते हैं कि मुसलमानी अमुक राग का स्वरूप संस्कृत के अमुक राग के मिश्रण समान दीखता है। मैं समझता हूं सोमनाथ को भी इतना ही सूचित करना था, ऐसा करने से वाद-विवाद भी नहीं उत्पन्न होगा। सोमनाथ अपनी टीका में कहता है:—

"इयं तुरुष्कतोडी इराखपर्यायतया कर्णाटगौडस्य समच्छायत्वेन 'परदा' इति लोके। तथाच कैश्चित्तत्तद्रागसमच्छायाः परदाख्या द्वादश रागा उच्यंते। तोड्याः समृध्यया हुसेनी। भैरवस्य जुलुफः। रामक्रियाया मुसली। आसावर्या उश्वलः। विहंगडस्य नवरोजः। देशकारस्य बाखरेजः। सैंधव्या हिजेजः। कल्याणयमनस्य पंचग्रहः। देवक्रयाः पुष्कः। वेलावल्याः सरपर्दः। कर्णाटस्य इराखः। अन्योपरागाणां सुगा दुगा इति।"

प्र०—हम समझ गये। अब आगे चलने दीजिए।

उ०—नृत्य निर्णय में 'त्रिवणा' ऐसा कहा है—

"देशी सन्मेलजातस्त्रिविधसमपसः पूर्णरूपोतिगौरः" । इ० ।

यह श्लोक पहिले कहा ही था, रागमंजरी में ऐसा कहा है—

संपूर्णा सत्रिका गेया सायंकाले च त्रावणी ।

ये दोनों पुण्डरीक के ग्रन्थ हैं, ऐसा मैंने तुमको कहा ही है ।

पारिजातेः—

गौरीमेलसमुत्पन्ना त्रिवेणी मस्वरोज्झिता ।
अवरोहणवेलायां षड्जोद्ग्राहांशरिस्वरा ॥

यह श्लोक भी मैंने कहा ही था अतः उसका मर्म तुम्हें ज्ञात ही है ।

दर्पणेः—

त्रिवणा सा च विज्ञेया ग्रहांशन्यासधैवता ।
औडवा रिपहीनेयं विद्वद्भिः परिकीर्तिता ॥

ध्यानम् !

चारुरंभातरोर्मूले निपण्णा कनकप्रभा ।
नतांगी हारललिता कांतेन त्रिवणा मता ॥

उदाहरणम् !

ध नि सा ग म ध ।

दूसरे एक ग्रन्थकार ने त्रिवणा ऐसा कहा हैः—

गौरीललितयोर्देशकारसंयोगतः किल ।
त्रिवणाख्यातको रागः इ. इ. इ. ॥

टैगोर साहब ने 'त्रिवेणी सम्पूर्ण जाति में गिनते हैं' इतना ही कहकर उसका स्वर बिस्तार किया है । उन्होंने पूर्वी का ही थाट स्वीकार किया है, यह बात ध्यान में रखने योग्य है ।

श्रीगौरीमारवायुक्ता ऋषभाख्यग्रहांशभाक् ।
त्रिवेण्युत्पत्तिराख्याता संध्याकाले प्रगीयते ॥

प्र०—प्रतापसिंह ने सङ्गीतसार में त्रिवेणी कैसी कही है ?

उ०—उन्होंने ऐसा वर्णन किया हैः—

"शिवजीनें वामदेव मुखसों त्रिवण गाइके वाको हिंडोल की छायायुक्ति देखि हिंडोलको पुत्र दीनो । रंग बिरंग वस्त्र पेहरे है । कमल सरिखे जाके नेत्र हैं इ० । शास्त्र में तो सातसुरनसों गायो है । स रे ग म प ध नि स । यातें सम्पूर्ण है । याको दुपहर समें गावनो । यह तो याको वखत है । और दिन में चाहो तब गावो ! आलापचारी ।

हिंडोल पुत्र त्रिवण (सम्पूर्ण)

नि रे ग धु रे ग रे नि रे सा । रे मं ग मं ग रे मं ध । नि प धु प । ग रे सा ।"

प्र०--यह क्या ? इसमें दो रिषभ, दो गांधार और दो धैवत लगेंगे ?

उ०--दिखाई तो ऐसा ही देता है । यह प्रकार मैंने तो कभी सुना नहीं । इसे देख तुमको ठीक ही भय हुआ है, वास्तव में इसका स्वरूप विकट दिखाई देता है ।

प्र०--पीछे कही हुई व्यवस्था में हिंडोल का "त्रिवण" पुत्र नहीं था ?

उ०--नहीं, वह पुत्र रागमाला से प्रतापसिंह ने लिया है । यह 'नृत्य निर्णय' का मत है । इस मत के प्रमाण से सामन्त, त्रिवण और श्याम, ये तीन हिंडोल के पुत्र हैं । प्रतापसिंह ने सारे प्रचलित रागों की व्यवस्था करने का उत्तरदायित्व अपने सिर ले लिया, इस कारण जगह ब जगह उन्हें आधार इकट्ठे करने पड़े, ऐसा दीखता है । यह आलापचारी कैसे गाई जावेगी, ऐसा तुम पूछोगे तो उसका उत्तर "उसे तुम मत गावो" मैं ऐसा दूंगा । तुम्हारे प्रचलित त्रिवेणी स्वरूप का समर्थन करने वाले दो एक आधार और भी देखो:—

> पूर्वीस्वरैरेवयुता त्रिवेणी
> सदा विहीना खलु मध्यमेन ॥
> वादी मतोऽस्यामृषभोऽस्त्यमात्योऽ-
> भिगीयते पंचम एव सायम् ॥ कल्पद्रुमांकुरे ।
> मध्यमेन विहीना तु त्रिवेणी रिधकोमला ।
> श्र्यंगेन गीयते सायं परिसंवादिवादिनी ॥ चंद्रिकायाम् ।

प्र०--कृपया यह राग भी थोड़ा सा गाकर दिखाइये ।

उ०--अच्छा, सुनो तो फिर:--

त्रिवेणी—झंपाताल

रे	रे	।	सा	रे	सा	।	ग	रे	।	सा	ऽ	सा
×												
नि	रे	।	सा	ग	रे	।	ग	प	।	ग	रे	सा
सा	रे	।	सा	ग	रे	।	ग	प	।	धु	प	ग
नि	धु	।	प	ग	रे	।	ग	प	।	ग	रे	सा

अन्तरा—

प	ग	।	प	धु	प	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां
×												
नि	रें	।	गं	रें	सां	।	रें	नि	।	धु	नि	धु
प	ग	।	रे	ग	प	।	ग	रे	।	सा	रे	सा
नि	रें	।	नि	धु	प	।	ग	रे	।	ग	रे	सा

दूसरा प्रकार—

रे	रे	।	सा	ऽ	सा	।	ग	रे	।	सा	रे	सा
×												
रे	रे	।	सा	ग	रे	।	ग	मं	।	ग	रे	सा
सा	रे	।	सा	ग	रे	।	ग	प	।	धु	प	नि
धु	प	।	मं	ग	रे	।	ग	प	।	ग	रे	सा॥

अन्तरा—

ग	ग	।	प	धु	प	।	सां	ऽ	।	नि	रें	सां
×												
नि	रें	।	गं	रें	सां	।	रें	नि	।	धु	नि	धु
प	मं	।	ग	रे	गं	।	धु	प	।	रें	नि	धु
प	मं	।	ग	रे	ग	।	प	ग	।	रे	रे	सा॥

आगे राग विस्तार किस ढङ्ग से किया जावेगा, यह तुम्हें अच्छी तरह मालूम ही है। सारी खूबी रिषभ को बहुलत्व देने पर, निषाद स्वर जगह ब जगह दिखाने पर और आरोह में गांधार तथा धैवत ले आने पर अवलम्बित रहती है, इतना हमेशा ध्यान में रक्खो।

प्रश्न--जो तीव्र धैवत लगाते हैं, वे कैसा करते हैं ?

उत्तर--यह पूर्वाङ्ग प्रधान राग है और श्रीराग के अङ्ग से गाया जायगा, यह तुम्हें मालूम है। पंचम तक तुम्हारे ही समान अधिकतर तानें उन्हें लगानी होती हैं।

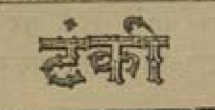
प्रश्न—याने 'रे रे सा, ग रे, प ग रे, सा, नि़ रे सा, रे, प, प, ध प, ग रे, प ग रे, ग रे, रे सा; नि़ रे ग रे सा, रे ग रे प, नि ध प, ग रे, ध, प ग रे रे ग रे प ग रे, सा'। कुछ-कुछ इसी तरह उन्हें करना पड़ता होगा, ठीक है न?

उत्तर--हां, पर यह अपना प्रकार नहीं है, इसलिये उसकी योग्यायोग्यता की चर्चा हम नहीं करेंगे। तुमको इस तरह का अभ्यास करना पड़ेगा, देखो:—

सा रे सा, सा रे ग रे सा, नि़ रे ग रे ग प ग रे ग रे सा; सा सा रे रे सा, ग ग रे रे सा, प मं ग रे ग प ग रे सा, रे रे प, प धु प मं ग रे, ग प, नि धु प मं ग रे ग प ग रे सा; सा सा रे रे सा सा, ग प ग रे ग रे सा; प प धु धु प प, नि रें नि धु प प, सां सां नि धु प मं ग रे ग रे सा; रे रे प, प, नि धु नि धु प, सां सां रें नि धु प, नि नि धु धु प प, प धु प मं ग रे ग प ग रे सा; प प ग रे ग प सां, सां रें सां, रें रें गं रें सां, रें नि धु नि धु प, प धु प मं ग ग, रें नि धु नि धु प, प मं ग रे ग प ग रे ग रे सा।

ऐसे टुकड़े उत्तम गाकर तैयार करो और योग्य स्थानों पर उनकी योजना करते जावो, तो राग विस्तार अच्छा होगा।

प्रश्न--यह राग हमने अच्छी तरह समझ लिया। अब अगला राग लीजिये।



उत्तर--अच्छा, अब हम टंकी के विषय में बोलते हैं। त्रिवेणी के बाद यही राग कहना आवश्यक था, क्योंकि ये दोनों निकटवर्ती राग हैं। कुछ अन्श में ये दोनों अधिक सुनने में नहीं आते और अप्रसिद्ध रागों में गिने जाते हैं। वस्तुतः ये दोनों बहुत ही मनोरंजक और सुनियमत प्रकार हैं, इसमें कोई संशय नहीं। टंकी के विषय में बोलते समय कभी-कभी मुझे त्रिवेणी के बारे में भी दो शब्द कहने पड़ेंगे, और वैसा करने को तुम मुझसे कहोगे भी।

प्रश्न--ऐसा आपको जरूर करना पड़ेगा, क्यों कि ये राग एक दूसरे में गुथे हुये से दीखते हैं, ऐसा आपने पहिले सूचित किया ही था।

उत्तर--हां, यह भी ठीक है। कहीं-कहीं अपने संस्कृत ग्रन्थकार एक ही श्लोक में अनेक रागों का उल्लेख कर डालते हैं, यह तुम देख ही चुके हो। ऐसे स्थान पर उस श्लोक में दिये हुए प्रत्येक राग वर्णन के समय वे बारम्बार कहे जाते हैं।

प्रश्न--ठीक है, जो आपको उचित मालूम पड़े वह खुशी से कीजिये। हम आपके रागविवेचन में इतने रँग जाते हैं कि पुनरुक्ति की ओर हमारा ध्यान भी नहीं जाता। हमें उत्तम ज्ञान चाहिये और कुछ नहीं। प्रचार के राग हमको उनके नियमों सहित समझने चाहिये और उन्हें गाने का ज्ञान भी हमें प्राप्त करना चाहिये।

उत्तर—हां, तुम्हारा कथन यथार्थ है, अस्तु! 'टंकी' नाम तुम्हारे कानों में आ चुका ही है। 'टंकी' राग थोड़े से ही गायकों को आता है। जो गाते हैं, उनमें भी उसका नियम जानने वाले थोड़े ही होते हैं। मालवी, त्रिवेणी, टंकी, जैतश्री व पूरियाधनाश्री, इन रागों को स्पष्ट करके अलग-अलग हमें बताओ, ऐसा सरल प्रश्न तुम गायकों से करोगे तो वे जरूर घबरा जायेंगे। वास्तव में नियमानुसार गायन सदैव श्रेष्ठ है, ऐसा हमको पग-पग पर मालूम पड़ रहा है। भविष्य में अनियमित गायनों का तिरस्कार ही होने की संभावना है। तुम्हारे नियम अन्य गायकों के नियमों से न मिलें तो न सही, परन्तु अपने राग का नियम यदि तुम्हें अच्छी तरह विदित हो तो मन को एक प्रकार का संतोष और धैर्य मालूम पड़ता है। इतना ही नहीं, अपितु नियमित गाने को सर्वत्र मान भी मिलता है। मैं कह चुका हूं कि टंकी को कोई-कोई प्राचीन 'टक्क' राग का पर्याय मानते हैं। उनमें कुछ विशेष अन्तर है सो बात नहीं। अपने सम्मुख अब महत्व का प्रश्न यह है कि टंकी राग हम कितने स्वरों से और कैसे गायें। इस विषय में संस्कृत ग्रन्थकारों की मदद हमें कुछ मिल सकती है कि नहीं? यह भी एक प्रश्न पैदा होता है।

प्रश्न—आपका भाव हम समझ गये। प्रचार में त्रिवेणी और टंकी इन दोनों रागों में मध्यम को वर्ज्य मानने वाले गायक भी मिलने सम्भव हैं, सम्भवतः इसी

अड़चन को लक्ष्य में रखकर आप कहते हैं। यह प्रश्न भी दर असल अपने सामने उपस्थित है। परन्तु ये राग भिन्न-भिन्न होने पर भी उन्हें सम्हालने की युक्ति थोड़ी सी आप बता ही चुके हैं न?

उत्तर—हां, वादी भेद और मध्यम का विशिष्ट प्रयोग, ये दो युक्ति मैंने बताई हैं।

प्रश्न—टंकी को 'महीनामथवापूर्णा' ऐसे भी मानने वाले हैं, यह आपने कहा था हमें याद है।

उत्तर—बस ठीक है, परन्तु हमें बहुमत को मानकर चलना है। प्रचार में टंकी मध्यम वर्ज्य कर ही गाया हुआ तुम्हें अनेक बार दिखाई पड़ेगा। इसलिये अपने को भी उसे वैसा ही गाना पड़ेगा।

प्रश्न—तो फिर मध्यम का त्याग और पंचम का वादित्व यही दो मुख्य नियम टंकी के हैं, ऐसा हम समझकर चलें तो ठीक होगा? त्रिवेणी में रिषभ वादी है, इस वस्ते राग भेद स्पष्ट है। यदि इतने से श्रोताओं का समाधान नहीं हो तो उसमें आपके कथानुसार मध्यम का अल्प प्रयोग करना ठीक होगा। इस विषय में हमारा मत कोई जानना चाहेगा तो हम कहेंगे कि त्रिवेणी में मध्यम वर्ज्य करो और टंकी सम्पूर्ण गाओ। टंकी सम्पूर्ण गाने से कोई हानि तो नहीं?

उत्तर—ऐसा करने से प्रचार का उल्लंघन होगा, यह रही एक बात। दूसरी हानि यह है कि उससे सम्पूर्ण जाति के टंकी, पूरिया धनाश्री नामक पूर्वी मेल जन्य रागों में गड़बड़ी पैदा होगी।

प्रश्न—पर, त्रिवेणी में मध्यम लगाने से भी ऐसा होना सम्भव है।

उत्तर—नहीं! क्यों कि त्रिवेणी में मध्यम केवल अवरोह में आता है। पूरिया-धनाश्री में वह दोनों ओर से लगाया जाता है।

प्रश्न—ऐसा है तो फिर वह मध्यम टंकी को ही क्यों न दिया जाय? चाहो तो उसे अवरोह में ही रहने दो, इससे पूरियाधनाश्री अलग रहेगी। त्रिवेणी में मध्यम वर्ज्य करने का 'सङ्गीत पारिजात' का विस्तृत आधार अपने पास है ही। तथा वैसा व्यवहार भी कहीं-कहीं पर है, यह आपने कहा ही था। टंकी को संस्कृत ग्रन्थकार सम्पूर्ण मानने को तैयार हैं ही, तो फिर हानि नहीं दिखाई देती ।

उत्तर—तुम्हारी विचारधारा दोषास्पद है; यह मैं नहीं कहता। वर्तमान प्रचार कैसा है, यह मैंने तुमको बता दिया है, अब जो रूप तुमको पसन्द आये उसे स्वीकार कर सकते हो। त्रिवेणी और टंकी ये दो राग श्री अङ्ग से गाये जाते हैं, यह तुमको मालूम ही है। अतः अब मुझको श्री अङ्ग की टंकी गाकर दिखाओ।

प्रश्न—मध्यम वर्ज्य करके हम उसे इस तरह गायेंगे—ग रे सा, सा, रे सा, नि़ रे ग रे सा, नि़ रे, सा, प, ग रे ग प ग रे, सा, नि़ रे, सा, ग प, प, ध, प, नि ध, प, प ग रे ग प ग रे, रे सा; नि़ सा, रे रे, प, प ग रे, प, ध प ग रे, प ग रे, ग रे सा; नि़ सा, नि़ रे नि़ ध़ प़, प़ नि़, रे, प ग रे, ग रे, सा। यह स्वर विन्यास टंकी में अशुद्ध न होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। श्री अङ्ग आगे ले आने से रे रे, प प, ध प, ध नि ध प, सां नि ध प, प ग रे, रें नि ध प, प ग रे, ग प ग रे, रे, सा, ऐसा कर सकते हैं क्या ?

उत्तर—तुम्हारा यह प्रकार अशास्त्रीय होगा, यह मैं नहीं कहता। पर, विभास में भी मध्यम वर्ज्य है, यह तुम्हारे ध्यान में है न ?

प्रश्न—हम उत्तरांग जो बढ़ाते हैं वह किस लिये ? अपनी गायी हुई तानों में हमने धैवत किस तरह मर्यादित रक्खा है, उसे देखें न ? हमने पूर्वांग पर सारा भार डाल दिया था। उस तरह कहीं-कहीं हम विशेष रूप से निषाद का उपयोग भी करते थे। नि़ रे ग रे, सा, रे रे सा, रे नि़ ध़ प़, ध़, नि़ सा, रे, प ग रे, ग रे, सा, नि ध प, सां नि ध प, ग रे, ग प ग रे, रे, सा, इस तान के द्वारा प्रातःकालीन रंग उत्पन्न नहीं होगा, ऐसा प्रतीत होता है।

उत्तर—सो तो नहीं होगा। पर टंकी में पंचम वादी है उसकी भी याद है न ?

प्रश्न—हाँ, हाँ, वह हमारे लक्ष्य में है। हम रे रे, ग प, प, ध ध प, नि ध प, ग प ग रे, प, नि रें नि ध प, ध नि ध प, नि सां, नि ध प ग रे ग, प ग रे, रे, सा। इस तरह पंचम आगे लायेंगे तो ठीक होगा। नि़ रे सा, रे, रे, प, ध प ग रे, प ग रे, रे, सा। ये तान आते ही वहाँ विभास कैसे खड़ा रह सकेगा ?

उत्तर—हाँ, अब ठीक है। श्रीराग का उत्तरांग संभाला तहाँ सब ठीक हुआ। 'प प, ध ध, नि सां, सां रें, सां' ऐसा करने से भैरव की छाया आगे आयगी और ग प, प, ध ध, सां, सां, रें सां, ऐसा करोगे तो विभास आ धमकेगा।

प्रश्न—यह सब हमारे ध्यान में है। इसीलिये श्रीराग में, 'प, म॑ प, नि, सां, रें सां' ऐसा करते होंगे। टंकी में पंचम योग्य रीति से ही लगाना होगा, ऐसा जान पड़ता है।

उत्तर—फिर कोई हानि नहीं। पंचम का परिमाण कदाचित् अपने हाथ में ठीक नहीं रहेगा। इस भय से अपने गायक श्री और गौरी रागों का अन्तरा बारम्बार "म॑ ध नि सां, सां, रें रें, सां, नि रें नि ध प, प, प ध, रें नि ध प, प ध म॑ ग, रे, रे, सा" इस तरह से ही करते हुये तुम्हें दिखाई पड़ेंगे। यह कृत्य शास्त्र नियम की दृष्टि से दूषित ही होगा, यह अलग कहने की आवश्यकता नहीं। सुगायक वहाँ प्रायः 'म॑ प, नि, सां, रें रें सां, सां, रें नि ध प, म॑ प, नि ध प, ध म॑ ग रे, ग रे सा, ऐसा करते हैं। मैं तुमको गायकों की युक्तियाँ बता रहा हूँ। "ग प, ग रे सा" यह तान श्रीराग के बीच-बीच में दाखिल करने लगें तो श्रोताओं को त्रिवेणी और टंकी इनकी ओर आप ही आप आना पड़ता है, वहाँ यह सहज ही समझा जाता है कि पूर्वाङ्ग प्रधान है या नहीं। ऐसी बातें

उनके कारणों के साथ साथ ध्यान में रखते जावो। बड़े-बड़े गायक प्रथम अपने शिष्यों को सायंगेय और प्रातर्गेय स्वर विस्तार ही उत्तम रीति से तैयार करने को कहते हैं। यह मैं सच्चे अधिकारी गायकों की बात कहता हूँ और उनमें भी उदारवृति वाले गुरुओं की अब यह तान तुम्हीं देखो—"रे रे सा, नि रे सा, रे सा, नि रे ग रे सा, ग ग रे सा, नि रे ग रे, प ग रे सा; नि नि, ध नि ध प प ध नि, ध नि, रे, सा नि रे ग ग, रे ग ग, प ग रे, मं ग, रे ग मं ध मं ग, रे ग रे सा; नि रे ग रे, मं मं ग, ध मं ग, रे ग, नि नि मं मं ग ग, ध मं ग, रे ग, मं ध मं ग, ग, रे सा; इसमें प्रातःकाल का रंग कहीं दीखता है क्या ? यह विस्तार किसी अमुक राग का है सो नहीं, सायंगेयत्व सूचक यह एक नमूना तुमको मैंने दिखाया। प्रातर्गेय तान कहने से शीघ्र ही उत्तरांग की ओर लौटना पड़ता है। जैसे—'प, प ध प, ग प ध प, नि ध प सां ध प, रें सां ध, नि ध प, ग ग प, प, ध ध, सां ध प, ग प, ध प ग रे सा' पर यह सब तथ्य तुमको पहले ही मालूम हो गया है, ऐसा दिखता है। क्योंकि तुम धड़ाधड़ ऐसी तानें रचने लगे हो। वास्तव में अपने संगीतशास्त्र के समान मनोहर एवं सुलभ दूसरा शास्त्र शायद ही कोई होगा, ऐसा जो कोई कहते हैं, उनका कहना अनुचित नहीं। ज्यों ज्यों गहराई में जाओगे त्यों त्यों अवर्णनीय रसास्वादन करोगे। हाँ, अच्छी याद आई, मुझे एक भारत प्रसिद्ध गायक ने टंकी का स्वरूप एक और ही प्रकार से कहा था, उसे कहूँ क्या ?

प्रश्न—जरूर कहिये।

उत्तर—वह ऐसा है—

'ग ग रे सा। सा रे सा ऽ। नि रे ग रे। ग प ऽ प। प ध प ग। रे ग प ध। प ग रे प। ग रे सा ऽ॥' एकाध बार वह कहीं-कहीं प ध प नि। सा ऽ रे सा। रे रे प ग। रे ग ध प। मं ग रे प। ग रे सा ऽ। ऐसा भी करता था।

प्रश्न—यानी अवरोह में थोड़ा सा तीव्र मध्यम लगाता था ?

उत्तर—हाँ, उसका यह प्रकार यद्यपि विशेष श्रीअङ्ग परिप्लुत किसी को न मालूम पड़े तो भी वह स्वतंत्र है और सायंगेय भी है, यह कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

प्रश्न—उस गायक ने अपना अन्तरा कैसा गाया ?

उत्तर—हाँ, उसमें भी उसने कुछ खूबी ही रक्खी थी। उसने अपने अन्तरा का प्रायः सब भाग मध्य सप्तक ही में रक्खा था, कैसे ? यह देखो—रे रे ऽ सा। रे सा रे ग। रे सा ऽ प। ऽ प ध प। ऽ सां ऽ नि। ध प नि ध। प ग रे प। ग रे सा ऽ। इ० उसने अपने प्रकार का नाम 'श्रीटंक' कहा था। उसका यह नाम मुझे एक तरह पसन्द भी आया यह तुम उपरोक्त बातों से समझ ही गये होगे।

प्रश्न—हमारे टंकी का किसी ने शास्त्राधार मांगा तो उसे हम कौनसा देंगे ?

उत्तर—अर्वाचीन आधार यदि चाहो तो यह स्पष्ट है। देखो—

पूर्वीमेले सुविख्याता रागिणी टंकिका मता ।
भार्या संकीर्तिता लोके श्रीरागस्यैव पांशिका ॥
श्रीरागांगेन सा लक्ष्ये यतः सर्वत्र लक्षिता ।
गानं चाभिमतं तस्याः सायंकाले प्रतिष्ठितम् ॥
मालवी त्रिवणा गौरी पूर्वी टंकी तथैव च ।
मता एता बुधैः पंच श्रीरागस्य वरांगनाः ॥
महीनामथवा पूर्णां केचिदन्ये विदो विदुः ।
त्रिवेण्यां रिस्वरो वादी ह्यतस्तस्या भिदा स्फुटा ॥
वादिभेदाद्रागभेद इति लक्ष्यविदां मतम् ।
सर्वत्रैव प्रसिद्धं तन्महद्वैचित्र्यकारणम् ॥ लक्ष्यसंगीते ।

पूर्वीमेले संस्थिता सा तु टंकी ।
संपूर्णाऽसौ पंचमांशा प्रसिद्धा ॥
संवाद्यस्यां प्रोच्यते चर्षभोऽयं ।
सायंकाले गीयते गीत्यभिज्ञैः ॥ कल्पद्रुमांकुरे ।

त्रिवेणीसदृशा टंकी महीना रिधकोमला ।
श्र्यंगेन गीयते सायं रिपसंवादिवादिनी ॥ चंद्रिकायाम् ।

कोमल धैवत रिखब है मध्यम सुरन लगाइ ।
परिवादी संवादितें टंकी गुनिजन गाइ ॥ चंद्रिकासार ।

ये सब आधार, तुम जो टंकी गाओगे उसका समर्थन अच्छी तरह करेंगे । प्राचीन आधार जो मैं अब कहने वाला हूँ वे तुमको ऐतिहासिक दृष्टि से उपयोगी होंगे । अनेक संस्कृत ग्रन्थकार पहले तो राग का नाम 'टक' कहेंगे और फिर उस राग में मध्यम शुद्ध रक्खेंगे । यह भी एक महत्व का विषय ध्यान में रक्खो ।

प्रश्न—प्रतापसिंह इस राग के विषय में क्या कहता है ?

उत्तर—उसके कहे हुये लक्षणों से पहले 'संगीत दर्पण' में कहा हुआ यह लक्षण तुम्हारे आगे रखता हूँ । इससे तुमको यह भी मालुम हो जायगा कि दोनों में कितना साम्य है ।

टंका स्यात्तु त्रिधाषड्जा संपूर्णा चादिमूर्छना ।

ध्यानम् ।

शय्यासु सुप्तं नलिनीदलानां,
वियोगिनी वीक्ष्य विषण्णचित्तम् ।
सुवर्णवर्णा गृहमागता सा
कांतं भजन्ती किल टंकसंज्ञा ॥
मेघभार्या ।

उदाहरणम् ।

सा रे ग म प ध नि सा ॥ संगीत दर्पणे ॥

प्रतापसिंह ने 'श्रीटंक' को मेघ की रागिनी माना है । उनका विस्तृत लक्षण सुनो— 'मेघराग की पाँचवी रागिनी श्रीराग की उत्पत्ति लिख्यते । पार्वतीजी ने (कारण कि छटवाँ मेघ राग श्री पार्वती ने उत्पन्न किया) उन रागन में सों विभाग करिबे को । इ० शास्त्र में याको टंकी लौकिक में श्रीटंक कहे हैं । कमलनी के दल की सेज पे सोवें हैं । और वियोगिनी है, उद्विग्न जाको चित्त है । ऐसी अपनी प्रिया को देखिकें वाको संभाषण करिबे को उत्कंठित । ऐसो जो सुवर्णकोसों जाको देह को रंग है और अपने घर में आयो । ऐसो जो राग ताहीं श्रीटंक जानिये । शास्त्रन में तो सात सुरन सों गाई है । स रि ग म प ध नि स । यातें संपूर्ण हैं । याको दिन के दूसरे प्रहर की दूसरी घड़ी में गावनी ।×। यह राग शुद्ध है । याकी आलापचारी'''इ० ।' दर्पण के इतने आधार से राजा साहब ने टंकी का थाट "सा रे॒ ग मं प ध॒ नि सा" ऐसा खोज निकाला और आलापचारी प्रायः इस तरह ढकेली—"सा रे॒ नि॒ ध॒ नि॒ सा, नि॒ ध॒ प, मं प नि॒ ध॒ नि॒ रे॒ नि॒ सा रे॒ ग रे॒ सा ।" अस्तु, इस टंकी के रास्ते में भी हम न जावें तो अच्छा ।

संगीत कल्पद्रुमकार ने टंकी की मूर्ति संगीत दर्पण की ही पसन्द की; परन्तु उसे हनुमन्मत में इस तरह खींचकर रख दिया:—

ऋषभांशग्रहन्यासा संपूर्णा हनुमन्मते ।
संध्याकाले प्रगातव्या श्रीरागस्य वरांगना ॥
त्रिवेणी श्रीगौरी बहुरी चेती टंकी मान ।
चौथे प्रहर दिन अंत में श्रीटंक कर गान ॥

तरंगिण्याम्:—

पूर्वा श्रीरागयुक्ता चेत् कानरा किंचिदेशतः ।
भैरवात् किंचिदादाय तदा टंकः प्रवर्तते ॥

हरिवल्लभ (संगीतदर्पण में) कहता है:—

है सुर तीनों खरज तें अरु संपूरन अङ्ग।
कविजन ऐसे कहत हैं टंका रागिनि रंग ॥

हरिवल्लभ ने वस्तुतः दर्पण का ही हिन्दी भाषान्तर किया है और वहाँ के श्लोकों के स्थान पर "सवैया" गीत बना दिये हैं, यह मैंने पहले ही सूचित किया था। उसने राग-रागिनी के जो स्वरूप कहे हैं, उनमें से कुछ तुम्हारे लिये उपयोगी हो सकते हैं। वह रूप उसने ग्रन्थों से ही एकत्रित नहीं किये हैं, अपितु बहुत कुछ प्रचलित आधार से भी लिये हैं, ऐसा दीखता है। उन रूपों का समर्थन उसके कहे हुये लक्षणों से नहीं होगा। विवादग्रस्त तथा अप्रसिद्ध रागों के रूप तो उसने बिलकुल छोड़ दिये हैं। शुद्ध स्वरमेल वह 'बिलावल थाट' मानता था, यह स्पष्ट दीखता है। उसने अपने तीव्र कोमल स्वर नहीं बताये यह भी एक समस्या है। इससे विवाद का कारण उत्पन्न होता है।

प्रश्न—तो फिर 'शास्त्र प्राचीन और रूप नवीन' यही कहिये न ?

उत्तर—हाँ, ऐसा कहा जा सकता है। शास्त्र व प्रचार में असमानता हो तो हमको उसका अधिक आश्चर्य नहीं मालूम होगा, पर शास्त्र कुछ भी न समझते हुये उसके नीचे स्वर स्वरूप रख देने वाले लेखकों के साहस को देखकर हमें आश्चर्य मालूम होता है। अब सौ-दो सौ वर्ष पहिले के लेखकों को देखते हैं, तो हमें वे ढोंग चलाते हुये से दिखाई देते हैं। 'शास्त्र में तो ये सुर कहे हैं' ऐसा कह कर 'बाकी आलापचारी ऐसी है' कहने वाले भी उसी श्रेणी के हैं। 'आसफी' 'सरमाए अशरत' वगैरह भी इनसे विशेष अलग नहीं हैं। और इधर का एक नमूना देखो—

"श्रीराग-इसमें सुर गुरु खरज है, वादी पंचम, संवादी ऋषभ, अंवादी निषाद, ववादी गंधार मध्यम, धैवत शुद्ध है जिसमें गन्धार मध्यम तीव्र व धैवत सकारी लगता है। वक्त दिन का तीसरा प्रहर। आदु है। जिसके खास स्वर ये हैं—सा रे प ध ग। स्वर ये लगते हैं—खरज शुद्ध, रिषभ सकारी, गंधार तीव्र, मध्यम तीव्र, धैवत सकारी, निषाद तीव्र। और बाजे ग्रन्थों में श्रीराग ४ सुर का भी लिखा है। जिनके स्वर ये हैं—सा रे प नि। मारग व शुद्ध है। मुरक्कित्र है बड़हंस तनक गौरी से। बाजे ग्रन्थों में शंकराभरन मालसरी से भी लिखा है। मौसम हेमंत रितु। तासीर खुशी पैदा करे पुष्पकान-माली खोली या बीमारी रफे करे। यह राग महादेवजी के पच्छिम के मुख से पैदा हुआ है। इसके गाने सें सूका वृक्ष हरा हो जावे, स्वर सच्चे और असल लगने से। उदाहरण—सा रे॒ रे॒ प प ध॒ प ग रे॒ सा ध़ ध़ सा, सा, रे॒ रे॒. सा, ग रे॒ ग रे॒, सा ॥ प म॑ ध॒ सां, सां, सां ध॒ सां, सां नि ध॒ प, म॑ प, ध॒ प, म॑ ग रे॒, ग रे॒, सा ॥ ६० । त्रिवेणी-हिंडोल राग की भार्या है। सुरगुरु रिषभ है, वादी पंचम, संवादी गन्धार, अंवादी धैवत। खादु है। जिसके खास स्वर हैं—रे सा प ग नी। वक्त तीसरे पहर का। शुद्धसंकीरन है। स्वर ये लगते हैं—खरज पंचम शुद्ध, रिषभ सकारी, गंधार मध्यम धैवत निषाद तीव्र। मुरक्कित्र है देशकार गौरी पूर्वी सें। मौसम बसंत रितु। तासीर खुशी पैदा करे।"

इन लोगों में से किसी किसी को प्रचलित संगीत की अच्छी जानकारी होती है, परन्तु ये उसे व्यर्थ ही अपने ऊटपटाँग शास्त्र में मिलाकर पाठकों को भ्रम में डाल देते हैं। अस्तु, 'सारामृत' में ऐसा कहा है:—

टक्को मालवगौलीयमेलोद्भूतोऽल्पपंचमः ।
पूर्णः षड्जग्रहादिश्च गेयोऽन्हः पश्चिमे बुधैः ॥

शार्ङ्गदेव की व्याख्या ऐसी है:—

षड्जमध्यमयासृष्टो धैवत्या चाल्पपंचमः ।
टक्कः सांशग्रहन्यासः काकल्यंतरराजितः ॥

प्रश्न—इन दोनों मतों में कुछ सादृश्य है क्या ?

उ०—हमने रत्नाकर के रागों के विषय में निर्णय करना स्थगित कर दिया है, इसलिए ऐसा तर्क नहीं करेंगे ।

सद्रागचन्द्रोदये:— (मालवगौडमेले)

सांशग्रहान्तोऽन्तरकाकलीकः ।
पूर्णोंत्ययामे क्रियते हि टक्कः ॥

रागलक्षणे:—

धेनुकामेलसंजातो ढक्कराग इतीरितः ।
रिवर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम् ॥

'धेनुकामेल' दक्षिण की पद्धति में ७२ थाटों में से ६ वां थाट है। वह अधिकतर अपने भैरवी थाट के समान है; परन्तु उसमें निषाद तीव्र है।

मेषकर्णकृत रागमाला में ऐसा कहा है:—

कानरो नटकेदारौ जालंधरगजाधरौ ।
टंकः सुहुरच शंकराभरणो मेघमल्लवः ॥

पुण्डरीककृत रागमालायाम्:—

टक्कश्च देवगांधारो मालवः शुद्धगौडकः ।
कर्णाटवंगाल इति श्रीरागस्य तनूद्भवाः ॥

पुण्डरीक ने ऐसा भी कहा:—

नृत्यासक्तः सहिष्णुर्नयनगतिगनिः सादिमध्यांतपूर्णो ।
वक्षोहारं सुरत्नं मुकटकमुकुटं चित्रवस्त्रं दधानः ॥
गौरः कामी सुटक्को मदनमदभरश्चंदनालिप्तदेहः ।
पुष्पाणां कंदुहस्तो विचरति चतुरः कामदूतः सदासौ ॥

सुरतरंगिणी:--सिरीराग कानर मिले भैरव को ले अंश।
तहां टंक पहचानिये कहे बुद्धि अवतंस॥

पाडवो टक्करागास्तु ह्यारोहे च रिवर्जितः।
अवरोहे निवर्ज्यः स्यात् सग्रहो गीयते सदा॥
आरोहेऽप्यवरोहे चक्वचित् स्यादल्पपंचमः॥ प्रदर्शिन्याम्॥

प्र०—अब टंकी राग हमको एक बार गाकर दिखाइये तो बस……।

उ०—अच्छा, सुनो!

टंकी—शूलताल

रे रे । सा सा । नि़ नि़ । रे रे । सा ऽ
×
नि़ रे । ग रे । ग प । ग रे । सा ऽ
नि़ रे । ग रे । ग प । ऽ प । धु प
धु नि । धु प । ग रे । प ग । रे सा

अन्तरा—

रे रे । सां ऽ । सां सां । नि रें । सां ऽ
नि रें । गं रें । सां ऽ । रें नि । धु प
रे रे । प ऽ । धु प । रें नि । धु प
धु नि । धु प । ग रे । प ग । रे सा

श्रीटंक—त्रिताल

ग रे सा सा । नि़ रे सा ऽ । नि़ रे ग रे । ग प ऽ प
प धु प नि । धु प ग रे । प ग रे प । ग रे सा ऽ

अन्तरा—

रें रें सा ऽ । रे सा रे ग । रे सा ऽ प । धु प सां ऽ
रें नि धु नि । धु प धु प । ग प ग रे । प ग रे सा

टंकी—शूलताल (मध्यम सहित)

ग ग । रे सा । रे रे । सा रे । रे सा
नि़ रे । ग रे । ग ऽ । मं ग । रे सा
सा सा । प प । धु प । नि धु । प प
प मं । ग रे । ग प । ग रे । सा ऽ

अन्तरा—

प	प	।	ध॒	प	।	नि	नि	।	सां	ऽ	।	रें॒	सां
नि	नि	।	रें॒	गं	।	रें॒	सां	।	रें॒	नि	।	ध॒	प
मं	ग	।	रे॒	ग	।	प	प	।	रें॒	नि	।	ध॒	प
सां	नि	।	ध॒	प	।	ग	रे॒	।	प	ग	।	रे॒	सा

प्रचार में कोई और भी एकाध प्रकार दिखाई दे तो उसे भी तुम्हें लक्ष्य में रखना चाहिये। श्रीटंक और सौराष्ट्र टंक ये स्पष्ट भिन्न राग हैं, यह तुम्हें स्मरण होगा ही।

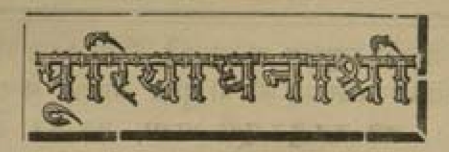
प्र०—हाँ, हाँ, यह हमें ठीक तरह से ध्यान है, कहां तो भैरवांग का वह प्रातःकालीन राग सौराष्ट्रटंक और कहां यह श्रीअङ्ग का श्रीटंक, ऐसा भ्रम हमको कभी भी नहीं होने का।

उ०—ठीक है! तो फिर इस टंकी के विषय में अब और नहीं कहते। Willard साहब टंकी के अवयव 'श्री, कान्हड़ा और भैरव' कहते हैं तथा त्रिवेणी के नटनारायण, जंतश्री और सुनरु कहते हैं। यहां एक बात और याद आई, थोड़े दिन हुए मुझे एक प्रसिद्ध खां साहब ने टंकी गाकर दिखाई थी, उसका स्वरूप कुछ ऐसा था—

ध॒ ध॒ प, ग प, ग रे॒ सा ऽ सा। नि़ सा नि़ रे॒ सा नि़ ध़॒ नि़ ध़॒ प़। प़ प़ ध़॒ नि़ सा रे॒ रे॒ सा ग रे॒। ग प ध॒ प ग प ग रे॒ रे॒ सा। प ग प ध॒ प सां ऽ नि रें॒ सां। नि सां रें॒ रें॒ सां गं रें॒ सां रें॒ नि। ध॒ प नि ध॒ प ग प ग रे॒ सा। सां नि ध॒ प ग प ग रे॒ रे॒ सा। (झंपताल)

प्र०—अब कौनसा राग लिया जायगा?





उ०—अब पूरियाधनाश्री लेते हैं। यह नाम पिछले प्रसङ्ग में आया था। पूरिया-धनाश्री प्रसिद्ध रागों में गिना जाता है। यहां तुमको एक मतभेद कहे देता हूँ, वह तुम्हारे ध्यान में रहेगा तो अच्छा है। कुछ गायक-वादक पूर्वी में धैवत तीव्र मानते हैं, ऐसा मैंने कहा था, वह तुम्हें याद होगा ही। उस मत के लोग हमसे कभी-कभी यह कहते हैं कि संधिप्रकाश थाट जिसे हम 'पूर्वी' और 'मारवा' मानते हैं, वैसा उसे न मानकर उसकी जगह पूरियाधनाश्री और पूर्वी माना जाय तो अधिक सुविधाजनक होगा, ऐसा करने से हमको दोनों जनकमेल सम्पूर्ण जाति के मिल सकेंगे। यह मत अपने लिए ग्रहण करने योग्य नहीं है। यह अलग बताने की जरूरत नहीं कि अपने यहां पूर्वी में कोमल धैवत लगाने का व्यवहार प्रसिद्ध है और वह हमारे लिये ठीक है, इस वास्ते हम 'लक्ष्य-सङ्गीत' का ही मत स्वीकार करके चलेंगे।

प्र०—इस राग का जब 'पूरियाधनाश्री' ऐसा नाम है, तो इसमें 'पूरिया' और 'धनाश्री' इनका योग है कि नहीं ?

उ०—ऐसा कहने वाले भी तुमको यदा-कदा मिलेंगे। उत्तर की ओर मुझे इस मत के एक पंडित मिले थे। जिस अर्थ में पूरिया और धनाश्री अभी तक मैंने तुमको नहीं बताये, उस अर्थ में तुम्हारे पूछे हुए प्रश्न पर जल्दी ही चर्चा न हो सकेगी। पूरिया मारवा थाट का राग है। धनाश्री हम काफी थाट में मानते हैं। यह जानकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि ऐसे भिन्न मेलों के संयोग से पूर्वी थाट की पूरियाधनाश्री कैसे उत्पन्न हुई होगी ?

प्र०—हां, यह शंका भी स्वाभाविक है।

उ०—ठीक है, पर उस विषय पर अभी हम नहीं बोलेंगे। यह पूरिया नाम अपने यहां बहुत प्राचीन है। तरंगिणी में लोचन पंडित ने इसे कहा है। पूरिया का सविस्तार वर्णन अगले थाट के रागों में आयेगा ही।

प्र०—किन्तु ठहरिये तो, पूरिया और धनाश्री इन दोनों रागों में धैवत तीव्र है न ?

उ०—तुम्हारी शंका मैं समझ गया, परन्तु पूरियाधनाश्री में वह कोमल है, इसमें मतभेद नहीं। पूरिया का धैवत कोमल हो, ऐसा कुछ गायकों का मत किसी समय था; परन्तु अब वह विवाद मिट गया है, ऐसा कहा जा सकता है।

प्रश्न—पूरियाधनाश्री राग हमें किस राग के समान अधिक दीखेगा ?

उत्तर—वह तुमको कुछ-कुछ पूर्वी राग जैसा जान पड़ेगा, तथापि, पूर्वी से भी तुम उसको सहज ही अलग कर सकोगे। पूर्वी में हम दोनों मध्यम लगाते हैं और पूरिया-धनाश्री में शुद्ध मध्यम का स्पर्श भी नहीं चल सकता। कभी-कभी ध्रुपद गाने वाले लोग अपनी पुरानी चीजें तीव्र मध्यम से ही गाते हुए तुम्हें मिलेंगे, परन्तु उनके ध्रुपद में गांधार बढ़कर पूर्वी स्वरूप को बहुधा अच्छी तरह पहचानने में सहायक होता है। पूर्वी और

पूरियाधनाश्री इन रागों में स्वर समुदाय साधारण है, ऐसा कहना गलत न होगा। मैं समझता हूं, पूर्वी में दोनों मध्यम लगाने की जो युक्ति गायकों ने रक्खी है वह बहुत ही दूरदर्शिता की द्योतक है। जब-जब तुम पूर्वी गाओ, तब-तब दोनों मध्यम अवश्य लगाते चलो। ऐसा करने से अनेक सायंगेय राग दूर रहेंगे—"नि सा रे ग, रे ग, मं ग, प मं ग, रे ग मं ग, रे सा" इस तरह से भी तुम पूर्वी संभाल सकते हो, परन्तु 'नि, सा रे ग, म ग, प मं ग, म ग" यह स्वर कान में पड़ते ही फिर श्रोताओं को कुछ शंका रह सकती है क्या? मैं नहीं समझता कि कुछ शंका रहेगी। यह कोमल मध्यम चाहे जिस दर्जे का हो, राग स्वरूप तुरन्त ही स्वतन्त्र होगा।

प्रश्न—पूरियाधनाश्री में वादी स्वर कौनसा रक्खा जायगा?

उत्तर—उसमें वादी पंचम है और पूर्वी में वादी गांधार है, कोई कहता है कि धनाश्री में पंचम वादी होता है, इस वास्ते पूरियाधनाश्री में भी वही स्वीकार किया जाता है, इस कथन में क्या रहस्य है? यह तुमको आगे चलकर ज्ञात होगा।

प्रश्न—इस राग में कौनसा अङ्ग लाया जायगा?

उत्तर--इसमें "श्री" अङ्ग मत लावो, अथवा इसमें पूर्वी अङ्ग संभाला जायगा, ऐसा कह सकते हैं। गांधार का परिमाण पंचम की अपेक्षा सदैव कम रखने का यत्न करो तो आप ही आप राग का इष्ट स्वरूप उत्पन्न होगा।

प्रश्न—जिस अर्थ में पूरियाधनाश्री राग पूर्वी के समान थोड़ा बहुत दिखाई देना सम्भव हो, उस अर्थ में उसमें स्पष्ट रागवाचक भाग कुछ हो, तो उसे हमको बता दीजिये तो अच्छा होगा।

उत्तर--पूरियाधनाश्री में यह भाग अपने गायक अवश्य लगाते हैं, देखो--प, प धु प, मं रे ग, मं धु मं ग, रे, सा।" यह टुकड़ा पूर्वी में कहीं-कहीं आगया तो राग भ्रष्ट होगा, ऐसा मैं नहीं कहता। किन्तु पूरियाधनाश्री में तो यह अवश्य आना चाहिये, ऐसा जानकारों का मत है।

प्रश्न--हम पूरियाधनाश्री कैसे शुरू करें?

उत्तर--इसका कोई निश्चित उठाव तो नहीं है, परन्तु साधारण ढङ्ग ऐसा रक्खो कि अपने राग को श्रोतागण जितनी जल्दी समझ सकें उतना ही अच्छा। अब यह एक उठाव देखो--"सा, प, प, मं प धु प, मं ग, मं रे ग, मं धु प, सां, रें नि धु प, मं ग, धु मं ग, रे, सा" इसमें मैं कैसे-कैसे रुकता हूं, उसे ध्यान से देखो 'मं रे ग' 'रें नि धु प' 'धु मं ग, रे, सा'। इस भाग का उच्चारण करने में बड़ी विशेषता है। इस राग में निषाद का परिमाण भी कुछ कम ही रक्खा जाय। कुछ गायक अपना ख्याल 'ग, मं धु, मं ग, रे सा' इस तरह से शुरू करते हैं, परन्तु फौरन ही पंचम की ओर जाने का प्रयत्न कर सावकाश रीति से 'नि सा, ग प, प धु प, मं रे ग'। यह रागवाचक भाग सुनने वालों के सामने रखते हैं, तो फिर उनको इस राग के विषय में शंका नहीं रहती।

प्रश्न—तो फिर पूरियाधनाश्री का स्थूल अथवा संक्षिप्त स्वरूप 'सा ग, मं धु, नि रें नि धु प, धु प. मं ग, मं रे ग, धु मं ग, रे, सा'। ऐसा अभी हम ध्यान में रक्खें तो कैसा ?

उत्तर—ऐसा करना तुम्हारे हित में ही होगा। इस अङ्ग का वह समुदाय जो मैंने पहिले बताया था उसे भी युक्ति से जोड़ दिया जायगा। जैसे—'सा, प प, मं धु प, मं प, नि धु प, मं ग, मं रे ग, मं धु, रें नि धु प, मं प मं, रे ग, मं धु मं ग, रे सा।'

प्रश्न—हम समझ गये। राग का मुख्य अङ्ग, वादी स्वर और समप्रकृतिक राग, इन बातों पर ध्यान रखें तो हम चाहे जिस प्रकार को गाने का प्रयत्न करने में विचलित नहीं होंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। अच्छा, अब पूरियाधनाश्री का अन्तरा कैसे शुरू करें ?

उत्तर—उसे 'ग' मं धु प, सां, सां, नि रें सां' अथवा 'ग' मं धु मं, सां' ऐसा शुरू करो तो शोभा देगा। अगले टुकड़े के अन्त में पंचम खूब चमकता हुआ ले आवो और फिर वहां से राग का 'पकड़' श्रोताओं के सामने रखकर न्यास की ओर झुकना चाहिये। पूरियाधनाश्री राग सम्पूर्ण है, तथापि इस राग का मुख्य अङ्ग 'सा ग, मं धु, रें नि धु, प, मं रे ग'। इस भाग में कैसे लाया जाता है उसे देखो न ? 'नि रे ग मं प' यह सांयकाल की तान इस राग में तुमको बारम्बार दिखाई देगी, परन्तु वह विस्तार के लिये एवं गायक की सुविधा के लिये है, ऐसा हम समझकर ही उसे लगावें। 'प, मं ग, मं रे ग, प' यह एक छोटी सी पकड़ तुमको बताये देता हूँ। कोई गायक पूरियाधनाश्री का उठाव कभी-कभी पंचम से भी करते हैं, वह भी बुरा नहीं मालूम पड़ता।

प्रश्न—वह कैसा ?

उत्तर—ऐसा होता है—'प, प मं प, धु प, मं ग, मं रे ग, प, मं ग, रे सा' यह कृत्य बिलकुल सीधा है। 'धु प, मं रे ग' 'धु मं ग, रे सा, नि रे सा' हो सके तो यह टुकड़ा भी भूलो मत, क्यों कि यह राग भेद दर्शक' है।

प्रश्न—आया ध्यान में। इस राग में मन्द्र स्थान में जाना हो, तो कैसे जावें।

उत्तर—वहाँ ऐसा किया जाय 'नि, रे नि धु प, मं प, नि सा, ग मं रे ग' पंचम और मध्यम जिनमें बहुलत्व पाते हैं, वे राग कुछ गंभीर प्रकृति के होते हैं, ऐसा साधारण नियम ध्यान में रक्खो। इस राग का वादी पञ्चम है, इस वास्ते 'मं प, धु प, नि धु प, मं ग, मं रे ग, प, धु मं ग, रे, सा, नि रे ग, रे सा, मं प, धु प, रें नि धु प, मं मं रे ग, मं धु मं ग, रे सा' ऐसे स्वर समुदाय उसमें अच्छे दिखाई देंगे, यह प्रथक कहने की आवश्यता नहीं।

प्र०--अभी-अभी आपने अन्तरा का उठाव हमको बताया ही था, तो अब हम इस राग को गाने का प्रयत्न कर देखते हैं, यदि हमारा किया हुआ विस्तार ठीक हुआ तो उसे फिर गाकर दिखाने का कष्ट आपको हम नहीं देंगे।

उत्तर--अच्छा करो, देखता हूँ।

प्र०--प, धु, प प, मं प, धु, प, मं ग मं रे ग, मं धु मं, सां, धु नि, रें गं रें सां, नि रें नि धु प, मं धु मं ग, मं रे ग, रे प, मं ग, रे, सा॥ ग, मं धु प, सां, सां, नि रें सां, नि धु, नि रें नि धु नि धु, प, मं धु मं ग, ग, मं रे ग, धु मं ग, रे सा, नि़, रे ग, मं रे ग, प॥

विस्तार--

प प, धु धु प, मं ग, प, धु मं प, मं ग, मं रे ग, प; नि़ रे ग मं प, ग मं प, मं प, धु प, रे ग मं प, नि धु प, रें नि धु प, धु प, मं रे ग, ग, मं, धु मं ग, मं ग, रे सा, ग ग मं धु प, सां, सां नि रें गं रें सां, सां, रें नि धु प, मं धु प, मं रे ग, मं प, मं ग, रे सा; इसमें थोड़ा सा आश्रय राग का भाग भी हम शामिल करते हैं वह यदि अधिक हो जाय तो 'प, मं ग, मं रे ग, प, धु मं ग, रे सा' यह निश्चित तान स्पष्ट आगे रक्खेंगे तब विसङ्गति नहीं दिखाई देगी।

उ०—जान पड़ता है तुमको यह राग अब अच्छा सध गया। 'सा सा रे रे सा नि़ ऐसी एक जलद और कम्पित तान पूर्वी और पूरियाधनाश्री में गायक लगाते हैं, उसे भी लक्ष्य में रहने दो 'सा सा रे रे सा नि़, सा रे ग, म ग' ऐसा करोगे तो पूर्वी दिखाई देगी और 'सा सा रे रे सा नि़, रे ग, मं रे ग, प' ऐसा करोगे तो पूरियाधनाश्री दिखाई देगी। पूरियाधनाश्री में पंचम और रिषभ स्वर भिन्न-भिन्न टुकड़ों में बड़ी युक्ति से श्रोताओं के सामने रक्खे जायेंगे। कोई गायक अपनी मधुर आवाज से 'रें नि धु, प, मं ग, मं रे ग' इतने स्वरों से भी श्रोताओं के मन में राग-स्वरूप उत्पन्न कर सकता है, किन्तु उस श्रेणी पर तुम अभी नहीं पहुंचे हो। फिर भी उत्तम गायक से कुछ समय सुन कर उसका उच्चारण तुमसे उत्तम सधेगा, ऐसा मुझे विश्वास है। नवीन भाषा सीखने के समय जैसे हम प्रत्यक्ष उच्चारण की ओर देखते रहते हैं, इसी तरह इसे भी समझो। दो-तीन स्वरों का ही एक टुकड़ा होता है, पर कुशल गायक उसे भिन्न-भिन्न तरह से गाकर उसमें से भिन्न-भिन्न परिणाम उत्पन्न करता है। सङ्गीत व्याकरण का अध्ययन उत्तम होने पर फिर यह आगे की सीढ़ी है। थाट, वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम, अङ्ग नियम वगैरह यह सब शास्त्र, सङ्गीत की नींव है। प्रत्यक्ष उच्चारण की विशेषताओं का समावेश सङ्गीत कला में होता है। शास्त्र रूपी नींव के बिना कला रूपी इमारत कमजोर और निरुपयोगी होती है। शास्त्र और कला इन दोनों को जिसने साधा है वही उच्चकोटि का गायक माना जायगा। उत्तम कला साधने के लिये 'कान' और 'ध्यान' इनकी उत्तम सङ्गति चाहिये, ऐसा ज्ञाता लोग कहते हैं और वह ठीक ही है, अस्तु।

'मं रे ग' यह टुकड़ा पूरिया का लेकर उसे पूर्वी में मिलाकर पूरियाधनाश्री का रूप बनाया गया है, ऐसा मुझसे एक बड़े प्रतिष्ठित गायक ने कहा था। इसी प्रकार एक दूसरे ने कहा था कि 'जब इस राग में रे प स्वर महत्व के हैं तो उसमें रे धु अति कोमल मानकर उसका पूर्वी से भी भेद मानो।' ऐसे विधान केवल सुनाने के लिये होते हैं। जिसने अपना यह मत मुझसे कहा था, उसको मैंने पूर्वी, पूरियाधनाश्री, जैतश्री, बसन्त, परज और कालिंगड़ा में अति कोमल और कोमल रे धु इनका विभाग करने के लिये कहा तो उसे करते समय उन्होंने बड़ी धाँधली की। मेरे पास सितार था अतः उस पर मैं उसी गायक के प्रमाण से परदे कायम करता था, किन्तु जब केवल 'खड़े' स्वर आरोह और अवरोह में मैंने उसको सुनाये तो फिर वह उन स्वर स्थानों को नापसन्द करता था। मींड़, गमक, कंप, ये प्रकार रागों का थाट कायम करते समय उपयोग में नहीं लिये जावेंगे, ऐसा मैंने तुम पर प्रतिबन्ध लगाया था और यह उस गायक ने भी एक तरह से स्वीकार किया था।

प्रश्न--वह उन सूक्ष्म स्वरों को स्पष्ट भिन्न-भिन्न और निरपेक्ष लगाता था क्या ?

उत्तर--नहीं, नहीं, वह अपनी चीज को गुनगुनाकर और अपनी इच्छानुसार चाहे जहां रोककर मुझे परदा कायम करने को कहता, फिर कुछ समय बाद उस जगह को भूलकर नापसंद कर देता था, परन्तु ऐसे गोरखधन्धों की हमें क्या आवश्यकता है ?

प्र०--सो ठीक है। पूरियाधनाश्री सम्पूर्ण है, उसमें एक ही मध्यम है तथा वादी पंचम है, इतना कह देने से ही वह अन्य रागों से प्रथक हो सकता है।

उ०--हां, तुम्हारा ऐसा कथन ठीक है। अस्तु, पूरियाधनाश्री में पूर्वी का अङ्ग आगे ले आने का प्रयत्न गायक करता रहता है, इसलिये वहां श्री राग की छाया कभी भी व्यक्त नहीं हो सकती। 'रें नि धु प' ऐसी अवरोह की तान में किंचित उस राग का भास होना सम्भव है, परन्तु यह टुकड़ा अन्य रागों में भी आ सकता है। पूर्वी थाट में उत्तरांग प्रबल होते ही परज, बसंत आदि राग उत्पन्न हो सकते हैं। उसमें सारी खूबी तार षड्ज और मध्य पंचम पर अवलम्बित रहती है, इसे मैं आगे बताऊँगा ही। पूरियाधनाश्री को कोई-कोई गायक 'धनाश्री' भी कहते हैं।

प्र०—पर क्या धनाश्री का थाट पूर्वी नहीं है ?

उ०—नहीं। मैंने तो तुम्हें यह एक मतभेद बताया है। काफी थाट में 'भीम-पलासी' और 'धनाश्री' ये निकटवर्ती राग हैं। अतः इन दोनों में होने वाले भ्रम को हटाने के लिये ही उसकी वैसी समझ होगी। किन्तु हम तो प्रचार को लेकर चलते हैं और 'पूरियाधनाश्री' यही नाम स्वीकार करते हैं। लक्ष्यसङ्गीतकार भी यही कहता है—

स्वीकुर्वन्ति पुनः केचिदेनां धन्याश्रिकां स्वयम्।
काफीमेलोद्भवा तेषां मते भीमपलासिका ॥
भवत्वेतन्मतानैक्यं वयं लक्ष्यानुवर्तिनः।
पर्याधनाश्रिकामेव स्वीकुर्मो रागिणीमिमाम् ॥

'धनाश्री' राग पूर्वी थाट में गाने वाले गायक मैंने भी सुने हैं।

प्र०--धनाश्री में तुम कोमल रिषभ धैवत किस आधार से लगाते हो? ऐसा आपने उनसे शायद पूछा नहीं था।

उ०—तुम भूलते हो। रागतरंगिणीकार लोचन पण्डित के गौरी संस्थान के राग जो मैंने पहिले कहे थे, उस समय उसमें 'त्रिवण: स्यान्मूलतानी धनाश्रीश्च बसंतक:।' यह श्लोकार्ध मैंने पढ़कर सुनाया था न?

प्र०—हां, हां, वह याद है। तो फिर मेरी समझ में पूरियाधनाश्री को संधिप्रकाश रूप देना बिलकुल निराधार नहीं ठहरता।

उ०—नहीं, वह निराधार नहीं है। तरंगिणीकार ने यदि अपना पूरिया राग भी गौरी थाट में ही कहा होता तो अपना समाधान अधिक होता; परन्तु उसे उसने यमन थाट में रक्खा है, इसलिये कुछ विवाद पैदा हो सकता है। आज पूरिया में तीव्र रिषभ स्वीकार करने के लिये कोई भी तैयार नहीं है, तथापि जब लोचन पण्डित पूरियाधनाश्री ऐसा स्वतन्त्र प्रकार नहीं कहता तो उसका पूरिया राग हमारे लिये बिलकुल बाधक नहीं है।

प्र०—यह भी ठीक है। अच्छा, लोचन पण्डित ने अपने धनाश्री का आरोहा-वरोह कैसा कहा है?

उ०—वह उसने नहीं कहा। धनाश्री थाट के स्वरमात्र उसने स्पष्ट पूर्वी थाट के कहे हैं।

प्र०—यह कैसे हो सकता है? अच्छा, गौरी थाट में जब धनाश्री मानी है तो उसमें मध्यम कोमल नहीं होगा क्या? पूर्वी थाट वाली धनाश्री का मध्यम तीव्र है तो क्या वह पण्डित दो प्रकार की धनाश्री मानता था?

उ०—तुम्हारी शंका ठीक है, पर तरङ्गिणी में तो ऐसा ही हुआ है। पीछे मैंने एक श्लोकार्ध कहा ही था, अब धनाश्री मेल वर्णन सुनो:—

ऋषभः कोमलो गस्तु द्वे श्रुती मध्यमस्य चेत्।
गृह्णाति द्वे श्रुती मश्च पंचमस्य विशेषतः॥
धैवतः कोमलो निश्च षड्जस्य द्वे श्रुती तथा।
गृह्णाति रागिणी रम्या धनाश्रीर्जायते तदा॥

प्रश्न—इस धनाश्री थाट में उसने जन्य राग कौन-कौन से कहे हैं?

उत्तर—इस सम्बन्ध में वह इतना ही कहता है—

"धनाश्रीस्वरसंस्थाने धनाश्रीर्ललिस्तथा"

पूरियाधनाश्री—झंपताल

प प । म॑ ध॒ प । म॑ ग । म॑ रे॒ ग ।
सा ग । म॑ ध॒ म॑ । ग ग । रे॒ रे॒ सा ।
नि़ रे॒ । ग रे॒ ग । प प । म॑ ध॒ प ।
म॑ ध॒ । नि रें॒ नि । ध॒ प । म॑ रे॒ ग ॥

अन्तरा—

म॑ ग । म॑ ध॒ प । सां ऽ । सां रें॒ सां ।
सां सां । नि ध॒ ध॒ । रें॒ नि । ध॒ नि ध॒ ।
प म॑ । ग म॑ रे॒ । ग ग । रे॒ रे॒ सा ।
नि़ रे॒ । ग रे॒ ग । प~ प । म॑ ध॒ प ।
म॑ ध॒ । नि रें॒ नि । ध॒ प । म॑ रे॒ ग ।

त्रिताल—

नि़ रे॒ ग म॑ । प ध॒ म॑ प । म॑ ग म॑ रे॒ । ग ऽ ऽ ऽ ।
रे॒ ग ऽ म॑ । ग रे॒ सा ऽ । ध॒ प म॑ ग । म॑ रे॒ ग ऽ ॥

अन्तरा—

म॑ ग म॑ ध॒ । प सां ऽ सां । नि रें॒ सां ऽ । रें॒ नि ध॒ प ।
रें॒ नि ध॒ नि । ध॒ प ध॒ प । म॑ ग म॑ रे॒ । ग ऽ ऽ ऽ ।
रे॒ ग ऽ म॑ । ग रे॒ सा ऽ । ध॒ प म॑ ग । म॑ रे॒ ग ऽ ॥

अब आगे और राग विस्तार करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, क्योंकि तुम इतने से समझ ही गये होगे।

प्रश्न—हाँ, यह राग अब हम अच्छी तरह समझ गये। अब अगला लीजिये।



जैतश्री

उत्तर--अब हम 'जैतश्री' के विषय में बोलेंगे। संस्कृत ग्रन्थों में जैतश्री, जयश्री, जयन्तश्री वगैरह नाम जो हम देखते हैं, क्या वे सब एक ही प्रकार के नाम हैं? यह हमें अब देखना है। जैतश्री राग यद्यपि अप्रसिद्ध स्वरूपों में नहीं गिना जाता, तथापि यह भी न समझना कि वह प्रत्येक गायक को आता ही है। केवल उच्च घराने के गायक ही उसे गाते हुये मिलेंगे। यह एक बहुत रक्तिदायक प्रकार है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

प्रश्न--हम से कोई पूछे तो हम यही कहेंगे कि हमको तो बाबा! यह संधिप्रकाशोचित राग सभी मनोहर जान पड़ते हैं, प्रत्येक की अपनी विशेषता निराली है तथा प्रत्येक का नियम स्वतन्त्र है।

उत्तर--तुम्हारा यह कथन भी गलत नहीं है। कुछ अन्शों में यह उस समय का ही महात्म्य होगा। सन्धिप्रकाश रागों का सम्बन्ध, स्थूल प्रमाण से ही क्यों न हो, यदि वह रसों से मिला दिया जाता तो एक इष्ट कार्य पूरा होजाता।

प्रश्न--आपने इतना भ्रमण किया, उसमें इस विषय पर कोई बोलने वाला आपको नहीं मिला?

उत्तर--वैसे निराधार तर्क करने वाले मिले भी तो उनका क्या उपयोग! एक पण्डित ने कहा—पण्डित जी। गाने के रस मैं तीन ही मानता हूं वे ऐसे हैं, १-शृंगार, २-वीर, ३-करुण। गाने के मुख्य वर्ग भी तो तीन नहीं हैं क्या?

प्रश्न--वे कौनसे महाराज?

उत्तर--घबराओ मत। वे तुम्हारे 'रेध तीव्र' 'रेध कोमल' और 'ग नि कोमल' यही वे मानते थे।

प्रश्न--इनमें वे अपने रस किस तरह लगाते थे?

उत्तर--वे बोले—तीव्र रे, ध वर्ग (यानी यमन, बिलावल, खमाज थाटों के रागों को) शृंगार रस के अनुकूल माना जाय। रे, ध कोमल वर्ग (अथवा सन्धिप्रकाश वर्ग) करुण (व शान्त) रस के अनुकूल माना जाय और ग नि कोमल वर्ग वीर आदि रसोपयोगी माना जाय। उनकी यह कल्पना किसी हद तक यदि हम लोगों को उपयोगी अथवा सयुक्तिक मालुम हुई भी तो आधार के अभाव में समाज द्वारा ग्राह्य होनी वह कठिन होगी।

प्रश्न--तो यह विषय विचार करने योग्य नहीं है क्या?

उत्तर—कदाचित् हो, परन्तु यह विवादग्रस्त भी है। ग्रन्थोक्त चित्रों से और कहीं-कहीं लक्षणों से रस निर्णय किया जा सकता है, परन्तु हम ग्रन्थगत रूपों को शास्त्रोक्त मानें तब न? परन्तु मेरी राय में ऐसे विवादग्रस्त विषयों में हम जावें ही नहीं

तो ही भला। हम अपनी जैतश्री की ओर चलते हैं। जैतश्री के नियमों के सम्बन्ध में, प्रचार में अनेक बार हमको मतभेद दिखाई पड़ता है।

प्रश्न—वह कौन-कौनसा ?

उत्तर—कोई कहता है कि जैतश्री में धैवत तीव्र लगाया जाय और यह राग मारवा थाट में गाया जाय, दूसरा कहेगा कि यह राग पूर्वी थाट का है और वह ठीक है, परन्तु उसका आरोहावरोह वह सम्पूर्ण मानेगा। तीसरे कहते हैं कि जैतश्री पूर्वी थाट में मानकर उसके आरोह में रिषभ और धैवत स्वर वर्ज्य माने जाँय, चौथे महाशय कहते हैं कि जैतश्री का थाट तो पूर्वी ठीक है परन्तु उसके आरोह में धैवत न लगाओ।

प्रश्न—शाबाश ! यह भी एक तमाशा है। अच्छा, पर अब आप क्या करेंगे ? इनमें से प्रत्येक राग स्वतन्त्र दीखता है, तो अब स्वीकार करें तो किसको ?

उत्तर—अब उसका ही तो हमें समाधानकारक निर्णय करना है। हम कैसे चलते हैं, सो देखो। पहिले जो दो मत हैं, उन्हें हम पसन्द नहीं करेंगे। जैतश्री का धैवत हम कोमल ही स्वीकार करेंगे। दूसरे मत में आरोह और अवरोह सम्पूर्ण रखने से असुविधा होगी, इस वास्ते हम उसे भी नहीं मानने के।

प्रश्न—यह बात ठीक है। आरोहावरोह सरल और सम्पूर्ण मानने से सर्व प्रथम परियाधनाश्री से ही उसका बारम्बार घपला होता रहेगा, ठीक है न ?

उ०—हां, यह तुमने ठीक कहा। तीसरा और चोथा मत हम खुशी से पसन्द करते हैं। इन दोनों मतों का गाना भी मैंने सीखा है। मेरे गुरु को भी ये दो मत पसन्द थे, वे बिलकुल स्पष्ट हैं और बहुत ही उपयोगी हैं।

प्र०—उनकी सहायता से पूर्वी, गौरी, श्री, मालवी, त्रिवेणी, टंकी वगैरह समस्त राग दूर होंगे। ठीक है न ? मध्यम गया तो रेवा, त्रिवेणी, टंकी ये आगे आयेंगे और यदि वह हुआ अथवा दोनों ओर से हुआ तो उसकी ओर देखना ही नहीं है। आरोह में रे, ध छोड़ने वाले पहिले ६—७ रागों में एक भी नहीं है। यह कैसे महत्व का विषय है ?

उ०—यह तुम्हारे ध्यान में खूब आया ?

प्र०—लक्ष्यसङ्गीत में इस विषय पर क्या कहा है ?

उ०—"चतुर" कहता है:—

कामवर्धनिकामेले जेताश्रीः कीर्त्यते जने।
आरोहे रिधवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम्॥

प्र०—आपने अभी जो कहा है उसके नियम भी बतायेंगे क्या ? इन नियमों का पालन करने वाले गायक हमको मिलते रहेंगे न ?

उ०—ऐसे कोई-कोई 'ध्रुपदिये' तुम्हारी नजर में पड़ सकते हैं, ऐसा मैं कह सकता हूँ। परन्तु 'ख्यालियों में' कदाचित् वैसे नहीं दिखाई देंगे।

प्र०--उनकी तानबाजी में यह नियम बाधक होता होगा, ऐसा जान पड़ता है। 'नियम' का नाम लिया कि वे सङ्कट में पड़े, यही न ?

उ०—उनमें अच्छे ख्यालिये भी हैं, वे आरोह में धैवत वर्ज्य करने को अस्वीकार नहीं करते, पर रिषभ छोड़ने से उनको भी असुविधा होती है।

प्र०--हम समझ गये, यह पूर्वाङ्ग प्रधान राग है। इसमें धैवत की उनको विशेष परवाह नहीं होती, पर रिषभ गया तो तानों का सर्राटा तुरन्त ही कम हो जायगा, तथापि वस्तुतः देखा जाय तो यह नियम उनके लिये अधिक उपयोगी नहीं होता ?

उ०—तुम्हारा कहना अनुचित नहीं। रिषभ के नियम से 'नि़ रे॒ ग मं प, मं ग, मं रे॒ ग' और 'नि़ सा ग मं प, मं ग प ध॒ मं ग, रे॒ सा' यह प्रकार, पूरियाधनाश्री और जैतश्री इन रागों में वे धड़ाधड़ ले सकते थे, परन्तु हमको प्रचार की ओर देखना आवश्यक है, वह कैसे ? इसका निर्णय तुम स्वयं ही करो तो कोई हानि नहीं।

प्र०—जैतश्री में वादी स्वर कौनसा रक्खा जाता है ?

उ०--कोई तो गान्धार रखते हैं, कोई पंचम मानते हैं। आरोह में रिषभ धैवत वर्जित करने का नियम स्वीकार करें तो पंचम के वादित्व से पूरियाधनाश्री का भ्रम होने का कोई कारण नहीं है, यह तुम समझते ही हो।

प्र०--जैतश्री हम किस अङ्ग से गावें ?

उ०--पूरियाधनाश्री और जैतश्री इन रागों को श्री अङ्ग से नहीं गाना, ऐसा अपने जानकार गुणी लोग कहते हैं और उनका यह कहना वाजिब है। इन दोनों रागों में गान्धार स्वर आरोहावरोह में स्पष्ट और महत्व का है, और पुनः उसमें 'सा, रे॒ रे॒, सा' श्रीराग का यह प्रसिद्ध स्वरविन्यास भी नहीं होता। इसी तरह जैतश्री में यदि 'पूर्वी' अङ्ग रखना हो, तो जहां तक हो सके 'नि़ नि़, सा रे॒ ग, रे॒ ग' ऐसा नहीं करना।

प्र०--नहीं, नहीं, क्या हम इतना भी न समझेंगे ? ऐसा करते ही वहां पूर्वी आ कूदेगी, पर 'नि़, रे॒ सा, ग' ऐसा करें तो ?

उ०—यह अशुद्ध नहीं होगा, परन्तु अपने चतुर गायक प्रारम्भ ही में, पूर्वी का रंग श्रोताओं को दिखाई न दे, इसलिये अनेक बार अपनी चीजें पञ्चम से आरम्भ करते हैं, इतना ही नहीं, वे जगह ब जगह मध्यम का परिमाण कम कर 'ग प' की सङ्गति भी बीच-बीच में ले आते हैं। मेरे गुरु जी ने एक प्रसिद्ध गीत इस तरह से गाया था—
प, ग रे॒ सा, रे॒ सा, नि़, सा ग प, प, प ध॒ मं ग, मं ग, रे॒ सा, मं प़ नि़, सा, ग, मं ग, रे॒ सा; प ग रे॒ सा। प मं प, नि, सां रें॒ रें॒ सां, नि, सां, रें॒ सां, नि रें॒ नि ध॒ प, मं ग प, नि रें॒ नि ध॒ प, मं ध॒ प मं ग, मं ग रे॒ सा।

प्रश्न—जो आरोह में रिषभ लगाना पसन्द करते हैं, वे कैसा करते हैं ?

उत्तर—कुछ ख्यालिये ऐसा करते हैं— रे रे सा नि, रे ग, प, प, मं ग, मं ध प मं ग, ग, रे सा। अन्तरा ऐसे शुरू करते हैं—मं मं ग, मं ध प, सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, रें नि ध प, प मं ग, प, रें नि ध प, मं ग, मं ग रे सा। तो भी ऐसी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये कि उनके नियम उत्तम व ठीक हैं।

प्रश्न—अच्छा, यदि हम धैवत का नियम ठीक से सम्भाल लें तो फिर पूरियाधनाश्री की खास तानें शामिल करने में क्या हानि है ? मान लीजिये हम ऐसे चलें—रे रे सा नि, रे ग प मं, ध ध प ऽ, मं ग मं रे, ग रे सा।

उत्तर—सूक्ष्म दृष्टि वाले लोगों को ऐसा जरूर मालूम होगा कि तुम जैतश्री का प्रयत्न कर रहे हो, परन्तु अन्य लोगों को पूरियाधनाश्री ही मालूम होगा। ये दोनों राग अत्यन्त ही निकटवर्ती होने के कारण ऐसा परिणाम होना अधिक सम्भव है। जैतश्री राग पूरियाधनाश्री की अपेक्षा प्रचार में कम ही सुनने में आता है। जैतश्री में पंचम को बढ़ाकर गाने से 'प, मं ध मं ग, मं ग, रे सा' यह टुकड़ा योग्य रीति से गाने में सारी खूबी है। इनमें 'मं ध मं ग' ये स्वर कैसे और कितनी जल्दी मैं उच्चारण करता हूं, उन्हें ध्यान से देखलो। कोई-कोई तो इस समुदाय को जैतश्री की मुख्य पकड़ भी कहने को तैयार होंगे।

प्रश्न—हमको भी यह टुकड़ा कुछ चमत्कारिक मालूम पड़ा है। हम इसे खूब याद कर डालेंगे, तो फिर 'प, मं ग, मं रे ग' और 'प मं ध मं ग' यह, इन दोनों रागों के जीवभूत टुकड़े ही हमको समझ लेने चाहिये ?

उत्तर—हां, मैं तो ऐसा ही कहूँगा। अब धीरे-धीरे विस्तार करते चलो तो देखें ?

प्रश्न—अच्छा, प्रयत्न करता हूं—सा, नि रे सा, ग, प, मं ध मं ग, प, मं ग, मं ग, रे सा; सा रे सा। नि रे सा, ग मं प, मं ग, रे सा, ग मं ग, रे सा, प नि सा, ग मं ग, प, ध ध प, ग, मं ध मं ग, मं ग, रे सा। नि सा, ग, रे सा, प मं ग, मं ग, रे सा, प, मं ध प, मं ध मं ग, नि ध प, मं ग, मं ध मं ग, मं ग, रे सा। मं प नि सा, प नि सा, रे सा, ग रे सा, मं ग, प, मं ध मं ग, ध प, नि ध प, सां नि ध प, मं ध प, मं ध मं ग, रे सा। इस रीति से की हुई बढ़त चल सकती है क्या ?

उत्तर—मेरी राय में इसे शास्त्र दृष्टि से अशुद्ध नहीं कहा जा सकता, किन्तु अटकते हुये अथवा डरते-डरते न गावो।

प्रश्न—सो नहीं होगा। जब यह शास्त्र सम्मत है तो फिर हम क्यों डरेंगे ? एक-एक स्वर हम ऐसे बढ़ाकर देखेंगे—'ग, मं ग, नि सा ग, प ग, प, मं ग, मं ध मं ग, नि ध प, मं ध मं ग' पर यह तो बताइये 'मं ध मं ग' यह जो टुकड़ा हम कहते हैं, इसमें बारीक-बारीक कण कैसे लगते हैं ?

उत्तर—वे तुमको दिखाई दिये क्या ? वहां विलक्षण ही आनन्द है। सच पूछो तो वह टुकड़ा 'मं प, प ध प मं ग' इतने ही स्वरों का है। परन्तु उसके स्वर जल्दी गाने के लिये मैंने उनका सुलभ रूप कर दिया था। अब वे स्वयं तुम्हारी समझ में आगये

यह अच्छा हुआ। इसी तरह पंचम बढ़ाकर आगे 'मं ग' ये स्वर कहते हुये मध्यम के पहिले धैवत का एक सूक्ष्म 'कण' आता है, उसे भी ध्यान से देखो।

प्रश्न—वास्तव में वह कण अब हमको स्पष्ट दीखता है। यह बात प्रत्यक्ष सुनकर तुरन्त ही मन में पैठ जाती है, पर उसकी ओर कोई अच्छी तरह ध्यान दे तब। ठीक है न? गाते-गाते अपने गाने में हम कौनसा कण लगाते हैं—उसे बराबर देखना, रागों का नियम यथा सम्भव सम्हालना, श्रोता कहां पर नाक सिकोड़ते हैं, उधर भी ध्यान देना, नई-नई सुन्दर तानें उत्पन्न करना एवं लय ताल साधन में थकावट न दीखने देना, ऐसी कई अड़चनें बेचारे गायकों के सिर पर रहती हैं।

उत्तर—सत्य है। इतनी बातें जो साधते हैं, उनको ही श्रोता मान देते हैं। शास्त्र नियम अच्छी तरह न जानने से तो बेढंगे राग आकर मिल जाते हैं। अच्छे घरानेदार गायकों के संग्रह में उत्तम-उत्तम चीजें होती हैं, परन्तु राग नियम ठीक से न जानने के कारण उनकी तान-बाजी में प्रायः घुटाला होता है। उसी तरह कुछ गायकों की कभी-कभी ऐसी ऊटपटाँग कल्पना होजाती है कि हम दो-तीन राग तोड़-मरोड़कर, एकाध कटुवादी श्रोता के आगे रक्खेंगे तो वह हमें मान जायगा और हमारी प्रशंसा होगी। किन्तु ऐसी समझ रखने वाले गायकों को शायद यह मालुम नहीं कि आज के साक्षर श्रोता बड़े विचित्र होते हैं। अब तक जिस गायक ने इस प्रकार की कला को लौकिक व्यवहार में प्रचलित किया होगा, उसके अज्ञान की ओर समाज थोड़ी बहुत उपेक्षा दृष्टि रक्खेगा, परन्तु उसी गवैया के तैयार किये हुये नये-नये शिष्य यदि ऐसे प्रकार चालू करके समाज में अज्ञान फैलाने लगेंगे तो मैं समझता हूँ, अपने लोग अपना विरोध तत्काल दिखायेंगे। अब श्रोताओं का प्रभाव गायकों पर किस तरह पड़ने लगा है, इसका एक छोटा सा उदाहरण यदि सुनना चाहो तो मैं कहदूं, परन्तु कुछ विषयान्तर होगा। वह घटना मुझे इस जैतश्री राग के समय ही याद आई है।

प्रश्न—कोई हानि नहीं, कहिये। हमको तो ऐसी बातें महत्व की जान पड़ती हैं, और लोगों को चाहे वे कैसी भी लगें।

उत्तर—अच्छा, तो सुनोः—

कुछ दिन हुये हमारी गायन मण्डली में एक प्रसिद्ध मुसलमान गायक आया था। उसे अपने घराने का बड़ा अभिमान था और एक तरह से वह उचित ही था। उसकी इच्छा हमारे यहां 'मुजरा' करने की थी। हमारी संस्था बहुत पुरानी होने से, उसमें मुजरा करने के लिये प्रायः कुछ गायकों की हमेशा इच्छा रहती थी। मण्डली का एक दृढ़ नियम ऐसा था कि जिस किसी गायक को मण्डली में अपना मुजरा करना हो, वह पहिले अपना गायन, कमेटी के सामने दो-तीन फर्मायशी और खास रागों सहित गाकर दिखावे और तत्सम्बन्धी प्रश्न जो कमेटी पूछे, उनका यथोचित और प्रमाणिक उत्तर उसे देना चाहिये। तब फिर उस कमेटी के अनुमोदन से कार्यकारिणी सभा जौनसा दिन निश्चित करे, उसी दिन आकर उसे मुजरा करना चाहिये। इस नियम के आधार पर वह गायक उस कमेटी के आगे आया था, वहां मैं भी था। उसने प्रथम तो पूर्वी राग गाया और वह बहुत सुन्दर गाया। तदुपरान्त उसने 'जैतश्री' गाने का प्रयत्न किया।

प्रश्न—वह अच्छा मालुम नहीं हुआ होगा, ऐसा जान पड़ता है।

उत्तर—नहीं। जैतश्री के नियमों का उसे भली भाँति ज्ञान न था, यह हमको तत्काल मालुम हो गया और हम उससे आगे पूरियाधनाश्री की फर्माइश करने वाले थे। उसके गाने की किसी ने सराहना नहीं की, इससे वह बहुत क्रोधित हुआ। जैसे तैसे उसने स्थाई का भाग पूरा करके तम्बूरा नीचे रक्खा और एक दम हमसे पूछने लगा "मैंने कौनसा राग गाया था, उसे तुम पहिचानते हो क्या? इस राग को कोई ऐसा वैसा गायक नहीं गा सकता।"

प्रश्न—उसने यह प्रश्न बे ढङ्गा ही किया, ऐसा हम कह सकते हैं।

उत्तर—यह ठीक है, लेकिन उसके ऐसे प्रश्न पर हमने क्रोध बिलकुल नहीं किया, उसका भी इसमें क्या दोष? जैसा उसने सीखा होगा, वैसा ही गादिया। वे नियम उसके गुरु ने ही नहीं बताये तो उसका क्या अपराध? अपनी मेहनत सब व्यर्थ जाती हुई देखकर उसे बुरा लगा होगा, परन्तु वहाँ हम लोगों का भी क्या दोष? उसकी अनियमित तान बाजी का परिणाम हम लोगों पर न हुआ एवं हमारा मन राजी न हुआ, तो हम क्या करते? हम तो निश्चिन्त बैठे थे।

प्रश्न—अच्छा फिर आगे?

उत्तर—आगे सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा। वह कहने लगा "यदि मेरे गाने की तुमको 'कदर' नहीं तो अधिक चिल्लाते रहने से क्या फायदा? मैं तो इस मण्डली की बड़ी तारीफ सुनता था। इस जगह हमारे बड़े-बड़े नामी लोग आ चुके हैं। यहाँ कोई गुणी आता है तो उसके गुण का योग्य आदर होता है, ऐसी तारीफ भी मैंने सुनी थी। मैं एकसा चिल्ला रहा हूँ और तुम आपस में बातें कर रहे हो।

प्रश्न—फिर?

उत्तर—फिर, उसका क्रोध शान्त करने के उद्देश्य से हमारे एक मित्र कुछ आगे बढ़े और कहा—"खाँ साहेब, आपको जो बुरा लगा, वह वाजिब ही है। गाने के समय गप्पें मारना गाने का विध्वंस करना है। इसके समान गायक का और दूसरा क्या अपमान हो सकता है। हम लोग आपस में, आपके राग का नाम कायम करके आगे कुछ प्रश्न करने वाले थे, इतने ही में आपने गाना बन्द कर दिया। हम आपके राग का नाम सोच रहे हैं, परन्तु मैं समझता हूँ, यदि उसे हम तुम मिलकर निश्चय कर लें तो कैसा?" यह सुनकर उसे भी कुछ आश्चर्य मालूम हुआ, वह सोचने लगा कि यह क्या नया तमाशा है उसे भी देखना चाहिये। और तब वह राग निर्णय में भाग लेने को राजी हो गया।

प्रश्न—यह भी खूब मजे की बात रही। फिर?

उत्तर—फिर, हमारे मित्र ने अपना सिद्धांत धीरे-धीरे उन खाँ साहेब के आगे इस प्रकार रक्खा—"खाँ साहेब, तुम्हारे राग में रि, ध कोमल और ग, म, नि तीव्र हैं। इससे तुम्हारा राग संध्याकाल का अथवा रात्रि के अंतिम प्रहर का होगा, हम ऐसा समझते हैं। तुम्हारे राग में उत्तरार्ध के स्वर नहीं बढ़ते और तार षड्ज तुम्हारे राग का जीव नहीं है।

इसलिये हम उसको बसंत, परज वगैरह भी नहीं कहेंगे। क्योंकि इन रागों में दोनों मध्यम होते हैं, अतः यह तो अलग ही है।"

प्रश्न—यह बातें वह समझा या नहीं ?

उत्तर—हाँ, उसने उसी समय कहा कि, नहीं साहेब! मेरे राग का उन रागों से बिलकुल सम्बन्ध नहीं है, वह संध्याकाल का है। अस्तु, तब फिर सारी चर्चा संध्याकाल के रागों की ही रह गई। आगे सुनो—"तुम अपने राग में कोमल म बिलकुल नहीं लगाते हो तो फिर "पूर्वी" और कोमल म लगने वाला गौरी प्रकार ये राग तो होंगे ही नहीं। गांधार आते जाते स्पष्ट लगाते हो तो फिर श्री और श्री गौरी कैसे हो सकती हैं ? आरोहावरोह में तीव्र मध्यम स्पष्ट है तो फिर रेवा, त्रिवेणी, टंकी इनमें से कोई नाम भी हम कैसे रक्खें ? निषाद आते जाते लगाया जा रहा है तो फिर हमारे मत से "मालवी" भी नहीं होगी। दीपक राग तो नष्ट हो गया है, ऐसा समझकर उसे तुम गाते ही न होगे। तो फिर अब रह गये, पूरियाधनाश्री और जैतश्री। अर्थात प्रसिद्ध रागों में से यही दो बचे, ऐसा हम कह सकते हैं। पूरियाधनाश्री में हम वादी स्वर पंचम को मानकर "प, प धु प, मं ग मं रे॒ ग, प, मं ग, रे॒ सा" ऐसा मुख्य अङ्ग मानते हैं। तुम्हारे राग में यह बातें दिखाई नहीं देतीं। यह सही है कि तुम बीच-बीच में धैवत को हटाने का और ग, प संगति रखने का प्रयत्न करते हुये से दिखाई दिये थे और वहाँ जैतश्री का हमको आभास मिला था; परन्तु कुछ तानें सम्पूर्ण भी सुनाई दे जाती थीं, इस कारण जैतश्री भी हम नहीं कह सकते। तो फिर तुम्हारे राग को क्या नाम दें, यही हम सोच रहे थे। "अशुद्ध जैतश्री" ऐसा नाम तुमको भला कैसे पसन्द होगा ? पर खां साहेब, तुम्हारा नियम हमको मालूम नहीं है। हम तो अपने गुरु के व ग्रन्थों के बताये हुये नियम लगा कर यह बातें कह रहे हैं।

प्रश्न—कौन जाने, उसे यह विचारधारा कैसी मालुम पड़ी होगी।

उत्तर—वह बहुत समझदार एवं अनुभवी व्यक्ति था, इस कारण तनिक भी क्रोधित नहीं हुआ। उसने हमारे मित्र के दोनों हाथ अपने हाथों में रखकर कहा—साहब ! मैं जैतश्री ही गाता था। अब आपने जो प्रमाण और नियम इस राग के बताये हैं, इस तरह हमें भला कौन समझायेगा ? परम्परा से चले आये हुये गाने हम गाते हैं। बीच में किसी ने गड़बड़ की हो तो हमको क्या मालूम ? अस्तु। उस गायक का आगे फिर मंडली में मुजरा हुआ और उसकी योग्य प्रशंसा भी हुई।

प्रश्न—पहिले आपने कहा था कि कोई गायक जैतश्री में तीव्र धैवत लगाना पसंद करते हैं। तो हम यह जानना चाहते हैं कि वे ऐसा क्यों करते हैं ?

उत्तर—मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि "जैत" नामक एक राग मारवा थाट में गाया जाता है, इसी वास्ते वे वैसा करते होंगे, किन्तु यह यों ही मेरी कल्पना है। वह मत हमको ग्राह्य नहीं है, यह मैंने कहा ही है। प्रचार में कुछ नवीन सुनाई दे तो अपना सुन्दर नियम जल्द बाजी में कभी छोड़ने को तैयार न होना। दूसरा कोई प्रकार मालम पड़े तो मतभेद के रूप में उसे अपने संग्रह में रखना। अपने साधार मत का भी थोड़ा बहुत स्वाभिमान रहने दो। उसी तरह गायकों की कोरी 'गलेबाजी' पर भूलकर भी अपने

गुरु के अनुभव का तिरस्कार नहीं करना। ऐसी महत्व की बातों में बड़ी चतुराई से काम लेना पड़ता है। गायक लोग बहुधा स्वभावतः ही अधिक वाचाल होते हैं, उनकी लम्बी चौड़ी गप्पें सुनकर अपना स्थिर और सुनिश्चित मत बदलने को प्रवृत न होना। अच्छा कौनसा, बुरा कौनसा, खोटा कौनसा, सशास्त्र कौनसा, अशास्त्र कौनसा ? यह निश्चित करने में तनिक विलम्ब भी होजाय तो हानि नहीं। जब एक बार "साधक-बाधक" प्रमाण से अच्छी तरह देख भाल कर अपना मत स्वयं निश्चित कर डालो तो फिर उसे उचित कारण के बिना छोड़ने को कभी तैयार न होना। केवल दूसरों के मतों पर अवलम्बित वृत्ति विशेषतः लाभप्रद नहीं होता है। प्रत्येक गायक-वादक का मूल्यांकन अच्छी तरह किये बिना उसके विषय में अपना मत कायम न करो। खाली गलेबाजी में भूलकर आज 'अ' के पास, कल 'ब' के पास, परसों 'क' के पास, इस तरह से तालीम लेते हुए फिरने वाले विद्यार्थी कभी-कभी जो सुशिक्षित भी होते हैं, अनेक अड़चनों में पड़ जाते हैं। इस तरह का एक उदाहरण मुझे अपने एक स्नेही मित्र का याद है। उसने अपना स्वतः का अनुभव मुझसे कहा था, उसने जो कुछ कहा मुझे बहुत बुरा लगा, किन्तु यह बात भी ठीक है कि अब वह एक अच्छे संगीत विद्वानों में गिना जाता है।

प्रश्न—क्या उनका अनुभव हमें भी बतायेंगे ?

उत्तर—बताने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, थोड़ा विषयान्तर जरूर होगा। उन्होंने अपनी कथा जैसी मुझसे कही थी, वैसी ही मैं तुम्हें सुनाता हूँ, उससे तुम्हारा कुछ मनोरंजन भी होगा। वे बोले:—"मुझे बहुत दिन से गाना बजाना सुनने की धुन थी। कहीं गाने बजाने की सुनता तो मैं वहाँ जरूर जाता था। बारंबार सुनकर मैंने इधर उधर के कुछ गानों की सुन्दर चीजों का संकलन भी किया था। किसी के पास नियमबद्ध पद्धति से कुछ भी न सीखा था। लोगों की तानों को सुनकर मैं भी अपने गानों में चाहे जैसी तान मारता था, परन्तु मुझे स्वर-ज्ञान अथवा राग-ज्ञान कुछ नहीं था। आगे चलकर मेरी जब तनखाह बढ़ी और मेरे पास चार छः इष्ट मित्र आने लगे तो उनके आगे मैं बड़ी खुशी से चाहे जैसी तान लगाता था। मेरे संग्रह में बहुत बड़ा भाग नाटकीय गानों का तथा सुनकर उड़ाई हुई चीजों का था। ताल-बाल की खटपट में मैं कभी पड़ता न था। मेरे गानों को सुनकर मेरे मित्र कहते कि तुम किसी गवैया के पास केवल छः महीने रहो तो बड़े प्रसिद्ध गायकों में से एक होजाओगे। उन्होंने यह व्यंग से कहा हो; सो बात नहीं, कदाचित उन्हें ऐसा ही मालूम पड़ा हो। तारीफ किसको प्यारी नहीं होती ? धीरे-धीरे उनका कहना मुझे उचित मालूम पड़ने लगा और मैं वास्तव में एक अच्छा गायक खोजने लगा। खोजते-खोजते कुछ दिन बाद मुझे एक गुरु बाबा मिल गये, और मैं उनसे तालीम लेने लगा। वे बेचारे एक सीधे, सभ्य एवं विद्वान गृहस्थ थे। तालीम शुरू होने पर लगभग एक सप्ताह में बाबा ने मेरा सारा भण्डार दत्तचित्त होकर सुन लिया। मैंने भी उनके आगे चाहे जैसे और चाहे जितना गाया। जैसे ही दूसरा सप्ताह शुरू हुआ तैसे ही बाबा ने मुझसे स्पष्ट कह दिया कि मेरी इच्छा तुमको पद्धतिबद्ध शिक्षा देने की है। इसलिये यदि हो सके तो कुछ समय तक तुम अपने ये स्वाभाविक गाने एक ओर रक्खो। उनके यह शब्द सुनते ही मैं बिल्कुल निराश हो गया। मेरी इच्छा क्या थी और यह क्या हुआ ? ऐसा मुझे मालूम पड़ा। मैं जानता था कि बाबा

मेरे सब गायन सुनकर खुश होंगे और मुझसे कहेंगे कि तुम जैसे तैयार आदमी को आगे अब मैं क्या सिखलाऊँ ? मैंने यह भी सोच रखा था कि बाबा मेरी चीजों में कुछ और "नमक-मिर्च" मिलाकर अधिक सुन्दर कर देने का प्रयत्न करेंगे। अधिक नहीं तो वे मेरे गाने की रोजाना तारीफ ही करते रहते तो उनकी तनख्वाह मुझे असह्य न मालुम पड़ती, ऐसी मन की उस समय स्थिति थी। पर उनकी उक्त बातें सुन कर मेरी आशाओं पर पानी पड़ गया। इधर, बाबा के गायन मुझे पसन्द ही नहीं थे। वे मुझे बिलकुल अनुपयुक्त मालूम पड़े। मेरे कान जो तानबाजी सुन चुके थे, उन्हें बाबा के मंगलाष्टक भला क्या पसन्द होते ? यह ठीक है कि हमारे कभी-कभी जो जानकार मित्र आते थे, वे बाबा की तारीफ करते थे और उनके शिक्षण का उत्तम लाभ लेने के लिये मुझे कहते। मुझे तो गाने में प्रतिबन्ध बिलकुल पसन्द नहीं था। मैं कहता था कि यह गाना बजाना सब मौज-मजे के लिये है, यह कोई "गधा-मजूरी" नहीं है। घड़ी भर अपनी और अपने चार मित्रों की तबियत खुश हुई, तो बस। शास्त्रों में क्या आग लगानी है ! बाबा की रोज की पिर-पिर ? इधर यह स्वर खोटा लगा, उधर अमुक स्वर चढ़ गया, यहाँ अनुपयुक्त राग मिश्रित हुआ, उधर तानपूरे का स्वर छूट गया। गाते-गाते मैं कुछ रंग पर भी आ रहा था, उसे बाबा ने रोक कर दुरुस्त किया। इस प्रकार रोज होने लगा, और यह सब मान खण्डन अपने ही खर्च से मुझे करना पड़ा। इतना ही नहीं, बाबा ने यह भी कहा कि वह सब पुस्तक में लिखकर रखना होगा। उनका यह भी आग्रह था कि नियम को और राग की शुद्धता की ओर देखो, व्यर्थ की तानें न मारते जावो। मैंने उनको बहुत कहा कि बाबा क्या तुम मुझे बिलकुल मूर्ख और नवसिखुआ ही समझते हो ? तुम जो कहते हो वह सब ठीक है, पर मुझे क्या गवैया बनना है ? बिलकुल नियत स्थान पर स्वर न लगकर आगे-पीछे लग जाय तो क्या हुआ ? वर्ज्यावर्ज्य स्वरों पर ऐसा प्रतिबन्ध क्यों होना चाहिये ? थोड़ी देर को आनन्द आ जाय तो बस काफी है, पर वे मेरी एक भी नहीं सुनते थे। वे कहते थे कि मैं धड़ाधड़ अशुद्ध प्रकार सुनूँ और सिखाऊँ यह सम्भव नहीं ! अब क्या करें ? सारांश, अपने ही हाथ अपने गले में फाँसी लगाने का सा आभास मुझे हुआ। बाबा को विदा करें तो लोग हँसेंगे और अगर वैसा ही चलने दें तो व्यर्थ का खर्चा और मेरी इच्छा के विरुद्ध शिक्षण। मेरी पुरानी चीजों पर खुश होने वाले मित्र मुझसे साफ-साफ कहने लगे कि तुमने इस मनहूस गुरू के चक्कर में पड़ कर अपनी ईश्वर प्रदत्त कला को मिट्टी कर डाला। परन्तु कहते हैं कि "सदा एकसे दिन नहीं रहते" एक दिन उन मित्रों में से ही एक ने मेरे घर आकर मुझे खुशखबरी दी। उसने कहा—"उत्तर हिन्दुस्थान से एक बड़ा "जबरदस्त" गवैया यहाँ आया है, वह लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के सामने मुसाफिरखाने में उतरा है, वह रोज संध्याकाल दो घड़ी गाता है। वहाँ सबको मुफ्त गाना सुनने की छुट्टी है, तुम एक बार उस तरफ आकर तो देखो। उसे सुनकर तुम वास्तव में गाने का मूल्य आँक सकोगे। उनको यहाँ आये अभी केवल पन्द्रह दिन हुये हैं, फिर भी १०-१२ गाँव वालों ने शिक्षा ली है, ऐसा कहा जाता है। उसके आने से अपने यहाँ के पुराने और प्रसिद्ध गायकों में भी खलबली मचगई है, यह मैंने सुना है। उसकी बातों को तुम ग्रहण करो, यह मैं नहीं कहता, परन्तु इतना अवश्य कहता हूँ कि उसके गाने को मुफ्त सुनने में कोई हानि नहीं है। हम तो नित्य शाम को वहाँ जाते हैं तो लोगों के झुण्ड के झुण्ड वहाँ से लौटते हुए मिलते हैं। अब तुम्हारी यह वेद परायणता कैसे चलेगी ? उस मित्र की यह सूचना

मुझे अच्छी लगी और उसी दिन संध्याकाल को मैं आफिस से लौटती बार, उसी रास्ते से आया। गायक गा रहा था। मन्दिर से दर्शन करके आये हुये प्रेमीजनों की बड़ी भीड़ थी। गाना सुनकर मैं एक दम पानी-पानी हो गया। मैंने ऐसी तानें इस जन्म में कभी न सुनीं थीं। गाने के मध्य में कभी-कभी वह ऐसी विकराल ध्वनि से गाता था कि पास में बैठे हुये श्रोताओं को कान में उँगली लगानी पड़ती थी और "हे भगवान" ऐसा कहना पड़ता था। एक बार वह गाते-गाते अपने घुटुओं के बल खड़ा हो गया। अन्त में उसने एक बार तैश में आकर अपने दोनों हाथ धड़ाम से तबले पर दे मारे और फिर लगभग आधी मिनट तक आँखें फाड़, होठ चबाता हुआ श्रोताओं की ओर देखता ही रह गया। निकट बैठे हुये श्रोता भयभीत एवं रसविभोर हो, अपने कपड़ों के बटन खोलते हुये कहने लगे—

"अहा हा हा! ओहो हो हो! यह है गाना! माशा अल्लाह, खाँ साहेब! आपकी जैसी तारीफ सुनते थे आप वैसे ही हैं, आज तो आपने गजब कर दिया!" इस घटना का मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा। उस गायक को गुरु बनाने का निश्चय मैंने वहीं कर लिया। परन्तु यही एक अड़चन थी कि उस रोने वाले "बाबा" को निकालूं तो किस तरह? ऐसे अवसर पर मित्रों का अनुभव और उपदेश बड़ा ही काम आता है। मुझे एक बहाना बनाने की सलाह मिली, वह ऐसी कि एक सप्ताह तक उनसे कहो कि आफिस के काम से तालीम को वक्त ही नहीं मिलता है, दूसरे हफ्ते में कहो कि समयाभाव के कारण, मैं अपनी तालीम रोकना चाहता हूँ।" एक मित्र ने सुझाव दिया कि 'संकोच भय का भाई है, बाबा से स्पष्ट कह दो कि मुझे दूसरा गवैया रखना है, अतः अगले महीने का वेतन लेकर तालीम में आने का कष्ट न कीजिये।" एक और तीसरे मित्र ने सलाह दी कि बाबा से ऐसा कहो कि मुझे कुछ दिन के लिये कलकत्ता जाना पड़ेगा, वहाँ से आने पर मैं जरूर उसी दम आपको बुला लूँगा। इस प्रकार मेरे मित्रों ने मुझे तरह-तरह की सम्मतियां दीं। मैंने पहली राय ही पसन्द की, क्योंकि बाबा वयोवृद्ध, ज्ञानवान, अनुभवी और बहुत सभ्य होने से उनके साथ असभ्यता से पेश आना मुझे पसन्द न आया। बाबा के जाने पर दो तीन दिन बाद उन खाँ साहेब को मैंने बुलाया और उनसे तालीम लेने की बात चीत की, मैंने सोचा—"शुभस्य शीघ्रम्"।

३०) रुपये तो पहले देते ही थे, इसलिये इतना ही खाँ साहेब से तय करके तालीम का समय निर्धारित कर लिया। खाँ साहेब ने पहले दिन आते ही कहा—"अपने कुल सरगमों, नियमों और ताल सुर से लिखी हुई ध्रुवपदों को एक तरफ फेंक दो"। यह बात मुझे भी पसन्द आई, क्योंकि उस तरह से सीखने में, मैं इस जन्म में कभी तैयार न हो सकता था, ऐसा मुझे सदैव प्रतीत होता था। उसने कहा—'कहिये क्या बतलाऊँ' इस पर मेरे मुँह से श्रीराग का नाम निकल गया। वहाँ क्या देर थी, तानों की झड़ी लग गई। शुरू कहाँ से होता है एवं समाप्त कहाँ होता है, इसका कुछ पता न लगा। पहले दो सप्ताह मैं केवल तानें सुनता रहा। शुरू-शुरू में २—४ मिनट मुझे अपने साथ गाने देता और फिर 'चुप रहो' ऐसा कहकर स्वयं गाने लगता। मैं उसकी एक दो तान बीच-बीच में पकड़ने का प्रयत्न करता था किन्तु करूं तो क्या करूँ? एक ही तान दुबारा आवे तब न। मैंने सोचा अपनी तानें वह धीरे-धीरे बता

देगा। एक दिन मैंने उससे ठीक-ठीक समझा देने को प्रार्थना भी की, जिसका उत्तर उसने दिया—"इस गड़बड़ में आप मत पड़ो, न मालुम तुम किस तान के लिये कहरहे हो, क्या हमने अपनी तानें लिख रक्खी हैं? ये तो बड़ा झगड़ा है, तान एक हवा है, इधर से आई नहीं कि उधर को निकल गई। उसको कोई रोक नहीं सकता। मुझे खुद पता नहीं कि मैंने क्या गाया? ये सब अल्ला के वेद अल्ला जानें, इन्सान की अक्ल वहाँ काम नहीं कर सकती।" अस्तु, यह रोज का क्रम चला। महीना समाप्त हुआ, वेतन दिया, मुझे एक अक्षर भी न आया। कभी-कभी मैं विनती करता—"मुझे कुछ बतलाओगे क्या? उत्तर मिलता—"चुपचाप सुनते रहो, गाना कुछ खाने की चीज नहीं है कि तुमको दो चार महीने में आ जाय" फिर एक नया उपद्रव पैदा हुआ। खाँ साहेब के साथ उनके शागिर्द कहिये या दोस्त कहिये, रोजाना आने लगे। उन सबकी पान-सुपारी का मैं ही प्रबन्ध करता। मैं स्वयं पान-सुपारी का अभ्यस्त न था, फिर भी मुझे बराबर तश्तरी भरी ही रखनी पड़ती थी। यदि कभी मैं कोई गाने की चीज मांगता, तो खाँ साहेब उत्तर देते—"अभी तुम्हारा गला साफ कहाँ हुआ है।" आगे चलकर तो खां साहेब और भी रंग दिखाने लगे। कभी तो वे इतना असम्बद्ध और अश्लील भाषण करते कि घर के बाल-बच्चे भी हँसने लगते थे। रोज़ आधा समय इधर-उधर की गप-शप में ही जाने लगा। कुछ दिन बाद उनका पैसा मांगने का समय शुरू हुआ, वह भी तनुख्वाह से ऊपर मांगते। बूट के दो जोड़ा, गरम कपड़े का सूट, टाइम देखने के लिये एक चांदी की घड़ी, एक चांदी की मूठ की छड़ी, जरी की टोपी, इन चीजों को मैं प्रथम ही दे चुका था। इस तरह ठीक छः महीने चला और मुझे कुछ आया नहीं। यह स्थिति देखकर मुझे बहुत बुरा मालूम पड़ा और मैंने स्वयं ऐसा निश्चित किया कि अब हम तालीम की खटपट में नहीं पड़ेंगे। खां साहेब का ही गाना सप्ताह में तीन-चार दिन सुनलिया करेंगे। भिन्न-भिन्न राग कान में पड़ने से कुछ न कुछ संस्कार होगा ही। एक दिन मैंने अपनी यह विचारधारा उनके सामने रक्खी तो सुनते ही उनकी तबियत बिगड़ गई। उन्होंने कहा—"यह क्या फ़रमा रहे हो राव साहब? क्या आपके तीस रुपल्ली पर मैं महीने भर आपके यहां मुजरे करतां रहूँ? मैं १००) रु० से कम कभी मुजरा नहीं करता, इनसे पूछ लीजिये, यह कभी नहीं हो सकता। हां, आप तालीम जन्म भर लेते रहो, मैं हाजिर हूँ। क्या करूँ? न तो आप सुर को समझते हैं न लय को समझते हैं और न राग को समझते हैं। गला भी आपका ऐसा नहीं है, जैसा चाहिये। खैर, खुदा चाहेगा तो दो-चार वर्ष मेहनत करने से आप रस्ते पर कुछ-कुछ आ जावेंगे" यह सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। अब इससे छूटें किस तरह? यह मैं नहीं समझ सका। खां साहब रोज आते थे। बातों की गप्प लड़ाते हुये अपने शागिर्दों को तालीम देते थे, पान-सुपारी खाते, बीड़ी फूँकते और जहां चाहते वहीं थूक देते थे। बीच-बीच में मेरी खिल्ली भी उड़ाते थे। यह नित्य क्रम चालू रहा, पर दैव को शीघ्र ही मेरे ऊपर दया आ गई। एक दिन संयोग से मेरी तालीम के समय हमारे मित्र गदाधर पन्त कुछ खास काम के लिये अकस्मात् मेरे पास आये। उनको सङ्गीत में बहुत जानकारी थी। उस दिन मैंने उनको अपने पास तालीम खतम होते तक, खास तौर पर बिठाल रक्खा। खां साहेब चाहे जैसी तान मारते थे और बीच-बीच में "ये तिरवन देखो, यह फुलसिरी है, यह जैतश्री होगई, अब धौलसिरी भी देख लो" ऐसे बड़बड़ाते रहे। इसके बाद अपने घराने के लोगों की रागदारी की गप्पें मारने लगे। वहां तक पंतजी एक

अक्षर भी नहीं बोले। पर आगे, रोज की तरह जब मेरा फजीता करने का क्रम शुरू हुआ, तब वह उनसे सहन न हुआ। उन्होंने कुछ आगे बढ़कर कहा—"खां साहेब! तुम तिरवन और जैतश्री का आरोहावरोह कहो। अभी-अभी तुमने जो तान लगाई थी, वह मुझे बिलकुल गलत मालूम पड़ी" ऐसा ढीठता और शान्ति से भरा हुआ गम्भीर प्रश्न सुनकर खां साहब झिझके और बड़बड़ाने लगे। पहले तो उन्होंने इस प्रश्न को बातों में ही उड़ाने का प्रयत्न किया और कहने लगे कि "तुम्हारा मत अलग हमारा अलग, क्या पांचों उङ्गलियां बराबर होती हैं? पर पन्त ने उनको छोड़ा नहीं, उन्होंने कहा—"मुझे अपना मत भी तो बताओ, वह भी तो कुछ होगा? अपनी तालीम की चीज उन रागों की कहो, देखूं और फिर तुम्हारा नियम भी मैं देखता हूं। वे राग मुझे भी आते हैं। अपना राग स्वरों से कहो तो फिर अलग नियम बताने की भी जरूरत नहीं। तुमको सरगम का ज्ञान है न?" फिर क्या पूछते हो? ग की जगह प और म की जगह ध ऐसा घोटाला जहां-तहां होने लगा। स्वर चूका कि पन्त ने आड़े हाथों लिया। अन्त में खां ने कबूल किया कि उसको स्वरों का अभ्यास अच्छी तरह नहीं है। रागों के वर्ज्यावर्ज्य स्वर-नियमों की तालीम उसे नहीं मिली है, फिर घराने की चर्चा हुई। गुरु के विचारों की पूछ-ताछ हुई। इन सब बातों से मुझे यह मालूम होगया कि ये उत्तम सम्प्रदाय के उस्ताद हरगिज नहीं हैं। उड़ाई हुई चीजों पर गला फिराने वाले और दस-बीस प्रसिद्ध रागों में इच्छानुसार तानें फेंकने वाले ही थे। अस्तु, दूसरे दिन से खां साहब का आना आप ही आप रुक गया। कहते हैं न, "बिना सोंठ के खांसी गई"। मुझे उनके ऊपर फिर बहुत दया आई, परन्तु वे स्वतः ही नहीं आते, तो मैं भी क्या करूं? पर इस कृत्य से मुझे पाश्चाताप हुआ। मुझे जान पड़ा कि मैंने उस बुजुर्ग विद्वान बाबा से भी व्यर्थ ही ऐसा नीच बर्ताव किया। वे बाबा मुझे कभी-कभी गांव में मिलते तो मेरे बाल-बच्चों की कुशलता अवश्य पूछ लेते थे, इतना ही नहीं, वे मुझ से कहते—"राव साहब! आप यह विषय छोड़िये मत, ईश्वर ने कृपालु होकर आपको सुखपूर्वक इस विषय की अच्छी अभिरुचि भी दे रक्खी है, ऐसी अनुकूल स्थिति सभी को प्राप्त नहीं होती, आप इस विषय में विशेष प्रवीणता प्राप्त करें तो मुझे कितना हर्ष होगा?" खां साहेब के चले जाने पर मैंने तत्काल बाबा को बुलाने के लिये आदमी भेजा, परन्तु मालूम पड़ा कि लगभग दो माह से उनको पंजाब की किसी संस्था ने अपने यहां रख लिया है।"

उपरोक्त बातें मेरे उस मित्र ने मुझसे कही थीं, जिन्हें सुनकर मुझे विशेष आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि ऐसे ढोंगी मुझे भी मिल चुके हैं। संसार में सब तरह के मनुष्य हैं। जो उत्तम गायक होता है, उसका परिश्रम कभी निरर्थक नहीं जाता। कहीं भी जायगा उसे मान प्राप्त होगा। उदाहरण के लिये मेरे एक गुरु मुहम्मद अली खां को ही लो। उनके विषय में मुझे पूर्ण श्रद्धा और बड़ा प्रेम है। इसी तरह मेरे एक हिन्दू 'धुरपदिये" गुरु हैं। उनके प्रति भी, मेरे हृदय में बहुत आदर है। तात्पर्य यह है कि, अपना मत कायम करने में जल्दी मत करो। सर्व प्रथम यह देखलो कि वह साधार है! जब विश्वास होजाय तो स्वीकार करलो और फिर उस पर जमे रहो। हम पूर्वी में कोमल ध लगाते हैं। दूसरे किसी ने तीव्र लगाया कि हमने अपना मत बदला। बागेश्वरी में किसी ने कोमल रे लगाया, या भीमपलासी में थोड़ा उतरा रे ध लगाया, बसंत में किसी ने कोमल ग लिया, अड़ाना में किसी ने कोमल रि बरता कि हमने उछाल मारी और अपनी सारी परम्परा, अपनी पद्धति छोड़ने को तैयार हो गये,

तो यह कृत्य कितना ऊटपटांग दीखेगा? उत्तर के अमुक खां का ऐसा मत है और उनके वंशजों का आज अमुक मत है, ऐसा यदि हम से किसी ने कहा तो हमें चाहिए कि उसकी जानकारी को धिक्कारें नहीं, अपितु उसे मतभेद के अन्तर्गत खुशी से नोट करलें।

प्र०—यह सब हमारे ध्यान में अच्छी तरह रहेगा। हमको आपके उस मित्र के अनुभव की याद भी खूब रहेगी। पर क्यों जी, ऐसे गायकों का काम कैसे चलता होगा?

उ०--उनका ऐसा ही चलता है। कोई न कोई तो उनको ग्राहक मिलते ही हैं, पर एक तरह से ऐसे गायकों का अस्तित्व दयनीय ही होता है। उत्तम घरानेदार लोगों की बात मैं नहीं कहता। ऐसे लोगों की कीर्ति तो आप ही आप होती है और वे बड़ी-बड़ी रियासतों में नौकर भी होते हैं। मैं तो ऐसे 'लेभागू' गायकों के विषय में ही कहता हूँ, जिसे स्वतः ही उत्तम तालीम प्राप्त नहीं है तो वह औरों को क्या सिखायेगा? उसकी तालीम कहीं एक महीना, कहीं दो महीने, कहीं छः महीने, इस तरह बहुधा चलती है। उसकी तानबाजी पर रीझ कर थोड़े दिन के लिये कोई रख लेता है, फिर निरुपयोगी मानकर निकाल देता है और उसका मुजरा (प्रोग्राम) हमेशा तो नहीं होता होगा, साल छः महीने में, एक-दो हुए तो उस आमदनी पर उसके कितने दिन चलेंगे? तो फिर, आज मद्रास, कल कलकत्ता, परसों पंजाब, नरसों काठियावाड़, इस तरह बेचारे घूमते-फिरते रहते हैं। बड़ी रियासतों में इनको कौन पूछने वाला है? इनके पास न तो विद्या, न घराना, न परम्परा और न तालीम। सिखाना आता नहीं, सीखना चाहते नहीं और व्यसनों में फँस गये हैं सो अलग। आजकल तो ऐसे लोगों की बड़ी मुसीबत है। क्यों कि अब समाज में ज्ञान बढ़ रहा है। एक वृद्ध गवैया ने तो मुझ से स्पष्ट ही कहा था कि 'पण्डित जी मैं शपथ लेकर कहता हूं कि अपने लड़के को यह धन्धा कभी न करने दूंगा। समाज को प्रसन्न करना अब बहुत ही कठिन होता जा रहा है'। अस्तु, अब हम अपने जैतश्री के विषय में ग्रन्थकारों के कथन देख जावें न?

प्र०—हाँ, ऐसा ही कीजिये।

उ०—सोमनाथ ने जैतश्री को शुद्ध रामक्रिया थाट में रख कर उसका वर्णन ऐसा किया है:—

सन्यासग्रहगांशान्परिधा प्रातस्तु जेताश्रीः।

प्र०—धैवत की शंका वैसी ही रहेगी। कोई तीव्र कहेंगे, कोई कोमल कहेंगे। ठीक है न?

उ०—कदाचित् ऐसा होगा, परन्तु शुद्ध रामक्रियामेल दक्षिण की ओर प्रसिद्ध है और उसमें ध कोमल है। त्रिवेणी को भी सोमनाथ ने उसी थाट में लिया है। वह तुम्हें याद ही होगा। उसका वर्णन 'सन्यासरिग्रहांशा' ऐसा किया था। टक्क को उसने भैरव थाट में डाला है। इन सभी रागों में धैवत उसने शुद्ध ही कहा है, सो विचार करने योग्य है। रागलक्षण ग्रन्थ में 'जयश्री' ऐसा नाम है और उस राग में तीव्र रे,

कोमल ग और कोमल म ऐसे स्वर हैं; किन्तु वह अपने प्रचार में नहीं है। सङ्गीतसार में क्षेत्रमोहन स्वामी कहते हैं:—

जयंतश्रीश्च संपूर्णा ग्रहांशन्यासपंचमा ।
तमस्विन्यां प्रगातव्या शृंगारे करुणे रसे ॥

उसने इस श्लोक को 'ध्वनि मंजरी' ग्रन्थ का आधार कहा है। वह ग्रन्थ मेरे पास नहीं है, इसलिये अधिक खुलासा मुझसे न हो सकेगा।

रागमालायाम्:—

रामक्री बहुली देशी जयन्तश्रीश्च गुर्जरी ।
देशिकारस्य पंचैता विख्याताश्च वरांगनाः ॥
नासाग्रे श्रीलवंगं जलजकुटिलिकेखुम्भिकेश्रोत्रयोर्द्वे ।
चोलिं कौसुम्बवस्त्रं शिशुविधुतिलकं चांजनं नेत्रयोश्च ॥
हस्तद्वंद्वे सुकाचप्रवलयनिचयं मूर्ध्नि वेणीं दधाना ।
देशीमेले रुचिज्ञा सकलसुजयतश्रीस्त्रिसा चापराह्णे ॥

इस ग्रन्थ के प्रमाण से थाट पूर्वी का ही है। अहोबल का लक्षण ऐसा है:—

पारिजाते:—

कोमलाख्यौ रिधौ यत्र गनी च तीव्रसंज्ञितौ ।
मस्तीव्रतरसंज्ञः स्याज्जयश्रीनामके पुनः ।
आरोहणे रिधौ न स्तो निस्वरोद्ग्राहमंडिते ॥

यह आधार हमारे लिये बहुत ही उत्तम है, इस वास्ते इसे अवश्य लक्ष्य में रक्खो। अहोबल ने जयश्री का रूप ऐसा दिया है:—नि़ सा ग रे॒, ग मं प नि धु प, मं ग, मं ग रे॒ सा, नि़ सा ग रे॒ सा, नि़ सा ग रे॒, ग मं प मं प मं ग, रे॒ सा, नि़ सा, प़ नि़ सा, ग मं प, नि सां रें॒ सां, नि सां, नि धु प, मं ग मं प मं ग, रे॒ सा। इसमें 'ग रे॒ ग' एक जगह है, वह किसी को पसन्द नहीं, अतः वहाँ उसे सोच समझकर लिया जायगा।

तरंगिण्याम्:—मालवश्च पंचमश्च जयंतश्रीश्च रागिणी ।
गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः ॥

नृत्यनिर्णयकार ने रागमाला का "नासाग्रे....इत्यादि" श्लोक ही लिया है, उसे कहकर वह फिर कहता है:—

संकीर्णरागाध्याये:--

देशीकारवराट्यौ च धवल × × यदि।
तुम्बरो देवगोष्ठीषु जयश्रीजननं जगौ ॥

हृदयप्रकाशे:--गादिर्जयतश्री: पांशा स्यादारोहे धवर्जिता। यह अच्छा आधार है स्वरमेलकलानिधि, चन्द्रोदय, सारामृत, चतुर्दण्डी आदि ग्रन्थों में इस राग का वर्णन नहीं किया है।

लक्ष्यसङ्गीते:--

कामवर्धनिकामेले जेताश्री: कीर्त्यते सदा।
आरोहे रिधवर्ज्यं स्यादवरोहे समग्रकम् ॥
गांधारांशा तथा सांता सायंकालोचिता मता।
कैश्चित्सैवोदिता प्रातर्गेया न तत्सुसंगतम् ॥
अन्ये तां तीव्रधोपेतां मारवामेलने जगुः।
अपसार्य मतान्येतान्युपर्युक्तैव स्वीकृता ॥
वराटी देशकारश्च धवलाख्या ततः पुनः।
सुप्रमाणं मिलंत्यत्र संगिरंति मनीषिणः ॥

रागकल्पद्रुमांकुरे:--

जैतश्रीरिह वर्णिता गमनयस्तीव्रा मृदू धर्षभा-।
वारोहे रिधवर्जिता पुनरियं पूर्णावरोहे मता ॥
गांधारस्य निषादकस्य च सदा संवादसंभूषिता।
गीतालापविचारचारुमतिभिः सायं मुदा गीयते ॥

चन्द्रिकायाम्:--

पूर्वीमेले समुत्पन्ना आरोहे रिधवर्जिता।
गांधारांशा सायमियं जैत्रश्रीर्गीयते बुधैः ॥

सङ्गीतसार:--

"देशाकार की छाया युक्ति देखी देशाकार को दीनी। स्वरूप लिख्यते। गोरी जाकी रङ्ग है। कसूमल वस्त्रन को पहरे है। नाक में लवंग की भाँति वेसरी पहरे है। कमल कलिन को कान में पहरे है। कसूमल कंचुकी को पहरे है।"

प्र०—अर्थात् 'नासाग्रे श्रीलवंगं... इ०' इसका ही भाषांतर है न ?

उ०—हाँ, वह रागमाला के श्लोक का भाषान्तर दिखता है। आगे शास्त्र सुनोः— 'शास्त्र में तो यह सात सुरनसों गाई है। सा रे ग म प ध नि सा। यातें सम्पूर्ण है। याको दिन के चौथे पहर में गावनी।

आलापचारीः—

नि़ सा मं ग नि़ रे॒ सा, ग प ग, मं ध॒ प, ध॒ मं ग, मं ग, मं ध॒ प, ध॒ मं ग, रे॒ सा। यह स्वरूप उसने अच्छा कहा है और यह सहज ही में ग्राह्य होने योग्य भी है। प्रतापसिंह ने 'फूलसिरी' ऐसा एक राग का नाम भी कहा है और उसके स्वर उन्होंने ऐसे कहे हैं— ध नि़ रे सा, सा ध़ सा, प़ ध़ प़, ग रे॒ ग, रे सा, सा नि़ ध़ सा, रे सा, ग ग रे, म रे सा। यह नाम गायकों के मुख से हम बार-बार सुनते हैं, परन्तु यह राग तुमको क्वचित् ही गाया हुआ मिलेगा। उत्तर के एक उर्दू ग्रन्थ में 'फूलश्री' के स्वर सा, रे, तीव्रतर ग, तीव्र म, प वर्ज्य, तीव्र ध, तीव्र नि, ऐसे कहे हैं।

कल्पद्रुमकार कहता हैः—

स्वर्णप्रभा वीणधरा कराग्रे
सौंदर्यलावण्यकलायताक्षी ।
पीनोन्नता जयतश्री कामनीयं कथिता मुनींद्रैः ॥
धनाश्री धानिसंयुक्ता मालश्री तासु मिश्रिता ।
जयतश्री जायते विद्वन् तृतीयप्रहरात्परा ॥
मध्यमांशग्रहं न्यासं ऋषभस्वरवर्जिता ।
षाडवास्तुहि विज्ञेया जयच्छ्री जायते ध्रुवम् ॥

उदाहरणः—म ग सा प म ग सा सा ग प म ग सा नि ध म म ग सा। म म म ध सा ग ग सा प म ग म ध ग सा नि ध प म ग सा। तीव्र कोमल पाठकों को समझाना है, यह बात उनके ध्यान में न रही। नादविनोदकार ने यह सम्पूर्ण श्लोक उतारकर ऐसा रूप कहा है—नि़ सा ग प मं ग ध॒ प ग रे॒ सा, प प नि सां गं गं पं पं गं गं ध॒ प ग रे॒ सा रे॒ सा। प ध॒ प सां सां रें॒ गं रें॒ सां, ग ग प प ध॒ प ग रे॒ सा।

हरिवल्लभः—(संगीत दर्पण)

षड्जसुरहितें न्यास अरु अंशक ग्रहो बनाइ।
जेतसरी परभातही देसी मेल हि गाइ॥

उदाहरणः—सा ग प म ग नि सा प म प ग रे सा।

"आसफी" कार ने जैतश्री को श्रीराग की ही एक रागिनी माना है। उसके स्वर श्रीराग के ही माने हैं। केवल गांधार स्वर श्री के गांधार की अपेक्षा अधिक तीव्र है, ऐसा वह कहता है। उत्तर के एक लेखक जैतश्री के स्वर "सा, अति कोमल रे, शुद्ध ग, तीव्रतम म, प, शुद्ध ध, और शुद्ध नि" इस प्रकार कहते हैं।

प्रश्न—अब कृपया हमको जैतश्री गाकर दिखाइये।

उत्तर—अच्छा, वैसा ही करता हूँ।

जैतश्री—त्रिताल (आरोह में रे, ध वर्जित)

नि़ सा ग मं । प धु मं प । मं ग धु मं । ग ग रे़ सा

×

नि़ सा ग रे़ । सा प मं ग । धु मं ग मं । ग ग रे़ सा ॥

अन्तरा।

मं ग मं धु । प सां ऽ सां । नि रें सां ऽ । गं गं रें सां

सां सां रें नि । धु प नि धु । प मं ग प । मं ग रे़ सा ॥

जेतश्री—शूलताल—

नि नि । मं ग । मं धु । मं ग । रे़ सा

नि़ रे । सा ऽ । ग मं । ग ग । रे़ सा

नि़ सा । ग मं । प धु । प नि । धु प

सां नि । धु प । मं ग । मं ग । रे़ सा ॥

अन्तरा—

मं ग । मं धु । प प । सां ऽ । रें सां

नि रें । सां गं । रें सां । रें नि । धु प

मं ग । मं धु । प सां । रें नि । धु प

सां नि । धु प । मं ग । मं ग । रे़ सा ॥

जेतश्री—त्रिताल—

नि़ सा ग प । मं धु प प । मं ग प मं । ग ग रे़ सा

नि़ रे़ सा ग । रे़ सा प मं । ग प धु प । मं ग रे़ सा ॥

अन्तरा—

मं ग प धु । प सां ऽ सां । नि रें सां ऽ । रें नि धु प

मं ग मं धु । मं ग रे़ सा । रें नि मं ग । मं ग रे़ सा ॥

जेतश्री—झंपा

प प । मं ग प । मं ग । ग रे़ सा

×

नि़ रे़ । सा ग मं । प मं । ग रे़ सा

सा रे़ । सा ग मं । प प । मं धु प

प मं । ग मं प । मं ग । रे़ रे़ सा ॥

अन्तरा—

मं ग । मं धु प । सां ऽ । नि रें सां

नि रें । सां गं रें । सां रें । नि धु प

मं मं । ग मं धु । मं ग । ग रे़ सा

नि नि । मं मं ग । मं ग । रे़ रे़ सा ॥

इस राग को पूरियाधनाश्री से बचाने के लिये भी ध्यान देते जाओ।

प्रश्न—अब आगे कौनसा राग लेंगे ?

दीपक

उत्तर—अब हम "दीपक" राग के विषय में कुछ कहेंगे। इस राग के थाट के विषय में, प्रचार में एक दो मतभेद दिखाई देते हैं, परन्तु हम यह राग पूर्वी थाट में ही मानते हैं, ऐसा करने का उत्तम आधार भी है। "दीपक" शब्द के अर्थ पर भी कभी-कभी मतभेद पाया जाता है, कोई कहता है कि "दीपक" शब्द का अर्थ केवल "उद्दीपनकर्त्ता" ऐसा लिया जाय। दूसरे कहते हैं कि "दीपक" शब्द का अर्थ "दीया" स्पष्ट है, इस लिये यही अर्थ लिया जाय। "दीपक" शब्द का अर्थ "दीया" ऐसा लें तो दीपक राग का समय संध्याकाल निश्चित होता है और इस द्रष्टि से यह एक संधिप्रकाशोचित् राग माना जायगा। जो लोग "दीपक" का अर्थ "उद्दीपनकर्त्ता" ऐसा लगाते हैं वे उस राग का थाट कदाचित "काफी" अथवा "शंकराभरण" मानेंगे। हम "दीपक" शब्द का अर्थ "दीया" ऐसा ही स्वीकार कर और दीया जलाने के समय गाया जाने वाला राग, ऐसा मानकर चलते हैं। आजकल ऐसी धारणा पाई जाती है, कि दीपक राग नष्ट हो गया और इसलिये अब यह किसी को भी सुनाई न पड़ेगा। यह राग किस तरह नष्ट हुआ, इस पर कुछ मनोरंजक दंत कथा सुनने में आती है। वे दंत कथाऐं न होतीं तो वास्तव में दीपक राग का नाम आज हमारे सम्मुख नहीं आता। जैसे अनेक प्राचीन राग नष्ट हुये हैं, वैसे ही यह भी एक गिना जाता। परन्तु दीपक का अद्भुत चमत्कार गायक प्रायः हमेशा वर्णन करते रहते हैं, इस कारण उस पर तरह-तरह की चर्चा हमें सुनाई देती है। एक मुख्य चमत्कार ऐसा कहते हैं कि "दीपक राग" गाते ही घर के दीपक अपने आप ही जल जाते हैं।

प्रश्न—इधर-उधर के मनुष्यों को, कपड़ों को, लकड़ी के सामान को बिलकुल न छूते हुये वह राग दीये में ही जाकर सुलगता है, यह सुनकर किसी को आश्चर्य मालूम पड़े तो क्या वह ध्यान देने योग्य नहीं है ?

उत्तर—लोगों में कैसी समझ है, यह मैं तुमको बता रहा हूँ। तुम्हें ऐसी बातें सदा सच्ची माननी चाहिये, यह मेरा बिलकुल आग्रह नहीं। दीपक पर बोलते समय उसके सम्बन्ध में जो बातें देश भर में सुनाई देती हैं, उन्हें बता देना भी आवश्यक है। 'उसमें कुछ तो होगा' ऐसा तर्क करने वाले विद्वान अपना शास्त्रीय स्पष्टीकरण कभी-कभी ऐसा करते हैं—

"Music is vibration, vibration means motion, and motion means heat".

परन्तु ऐसा यदि क्षणभर के लिये मान भी लें तो उससे दीया सुलगने में क्या आपत्ति है, ऐसा मानने को आजकल के अपने विद्यार्थी तैयार होंगे या नहीं ? यह प्रश्न भी रहेगा। परन्तु एक बात तो सच्ची है और वह यह कि इस राग के द्वारा आज दीया जलाने वाला कोई गायक तैयार नहीं है। हाँ, दीया बुझाने वाला गायक कहीं-कहीं अब मिल सकता है, ऐसा मेरे सुनने में आया है।

प्र०—दीया बुझाने का गाना कैसा? दीया के बिलकुल पास जाकर गाना होगा क्या?

उ०—ऐसे चमत्कार अभी तक प्रत्यक्ष मेरे देखने में नहीं आये, इसलिये उसका रहस्य मेरे द्वारा नहीं कहा जा सकता।

प्र०—पर किसी छोटी सी कोठरी में खिड़की दरवाजे बन्द करके हम जोर से आवाज़ मारने लगें तो वहां के दीये की लौ हिल जायगी, ऐसा तो मेरा विश्वास है।

उ०—परन्तु हम आवाज़ मारने की बात नहीं कहते। हमें तो नियमित राग का नियमित परिणाम कहना है, तथापि हम इस भ्रमजाल में पड़ें ही क्यों? हम जो संस्कृत सङ्गीत ग्रन्थ देखते हैं उनमें ऐसा चमत्कार कहीं नहीं दीखता। शार्ङ्गदेव के अधुना प्रसिद्ध रागों की नियमावली में दीपक नहीं दिखाई देता। अपने पण्डितों के मत में 'रत्नाकर' उत्तर का बड़ा आधार ग्रन्थ माना जाता है और कोई कहे कि यह चमत्कारिक राग शार्ङ्गदेव को विदित ही न था, तब तो आश्चर्य अवश्य है। उसके पूर्व प्रसिद्ध रागों में दीपक का नाम मिलता है, यह स्वीकार करता हुआ वह कहता है:—

तत्र पूर्वप्रसिद्धानामुद्देशः क्रियतेऽधुना ।
शंकराभरणो घंटारव आहंसदीपकौ ॥

कल्लिनाथ ने "प्राक् प्रसिद्धदेशी" रागों में दीपक का लक्षण दिया है। उसे मैं आगे कहूँगा ही। दक्षिण के पंडित गोपाल नायक दीपक राग से जलकर मर गये, ऐसी भी एक कथा है। तथापि दक्षिण के कलानिधि, रागविबोध आदि ग्रन्थों में दीपक राग नहीं है, यह भी एक विचार करने योग्य विषय है। जो "दीपक" को "उद्दीपन" करने वाला राग मानते हैं, उनके लिये तो इस राग के नष्ट होने का कोई कारण ही नहीं है। वे कहते हैं कि प्राचीन काल में यदि "उद्दीपन" लगता था तो अब क्यों नहीं लगेगा? कुछ भी सही पर आज अपने गायक "दीपक" राग का नाम लेने से ही डरते हैं, इसमें संशय नहीं। ग्रन्थों में दीपक के स्वर और नियम स्पष्ट हैं और उनकी सहायता से वह राग गाया भी जा सकता है। मेरे गुरु ने उसे गाकर दिखाया था और मैं तुम्हें भी उसे बताने वाला हूँ। किन्तु उसे गाने से किसी का कपड़ा नहीं जलेगा और दीया भी नहीं जलेगा, यह प्रमाणिक रूप से मैं स्वीकार करता हूँ। जब ऐसा है तो तुम भी खुशी से 'दीपक' गा सकते हो। अपने कुछ मार्मिक विद्वानों का ऐसा मत है कि दीपक की जगह प्रचार में अब श्रीराग स्वीकार किया गया है। दीपक के नियम श्रीराग को प्राप्त हुए हैं ऐसा नहीं, अपितु श्रीराग का प्राचीन रूप बदल गया है, ऐसा उनका कहना है। श्रीराग का प्राचीन थाट 'पूर्वी' नहीं था, यह हम भी देख चुके हैं।

प्रश्न—इस बारे में लक्ष्यसङ्गीतकार क्या कहता है?

उत्तर—वह भी यही कहता है:—

लुप्तोऽयं राग इत्येतद्यदुक्तं लक्ष्यकेऽधुना ।
न मे भाति विधानं यत् केवलं युक्तिसंगतम् ॥
प्रज्वलनं दीपकानां स्वयं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ।
विलोपनं समादिष्टं कदाचित् स्याद्विचक्षणैः ॥

ऐसा होना बिलकुल अशक्य है, सो नहीं, परन्तु वह विवाद हम छोड़ ही दें तो ठीक होगा। दीपक के थाट के विषय में किसी-किसी गायक-वादक में कुछ मतभेद होना सम्भव है, यह मैंने कहा ही है। अहोबल पण्डित ने पारिजात में इस राग का लक्षण ऐसा कहा है—

आरोहे मनिवर्ज्यः स्याद्दीपको मालवोत्थितः ।
गांधारोद्ग्राहसंयुक्तः सन्यासांशविभूषितः ॥

प्रश्न--यानी वे दीपक का थाट भैरव के समान मानते हैं, यही न ?

उत्तर—हां, मालव थाट का अर्थ वही है, हमारे प्रकार में मध्यम तीव्र है।

प्र०—आपके प्रकार का नियम क्या है ?

उ०—हम जो प्रकार गाने वाले हैं, वह लक्ष्यसङ्गीत के अनुसार है। उसका नियम चतुर पण्डित ऐसा कहता है—

कामवर्धनिकामेलाद्दीपको गुणिसंमतः ।
आरोहणे रिवर्ज्यं स्यादवरोहे निवर्जितम् ॥
षड्जस्यैव प्रधानत्वं संमतं शास्त्रवेदिनाम् ।
गानं सुसंमतं प्रोक्तं दिने यामे तुरीयके ॥

प्रश्न--तो फिर यह एक बिलकुल स्वतन्त्र प्रकार हुआ ? आरोह में रिषभ निकल जाने से जैतश्री का भी भ्रम नहीं रहा। ठीक है न ? पर जैतश्री में किसी मत से वह स्वर लिया जाता है, यह भी आपने कहा था, वह किस तरह ?

उत्तर--तुम भूलते हो। उस प्रकार की जैतश्री में आरोह में धैवत वर्ज्य होता है और निषाद अवरोह में वर्ज्य नहीं होता, ऐसा मैंने कहा था न ?

प्रश्न--ठीक है। वह बात अब याद आई। अन्य रागों की ओर तो देखना ही नहीं है। पूर्वी और पूरियाधनाश्री ये तो पहले ही सम्पूर्ण राग हैं। त्रिवेणी और टंकी में मध्यम नहीं और आरोह में रिषभ वर्ज्य नहीं। रेवा में म नि बिलकुल नहीं हैं। श्रीराग में गांधार और धैवत आरोह में नहीं हैं। मालवी के आरोह में रि है और अवरोह में नि है। दीपक बिलकुल निराला ही रहेगा, इसमें कोई संशय, नहीं पर अब हमारा यह प्रश्न है कि वह गाया कैसे जायगा ? उसमें वादी स्वर कौनसा रहेगा ?

उत्तर--वादी षड्ज मानो, ऐसा कहा जाता है, परन्तु जिस अर्थ में यह राग तुमको पूर्वी अङ्ग से गाना है उस अर्थ में वादी गान्धार अथवा पंचम मानोगे तभी उसका स्वरूप अच्छा रह सकता है, ऐसा मुझे मालूम पड़ता है।

प्रश्न--श्रीराग का अङ्ग न हो तो सा, रे रे, प प, मं प आदि और नि रें नि धुप, यह तानें दीपक में नहीं रहेंगी। आरोह में रे नहीं है, तहां पूर्वाङ्ग में जैतश्री की कुछ तानें इस राग में दाखिल हो सकेंगी, ठीक है न? उत्तरांग में 'मं धु नि सां' 'सां धु प' ऐसा भास हुआ तो जैतश्री खतम।

उत्तर--हां, तुम्हारी यह विचारधारा अनुचित नहीं। मजा तो तब है, जब कि पूर्वाङ्ग में कहीं-कहीं श्रीराग का ढङ्ग दिखाओ और श्रोताओं को उस राग का थोड़ा सा भास होते-होते आरोह में गान्धार लगने वाली तान लगा दो। पूर्वी की ओर सुनने वाले झुकें तो 'ग प' सङ्गति बीच-बीच में दिखाओ। 'ग मं प धु' ये सारे स्वर आरोहा-वरोह में आ सकते हैं। इसलिये इनसे तुम बहुत टुकड़े उत्पन्न कर सकते हो।

प्र०—ठीक है। ग मं प, मं प, धु प, मं ग, मं धु मं ग, प मं ग, धु प मं ग, ग मं ध प, ग मं प धु मं प, धु मं प, ग प मं ग, ग मं धु मं ग, वगैरह टुकड़े सहज में तैयार किये जा सकते हैं। वे फिर एक में एक जोड़ दिये जांय तो आप ही आप विस्तार बढ़ेगा। जैसे-'ग मं प धु मं प मं ग, धु मं ग, ग मं धु ग मं ग, धु धु मं प मं प, धु मं प ग मं ग'।

उ०--तुमने यह खूब ध्यान में रक्खा। सारी खूबी बीच-बीच में नियम प्रदर्शित करने वाली तानों में है। वहां कैसा करोगे? बताओ तो सही?

प्र०—'नि़ रे ग मं प' यह तान हम नहीं लगा सकते क्योंकि आरोह में रिषभ है। तहां 'नि़ सा, ग मं प' ऐसा करना पड़ेगा अथवा 'नि़ रे सा, ग मं प' ऐसे उस तान के दो हिस्से करने होंगे। सही है न?

उ०—हां, कुछ इसी तरह से करना होगा। अच्छा फिर आगे?

प्र०—आगे फिर वादी स्वर के हिसाब से चलना होगा। यदि गान्धार अधिक बढ़ा तो राग में पूर्वी का अङ्ग दृष्टिगोचर होगा। यदि पंचम बढ़ा तो जैतश्री अथवा पूरियाधनाश्री में से किसी एक राग का अङ्ग दिखाई देगा।

उ०—फिर उसे किस तरह टालोगे?

प्र०—मालूम पड़ता है वहां, 'ग प' सङ्गति का उपयोग होने से बड़ी मदद मिलेगी।

उ०—तुम्हारी कही हुई 'ग प' सङ्गति राग में बिलकुल अशुद्ध होगी, यह तो मैं नहीं कहता, तथापि वह संगति ठीक जगह और ठीक तरह से लाई जासके तो जरूर उपयोगी होगी। कुछ गायक खासकर श्रीराग का इशारा करके फिर उसका नियम बदलने लगते हैं।

प्र०—यानी 'सा, रे रे सा, प, प, मं प, धु प, मं ग' कुछ ऐसा वे करते होंगे?

उ०—हां, फिर बाद में 'मं धु मं ग रे सा' अथवा 'प ग, रे सा' करें, तो बस। अब तुम मेरे कहे हुये हिसाब से तानें रचो, देखूँ तो।

प्र०--अच्छा। प्रयत्न करके देखता हूं—"सा, नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, ग मं प, ध॒ प, मं ग, मं प ध॒ मं प मं ग, प ग, रे॒, सा नि़ रे॒ सा, नि़ सा ग मं प, मं प, मं प ध॒ मं प, मं ग, सा ग, प मं ग, ध॒ प मं ग, प ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, नि़ सा, मं ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, मं प़ नि़ सा, नि़ रे॒ सा, ग प ग रे॒ सा, प ध॒ मं ग, प ग रे॒ सा" क्या यह तान सायंगेय दृष्टिगोचर नहीं होगी ?

उ०—वह तो अवश्य दीखेगी। फिर आगे उत्तराङ्ग में कैसा करोगे ?

प्र०—वहाँ कुछ विचार करना पड़ेगा। 'सां, ध॒ प, ध॒, नि सां, रें॒ सां, गं रें॒ सां, ध॒ प, मं ग, मं ध॒ नि सां, सां, ध॒ प, ग, रे॒ सा' ऐसा सावकाश करने लगें तो कौन जाने क्या अड़चन आयगी, परन्तु पहिले हमने जो तानें गायी हैं, क्या वे इस राग में चलने योग्य हैं ?

उ०—मैं समझता हूँ, उन्हें अशुद्ध नहीं माना जा सकता। दीपक राग पर प्रातःकाल की छाया न पड़े, इस बात की भी सावधानी रखनी पड़ती है। यह तुम समझ ही चुके हो। उत्तराङ्ग में निषाद अवरोह में नहीं है, इसलिये वहां विभास से बचाना होगा। निषाद छोड़ने वाला राग 'रेवा' तुम्हारे पास है ही, कोई गायक प्रातःकाल की छाया हटाने के लिये तार षड्ज पर कुछ ठहर कर, एक दम पंचम पर आते हैं, और वहां से ही सायंगेय तान जोड़ देते हैं।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—इन तानों को देखो:--ग ग, मं ध॒ प, सां, नि रें॒ सां, गं, मँ गं रें॒ सां, प, मं ग, मं ध॒ रें॒ सां, प मं ग, मं ध॒ मं ग, प ग रे॒ सा, यह भी एक युक्ति है। हो सके तो इसे ध्यान में रक्खो।

प्र०--परन्तु ऐसे झमेले में पड़ने की अपेक्षा अवरोह में विवादी के नाते थोड़ा निषाद का प्रयोग स्वीकार करें तो क्या अधिक सुविधाजनक नहीं होगा ? और रिषभ छोड़ने का नियम भी अच्छी तरह पालन करें। जैतश्री में हमने स्वयं रिषभ भी लगने दिया था न ? वहां धैवत का नियम ठीक तरह से पालन करने को आपने कहा था।

उ०—तुम्हारी इस युक्ति में कुछ भी तथ्य नहीं, यह तो मैं नहीं कहता। 'सां, ध॒ प' ऐसे टुकड़े से यदि विभास होने का डर मालूम पड़े तो वहां कहीं-कहीं विवादी निषाद लगाना ही अधिक सुभीते का होगा। किन्तु उस तरह निषाद लगाये बिना किसी को दीपक गाते नहीं बनेगा, यह न समझो। "नि़ सा, ग मं प, मं प, नि, सां, रें॒ सां, गं रें॒ सां, नि सां ध॒ प, मं ध॒ मं ग, प ग, रे॒ रे॒ सा" ये तानें सायंगेय दृष्टिगोचर होने से कोई हानि नहीं। 'मं प, नि सां रें॒ सां, नि सां, ध॒ प' इस युक्ति से 'सां, ध॒ प' आजांय तो बुरा परिणाम न होगा।

प्र०—अपने गायक यह राग बहुधा किस तरह गाते हैं ?

उ०--इस राग को प्रायः वे गावेंगे ही नहीं। दीपक के नियम लगाकर यदि कोई राग गाया भी तो वे उसका नाम बताने का साहस न करेंगे, क्योंकि उनका कहना किसी

को ठीक मालूम नहीं पड़ेगा। मुझे याद है कि एक गायक ने ऐसा प्रकार मुझे सुनाया भी था, किन्तु उस राग का नाम उसने कुछ भी नहीं बताया। उसने अपना राग मन्द्र और मध्य इन दोनों ही स्थानों में पूरा किया था।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—उसका प्रकार ऐसा था--(ताल झंपा)

मं़ प़ । नि़ नि़ सा । रे॒ रे॒ । सा ऽ सा ।
नि़ रे॒ । सा ग प । ग रे॒ । सा ऽ सा ।
सा रे॒ । सा ग मं । प प । ध॒ मं प ।
मं ग । मं ध॒ मं । ग ग । नि़ रे॒ सा ॥

प्र०--और आगे अन्तरा ?

उ०--अन्तरा ऐसा है--

रे॒ रे॒ । सा ग मं । प प । मं ध॒ प ।
मं मं । प ध॒ प । मं ग । प मं ग ।
सा ग । मं ध॒ मं । ग मं । ग रे॒ सा ॥

यह 'सरगम' प्रथम दर्शन में बिलकुल साधारण दृष्टिगोचर होती है, परन्तु इसमें किस युक्ति से नियम पालन किया गया है, उसे देखो। शुरू में थोड़ा सा श्रीराग का भास होने दिया, परन्तु फिर फ़ौरन ही उस राग का नियम मोड़ दिया है।

प्र०--ऐसे प्रकार का विस्तार कैसे किया जायगा ?

उ०--क्यों ? वह तो तुम्हारे नियमों से ही किया जा सकता है। इन तानों को देखो:—

ध़॒ ध़॒ प़ मं़ प़, नि़, सा, ध़॒ नि़ सा, नि़ रे॒ सा, ग रे॒ सा, मं़ प़ नि़ सा, रे॒ रे॒ सा, ग मं ग रे॒ सा, प, प, मं ग, प ग, रे॒ रे॒, सा, सा रे॒ सा, ग मं प, प, ध॒ ध॒, प, मं प ध॒ मं प, मं ग, प मं ग, सा ग मं ध॒ प, मं ग, प, ग, ग रे॒ सा; नि़ रे॒ सा। प़ ध़॒ प़ मं़ प़ नि़, प़ नि़, रे॒ रे॒ सा, प ग, प मं ग, रे॒, सा, नि़ सा ग मं प, ग मं प, ध॒ प, मं प, सा ग म प, मं ग, ध॒ मं ग, सा ग प ग, मं ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। मैं समझता हूँ, ऐसी तानें तुम आसानी से तैयार कर सकोगे। गाते-गाते अपने राग में स्वयं ही एक प्रकार का रङ्ग पैदा होता है। हम नियम पालन करते हुए चलें तो योग्य तानें फिर अपने आप ही सूझने लगती हैं। कहां, कौनसी तान रक्खी जाये, यह निश्चय करने के लिये अपनी-अपनी कल्पना स्वयं उड़ती है। एक अन्य गायक ने दीपक की सरगम मुझसे ऐसे कही थी--

दीपक—(त्रिताल)

प मं ग प । मं ग मं ग । सा ग प मं । ग ग रे॒ सा ।
नि़ रे॒ सा मं़ । ध़॒ नि़ सा ग । रे॒ सा प मं । ग ग रे॒ सा ॥

अन्तरा—

ग ग मं ध॒ । प सां ऽ सां । नि रें॒ सां मं । गं गं रें॒ सां ।
सां रें॒ सां प । मं ग मं ध॒ । प मं ग मं । ग ग रे॒ सा ॥

प्र०—यहां प्रारम्भ में हमको मालश्री का किंचित आभास हुआ था, परन्तु आगे फिर स्पष्ट हो गया।

उ०—हाँ, ऐसा होना कुछ संभव है, परन्तु इस सरगम में रे ध स्पष्ट ही हैं। मेरे गुरु ने भी यह राग मुझे बताया है, वह ऐसा है।

झंपाताल—

सां सां । प ग प । ग रे । सा रे सा ।
नि रे । सा ग मं । प प । मं ध प ।
प मं । ग मं ग । मं ध । प नि सां ।
रें सां । प मं ग । प ग । नि रे सा ॥

अन्तरा—

ग ग । मं ध प । सां ऽ । नि रें सां ।
नि नि । सां रें सां । गं मं । गं रें सां ।
नि सा । ग मं ध । नि सां । गं रें सां ।
रें सां । प मं ग । मं ग । रे रे सा ॥

अन्तरा के अन्तिम दो चरणों को बदल कर ऐसा भी किया जा सकता है:—

रें सां । प मं ग । मं ध । रें सां ऽ ।
सां प । मं ग प । मं ग । नि रे सा ॥

यह सरगम संग्रह की दृष्टि से तुम अपने पास रक्खो। यद्यपि इसे दीपक स्वीकार करने के लिये गायक तैयार नहीं होंगे, फिर भी यह एक निराला प्रकार है, ऐसा वे जरूर कहेंगे, अस्तु। अब हमें यह देखना है कि अपने ग्रन्थकार इस विषय में क्या कहते हैं:—

कल्लिनाथ:—

संपूर्णो दीपको जातो भिन्नकैशिकमध्यमात् ।
गपाल्पः सग्रहो मांतः संकीर्णो दीप्तमध्यमः ॥
धन्नासिकैवोच्चतरा दीपकोऽन्यैर्बुधैः स्मृतः ॥

कल्लिनाथ का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ देखे बिना उनके इस वर्णन का स्पष्टीकरण नहीं हो सकेगा। वह दीप्त मध्यम किस नाद को मानते थे, यह भी निश्चित होना चाहिये। धन्नासि को कोई ग्रन्थकार संधिप्रकाश रूप देते हैं, यह पहिले मैं ने कहा ही था।

सङ्गीतदर्पणे:—

षड्जग्रहांशकन्यासः संपूर्णो दीपको मतः ।
मूर्छना शुद्धमध्या स्याद्गातव्या गायनैः सदा ॥
बालारतार्थं प्रविलीनदीपे ।
ग्रहेऽधकारे सुभगं प्रवृत्तः ॥
तस्याः शिरोभूषणरत्नदीपै- ।
र्लज्जां दधौ दीपकरागराजः ॥

इस श्लोक के आधार पर ही उत्तर के एक पंडित ने मुझ से कहा था कि 'शुद्धमध्या' मूर्छना पर से मैं दीपक का थाट 'कल्याणी' मानता हूं।

प्रश्न—वह दर्पण का शुद्ध स्वरमेल बिलावल के समान मानता होगा? ऐसा जान पड़ता है।

उ०—हां, उसने कहा भी था। अस्तु, हम आगे चलते हैं। रामामात्य पण्डित अपने स्वरमेलकलानिधि में कहता है—

शुद्धाः सरिपधाश्चैव च्युतपंचममध्यमः ।
च्युतमध्यमगांधारश्च्युतषड्जनिषादकः ॥
शुद्धरामक्रियामेलः स्यादेभिः सप्तभिः स्वरैः ।
अत्र मेले संभवंति ये रागास्तानथ ब्रुवे ॥
शुद्धरामक्रिया बौली ह्यार्द्रदेशी च दीपकः ।
इत्याद्याः संभवंत्यत्र मेले रागाश्च केचन ॥

प्र०—यहां दीपक का थाट पूर्वी ही कहा है। अतः यह आधार हमारे लिये उपयोगी है। ठीक है न?

उ०—हां, यह भी अपने लिये एक आधार होगा।

प्र०—अच्छा, परन्तु दीपक का प्रत्यक्ष लक्षण स्वरमेल कलानिधि में कैसा कहा है?

उ०—उसका प्रत्यक्ष लक्षण तो रामामात्य ने नहीं कहा, परन्तु उसने दीपक को 'अधम' रागों में माना है। उसने उत्तम राग २०, मध्यम १५ और अधम ३४, इस तरह कहे हैं, परन्तु उन सब के लक्षण उसने नहीं कहे। अधम रागों में के उसने ७-८ रागों के ही लक्षण कहे हैं, यथा:—

शुद्धाः सपरिधाः स्युर्विकृतपंचममध्यमः ।
गांधरोऽतरसंज्ञश्च काकल्याख्यनिषादकः ॥
एतैः सप्तस्वरैर्युक्तः शुद्धरामक्रिमेलकः ।
रामक्रियामेलजोऽयं संपूर्णो दीपकः स्मृतः ।
षड्जन्यासग्रहांशोऽयं गेयो यामे तुरीयके ॥

तुम्हारे लिये यह भी ठीक आधार है क्यों कि यहां भी दीपक को पूर्वी का ही थाट कहा है।

प्र०—परन्तु राग सम्पूर्ण माना है, इसलिये इससे विशेष सहायता मिलेगी, ऐसा नहीं जान पड़ता। राग का समय चौथा प्रहर कहा है इस तथ्य को हम लक्ष्य में रखेंगे।

उ०—ठीक है।

रागलक्षणे:—

कामवर्धनीतिमेलाद्दीपकः समजायत ।
आरोहे तु रिवर्जं चाप्यवरोहे निवर्जितम् ॥
सा ग मे प ध़ नि सां । सां ध़ प मे ग रे़ सा ।

यही प्रकार तुम्हारा है। ठीक है न?

प्र०—हां, यह बिलकुल उत्तम आधार है किन्तु जो गायक कल्याण थाट में दीपक को रखते हैं, वे भला किस आधार पर रखते होंगे?

उ०—मालूम होता है, उनके मत में यह राग सन्धिप्रकाशानन्तर दीया जलाते समय गाने का होगा। उस समय का कल्याण थाट होता है, यह तुम्हें ज्ञात ही है। जिसने मुझे वह गाकर दिखाया, वह अपना यह राग 'यमन' भूप, जेतकल्याण और सावनी-कल्याण' इन रागों से अलग नहीं दिखा सका। एक गायक को दीपक 'म़ प़, नि़ सा, रे रे सा, ग, म प म ग, रे सा, ध प, म ग म, रे सा' इस तरह से शुरू करते हुये एक बार मैंने देखा था। उसने अपनी सारी चीजें मंद्र मध्य इन दो स्थानों में ही पूरी की थीं। उसके गाने में सभी शुद्ध स्वर होने से. वैसा दीपक मैंने पसन्द नहीं किया। मजा यह है कि 'आरोह में रे वर्ज्य और अवरोह में नि वर्ज्य' इस नियम का पालन भी वह करता था।

प्र०—तो क्या वह भी एक नया प्रकार नहीं कहा जा सकता?

उ०—कदाचित् कहा जा सकता है, परन्तु अभी यह अपना प्रश्न नहीं है।

प्र०—आप ठीक कहते हैं। हमको पूर्वी थाट का प्रकार चाहिये। अच्छा तो भावभट्ट पण्डित ने दीपक कैसा कहा है?

उ०—कहता है—

दीपको मालवोत्पन्नो मन्यारोहेऽत्र वर्जितौ ।
गांधारोद्ग्राहसंयुक्तो न्यासांशौ च गधौ स्मृतौ । अनूपविलासे ।

'अनूपसङ्गीतरत्नाकर' में भी इसी अर्थ का द्योतक श्लोक है। भावभट्ट ने दीपक का जो स्वर स्वरूप बताया है, उसे उसने पारिजात से लिया है। मालव थाट तुम्हारा पहिचाना हुआ है ही।

प्र०—दीपक सायंगेय राग होने से, इसमें तीव्र मध्यम आयेगा, ऐसा समझना ठीक होगा?

उ०—ऐसा समझ लो तो भी कोई हानि नहीं है। हम दीपक में म, नि वर्ज्य नहीं करते। अतः उक्त प्रकार हमें स्वीकार नहीं है। भावभट्ट पण्डित ने अपने ग्रन्थ में 'पारिजात' का उपयोग अनेक स्थानों पर किया है। क्यों कि वह तीव्र, कोमल स्वर, संज्ञा देने वाले ग्रन्थों में से एक है, इस कारण उत्तर की ओर वह लोकप्रिय भी है। कहीं-कहीं उसने प्रचार की ओर देखकर अहोबल के लक्षणों में कुछ 'अपने पास' का भी जोड़ दिया है, ऐसा दृष्टिगोचर होता है।

प्र०—सो कैसे?

उ०—उदाहरणार्थ उसका 'टक्क' लक्षण देखो। अहोबल पण्डित अपने 'टक्क' का ऐसा वर्णन करता है—

रिधौ तु कोमलौ ज्ञेयौ चाभीरीमूर्छनायुते।
आरोहे च धवर्ज्यत्वं रागे ढक्काभिधानके॥

भावभट्ट ने 'टक्क' नाम पसन्द कर ऐसा लक्षण दिया है—

रिधौ तु कोमलौ ज्ञेयौ चाभीरीमूर्छनायुते।
अवरोहे मवर्ज्यं स्याद्रागे टक्काभिधानके॥
सायं च सत्रिकष्टक्कःकाकल्यंतरराजितः॥

प्र०—परन्तु क्या यह टंकी रागिणी का लक्षण नहीं हो सकता?

उ०—कदाचित् थोड़ा बहुत होगा भी, परन्तु "आभीरीमूर्छनायुते" यह विशेषण रहने से उसका लक्षण थोड़ा बेढंगा दृष्टिगोचर होगा। अहोबल की आभीरी में कोमल गांधार है। दक्षिण के ग्रन्थों में भी आभीरी कोमल गाधार की होती है। टक्क का वर्णन करते हुये शार्ङ्गदेव पंडित ने "काकल्यंतरराजित:" ऐसा कहा है, यह मैंने तुमको बताया ही है। दक्षिण के ग्रन्थकार भी टक्क को मालवगौड़ थाट में रखते हैं। जैसे—

टक्को मालवगौलीयमेलोद्भूतोल्पपंचमः।
पूर्णः षड्जग्रहादिश्च गेयोऽह्नःपश्चिमे बुधैः॥

सारामृते॥

भावभट्ट दक्षिण का विद्वान था, उधर उत्तर की ओर टंक रागिणी का संधिप्रकाश रूप होने के कारण उसने पारिजात के श्लोक का, प्रचार से सुसंगत बैठाने का प्रयत्न किया होगा। किसी-किसी जगह उसने पारिजातोक्त आलापों की मदद से स्वयं तानें रची होंगी, ऐसा मालूम होता है। यदि ऐसा उसने किया हो तो भी हम उसे दोष नहीं दे सकते। कोई-कोई लक्षण उसने अच्छा दे रक्खा है, इसमें संशय नहीं। उदाहरण के लिये "मालवी" देखो—

"सत्रिका निविहीना वा सायं मालविकेरिता"

उसका यह मालवी का लक्षण क्या हमारे लिये थोड़ा बहुत उपयोगी नहीं है। अस्तु,

रागमालायाम्:—

भानोर्नेत्राभिजातो धवलगजवरारूढ़ ××× रूपो।
रक्तांगो भूरिनेत्रो धृतमुकुटशिराश्चित्रवस्त्रोऽतिरम्यः॥
कंठे मुक्तैकमालः करधृतकुलिशो मन्मथानंदकर्ता।
मध्याह्ने वेष ×× निखिलजनपदे दीपकोग्रीष्मकाले॥

इस श्लोक में "दीपक" की रितु और गाने का समय किस प्रकार कहा गया है, उसे देखा?

प्र०—हां, यही मैं भी कहने वाला था। इस दीपक का सम्बन्ध दीये से कैसे लगाया जाता है? ऐसे मत के लोग कदाचित् दीपक का थाट काफी मानते होंगे।

उ०—यदि ऐसा समझो तो भी चल सकता है।

कल्पद्रुमे:—

गांधारांशग्रहन्यासः पवर्जितश्च षाडवः ।
तृतीयप्रहरे गानं दीपे प्रज्वलिते तथा ॥
भीमपलाशिका यत्र प्रदीपकी पुनस्तथा।
धनाश्रीस्वरसंयुक्तो जायते दीपकस्तदा ॥

इस आधार से कोई काफी थाट के दीपक का समर्थन कर सकता है। कल्पद्रुमकार ने इन श्लोकों में दर्पण का शास्त्राधार चिपका दिया है। दीपक के अवयव उसने ऐसे कहे हैं—

भीमपलासी आभीरिका सिंदूरीसुरजान ।
दीपक-दीपक बरि उठे सूर्यदेवता मान ॥

प्र०—सङ्गीतसारकर्त्ता ने दीपक का लक्षण कैसा दिया है?

उ०—उसने इस राग की "आलापचारी" नहीं दी। वह कहता है कि "आनंदकरि के देवता जड़ होगये, तिनके चेतनार्थ यह राग चैतन्य रूप अग्निमय है। याके श्रवण करके देवता सावधान भये।" आगे दर्पण के श्लोक का हिन्दी भाषान्तर कर और वहां की मूर्छना कह, फिर कहता है—"याको संध्या के समय में एक घड़ी घटतें गावनो। राति के तीसरे प्रहर तांई गावनो। दीवाली के दिन जब चाहो गावो। परीक्षा। दीवा में वाति तेल धरि वाको जोवे नहीं। अरु दीपक राग गाइये। जो गाइबेसों दीया आप ही सों जुपवे लग जाय तब दीपक सांचो जानिये। यह राग देवलोक में बरत्यो जाइ है। मनुष्य लोक में बरतबे की काहू की सामर्थ्य नहीं।" इस वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थकार के समय में यह राग प्रचलित नहीं था।

नादविनोदे:—

गांधारांशगृहं न्यासं पूर्णो जोतिःस्वरूपका।
संध्याकाले प्रगीयंते दीपकाय प्रकाशितः ॥

इस तरह कल्पद्रुम का श्लोक शुद्ध करके लिख दिया है स्वरूप उसने ऐसा कहा है—

"सा सा रे ग ग रे ग मं प प ग प ध ध प ध ध ग मं प रे रे रे ग नि प प ध ध प ग ग ग रे रे सा सा।" हम यह प्रकार पसन्द नहीं करते। क्षेमकर्ण पंडित ने दीपक का परिवार ऐसा कहा है—

कामोदी पटमंजरी च परतस्तोडी तथा गुर्जरी ।
सारंगी वरवुद्धयोऽपि जगतो गायन्ति पंचांगनाः ॥
अप्यष्टौ कमलाढयोऽथ कुसुमो रामः सुतः कुन्तलः ।
कालिंगो बहुलोऽपि पंचम इतो हेमालको दीपकः ॥

ये सारे नाम मैंने पीछे कहे ही हैं। हरिवल्लभ अपने दर्पण में दीपक का लक्षण ऐसा लिखता है—

तीन सकारनसों बन्यो सम्पूरन परमान ।
सब कोविद याविध कहें दीपक राग बखान ॥

दीपक के स्वर उसने अपने ग्रन्थ में नहीं दिये। Capt. Willard कहता है:—

DEEPUK.

The flame which the ancient musicians are said to have kindled by the performance of this Rag is depicted in his fiery Countenance and red vestments. A string of pearls is thrown round his neck, and he is mounted on a furious elephant accompanied by several women. He is also represented in a different form. दीपक के अवयवीभूत राग वे ऐसे बताते हैं; Deepuk, Kedara, Camod, Soodha, Nut, and Bagesree.

प्र०—इस मिश्रण को सन्धिप्रकाश रूप नहीं मिल सकता, मुझे ऐसा प्रतीत होता है।

उ०—तुम्हारी शंका उचित है। मैंने तुमको मतभेद बताया ही है। "Hindu Music from various authors" नामक टैगोर साहब के निबन्ध में "Anecdotes of Indian Music" इस नाम का "Sir W. Ouseley" साहब द्वारा लिखित एक निबन्ध है, उसमें दीपक की कथा ऐसी लिखी है:—"There is a tradition, that whoever shall attempt to sing the Rag Deepuk is to be destroyed by fire. The Emperor Akber ordered Naik Gopal, a celebrated musician, to sing that Rag; he endeavoured to excuse himself but in vain; the Emperor insisted on obedience; he therefore requested permission to go home, and bid farewell to his family and friends."

प्र०—पर, यह कथा तो आप तानसेन के विषय में कह चुके थे न?

उत्तर—हाँ, हाँ, मैंने Whitten साहब के निबन्ध से ही उसे पढ़कर सुनाया था। वहाँ ऐसा ही कहा था। अब दीपक का विशेष भय नहीं रहा, इसलिये वह सब झमेला हमें नहीं चाहिये। Ouseley साहब कहते हैं—"A European in that country (India) inquiring after those whose musical performance might

produce similar effects, is gravely told, "That the art is now almost lost; but that there are still musicians possessed of those wonderful powers in the west of India." But if one inquires in the west, they say, "That if any such performers remain they are to be found only in Bengal." उस साहब ने यह ठीक ही कहा है। ऐसी गप्प मैंने भी सुनी है। अच्छी याद आई, अपने "संगीत पारिजात" के काल सम्बन्धी निबन्ध में एक उल्लेख मैंने देखा था।

प्रश्न—वह कौनसा ?

उत्तर—कहता हूँ। उस लेख का भाव ऐसा था—"Counterpoint seems not to have entered, at any time, into the system of Indian music. It is not alluded to in the manuscript treatises I have hitherto perused, nor have I discovered that any of our ingenius Orientalists speak of it as being known in Hindusthan. The books, however, which treat of the music of that country are numerous and curious. Sir William Jones mentions the works of Amin, a musician the Damodara, the Narayan, the Ragarnava (or sea of passions), the Sabha -Vinoda (the delight of assemblies); the Rag -Vibodha (the doctrine of musical modes); the Ratnakar, and many other Sanscrit and Hindustani treatises. There is besides the Ragdarpan (or mirror of rags) translated into Persian by Fakur Ulla from a Hindowi book on the science of music, called Mancuttuhub, compiled by order of Mansing, the Raja of Gwalior. The Sangeet Darpana is also a Persian translation from the Sanscrit. To these I am enabled to add, by the kindness of the learned Baronet whom I have before mentioned, the title of another Hindovee work translated by Deenanath the Son of Basudev, into the Persian language on the first day af the month Ramjan, in the year of the Hegira 1137, of our era 1724. × × "An Essay on the Science of Music, translated from the book Parijatuk; the object of which is to teach the understanding of the Ragas and Raginees and the playing upon musical instruments." इससे तो एसा प्रतीत होता है कि अहोबल पंडित अनुमानतः २५० वर्ष पूर्व हुआ होगा। इस अनुमान में आश्चर्य का कोई कारण नहीं है।

प्रश्न—ठीक है। अब हमको अपने दीपक का समर्थक आधार बता दीजिये।

उत्तर—हाँ, ऐसा ही करता हूँ:—

कामवर्धनिकामेलाद्दीपको गुणिसंमतः ।
आरोहणे रिवर्ज्यं स्यादवरोहे निवर्जितम् ॥
षड्जस्यात्र प्रधानत्वं संमतं शास्त्रवेदिनाम् ।
गानं चास्य समादिष्टं दिने यामे तुरीयके ॥लक्ष्यसंगीते।

कल्पद्रुमांकुरे:—

मेले पूर्व्यां दीपकः षड्जवादी ।
आरोहे संवर्ज्यतेऽत्रर्षभो हि ॥
वर्ज्यः प्रोक्तश्चावरोहे निषादः ।
सायंकाले गीयते गानधुर्यैः ॥

चंद्रिकायाम्:—

पूर्वीमेले समुत्पन्न आरोहे वर्जितर्षभः ।
अवरोहे निर्निषादः सांशः सायं हि दीपकः ॥

"सरमाए अशरत" कार कहता है—"कोई दीपक को जन्य रागों में गिनते हैं, पर मैं उसको शुद्ध ही मानता हूँ, कारण कि वह मुख्य छः रागों में से एक है। उसका समय मध्याह्न का है। × × यह राग तानसेन ने अकबर बादशाह के सामने गाया और उसके आगे वह जल मरा। यह राग महादेवजी के पूर्व मुख से निकला है।

प्रश्न—एक प्रश्न मनमें आया है, उसे पूछ लेता हूँ। दीपक के अवरोह में निषाद जो वर्ज्य माना गया है, वह विवादी के नाते थोड़ा स्वीकार किया जाय तो सुविधाजनक नहीं होगा क्या ? मालवी में यदि हम धैवत विवादी लेते हैं तो रिषभ आरोह में है ही। जैतश्री के आरोह में धैवत नहीं है।

उत्तर—ऐसा करना अवश्य ही सुविधाजनक होगा। इतर रागों को बचाकर जो करो उसे अच्छी तरह समझ कर करो।

प्रश्न—यह राग भी हम अच्छा समझ गये। अब अगला लीजिये।



राग परज

उ०—हाँ, अब हम परज का विचार करते हैं। पूर्वी थाट के सायंगेय राग तो हमने समाप्त कर ही दिये हैं। अब जो दो तीन प्रातःकाल के बच गये हैं, वे भी हो जांय तो यह थाट पूर्ण हुआ। सायंगेय रागों का स्वरूप ध्यान में रखने के लिये ये स्वर समुदाय तुम्हारे लिये ठीक रहेंगे। देखोः—

(१) नि़ नि़, सा रे॒ ग, म ग, ग म म॑, ग म ग, रे॒ ग, म॑ ध॒ म॑ ग, ग रे॒ सा।

(२) सा, रे॒ रे॒, सा, रे॒ प, प, म॑ ध॒ म॑ ग, रे॒, म॑ ग रे॒, ग रे॒, रे॒ सा।

(३) रे॒ रे॒, प, प, म॑ प, ध॒ प, म॑ रे॒, म॑ रे॒, रे॒ सा; अथवा—रे॒ ग रे॒, म॑ ग रे॒, सा रे॒ नि़, सा, सा नि़ ध़॒ नि़, रे॒ ग रे॒ म॑ ग रे॒ सा रे॒ नि़. सा। अथवा, म रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ सा, ध़॒ नि़ सा, सा रे॒ म, ग रे॒, प म, ग रे॒ सा नि़ सा।

(४) सा नि़, सा ग प, म॑ ध॒ प, प, म॑ ध॒ म॑ ग, म॑ ग, रे॒ सा।

(५) प, प, म॑ ध॒ प, म॑ ग, म॑ रे॒ ग, म॑ ध॒ म ग, रे॒ सा।

(६) प ग, प ग रे॒ सा, रे॒ ग, प ध़॒ प़ सा, रे॒ सा, रे॒ ग, प ग रे॒ सा।

(७) सा ग, म॑ ध॒, रे॒ं सां, सां, नि, म॑ ध॒, सां, नि प, म॑ ग, प ग, रे॒ सा।

(८) रे॒ रे॒, सा, नि़ रे॒ सा, ग प, ग रे॒ सा, ग प, प ध॒ नि ध॒ प, ग, प ग रे॒ सा।

(९) प प ग रे॒, ग प ग रे॒ सा, रे॒ ग, प प, ध॒ प, ध॒ नि ध॒ प, ग प, ग रे॒ सा।

(१०) प ग, म॑ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, ग म॑ प ध॒ प म॑ ग, प म॑ ग, रे॒ सा।

ये कौन-कौन से रागों के हैं, सो तुम समझ ही सकते हो। इन अङ्गों की मदद से तुमको आगे चल कर गायकों के राग निश्चित करने में बड़ी मदद मिलेगी। परज एक बहुत लोकप्रिय और सरल प्रकार समझा जाता है। यह प्रायः प्रत्येक गायक को आता ही है। कालिंगड़ा राग वर्णन के समय कहीं-कहीं इस राग का नाम भी आया था, वह तुम्हें याद होगा ही।

प्र०—हाँ, आपने कहा था कि प्रचार में गायक लोग बहुधा कालिंगड़ा और परज इन दोनों का योग (मिश्रण) करते हैं। वह मिश्रण सुन्दर होता है। यह भी आपने कहा था।

उ०—ठीक है। प्रचार में तुमको सा जरूर दिखाई देगा। 'परज' एक उत्तराङ्ग प्रधान राग है। इसका समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है। उत्तर राग होने के कारण अवरोह में वह तत्काल प्रकट होता है। इस राग को 'परज' नाम कैसे और किसने दिया। इस खोज का भार हम अपने मत्थे नहीं लेंगे। यह नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है, इसमें संशय नहीं। परज राग सम्पूर्ण है। इसका आरोह अवरोह सरल है, ऐसा मानने में

कोई हानि नहीं दिखाई देती। तथापि कोई-कोई गायक आरोह में रिषभ छोड़ना ही पसन्द करते हैं। इस राग में तार षड्ज का विशेष महत्त्व है, अतः व्यवहार में उसे वादी मानते हैं। तीव्र मध्यम आने के कारण इस राग को पूर्वी थाट में रखते हैं, तथापि यह राग दोनों मध्यम लगाकर बारम्बार गाया जाता है।

प्र०—रात्रि बाकी रहने के कारण तीव्र म, और प्रातःकाल निकट होने से कोमल म, यह कारण जान पड़ता है।

उ०—तुम्हारे ध्यान में यह कारण ठीक आया है। परज राग गाने में थोड़ी कुशलता रखनी पड़ती है।

प्र०—परज में कौनसा अङ्ग रखना पड़ता है ?

उ०—जब कि श्री अङ्ग से वह गाया नहीं जाता तो पूर्वी अङ्ग से ही गाया जायगा; ऐसा कहना चाहिये।

प्र०—परज राग ध्यान में रखने के लिये एकाध पकड़ हमको बतादें तो बड़ा अच्छा हो।

उ०—परज की रागवाचक तान तुम ऐसी ध्यान में रक्खो—'नि सां रें नि सां, नि धु प, मं प, धु प, ग म ग' परन्तु अवरोह में कहीं मींड़ वगैरह न लगावो। मैं जिस तरह से जहां रुकता हूँ, वैसे ही तुमको चलना चाहिये। मेरे उच्चारण की ओर ठीक तरह से ध्यान दो।

प्र०—नहीं तो दूसरे किसी राग में मिल जाने का डर है, यही बात है न ?

उ०—हां, परज और बसन्त ये पास-पास के राग हैं। इसलिये ध्यानपूर्वक चलना होगा। मेरे गुरु ने मुझे प धु नि, धु नि सां, नि, धु प, यह तान परज की 'पकड़' कह कर समझायी है; उसे तुम भी सीख लो। कारण, इतने छोटे टुकड़े से ही परज स्पष्ट दिखाया जा सकता है। परज की प्रकृति गंभीर नहीं है, इसलिये हो सके तो सावकाश न गावो। तार षडज पर थोड़ा ठहर कर फिर 'नि धु प' ये स्वर जल्दी से कहे जांय तो परज दिखाई देगा।

प्र०—परज का आरोह कैसे किया जाय ?

उ०—उसे तुम 'नि़ सा ग ग, मं धु नि सां, सां रें नि सां' इस तरह करो तो चल सकता है। उसके आगे फिर 'नि रें गं रें सां, सां रें नि सां नि, धु प' ऐसे टुकड़े लो। कोई गायक 'मं प धु प, ग म ग' ऐसी परज की पकड़ अपने शिष्यों को सिखाते रहते हैं, यह भी बड़ी सुविधाजनक है। कारण, इसमें युक्ति पूर्वक दोनों मध्यम दिखाये गये हैं। मेरे गुरु ने मुझे परज ऐसा गाकर दिखाया था—'सा नि़ सा ग, मं ग, मं, धु नि सां, प धु नि, धु नि सां, नि, धु प, मं प धु प, ग म ग, मं ग रे सा' वे जगह व जगह इस खूबी से ठहरते थे कि उनके राग की छाप मेरे मन पर कुछ विलक्षण ही पड़ती थी। मैं भी जहां तक हो सकता है उसी शैली का अनुकरण अब करता हूँ। कोई 'सां, नि धु प,

ग म प धु, प, ग मं ग, ऐसा भी करते हैं। इस तान में कोमल मध्यम आरोह में दृष्टिगोचर होता ही है। मार्मिकों का मत ऐसा है कि परज गाते हुये कालिंगड़ा का किंचित आभास श्रोताओं को होने दो और बसन्त गाते हुये श्रीराग का आभास होने दो। कुछ अंशों में उनके इस कथन में विशेष तथ्य भी है। कालिंगड़ा और परज ये अच्छी तरह मिल जाते हैं, यह मैंने कहा ही था। 'सां नि धु प, धु नि धु प, ग म ग' ये स्वर उन दोनों रागों में आने योग्य हैं। ठीक है न ?

प्र०--आया ध्यान में। उन्हें लेकर फिर 'ग म प धु म प, धु प, ग म ग, म ग, रे सा' ऐसा किया कि कालिंगड़ा होगा और 'म धु नि, धु नि सां, नि धु प, धु प, ग म ग, ग मं धु, ग मं ग, रे सा' ऐसा किया कि परज होगा। यही न ?

उ०--हां, यही खूबी तो ध्यान में रखने योग्य है, और है ही क्या ? परज और बसन्त इन रागों के बाद फिर कोमल मध्यम बढ़ने वाला रागों का समूह आगे आता है। अपने पंडितों ने कितनी मनोहर रचना कर रक्खी है, उसे देखो न ? मध्यम बढ़ाने वाला अङ्ग अर्थात् ललितादिक रागों का अङ्ग अब आने वाला है। मैं तुम्हारा ध्यान एक दूसरे सिद्धांत की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ और वह ऐसा है--परज राग गाते हुये उत्तम गायक आरोह की तानों में बीच-बीच में पंचम स्वर स्पष्ट दिखाने का प्रयत्न करते रहते हैं। वह कृत्य इतना सरल नहीं है जितना तुमको जान पड़ता है। वैसा करने में यथेष्ट प्रयत्न करना पड़ता है।

प्र०--ध्यान में आ गया। दो अर्धान्तरों को -एक के आगे एक-लगाने की अड़चन वहां जरूर उत्पन्न होगी। तो फिर वे वहां पंचम कैसे दिखाते हैं।

उ०--वहां, 'प धु नि, धु नि सां, नि, धु प' 'प धु नि सां, सां रें सां रें नि सां, मं धु नि सां' इस तरह से करें, तो बस। 'म धु नि सां' यह तान परज और बसन्त इन दोनों रागों आई हुई दृष्टिगोचर होगी, परन्तु बसन्त में कहीं-कहीं "मं धु सां" अथवा "मं धु रें सां" ऐसा प्रयोग विशेष रूप से किया हुआ दृष्टिगोचर होगा। यह सब मैं बसन्त राग वर्णन के समय विस्तार पूर्वक कहने वाला ही हूं। परज में भी 'मं धु नि सां' यह तान ऐसी जल्दी से निकल जाती है कि हमको बसन्त बिलकुल मालूम नहीं पड़ता।

प्र०--इसमें आश्चर्य नहीं। तान आरोह में है, इसलिये ऐसा प्रतीत होता होगा। परन्तु 'मं धु सां' अथवा 'मं धु रें सां' यह युक्ति उत्तम दीखती है। ऐसा करने से थोड़ा सा इशारा श्री अथवा गौरी का होगा, किन्तु उनकी छाया गायक लोग बसन्त में आने देते हैं, ऐसा आपने कहा ही था।

उ०--हाँ, ऐसा मैंने कहा है। परज में गंभीरत्व न होने से, उसमें शृंगारिक और क्षुद्रगीत ही व्यवहार में अधिक मिलते हैं। मेरे गुरु ने इस राग में एक दो ध्रुपद भी मुझे सिखाये हैं। यदि चाहोगे तो मैं वे भी तुमको सिखा दूंगा। परज राग जितना-तुम सावकाश कहोगे और उसके अवरोह में जितना-जितना मींड का काम करोगे,

उतना ही वह बसन्त के नजदीक जायगा। यह तत्व गायक को सदा ध्यान में रखना चाहिये। प्रसिद्ध घराने के गायक अपने शिष्यों को विशेष रूप से परज और बसन्त का अवरोह बहुत ही ध्यानपूर्वक अलग-अलग तैयार करने के लिये कहते रहते हैं। केवल आरोहावरोह से परज को जाहिर करने के लिये कहा जाय तो 'नि़ सा, ग ग, मं धु नि सां, सां, नि धु प, धु प, ग म ग, मं ग, रे सा' ऐसा करना यथेष्ट होगा।

प्रश्न--उसमें ही कहीं-कहीं 'प धु नि, धु नि सां, नि धु प' ऐसी तान दाखिल करें तो इस राग के विषय में कोई शंका उठेगी ही नहीं। ठीक है न?

उत्तर—हाँ, तुमने ठीक कहा। परज में दोनों मध्यम लगाये जाते हैं, इसलिये थाट के सम्बन्ध में बाधा पड़ने की सम्भावना रहती है।

प्रश्न--परन्तु वहाँ के लिये आपकी कही हुई युक्ति है ही। राग का नाम 'परज-कालिंगड़ा' लिया कि झगड़ा मिटा। वस्तुतः यदि कोमल मध्यम का परिमाण परज में अधिक न हो तो उस मध्यम के कारण तुरन्त ही संयुक्त राग नाम होना ही चाहिए, ऐसा हम नहीं कहेंगे। और फिर हम इस गोरखधन्दे में पड़ें ही क्यों? सम्भवतः अपने गायक 'परज-कालिंगड़ा' इसी दृष्टिकोण से कहते होंगे। अच्छा तो, परज का अन्तरा कैसे गायेंगे?

उत्तर--परज का अन्तरा ऐसा गाते हैं—'मं धु नि सां, सां, नि सां, रें रें सां, सां रें सां रें नि सां, नि धु नि, सा ग मं धु नि सां, रें ं रें सां, धु नि, धु सां, नि धु प, धु प, ग म ग, मं ग रे सा, इ०' एक गायक ने एक बार ऐसा चमत्कारिक प्रकार गाया था-'सा, ग म प, प, प धु मं धु, नि नि सां, ग म ग ग, म म प प, धु प, ग म ग, प धु मं धु, नि नि सां, नि नि सां रें, सां नि, धु नि, धु नि सां, नि धु प, धु प, ग म ग, इत्यादि' साधारण प्रकार जो हमें बारम्बार सुनाई पड़ेगा, वह ऐसा है—'धु धु मं धु, नि नि सां, सां रें सां रें, नि नि सां, नि नि सां रें, सां नि धु प, धु प ग म ग, इ०' परज के सम्बन्ध में बहुत विवाद नहीं उठता, क्योंकि खास तौर पर फर्माइश किये बिना ऐसे छोटे राग बड़े-बड़े गायक गाते ही नहीं। यहाँ इस राग में मन्द्र सप्तक का उपयोग अधिक नहीं होता है।

प्रश्न--वह ठीक ही है, क्योंकि गायन का मध्य बिन्दु तार षड्ज की ओर पहुँचा हुआ रहता है और मध्य पंचम से आगे ही सारी खूबी रहती है।

उत्तर—हाँ, तुमने ठीक कारण बताया। अस्तु, अब हम दो चार मत इस राग के सम्बन्ध में देखते हैं। रत्नाकर और सङ्गीतदर्पण इन दोनों ग्रन्थों में यह राग नहीं कहा गया है। सोमनाथ पण्डित ने परज राग मालवगौड़ थाट में रक्खा है। उसका लक्षण वह ऐसा कहता है—

परजो न्यल्पो गांशग्रहधगकंप्रः सदा सांतः।

रागलक्षणे—

मायामालवमेलाच जातः परजनामकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥

इसमें मध्यम तीव्र नहीं है, यह स्पष्ट दिखाई देता है। लोचन पंडित ने 'परज' राग का थाट कर्णाट कहा है। वह मत अपने आज के गायकों को पसन्द होगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। हमारा प्रचार बदला हुआ है, या लोचन की भूल हुई है। यह अब कौन कह सकता है ?

सङ्गीतसम्प्रदायप्रदर्शन्याम्—

परजश्च सुसंपूर्णः सग्रहः सार्वकालिकः ॥ मालवगौडमेले

दक्षिण की ओर परज आज भी एक लोकप्रिय राग है और वहां उसे मालवगौड थाट में ही मानते हैं।

रागमालायाम्—

भैरवः शुद्धललितः पंचमः परजस्तथा ।
बंगालश्चेति पंचैते शुद्धभैरवसूनवः ॥
सत्रिः संपूर्णकोऽसौ द्विविधगतिगनिस्तालहस्तः सुभार्यः ।
पृष्ठे पैनाकपाणिर्बहुविधरचितैर्भूषणैः शोभमानः ॥
गौरो दीर्घस्वरूपी मृदुवचनपरः सर्वलोकोपकारी ।
नित्यं याच्यः सदाहर्निशि च स परजो भाति चाग्रे नृपाणाम् ॥

हृदयप्रकाशे—

गादिर्धन्युज्झितो रोहे परजो मध्यमांशकः ॥

सङ्गीतसार—

गोरो लंबो अङ्ग है। कोमल मीठे नेत्र हैं। सब लोक पर उपकार करने वारो। जाकी भार्या के हात में ताल है। इ० अर्थात् यह उस रागमाला के श्लोक का प्रायः भाषांतर है। स्वरस्वरूप वहां न मिला तो वह और कहीं से लेकर जोड दिया। आलापचारी। नि ध॒ नि ध॒ प ध॒ म॑ ध॒ सा नि ध॒। म॑ ध॒ म॑ म॑ ग। रे ग म॑ ध॒। म॑ ग रे॒ सा नि॒ सा। ग म॑ ध॒ नि ध॒ म॑ प ध॒ म॑ ग रे सा म॑। इस स्वरूप में एक बार कोमल नि और दो बार तीव्र रे, ऐसे स्वर लगाये हैं अतः यह भाग कुछ विसंगत ही होगा।

क्षेत्रमोहन स्वामी ने परज को अपनी ही भांति पूर्वी थाट में रखकर उसका स्वरूप ऐसा कहा है–नि़ नि़ सा, ग, म॑ प, ध॒ नि सां, सां, नि रें॒ नि ध॒ प, म॑ प ध॒ नि सां, नि ध॒ प, म॑ प ध॒ म॑ प, ध॒ म॑ प, ग, सा ग रे॒ सा। कृष्णधन बनर्जी परज में रे ध कोमल और ग म नि तीव्र ऐसे स्वर मानते हैं, वे ठीक ही हैं—

संगीतकल्पद्रुम—

वसंत सोहनी मिलतही पूरीया समभाग ।
परज रागनी होतहै गावत अति अनुराग ॥

आगे चलकर भरतमत के परज का लक्षण वहाँ ऐसा कहा है—

स्वर्णप्रभा सुन्दरगौरगात्रा ।
कटाक्षिणी स्यात्परमा विचित्रा ॥
सौंदर्यलावण्यकलायताक्षी ।
सा पर्जका रागिणि कौशिकेयम् ॥

नादविनोदकार ने यह संस्कृत आधार लेकर ऐसा लक्षण दिया है—

पंचमांशग्रहं न्यासं संपूर्णा पर्जका मता ।
शेषरात्र्यां प्रगीयंते कारुणे शांतिके स्मृताः ॥

स्वरूप—ग म प, ध̲ प ध̲, प मं प, ध̲ ध̲ प म ग, ग मं ध̲ म, ग रे̲ सा नि̲ सा ग-म प प मं, प प ध̲ प म ग ध̲ मं ग रे̲ सा । इ०

सुरतरंगिणीः—

धनासिरी गंधार पुनि मारू मिले सुआन ।
एक कहत यौं परजको रूप अनूप बखान ॥
मारू और आसावरी टोड़ी कहत अनूप ।
दूजो मत यों परजको रूप कहत मनभूप ॥
मुलतानी केदारसों मारू मिले जु आन ।
कहत रूप यौं परज को गाइ क्रिया पहिचान ॥

Capt. willard ने परज के अवयवी भूत राग–"धनाश्री, मारू, गांधार" अथवा "मारू, तोड़ी व आसावरी" यह दिये हैं ।

Capt. Day परज राग को मालव गौड़ थाट में कह कर उसका आरोह–अवरोह ऐसा देते हैं—

सा म प ध̲ म ग रे̲ ग रे̲ ग म प ध̲ नि सां । सां नि ध̲ प म ग रे̲ सा । यह कठिन रूप हुआ ।

एक "प्रसिद्ध मियाँ तानसेन" के नाम से छपी पुस्तक "रागमाला" (जो मुझे काशी में मेरे एक मित्र ने दी थी) में परज राग नहीं कहा है । परन्तु पूर्वी थाट के अन्य कुछ राग पूर्वी, त्रिवेणी, टंकी वगैरह का वर्णन इस प्रकार किया है:—

गौरी मालव जोगतें राग पूरवी होइ।
रागरंग सब शोध के गावत है सब कोइ॥
गौरी बहुल विभासको साध लेहु सुरतान।
अन्श न्यास गृह शोधके तिरवनके सुर जान॥
जित भैरों अरु कानरो आधो आधो होइ।
सिरी राग सारंग मिलि टंक कहावे सोइ॥

प्रश्न—तानसेन को दीपक आता था, तो फिर उस राग के विषय में 'रागमाला' में क्या कहा है?

उत्तर—वहाँ ऐसा कहा है—

दीपक नाहिन दीपमें गावत गुनियन जानि।
जातें लिख्यौ न ग्रन्थमें याको कहा बखानि॥

यह सुनकर तुमको आश्चर्य मालूम होगा, परन्तु इस पर हम टीका टिप्पणी नहीं करेंगे।

प्रश्न—ठीक है। आपने कहा था कि परज का आरोहावरोह सरल और संपूर्ण है। उस पर एक शंका हुई है, उसे पूछे लेता हूँ। परज का अवरोह "सां नि धु प मं ग रे सा" ऐसा एक दम करें तो क्या वहाँ कुछ सायंगेय राग का आभास होना संभव नहीं है?

उत्तर—थोड़ा बहुत वैसा आभास होगा, परन्तु ऐसी सरल तान बारम्बार गायक लोग लेते ही नहीं। तीव्र मध्यम का प्रमाण वे अवरोह में कम रखते हैं और ऐसा करने से सायंगेयत्व नहीं के बराबर रहता है। पहिले तो, तार षड्ज ही वहाँ इतना जोरदार रहता है कि वह अन्य स्वरों को अधिक आगे आने ही नहीं देता। अब इन तानों को तुम्हीं क्षण भर देखो, कैसी लगती हैं?

नि नि सां, रें नि सां, धु नि सां नि धु प, मं प, धु प, ग म ग, मं धु नि सां, रें नि सां, गं रें सां, नि सां नि धु प, धु प ग म ग, मं ग रे सा, नि़ सा ग, म, प धु नि सां, धु नि, धु नि सां नि धु प, रें रें सां रें नि सां नि धु प, प धु नि सां, प धु नि, धु नि सां, नि, धु प, धु प, ग म ग इ० इसमें सायंगेयत्व तुमको दिखाई देता है।

प्रश्न—नहीं वह नहीं दीखता महाराज। संभवतः सारा भार उत्तरांग पर पड़ते रहने से ऐसा होता होगा?

उत्तर—स्पष्ट है। परज में नि़ सा ग मं प धु नि सां यह तान बड़ी खूबी से ली जाती है। उसमें यह कोमल मध्यम लगते ही संध्याकाल का रंग फौरन उड़ा देता है। यह तान सुन्दर और जल्दी गाने का अभ्यास करो? यह बहुत ही शीघ्र बैठती है। परज में "नि़ रे ग मं प धु नि सां" ऐसी तान शोभा नहीं देगी।

प्रश्न—तीव्र मध्यम लेकर तान लेनी हो तो वहाँ कैसा करना चाहिये?

उत्तर—मेरी राय में, दो टुकड़े "नि सा ग ग, मं धु नि सां" ऐसे करो। कोमल मध्यम लगाकर जो तान पहिले कही है वह परज-कालिंगड़ा संयुक्त प्रकार को बिलकुल सुसंगत होगी, यह सहज ही दीखता है। कितने ही गायक ऐसा संयुक्त नाम अपने राग को देना पसन्द करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से उनको एक यह भी फायदा होता है कि कोमल मध्यम वाले-अर्थात कालिंगड़ा भैरवादिक-रागों की बहुत सी तानें धकेली जा सकती हैं। तीव्र मध्यम जहाँ तहाँ योग्य परिमाण से संभालना कुछ अधिक कुशलता का काम है। "परज में कोमल मध्यम जरूर होना चाहिये" यह मानने वाले गायक ऐसा विधान आगे रखते हैं कि अपने सब ग्रन्थकार यदि परज में उस मध्यम को लगाने के लिये कहते हैं तो उसे लगाने में हमारी कोई हानि नहीं। रात्रि समाप्त नहीं हुई है इस कारण तीव्र मध्यम को भी स्थान देने को वे तैयार हैं।

प्रश्न—क्या इनके कहने में आपको कुछ तथ्य नहीं मालूम पड़ता?

उत्तर—उनके कथन में कुछ भी तथ्य नहीं है, यह मैं नहीं कहता। श्रोताओं को सारा राग कालिंगड़ा न मालूम पड़े। कालिंगड़ा राग को हम यदि स्पष्ट पृथक मानें तो परज को उससे भिन्न दिखाने का साधन गायक के पास अवश्य होना चाहिये, मैं इतना ही कहूँगा। अस्तु, अब प्रचलित प्रकार का समर्थन करने वाला आधार कहता हूँ, उसे सुनो—

पूर्वीमेलोत्थितः प्रोक्तः परजाख्यो बुधप्रियः।
आरोहे चावरोहेऽपि संपूर्णो लक्ष्यसंमतः॥
उत्तरांगप्रधानत्वे तारषड्जांशमंडितः।
गानमभीप्सितं तस्य नक्तं यामेंऽतिमे सदा॥
ग्रन्थेषु लक्ष्यते चास्मिन्निर्दिष्टः शुद्धमध्यमः।
व्यवहारे तु तीव्रोऽपि प्रयुक्तो नैव संशयः॥
चपलप्रकृतिश्चायं क्षुद्रगीतसमाश्रयः।
विलम्बितलये गीतो वासंतीमिश्रितो भवेत्॥
लक्ष्याध्वनि सदा दृष्टो कलिंगेन विमिश्रितः।
मिश्रणं तन्न मे भाति रक्तिहानिकरं ध्रुवम्॥

प्रश्न—ये सारी बातें हमें आपने बता ही दी हैं, और वे हमें याद भी हैं।

उत्तर—कल्पद्रुमांकुर में ऐसा कहा है:—

रागोऽयं परजाभिधो निगदितः पूर्णो बहूनां मते।
तीव्रौ यत्र गनी मृदू किल रिधौ तीव्रो मृदुर्मध्यमः॥
तारः षड्ज इहांश इत्यभिहितः स्यात्पंचमोऽमात्यको।
रात्रावंतिमयाम एव सुखदो विद्वद्भिर्गीयते॥

उत्तर—नीचे जाना हो तो 'मं ग, रे॒ सा' अथवा 'ग मं ध॒ ग मं ग, रे॒ सा' ऐसा करो और ऊपर जाना हो तो 'मं ध॒, रें॒, सां' अथवा 'मं ध॒ सां' ऐसा करो। यह सब कृत्य वसन्त में अवश्य आना चाहिये, ऐसा मार्मिकों का मत है। यह बिलकुल सीधासा है। कुछ सूक्ष्म स्वरदर्शी पण्डितों का यह भी मत है कि परज के रे॒ ध॒ स्वर वसन्त के रे॒ ध॒ स्वरों से भिन्न हैं, परन्तु उस झगड़े में तुम्हें जाने की आवश्यकता नहीं। वसन्त गंभीर प्रकृति का राग है। उसमें मींड निकालोगे तो वहां तुरन्त ही परज हो जायगा। 'प ग, मं ग' यह मींड छोटी तो जरूर है परन्तु वह वसन्त की एक पकड़ ही बन गई है। इसी तरह 'मं प ध॒ प, ग म ग' इस छोटे से टुकड़े से परज पहचाना जाता है। वसन्त में 'सां, रें॒ नि ध॒ प' ये स्वर गाते हुये निषाद पर तुम कुछ ठहरे कि वहां फौरन ही परज की छाया दृष्टिगोचर होने लगेगी। तार षड्ज पर दोनों ही रागों में थोड़ा ठहरना पड़ेगा, परन्तु वसन्त में निषाद पर रुकना नहीं पड़ेगा, इतना ध्यान में अवश्य रक्खो।

प्रश्न—परज के अवरोह की तानों के अन्त में 'ग म ग' ऐसा होता है और वसन्त में 'ग, मं ग' प्रायः ऐसा होता है। यह भी हम ध्यान में रक्खें तो लाभदायक होगा।

उत्तर—मेरी समझ से ऐसा भी चल सकेगा। उस टुकड़े के बाद आगे 'म ग, रे॒ सा' इसी तरह षड्ज में आकर मिलोगे तो परज होगा और 'मं ग रे॒ सा' इस रीति से मिलोगे तो वसन्त होगा। बसन्त में कभी-कभी 'ग म ध॒ ग मं ग रे॒ सा' इस टुकड़े से भी षडज में जाने वाले गायक मिलते हैं। कोई-कोई 'नि, मं ग, मं ग, रे॒ सा' यह टुकड़ा जोड़ते हैं। वसन्त का चलन बहुत मनोहर होता है। सारी खूबी 'सां नि ध॒, प, प, मं ग, मं ग, मं ध॒, रें॒, सां, रें॒ नि ध॒ प, प, मं ग, मं ग, रे॒ सा' इस स्वर समुदाय के योग्य स्थानों पर रुकने में है। इसे मेरे साथ-साथ दस-बीस बार कह जाओ तो सहज ही में तुम्हें याद हो जायगा। वसन्त में षड्ज और पंचम इन स्वरों का विशेष महत्व होने से इन्हें आगे ले आने में गायकों की परीक्षा होती है। मेरे गुरु बीच-बीच में जब पंचम पर आकर विश्रान्ति लेते थे, तब मुझे विलक्षण आनन्द आता था।

प्रश्न—पहिले आपने ललितांग शामिल करने के लिये कहा था, उसे शामिल करके हमें गाकर दिखायेंगे क्या ?

उत्तर—हां, दिखाता हूँ, देखो—'सां, नि ध॒ प, प, मं प, मं ग, मं ग, नि ध॒ प, मं ग, मं ग, रे॒ सा। नि॒ सा, म, म, मं म ग, मं ध॒ रें॒, सां, सां, रें॒ नि ध॒ प, मं ग, मं ग, ग मं ध॒ ग मं ग, रे॒ सा।' वसन्त में एक दूसरा टुकड़ा तुमको सर्वदा दृष्टिगोचर होगा। इसलिये तुम्हारा ध्यान उस ओर आकर्षित करता हूं। अन्तरा गाते हुये दूसरा टुकड़ा अधिकतर 'सां, नि ध॒' इस तरह से बारम्बार समाप्त करते हुये कुछ गायक तुम्हें दृष्टिगोचर होंगे। यह टुकड़ा बहुत ही महत्व का है। कोई-कोई मार्मिक गुणी लोग तो हम से यह भी कहेंगे कि यह दूसरा टुकड़ा 'नि ध॒ नि' इस भांति समाप्त करोगे तो मैं उसे परज कहूँगा और 'ध॒ नि ध॒' ऐसा रखोगे तो वसन्त कहूंगा। यदि तुम इतनी सूक्ष्म बात ध्यान में रक्खोगे तो कसबी गायकों के गाने में धैवत पर आकर रुकने वाले अनेक टुकड़े तुम्हें वसन्त में दृष्टिगोचर होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस तरह धैवत पर ठहरकर गायक फिर जब तार स्थान की ओर लौटता है तो वह कृत्य सचमुच बड़ा सुन्दर दृष्टिगोचर

होता है। तो फिर अब तुम वसन्त की क्या-क्या खूबी ध्यान में रक्खोगे ? इस राग के अधिकतर गीत तार षड्ज से नीचे आयेंगे। 'सां नि ध़ु प' ये स्वर सावकाश और मींड से लिये जायेंगे। पंचम पर अच्छा मुकाम होगा। उसके बाद फिर 'मं ग' इन स्वरों की पुनरावृति दृष्टिगोचर होगी और तब गायक नीचे मध्य षड्ज से 'मं ग रे़ सा' ऐसा करते हुए मिलेगा। पर फिर कोई ललितांग का टुकड़ा दिखाकर, पुनः तार षड्ज की ओर जायगा और कोई उसे न दिखाकर एकदम 'सा, रे़ नि़ ध़ु, सां नि ध़ु' इस तरह ऊपर जायगा। धैवत पर जब-जब आकर गायक ठहरता है, तब-तब श्रोताओं को बीच-बीच में सोहनी का आभास होता है, परन्तु सोहनी में पंचम वर्ज्य है और धैवत तीव्र होता है।

प्रश्न--पर कोई-कोई वसन्त में धैवत तीव्र भी मानते हैं, ऐसा भी आपने कहा था।

उत्तर—हां, वह भी एक मत है। जिस अर्थ में हम उस मत को स्वीकार नहीं करते, उस अर्थ में उस मत के गायक वसन्त और सोहनी राग कैसे अलग करते हैं, उसे देखने की आवश्यकता नहीं। 'सां नि ध़ु प' अथवा 'सां, रें़ नि ध़ु प' ये स्वर कहते हुये थोड़ा सा श्रीराग का भास श्रोताओं को होना सम्भव है, परन्तु श्रीराग में 'ग, मं ग, मंग' यह पुनरावृत्ति शक्य नहीं है, ऐसा दिखता ही है। मैंने कहा ही था कि वसन्त में श्रोताओं को श्री अथवा गौरी अङ्ग दृष्टिगोचर होगा। और परज में कालिंगड़ा का अंग दृष्टिगोचर होगा। श्रीराग पूर्वाङ्ग प्रधान होने से 'रे़ रे़ सा, रे़ प, प, मं प, ध़ु प, नि, सां' इन स्वरों से प्रकट होगा और वसन्त उत्तरांग प्रधान राग होने से 'रें़ नि ध़ु प, मं ग, मं ग, नि मं ग, मं ग, रे़ सा' इनसे स्पष्ट होगा। ललितांग उसमें लिया ही जायगा, यह बात फिर अलग है। मार्मिक श्रोताओं को छोटे-छोटे टुकड़ों से भी वसन्त खोजने की इच्छा होती है। स्वर समुदाय तैयार करने में बड़ी कुशलता की आवश्यकता है। उसी तरह योग्य स्थानों पर विश्रान्ति, उचित स्थानों पर छोटी या बड़ी आवाज, योग्य स्थान पर स्वरों पर मींड लेना और योग्य स्थान पर उन्हें खुले छोड़ना, इन्हीं विशेषताओं से गायकों का मूल्यांकन होता है। मेरे गुरु कहते थे कि गायकों की इन विशेषताओं को देखकर ही मार्मिक लोग प्रायः उन गायकों का घराना और तालीम पहचान सकते हैं। मैं समझता हूं कि उनके इस कथन में बहुत तथ्य है। एक प्रतिष्ठित गायक ५, २५ तानों में ही जो राग धर्म और रक्ति उत्पन्न करेगा उसे दूसरा कोई अनाड़ी गायक सैकड़ों तान मारकर भी उत्पन्न नहीं कर सकेगा। कुछ स्वर ज्ञान हुआ और थोड़ासा गला घूमने लगा तो स्वर्ग हाथ में आगया, ऐसा कभी न समझना। उपरोक्त बातों पर ध्यान देकर चलने वाला मनुष्य गायन का सच्चा मर्म समझने लायक होगा। इतना ही क्यों ? तुम अपने को ही देखो न ! तुमको अच्छा स्वर ज्ञान अभी हुआ है और गला भी तुम्हारा अच्छा फिरता है। तुमको किसी प्रसिद्ध गायक के पास उसे सहायता देने के लिये बैठा दें और तुम्हारा गाना उस गायक के राग को लेकर ही हो तो भी तुम्हारा गायन उस गायक से फीका ही रहेगा। इसका कारण इतना ही है कि तुमको उस गायक के राग की खींचतान मालूम नहीं है। ऐसे उदाहरण तुमको अनेक बार दिखाई देंगे। उत्तम गायक अपना राग कैसे और कहाँ से शुरू करता है तथा तान कब, कहां से और कैसे लेता है। यह सब बहुत ध्यानपूर्वक देखना पड़ता है। स्थाई का एक चरण पूरा हुआ नहीं कि तानों की गोली छोड़ने वाले बेढंगे गायक हम

आज कितने ही देखते हैं। ये बहुधा अधूरे होते हैं। स्थाई कितनी बार और कौनसी लय में किस तरह कहें, अन्तरा कैसे कहां से शुरू करें, तान कब और किस क्रम से लें? ये बातें अच्छे-अच्छे गायकों को बारम्बार सुन-सुनकर सीखनी पड़ती हैं। यह काम कठिन है सो बात नहीं, परन्तु उसे भलीभांति देख और रियाज करके तैयार करना चाहिये।

वसन्त में मध्यम और निषाद इनकी सङ्गति कभी-कभी की जाती है, यह मैंने कहा ही था। दूसरा एक नियम और कहे देता हूं, वह भी सुनो—परज के आरोह में हमने पंचम स्वर लगाया था, यह तुमको याद होगा। जहां तक हो सके वसन्त में वह स्वर नहीं लगाना। महान सङ्गीतज्ञों के मत से तो पंचम आरोह में बिलकुल वर्ज्य है। कोई-कोई उसे अल्प रखने को कहते हैं। लक्ष्यसंगीत में ऐसा कहा है—

वसंते पंचमो नैवानुलोमे रक्तिदो भवेत्।
परजाख्ये पुनश्चासौ विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥

तुम्हारे लिये यह एक छोटासा नियम ही ठीक होगा। 'प धु नि, धु नि सां, नि ध प' ऐसी तान वसन्त में कभी नहीं चलेगी, सो प्रत्यक्ष है ही। वसन्त का गाना सदैव अमुक स्वर से ही प्रारम्भ होता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। तथापि षड्ज और पंचम इन स्वरों से वसन्त का उठान बारम्बार होता हुआ दिखाई देगा, ऐसा कहना अनुचित नहीं हो सकता। कहीं से भी चीज शुरू हो, तो भी गायक को तार षड्ज पर शीघ्र ही जाना पड़ता है। इस राग में निषाद स्वर को सम्हालना आवश्यक है। 'नि नि सां रें नि सां, धु नि, सां नि धु प, प धु नि सां' ऐसा प्रकार स्पष्ट 'परज' प्रकट करेगा। परज के अन्तरा में कभी-कभी तुमको एक चरण 'नि धु नि' इस तरह समाप्त किया हुआ दृष्टिगोचर होना सम्भव है। 'मं धु मं धु नि नि सां, सां रें नि सां नि धु नि' ये टुकड़े परज में शोभा देंगे। हो सके तो, वसन्त में इन्हें टाल देना ही उत्तम होगा।

प्र०—वसन्त हम कैसे गायें? क्या आप उसकी थोड़ी सी कल्पना देंगे?

उ०—वसन्त के नियम तो अब तुमको अच्छी तरह ज्ञात ही हैं। यदि उसे तार षड्ज से शुरू करना हो तो "सां, रें सां, नि धु प, प, मं ग, मं धु, रें सां, सां, नि धु प, प, मं ग, मं ग, नि मं ग, मं ग रे सा" ऐसा प्रारम्भ किया हुआ अच्छा प्रतीत होगा।

प्र०—मालुम होता है, इसके आगे फिर ललिताङ्ग लाना होगा?

उ०—हाँ, वह यहाँ अच्छा दीखेगा। जैसे—"नि़ सा, म, म, मं म ग" किन्तु उसे न लावें तो वसन्त गाते न बनेगा, ऐसा भी नहीं समझना चाहिए। उसकी बजाय ऐसा भी किया जा सकता है। देखो—"नि़ सा, ग, मं धु रें, सां, सां, रें नि धु प, इ०" यह अङ्ग लें तो केवल "मं धु रें सां, गं रें सां, रें नि धु प" ऐसा करना यथेष्ट होगा। अच्छा, यदि तुमको पंचम स्वर से शुरू करना हो तो कैसे करोगे? बताओ तो?

प्र०—हम ऐसा करेंगे—"प, प, मं ग, मं धु, रें सां, नि धु प, मं ग मं ग, मं धु मं ग, रे सा" यहां से आगे ललितांग में प्रवेश करेंगे। जैसे—"सा रे सा, म, म, म ग, मं धु सां, नि रें सां, रें नि धु, प, प, मं ग, नि धु, नि धु प, प, मं ग, मं धु रें सां" अच्छा, पर वसन्त का अन्तरा हम कैसे गायें ?

उ०—मालुम होता है, स्थाई तो तुम्हारी ठीक है। अन्तरा ऐसा रक्खो—"मं धु सां, सां, रें सां, नि सां, नि रें नि धु, नि, मं ग, मं ग, ग, मं नि मं ग, मं ग रे सा, सा ग मं धु, रें नि धु प; प, मं ग, मं धु रें, सां, इ०" कोई ललितांग केवल स्थाई में रखना पसन्द करते हैं और कोई उसे अन्तरा में ही लेने की चेष्टा करते हैं। मेरी समझ से उसे अन्तरा में न लें तो भी चल सकता है, परन्तु ललितांग सम्मिलित करने में अपने प्राचीन पंडितों ने यह खूबी रक्खी है कि उन्होंने उसे पूर्वाङ्ग में खास तौर पर रक्खा है अथवा दूसरे शब्दों में कहूँ तो वसन्त का सब स्वरूप उत्तराङ्ग में जाहिर करने के कारण वहाँ गायकों और श्रोताओं को भ्रम में पड़ने योग्य कोई भाग उन्होंने योजित नहीं किया, पर इसमें आश्चर्य क्या है ? 'विवादी स्वर स्वीकार करने वाले भाग क्या तुम अनेक बार गौण अङ्गों में नहीं देखते हो ? यहां कोई ऐसा भी कहेगा कि वह तो पद्धति का एक नियम ही है।

प्र०—जो लोग वसन्त में तीव्र ध लेते हैं उनको वसन्त में ललितांग प्रविष्ट करना बहुत जोखिम का काम होता होगा, सही है न ?

उ०—वे उसे शामिल करते ही नहीं। उनको परज में जाने का डर ही नहीं है, क्यों कि परज में धैवत कोमल होता है। वे अपने वसन्त का चलन 'ग म, नि ध' 'मं ध, मं ग' अधिकतर इन टुकड़ों पर अवलम्बित रखते हैं, परन्तु अपने राग को सोहनी के समान रागों से बचाने के लिये 'नि़ सा ग म' इस टुकड़े का बीच-बीच में उपयोग करते हैं। यहां मुक्त मध्यम अच्छा रखने से थोड़ा सा ललित का इशारा होकर सोहनी दूर होती है।

प्र०—क्या इस मत के वसन्त गाने वाले हमें मिल सकेंगे।

उ०—इस मत के भी तुमको बहुत मिलेंगे। उसमें भी तंतकार प्राप्त होंगे। पूर्वी में तीव्र धैवत लगाने वालों के विषय में भी यही कहा जायगा। तंतकारों को अपने वाद्य पर मींड का काम दिखाने के लिये यह मत अधिक सरल पड़ता है, इसलिये वे इसे ग्रहण करते होंगे, ऐसा कारण मुझे एक प्रसिद्ध गायक ने बताया था। वसन्त में विश्राम के स्थान सा, ग, प, धु, ये होते हैं। परज में धैवत के स्थान पर कोई-कोई निषाद को विश्रांति स्थान मानते हैं। इन स्थानों के हिसाब से तान लगाई जायें तो प्रायः ऐसा करना पड़ेगा। "सां, नि धु प, मं ग, मं धु सां, नि सां, रें सां, गं रें सां, मं गं रें सां, सां नि धु, नि धु, रें नि धु प, सां रें नि धु, नि धु प, प, मं ग, सां, नि, मं ग, मं धु, मं ग, रे सा, नि़ सा, म, नि धु, सां, धु नि सां, रें सां, गं रें सां, धु रें सां नि धु प। इत्यादि" अब पंचम आगे लाकर कुछ तान कहता हूँ। "प, मं प, मं ग, धु प, सां नि धु प, मं ग, नि मं ग, मं ग, रे सा, प, मं रें सां, मं धु रें सां, प मं ग, रें सां, रें नि धु प, मं ग, ग मं

धु प मं ग, मं ग, रे सा, नि़ सा, ग म, नि धु, रें नि धु प, इ०" अब धैवत की कुछ तानें कहता हूं—"धु नि सां, सां, नि रें सां, सां सां धु, रें गं रें सां, सां, नि धु, रें नि धु प, प, मं नि धु प, मं ग, मं धु, रें सां, धु नि, रें सां, नि रें सां, सां नि धु, धु, नि धु, धु नि रें गं रें सां, मं गं रें सां, नि धु, रें नि धु प, मं मं ग, नि नि मं ग, मं धु मं ग, मं ग, रे सा, नि़ सा, म, म, ग, म नि धु, धु नि रें गं रें सां, सां, रें नि धु प, मं ग, मं धु सां, इ०"

प्र०—मालुम होता है अब इस राग का चलन हमारे लक्ष्य में अच्छी तरह आ गया।

उ०—अच्छा, तो अब हम वसन्त के विषय में अपने भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारों के मत क्या हैं ? उन्हें देखेंगे:—

रत्नाकरे:—

धैवत्यार्षभिकावर्ज्यस्वरनामकजातिजः ।
हिंन्दोलको रिधत्यक्तः षड्जन्यासग्रहांशकः ॥
× × ×
संभोगे विनियोक्तव्यः वसंतस्तत्समुद्भवः ।
पूर्णस्तल्लक्षणो देशीहिंदोलोऽप्येष कथ्यते ॥

पारिजाते:—

हिंदोलेऽथ रिपौ त्याज्यौ कोमलो धैवतो भवेत् ।
हिंदोलो रिपयोगेन मार्गहिंदोलको भवेत् ॥
षड्जादिमूर्च्छने मान्ते गनी तीव्रौ वसंतके ॥

इस वसन्त का थाट अपना बिलावल होगा। यह प्रकार अपना नहीं है। दूसरा एक ऐसा प्रकार वहां है—

कोमलाख्यौ रिधौ तीव्रौ गनी वसंतभैरवे ।
धैवतांशग्रहन्यासो मध्यमांशोऽपि संमतः ॥

रागविबोधे:—

भैरवमेले शुद्धाः सरिमपधा अन्तरश्च कैशिककः ।
सांशन्यासग्रहको वसंत उषसि विलसेत् पूर्णः ॥ भैरवमेले ॥

चन्द्रोदये:—

शुद्धौ सरी शुद्धमपंचमौ च
शुद्धस्तथा धैवतको यदि स्यात् ॥

गनी तथा त्रिश्रुतिकौ भवेतां
तदा तु हिंदोलकमेल उक्तः ॥

(रामामात्य ने "शुद्धवसन्त" नामक एक प्रकार का वर्णन किया है। वह अपने बिलावल थाट का है)

पुण्डरीक आगेकहता है:—

सांशग्रहांतो रिपवर्जितश्च
हिंदोलकः प्रातरुपैति जन्म ॥
सांशांतकः सग्रहकश्च पूर्णो
वसंतनामोषसि गीयतेऽसौ ॥

सारामृते:—

शंकराभरणीयाच्च मेलाच्छुद्धवसंतकः ।
संपूर्णः सग्रहः सांशो रागांगमिति कथ्यते ॥

चतुर्दन्डिप्रकाशिकायाम्:—

रागः शुद्धवसंताख्यो रागांगो गीयते प्रगे ।
शंकराभरणाख्यातरागमेलसमुद्भवः ॥
आह वैंकाररामस्त्वारोहे पंचमवर्जनात् ।
षाडवत्वं न तद्युक्तं यस्मादस्यावरोहणे ॥
आरोहेऽपि प्रयोगोऽस्ति तस्मात्संपूर्णता मता ।
दिनस्य चरमे यामे गीतः सोऽयं शुभावहः ॥

'रागतरंगिणी' में वसन्त का थाट गौरी माना है। वह अपना भैरव थाट ही है।

अनूपरत्नाकरे:—

वराटीललिताभ्यां च शुद्धऋषभसंगतः ।
उत्पन्नोऽयं वसंतस्तु संकीर्णस्तेन लक्षितः ॥

मंजर्याम्:—

सत्रिर्वसंतः संपूर्णः प्रातर्गेयोऽप्यनंददः ॥

नृत्यनिर्णये:—

जातो हिंदोलमेले स्वरसकलयुतः सत्रिकश्च प्रभाते ।
त्वारामे क्रीडमानो नवदलकुसुमामोदलुब्धालिवृन्दः ॥
तांबूलास्योऽतिगौरो नृपतिसमदृशो रक्तवस्त्रश्च सार्धं ।
योषिद्भिः सर्ववाद्यरवरभसमहद्धास्ययुक्तो वसंतः ॥

रागमालायाम्:—

'अस्मिन् रागे भवेतां प्रथमगतिगनी सत्रिकोऽत्रारिपोऽसौ'।

हृदयप्रकाशे:—

आरोहे पोज्झितो माद्यः पूर्णो धांशो वसंतकः ॥

समयसारे:—

मार्गहिंदोलरागांगं हिंदोल इति संज्ञितः ।
अंशे न्यासे ग्रहे षड्जस्तस्य तारे तु मध्यमः ॥
षड्जस्वरो भवेन्मंद्रे ताडितो रिधवर्जितः ।
सपयोः कंपितश्चैव शृङ्गारे विनियुज्यते ॥
अयमेव वसंताख्यः प्रोक्तो रागविचक्षणैः ॥

संगीतदर्पणे:—

वसंती स्यात्तु संपूर्णा सत्रया कथिता बुधैः ।
श्रीरागमूर्छनैवात्र ज्ञेया रागविशारदैः ॥

ध्यानम् ।

शिखंडिबर्होच्चयबद्धचूडा
कर्णावतंसीकृतशोभनाम्रा ॥
इन्दीवरश्यामतनुः सुचित्रा
वसंतिका स्यादलिमंजुलश्रीः ॥

सा रे ग म प ध नि सा । मूर्छना ।

संगीतसारसंग्रहे:—

षड्जमध्यमिकाजातः षड्जन्यासग्रहांशकः ।
गेयो वसंतरागोऽयं वसंतसमये बुधैः ॥

मूर्तिः ।

शिखंडिबर्होच्चयबद्धचूडः ।
पिकाश्रयश्चूतलतांकुरेण ॥
भ्रमन्मुदाराममनंगमूर्ति—

मैतो मतंगस्य वसंतरागः ॥
चूतांकुरेणैव कृतावतंसो
विघूर्णमानारुणपद्मनेत्रः ॥
पीतांबरः कांचनचारुदेहो
वसंतरागो युवतिप्रियश्च ॥ नारदसंहितायाम् ॥

कल्पद्रुमकार ने दर्पण की मूर्ति स्वीकार कर राग का लक्षण अपनी बुद्धि से (कदाचित) ऐसा दिया है:—

वसंती स्यात्तु संपूर्णा षड्जांशग्रहन्याससंयुता ।
वसंतकाले विदुषा प्रगीयंते साधुना ।

सा रे ग म प ध सा नि ध प म ग रे सा। सा सा ग रे सा नि नि ध प म ग रे सा। रे सा नि ध नि सा।

परज और मालकंस सम और राग हिंडोल ।
वसंत होत यह तीनतें करत है गुणी कलोल ॥

संगीतसार में प्रतापसिंह ने दर्पण के ही श्लोक का भाषांतर किया है, इसलिये अब उसको मैं नहीं कहता। उन्होंने वसंत की आलापचारी ऐसी लिखी है:—

सां नि सां, नि ध, मं प, मं ग, मं ग, म नि ध, मं ग रे सा। नि् सा ग म नि ध, नि ध, प मं प मं ग, मं ग रे सा। यह ठीक है।

सुरतरंगिणी:—

देवगिरी सारंगनट मिले मलार अनूप ।
और बिलावल संग ले होइ वसंत सरूप ॥

प्रश्न—यह शुद्ध वसंत का मिश्रण होगा, ऐसा ज्ञात होता है।

उत्तर—हाँ, वैसा ही दृष्टिगोचर होता है। फिर अपना वसंत यह होगा:-

मिली भखार हिंडोल पुनि मिलं सोहनी रूप ।
यों वसंत को रूप तुम गावो सुखद अनूप ॥

प्रश्न—यह तीव्र धैवत का प्रकार हुआ, ऐसा आपको मालुम नहीं होता क्या ?

उत्तर—हाँ, तुम्हारा तर्क सही है। परन्तु यह मतभेद मैंने तुमको यथा योग्य रीति से बता दिये हैं। जो प्रकार तुमको पसन्द हो, उसे खुशी से स्वीकार करो। मैं तो कहूँगा कि दोनों ही गाते जावो। Capt. willard वसन्त के अवयव देवगिरी, नट, मल्लार, सारंग और बिलावल ऐसे कहते हैं। उनके दिये हुए कोष्ठक अधिकांश सुरतरंगिणी के प्रमाण से मिलते हैं। वसंत की मूर्ति वे ऐसी लिखते हैं:—

Busunt is the spring of Hindustan, the time of mirth and festivity. The hero of this piece, therefore, is the voluptuous God Krishna, who is represented in his usual costume and occupation. His vestment is tinged red. His head is adorned with his favourite plumage, extracted from the tail of the peacock; in his right hand he holds a bunch of mango-blossoms, and in the left a prepared leaf of the betel tree In this manner he stands in a garden surrounded with a number of women as jolly as himself, and all join in the dance, and sing and play a thousand jovial tricks. (P. 73)

रागलक्षणेः—

कामवर्धनीतिमेलाज्जातो भोगवसंतकः ।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेव च ॥
आरोहे चावरोहे च पवर्ज्यं षाडवं तथा ॥
सा रे ग म प ध नि सा। सा नि ध म ग रे सा।

क्षेत्रमोहन स्वामी संगीतसार में कहते हैं:-वसन्त में पंचम स्वर विवादी है। सोमेश्वर मत में भी ऐसा ही कहा है। संगीतदर्पणकार दामोदर पंडित कहता है कि श्री पंचमी से लेकर श्री हरिशयनी एकादशी तक अर्थात् आसाढ़ शुक्ला एकादशी तक वसन्त का समय माना जाता है; परन्तु सोमेश्वर कहता है कि वसन्त ऋतु में ही वह गाया जाय। (किस स्वर से ? यह महत्वपूर्ण प्रश्न दोनों ही छोड़ देते हैं) स्वामी ने वसन्त का स्वरूप ऐसा दिया है:—नि् सा नि् सा सा म म म म, सा ग रे् म ग, ग ग, म ध मं ध सां नि सां नि ध मं म ग, मं ध नि ध, मं म ग सा ग रे् सा (इ०)

अब हम वसन्त कैसे गायेंगे। वह भी सुनो:—

पूर्वीमेलसुसंजातो वसंताख्यो बुधैर्मतः ।
संपूर्णस्तारषड्जांशो वसंततौ सुखप्रदः ॥
मगयोः पुनरावृत्या विशिष्टां रक्तिमावहेत् ।
परजस्य विभिन्नत्वं तत्रैव प्रकटीभवेत् ॥
रागेऽस्मिन् गायनैः प्रायो ललितांगं समर्थ्यते ।
यतः स्यात्सुलभं तेन रूपस्यास्य प्रभेदनम् ॥
ग्रन्थेषु वर्णितो दृष्टो मेले मालवगौडके ।
रात्रिगेयो यतस्तत्र तीव्रमे न विसंगतिः ॥
प्रयोगो धैवतस्यापि तीव्रसंज्ञस्य लक्ष्यके ।
कुत्रचित्पंचमस्त्यक्तो बुधः कुर्याद्यथोचितम् ।
वसन्त पंचमो नैवानुलोमे रक्तिदो भवेत् ॥

परजाख्येपुनश्चासौ विशिष्टां रक्तिमावहेत् ॥
निषादस्य यथाधिक्यं परजाव्हयके मतम् ।
न तदत्र वसंताख्ये संभवेदिति संमतम् ॥ लक्ष्यसङ्गीते ॥

कल्पद्रुमांकुरे:—

वसंततौं गेयो मृदुलऋषभस्तीव्रसकलः ।
पहीनो मद्वंद्वः समगपुनरावृत्तिरुचिरः ॥
सवादी मामात्योऽप्यहनि निशि चाव्याहतगतिः।
स्थितस्तारे षड्जे स जगति वसंतो विजयते ॥

चंद्रिकायाम्:—

मृदू रिरितरे तीव्राः पवर्ज्यश्च द्विमध्यमः ।
षड्जवादी मसंवादी वसंततौं वसंतकः ॥

चंद्रिकासार:—

दो मध्यम कोमल रिखब चढ़त न पंचम कीन्ह ।
समवादीसंवादितें यह बसंत कह दीन्ह ॥

यह अन्तिम आधार तीव्र धैवत लगने वाले प्रकार के लिये तुमको उपयोगी होगा। अब अधिक ग्रन्थों का मत कहने की आवश्यकता नहीं है। अब पूर्वी थाट के राग तो हो गये। इस थाट में एक विभास नामक राग भी कोई-कोई गायक कभी-कभी गाते हैं इसलिये वह भी अन्त में कहे देता हूं।



विभास (पूर्वीथाट)

यह विभास राग अप्रसिद्ध प्रकार है। मैंने इसे एक बार एक प्रसिद्ध गायक के सामने गाया था। उसने इसको देशकार कहा, यह मुझे स्मरण है। किसी ग्रन्थ में देशकार पूर्वी थाट में माना है, यह मैंने तुमको कहा ही था। अस्तु, इस पूर्वी थाट में जो विभास मैंने बताया वह सम्पूर्ण माना जाता है। इसमें मध्यम और निषाद दुर्बल हैं और वे उत्तरांग प्रधान हैं। अवरोह करते समय, यथा सम्भव तीव्र मध्यम को लगाना गायक पसन्द नहीं करते।

प्र०—ऐसा करने से उस राग में सायंगेयत्व आने का डर होगा ?

उ०—हां, ठीक है। कोई निषाद स्वर अवरोह में लगाते हैं, ऐसा मैंने तुमको भैरव थाट का विभास बताते हुये कहा था, उसकी तुम्हें याद होगी ही। इस विभास में भी वैसा ही निषाद का प्रयोग किया जाता है।

प्र०—इस राग में वादी किसे मानते हैं ?

उ०—वादी धैवत ही माना जाता है। पंचम स्वर पर इस राग में अच्छा मुकाम किया जाता है। इस राग में विश्रांति स्थान सा, ग, प, ध, ये हैं।

प्र०—इस विभास में हमको कोई छोटा सा सरगम बतादें तो अच्छा होगा।

उ०—अच्छा, लो कहता हूं:—

विभास—झंपाताल

ध	ध	।	प	मे	प	।	ध	प	।	ग	रे	सा	।
सा	रे	।	सा	ग	प	।	ध	ध	।	नि	ध	प	।
प	ग	।	प	ध	सां	।	रें	सां	।	नि	ध	प	।
सां	ध	।	नि	ध	प	।	ध	प	।	ग	रे	सा	॥

अन्तरा—

प	ग	।	प	ध	ध	।	सां	ऽ	।	सां	रें	सां	।
सां	रें	।	सां	गं	रें	।	सां	ऽ	।	नि	ध	प	।
ध	ध	।	रें	रें	सां	।	रें	सां	।	नि	ध	प	।
सां	ध	।	नि	ध	प	।	ध	प	।	ग	रे	सा	॥

प्र०—यह एक चमत्कारिक रूप हुआ। इसमें मध्यम और निषाद बिलकुल दुर्बल करके रक्खे हैं। ठीक है न ? मध्यम तो असत्प्राय जैसा ही हुआ है। अच्छा, पर इस मत का हमें कुछ आधार भी मिल सकता है क्या ?

उ०—इसमें थोड़ा बहुत आधार अहोबल पंडित का लिया जा सकता है। वह कहता है—

मस्तु तीव्रतरो यस्मिन् गनी तीव्रा रिधौ मतौ ।
कोमलौ न्यासधोपेते विभासे गादिमूर्छने ।
आरोहे मनिवर्ज्यत्वं गपांशस्वरसंयुते ॥

इस श्लोक में मध्यम आरोह में न लगाने को कहा है। उसकी ओर दुर्लक्ष्य करके हमने "प मं प" ऐसा एक जगह किया है, अन्यथा यह सरगम आधार से बहुत कुछ मिल जाती। "प मं ग" ऐसा करने से थोड़ा सायंगेयत्व दृष्टिगोचर होगा, इसलिये मैंने वैसा किया था। वह न करना हो तो ऐसा किया जा सकता है:—

ध ध । प ध प । ग प । ग रे सा ।
सा रे । सा ग प । ध प । नि ध प ।
मं ग । प ध ध । रें सां । नि ध प ।
सां ध । नि ध प । ध प । ग रे सा ॥

अन्तरा—

प मं । ग प ध । सां ऽ । सां रें सां ।
रें रें । गं रें सां । रें सां । नि ध प ।
सां ध । नि ध प । ग प । प ध ध ।
सां सां । ध ध प । ध प । ग रे सा ॥

प्र०—कोई यह कहें कि आरोह में मध्यम लगाने से अहोबल के आधार का उपयोग नहीं हो सकेगा, तो उनके लिये यह दूसरा प्रकार ठीक रहेगा।

उ०—अच्छा, इन्हें अपने संग्रह में रक्खो। अहोबल ने जो विभास का स्वतः उदाहरण दिया है, उसमें "ध प ध प म प प ध" ऐसा भी एक जगह किया है।

प्र०—अब हमको एक बार वसन्त गाकर और दिखा दीजिये ?

उ०—ठीक है, सुनो—

वसन्त—त्रिताल

सां नि ध प । मं ग मं ग । मं ध रें रें । सां ऽ नि सां ।
सां रें सां नि । ध प मं ग । नि नि मं ग । मं ग रे सा ।
नि़ सा म म । ग ग म ग । म नि ध रें । सां नि ध प ॥

अन्तरा—

मं ग मं ध । सां ऽ रें सां । नि रें गं रें । सां ऽ नि ध ।
मं मं गं मं । गं रें सां ऽ । ध ध रें सां । नि ध प प ॥

वसन्त—एकताल

सां नि । ध प । मं ग । मं ध । रें रें । सां ऽ ।
×
सां नि । ध नि । ध प । मं ग । मं ग । रे सा ।
नि़ सा । म म । ग ग । म नि । ध सां । रें सां ॥

अन्तरा—

म ग । म म । नि ध । सां ऽ । रें रें । सां ऽ ।
×
नि रें । गं रें । सां ऽ । रें नि । ध नि । ध प ।
मं नि ध प । मं ग । ध मं । ग ग । रे सा ।
सा सा । म म । ग ग । म नि । ध सां । रें सां ॥

रागविस्तार इस ढङ्ग से करो:--

प, मं मं ग, म ग, म नि ध, सां, नि रें सां, सां, रें नि ध, नि ध, नि रें गं रें सां, सां, रें नि ध प, मं ग, नि मं ग, मं ध मं ग, मं ग रे सा, नि़ सा ग रे सा, मं ग रे सा, म, नि ध, रें सां, गं रें सां, ध नि, ध नि ध प, सां नि ध प, मं ग, नि मं ग, ग रे सा, नि़ सा ग म, नि ध, ध नि रें सां इ०

मैं समझता हूँ कि प्रचार में तुमको पूर्वी थाट में अधिकतर इतने ही राग सुनने को मिलेंगे। मेरे कहे हुये राग-नियम उत्तम तैयार कर लो तो इनमें से इच्छानुसार राग तुम तत्क्षण पहिचान सकते हो, ऐसा मेरा अनुमान है।

प्रश्न—इस थाट के राग हम किस भाँति याद रक्खेंगे, यह बताऊँ क्या ?

उत्तर—कहो, देखूं तो।

प्रश्न--पूर्वी थाट के रागों के अङ्ग दृष्टि से दो वर्ग होंगे—(१) पूर्वी अङ्ग प्रदर्शक राग (२) श्री अङ्ग प्रदर्शक राग। ये अङ्ग स्थूल दृष्टि से कहे गये हैं। पूर्वी, पूरियाधनाश्री, रेवा, जैतश्री, परज, विभास ये राग पूर्वी अङ्ग प्रदर्शक माने जाते हैं और मालवी, त्रिवेणी, टंकी, गौरी, श्री, वसंत ये श्रीअङ्ग प्रदर्शक राग हैं। दीपक पूर्वी अङ्ग से ही गाओ, ऐसा आपने कहा था। इस अङ्ग की सारी खूबी "ग प" और "रे प" इन जोड़ियों पर अवलम्बित है, ऐसा भी आपने सूचित किया था, वह हमारे ध्यान में है। पूर्वी थाट के रागों के मध्यम पर से भी तीन वर्ग "अ-म" "एक-म" और "द्वि-म" हो सकते हैं, ऐसा हमको ज्ञात होता है। अम (म रहित) वर्ग में रेवा, त्रिवेणी, टंकी और विभास हम रक्खें। पूर्वी, वसंत और परज ये द्विम वर्ग में जायेंगे। पूरियाधनाश्री, जैतश्री, मालवी, श्री, गौरी ये "एक म" वाले वर्ग में डाले जायेंगे। विभास एक म वर्ग में जा सकता है और गौरी द्वि म वर्ग में रक्खी जा सकती है, यह भी हम जानते हैं। 'पूर्वी' आश्रय राग है और उसका आरोहावरोह सरल है। इतना ही नहीं अपितु उसमें दोनों मध्यम लगाते हैं। सायंगेय रागों में कोमल म क्वचित ही काम में आने से पूर्वीको स्वतंत्र रूप प्राप्त हुआ है। पूर्वी का सब दारोमदार नि़, सा रे ग, म ग, इस टुकड़े पर है, उसे हम अच्छी तरह ध्यान में रक्खे हुये हैं। पूर्वी में कोई तीव्र धैवत लगाते हैं, ऐसा आपने हमसे कहा था, उसे भी हम भूल नहीं सकते। तीव्र धैवत लगने वाले प्रकार का जवाब तीव्र ध लगने वाला वसन्त होगा।

पूरियाधनाश्री में वादी पंचम है और कोमल म बिलकुल नहीं है। उसमें प, ध प, मं ग, मं रे ग, ध मं ग, रे सा, यह टुकड़ा हम अच्छी तरह तैयार करके लगायेंगे। पूर्वी

में वादित्व गान्धार का है। आप कहते थे कि पूरियाधनाश्री से जैतश्री को बचाने में अनेक बार गायक चूक जाते हैं। वैसा घपला होने का कोई कारण नहीं, क्योंकि जैतश्री औडव सम्पूर्ण राग है और उसमें आरोह करते समय रे ध वर्जित रखने पड़ते हैं। वैसा प्रकार पूरियाधनाश्री में बिलकुल नहीं। जैतश्री में वादी ग है जो कि बिलकुल निराला है। यदि कोई इसमें पंचम वादी मानें तो आरोह में रे ध न होने से वह पूरिया-धनाश्री से सहज ही अलग हो सकता है। हाँ, यदि आरोह में थोड़ा सा रिषभ लिया जाय तो गोलमाल हो सकता है, पर ऐसे स्वरूप में भी आरोह में धैवत न होने से राग भेद स्पष्ट दिखाया जा सकता है। पूरियाधनाश्री में "नि रे ग मं प, प मं ग, मं रे ग" यह टुकड़ा स्वतंत्र है। जैतश्री में "ग प, प, धु मं ग" ऐसा जो एक विलक्षण टुकड़ा आपने हमें गाकर दिखाया था, उसे हम अच्छी तरह तैयार करने वाले हैं। जैतश्री में "सा ग, प, प, धु प, प मं धु मं ग" ऐसा करने से बिल्कुल स्वतंत्र रूप होगा, ऐसा मुझे जान पड़ता है। "रेवा" राग में म नि स्वर दोनों ओर से वर्ज्य हैं। अतः उसका दूसरे किसी भी राग से मिलना संभव नहीं है। विभास में म नि आरोह में नहीं हैं, इसीलिये वह उत्तरांग प्रधान प्रातर्गेय प्रकार है। विभास में धैवत और पंचम पर सारी विचित्रता रहती है, वैसा रेवा राग में नहीं हो सकता। त्रिवेणी और टंकी पास-पास के राग होने से गायकों को सावधान रहना पड़ता है, ऐसा आपने कहा था, उसे हम भूले नहीं हैं। त्रिवेणी में मध्यम वर्ज्य करने के लिये शास्त्राधार है और प्रचार भी ऐसा ही है, इसलिये उसका मध्यमहीन रूप हम भी स्वीकार करते हैं। टंकी में अनेक गायक मध्यम वर्ज्य करते हैं, ऐसा आपने कहा था। चतुर पंडित ने एक तीव्र म किसी तरह इस राग में लगाने का उपदेश किया है, उसे ही हम पसन्द करते हैं। हम त्रिवेणी में तीव्र म छोड़ देते हैं, उसे कदाचित् टंकी में अवरोह करते समय लगावेंगे। यदि दोनों रागों में मध्यम छोड़ें तो त्रिवेणी में रिषभ वादी और टंकी में पंचम वादी होने से राग भेद स्पष्ट किया जा सकता है। श्री और गौरी की जोड़ी भी गायकों और श्रोताओं को चक्कर में डालती है, ऐसा आपने कहा था। श्री तथा गौरी इन दोनों रागों के आरोह में ग ध स्वर न होने से मुख्य अड़चन पड़ती है। वहाँ आपकी कही हुई यह युक्ति अच्छी है कि श्रीराग के आरोह में ग, ध वर्ज्य करना और गौरी के आरोह में केवल ग वर्ज्य करना। गौरी के अवरोह में भी ग छोड़ दें तो श्रीराग निश्चय ही अलग हो जायगा। गौरी के विभिन्न प्रकार जो आपने कहे थे, वे सब हमारे ध्यान में हैं। इन दोनों रागों में पुनः वादी भेद से राग भिन्नता सहज में दिखाई जा सकती है। श्रीराग में वादी रे है और गौरी में वादी प है, ऐसा बहुमत आपने हमसे कहा था। अब दूसरी एक जोड़ी कुछ विवादास्पद रह गई, वह है 'परज और वसन्त'। ये दोनों ही उत्तरांग प्रबल राग हैं और दोनों में वादी तार षडज है। इतना ही नहीं, दोनों में दोनों ही मध्यमों का उपयोग होता है, तब वहाँ हम 'राग भेद' ध्यान में रखते हैं। 'परज' को सरल और सम्पूर्ण राग मानते हैं, उसके "मं प धु प, ग म ग" और "सां रें नि सां नि धु नि" ये टुकड़े हम नहीं भूलेंगे। "नि सा ग म प धु नि सां" यह परज में एक सुन्दर तान हो सकती है, ऐसा आपने सूचित किया था। वसन्त में बहुत सम्हलकर चलना होगा, उसमें "सां नि धु प" यह मंद गति की गम्भीर तान शुरू में ही परज को अलग करती है और जहां ललितांग आगे आया कि परज की ओर देखा भी नहीं जा सकता। वसन्त में धैवत पर अनेक तान आकर रुकती हैं, तब परिणाम वास्तव में विलक्षण होता है। वसन्त के आरोह में

पंचम वर्ज करने का नियम हम अच्छी तरह पालन करेंगे और उसकी "म नि धु" संगति और "नि मं" संगति को भी ठीक संभालेंगे। परज का कोमल मध्यम आंगिक दृष्टिगोचर होता है और वही वसन्त में आगान्तुक दृष्टिगोचर होता है, ऐसा भी हमारी समझ में आया है। कोई रे ध स्वरों में श्रुति भेद मानते हैं, यह भी आपने कहा था। अब रह गया दीपक। वह बिलकुल अपरिचित राग है साथ ही वह बिलकुल स्वतंत्र प्रकार भी है। उसका मालवी से मिलने का भय भी व्यर्थ है क्योंकि मालवी के आरोह में रे है और अवरोह में नि है। इस नियम दृष्टि से मालवी और दीपक का घपला क्यों होगा? दीपक के आरोह में रे नहीं और अवरोह में नि नहीं, इस प्रमाण से पूर्वीथाट के राग हम ध्यान में रखने वाले हैं। इसमें हमारी कुछ भूल हो तो उसकी ओर आप हमें ध्यान दिलाने का कष्ट करें।

उत्तर—ज्ञात होता है, तुम्हारी विचारधारा बहुत ही सुरक्षित है, इसलिये मुझे कुछ अधिक कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

प्रश्न—अब क्या मारवा थाट के राग लिये जायेंगे?

उत्तर—हाँ, अब संधिप्रकाश थाटों में से यही एक रह गया। इस थाट के राग एक बार हम समाप्त कर डालें तो समझो कि इस प्रसंग का काम पूर्ण हो गया। आगे के प्रसंग में फिर कोमल गांधार निषाद के राग देखे जावेंगे। तुम्हें याद होगा मैंने तुमको एक बार कहा था कि कुछ पंडितों ने 'मारवा' नाम इस थाट को देना पसन्द नहीं किया। किन्तु वैसा हमने क्यों किया, यह भी मैंने तुमको बताया था। कुछ विद्वान हमसे ऐसा कहते हैं कि जनक मेलों में वादी-संवादी के भेद मानकर उन्हें ६ ही रक्खा जाय तो अपनी रचना कुछ गंभीर दृष्टिगोचर होगी।

प्रश्न—वे ६ नाम कौन-कौन से बताते हैं?

उत्तर—वे कहते हैं कि अपने हनुमान मत के जो प्रसिद्ध ६ राग हैं उनका ही नाम जनक थाटों को देना चाहिये इससे यह लाभ होगा कि प्राचीन संगीत से अपना संबंध थोड़ा बहुत अवश्य बना रहेगा।

प्रश्न—अच्छा, उन मेलों के स्वर कौन-कौन से हैं एवं वे कैसे कायम किये जाँय?

उत्तर—बस, यही बात कोई समाधान कारक युक्ति से नहीं बता सका। एक पंडित ने अपने ६ थाट इस प्रकार कहे हैं:—

(१) भैरव—सा रे ग म प ध नि सां।
(२) मालकंस—सा रे ग म प ध नि सां।
(३) हिंदोल—सा रे ग मं प ध नि सां।
(४) दीपक—सा रे ग म प ध नि सां।
(५) श्री—सा रे ग मं प ध नि सां।
(६) मेघ—सा रे ग म प ध नि सां।

प्रश्न—अगर किसी ने यह पूछा कि ये स्वर किस ग्रन्थ से लाये, तब?

उ०—इसका कोई उत्तर नहीं। दक्षिण के आधार ग्रन्थों को छोड़ भी दिया जाय तो उत्तर के तरंगिणी और पारिजात भी इसके लिये उपयोगी न होंगे, क्योंकि उन ग्रन्थों में भी इन नामों के थाट नहीं पाये जाते।

प्र०—तो फिर व्यर्थ ही प्राचीन हनुमान मत से नाता जोड़ने का क्या अर्थ है? उत्तम यही होगा कि हम चतुर पंडित की विचारशैली को स्वीकार करें, यही अधिक चातुर्य का काम होगा। अपने प्रचलित १२ स्वर ग्रंथोक्त हैं उनकी सहायता से सम्भावित मेल संख्या कायम कर देने वाली पद्धति अधिक सुगम और सुविधाजनक होगी, इसे कोई भी स्वीकार करेगा।

उ०—मेरा भी तो कहना यही है। इतना ही नहीं, ऐसा करने से हम उत्तम परम्परा भी रख सकते हैं। हनुमान मत के जन्य जनक सम्बन्ध और स्वर स्वरूप यदि हम अस्वीकृत करते हैं तो फिर उनके मुख्य ६ रागों के नाम पर ही ऐसा मोह क्यों हो? जिससे समाज को ज्ञान सुलभ रीति से प्राप्त हो सके वही मार्ग उसे अधिक पसन्द होगा। अस्तु, अब मैं मुख्य विषय की ओर लौटता हूँ। कुछ लेखकों के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि संस्कृत ग्रन्थकार 'मालव' नामक जो राग वर्णन करते हैं वही अपना हिन्दुस्तानी 'मारवा' है, ऐसा समझ कर चलना चाहिये। इससे यह होगा कि अपने प्रकारों को अधिक ग्रन्थाधार मिल सकेगा। मैं तो कहूंगा कि अपने आज के मारवा राग को यदि प्राचीन संस्कृत आधार पसन्द करना ही हो तो ग्रन्थकारों द्वारा 'मारविका' 'मारवा' नामक जो प्रकार कहे गये हैं, उन्हें कुछ प्रमाण से अपने राग के पूर्वज मान लेना अधिक सुविधाजनक और सुसङ्गत होगा, परन्तु अब आगे तुम ग्रन्थों के मत देखोगे ही? उन्हें ठीक देखकर फिर इस सिद्धान्त का भी निर्णय कर डालो। मैं इस वक्त केवल इतना ही सूचित किये देता हूँ कि अपने अनेक देशी ग्रन्थकारों ने 'मालव, मारू, मालवी, मारविका, मालवगौड़' वगैरह नामों में बड़ा ही गोलमाल किया है। मारवा थाट में मैंने तुमको कुल बारह राग बताने का निश्चय किया है। मैं समझता हूँ, प्रचार में तुमको इनकी अपेक्षा अधिक प्रकार इस थाट में सुनने को मिलेंगे। ये १२ राग तुम इस प्रकार अपने ध्यान में रक्खो:—

मेलेऽस्मिन्मारवाख्ये श्रमदुरधिगमे पूरिया संमतेयं
तत्रैवैषा प्रसिद्धा विलसति ललिता सोहनी मालिगौरा ॥
भंखारा साजगिर्यप्यथ तदनु वराटी च जैत्रो विभासः
संत्यन्ये पंचमाद्यास्त्विह खलु बहवो भट्टिहारादयोऽपि ॥

प्र०—आहा! यह बहुत ही सुन्दर और सुविधाजनक है। कोई कुछ कहे, पर किसी-किसी विषय को कैसा सुलभ किया है, यह अपने ग्रन्थकारों की एक विशेषता है। ऐसे ही श्लोक हमारे सीखे हुए थाटों के होते तो उन्हें हम अति शीघ्र कण्ठस्थ कर लेते।

उ०—वे भी मौजूद हैं। उन्हें बताना मैं भूल ही गया था, परन्तु अभी क्या बिगड़ा है, उन्हें अब कहे देता हूं, लो:—

मेले कल्याणनाम्नि प्रभवति यमनः शुद्धभूपौ हमीरः
श्यामश्छायानटोऽयं विलसत इह कामोदकेदारसंज्ञौ ॥
हिंदोलो मालवश्रीस्तदनु यमनिका गौडसारंग एवं
प्रख्याताश्चंद्रकांतप्रभृतय इतरेऽप्यत्र वै जन्यरागाः ॥
मेले वेलावलीये विहगककुभपाहाडिका देशकाराः
शुक्ला नट्टोऽथ दुर्गा तदनु निगदिता देवगिर्येष माडः ॥
सर्पर्दा शंकरश्चाप्यथ खलु गुणकेलिश्च हंसध्वनिश्च
लच्छाशाखश्च हेमप्रभृतय इह संकीर्तिता जन्यरागाः ॥
खंमाजाभिधमेलके सुमधुरा झिंझूटिका सोरटी
खंबावत्यथ देशकस्तिलककामोदोऽथ रागेश्वरी ॥
दुर्गा चापि तिलंगिका जयजयावंती च नारायणी
गौडोऽथो वडहंसकश्च कथिता नागस्वरावल्यपि ॥
मेले भैरवनामकेऽप्यथ कलिंगो मेघरंजन्यथो
सौराष्ट्री किल योगिनी गुणकली सा रामकेली पुनः ॥
बंगालः शिवभैरवश्च ललितायुक्पंचमोऽहीरिका
गौरी चापि हिजेजकोऽप्यथ च सावेरी विभासादयः ॥

इस श्लोक में जो राग कहे हैं, वे सब तुम्हें अच्छी तरह आते हैं ?

प्र०—हां, वे सब हमें आते हैं। पूर्वी थाट का श्लोक रह गया।

उ०—वह इस प्रकार है:—

मेले पूर्व्यभिधानके प्रकथिता गौरी च रेवा पुनः।
मालव्यप्यथ सा त्रिवेण्यथ च जैतश्रीश्च टंकी तथा ॥
वासंती परजाभिधा प्रकटिता पूर्याधनाश्रीरथ।
श्रीरागश्च विभासदीपकमुखा रागास्तदुत्पत्तिकाः ॥

प्र०—मारवा थाट में जो १२ राग कहे हैं, उनको सरलता से ध्यान में रखने की क्या कोई और युक्ति भी है ?

उ०—हां, है। इन रागों के स्थूल दृष्टि से दो वर्ग किये जा सकते हैं।

प्र०—वे कौन से ?

उ०—वे इस प्रकार हैं, देखो:—

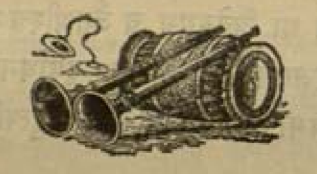
एवं च मारवामेले रागा द्वादश लक्षिताः ।
सायंगेया भवेयुः षट् प्रातर्गेयाः षडीरिता ॥

प्र०—हां, ये बहुत अच्छे वर्ग हुये । मालुम होता है ६ पूर्वाङ्ग प्रबल एवं ६ उत्तरांग प्रबल हैं ।

उ०—यह स्पष्ट है । आगे सुनोः—

पूरिया मारवा जेता गौरा साजगिरी तथा ।
वराटीसहिता ह्येते सायंगेया बुधैर्मताः ॥
ललितः पंचमश्चैव भङ्कियारो विभासकः ।
भंखारः सोहनी चैते रागाः प्रातर्मता बुधैः ॥
सायंगेयेषु पूर्वांगं प्रबलं सर्वसंमतम् ।
प्रातर्गेयेषु प्राबल्यं ह्युत्तरांगस्य निश्चितम् ॥
स्थूलदृष्ट्या सदैवैते नियमा अध्वदर्शिनः ।
तत्र तत्र विशेषास्तु द्रष्टव्या मर्मवेदिभिः ॥

प्र०—यह सब हमारी समझ में आ गये । प्रत्येक राग का नियम, उस राग को सीखने के बाद ही सीखना होगा । अब हमें पहिले मारवा राग सविस्तार समझा दीजिये ।



राग मारवा

उत्तर--हाँ, अब यही करने वाला हूँ। यह मारवा राग एक षाडव प्रकार है, यह मैंने पहिले एक बार सूचित किया था, याद करो, उसमें पंचम स्वर बिलकुल वर्जित है। "उतरी" धैवत (कोमल धैवत) लगने वाले सन्धिप्रकाश रागों में पंचम क्वचित् ही वर्जित होता है, यह तुम देख ही चुके हो।

प्रश्न--मारवा में वादी स्वर कौनसा माना जायगा ?

उत्तर--अपने गायकों से यदि कोई यह प्रश्न करे तो वे तुरन्त ही कहेंगे कि वादी धैवत मानो।

प्रश्न--वे मारवा को प्रातर्गेय मानते होंगे, ऐसा जान पड़ता है।

उत्तर—नहीं-नहीं, वे इसको एक सायंगेय प्रकार ही मानते हैं। सन्ध्याकाल के समय में धैवत का वादित्व तुमको आश्चर्यजनक दिखाई दिया, वह यथार्थ है। उस स्वर का समय वह नहीं है, यह प्रत्येक मार्मिक विचारक को प्रतीत होगा।

प्रश्न--तो फिर ऐसी धारणा क्यों होती है, भला ?

उत्तर--वह थोड़ा सा तुम्हारे हमीर राग के समान हुआ है, यही कहोगे न ? मारवा में धैवत की ओर स्वतः ही लक्ष्य जाता है, सम्भवतः इसीलिए उसको वादी मानने की प्रवृत्ति गायक वादकों में होती होगी। किन्तु हमारे लिये तो अपनी नियम पद्धति के प्रमाण से चलना ही ठीक होगा। क्या हम जहां-तहां ऐसा नहीं करते आये हैं ? हमने हिंदोल में गन्धार को वादित्व देना स्वीकार नहीं किया, और तो क्या, गौड़ सारङ्ग में भी गान्धार को हमने वादित्व देना अस्वीकृत किया था। सही है न ?

प्रश्न—परन्तु गौड़सारङ्ग यदि पूर्व रागों में से एक माना जायगा तो गान्धार उसमें वादी रहने देना अधिक दोषपूर्ण नहीं होगा।

उत्तर—तुम्हारा यह कथन महत्व पूर्ण है। मध्यान्ह के पीछे क्रम से आगे जाते समय कदाचित् गौड़ सारङ्ग में कोई तीव्र गान्धार को बहुलत्व देना भी पसन्द करेगा। कोई उस राग को रात्रि के प्रथम प्रहर में गाना पसन्द करते हैं, ऐसा मुझे जान पड़ता है। मैं कह चुका हूँ कि तुम को जो मत योग्य मालूम पड़े उसे खुशी से स्वीकार करो, उसमें मेरी कोई हानि नहीं।

प्रश्न--मारवा को यदि आप सायंगेय प्रकार मानते हैं तो फिर उसमें वादी स्वर ऋषभ अथवा गान्धार होना चाहिये, ठीक है न ?

उत्तर--तुमने ठीक कहा। मारवा में तुम ऋषभ और धैवत की जोड़ी को 'जीवभूत' समझो तो चल सकता है। जो गान्धार वादी मानेंगे, वे धैवत को सम्वादी मानेंगे।

प्रश्न--यह धैवत वैचित्र्यदायक और बड़ा स्वर होने से वहां निषाद का प्रकाश नहीं पड़ता होगा, ऐसा ज्ञात होता है।

उत्तर--तुमने ठीक कारण बताया। पूर्वाङ्ग प्रबल होने से धैवत और निषाद ये दोनों स्वर नहीं चमक सकते, यह समझते ही हो। फिर पंचम बिल्कुल वर्ज्य है। मारवा में रे ध स्वरों का सम्वाद मानने में और भी एक लाभ है।

प्रश्न--वह कौनसा ?

उत्तर--ऐसा करके हम इसी थाट में से उत्पन्न राग 'पूरिया' को सरलता से अलग कर सकेंगे।

प्रश्न--उसमें सारा आनन्द गान्धार निषाद का रहेगा ?

उत्तर--हाँ, पूरिया में ऐसा ही है, यह तुम्हें आगे चलकर विदित होगा। मारवा में कोई-कोई षड्ज वादी मानने वाले भी पाये जाते हैं, परन्तु हो सके तो मध्य षड्ज का वादित्व हमें टाल देना चाहिये। मारवा राग गाना बहुत कठिन नहीं है, परन्तु उसे गाते समय कुछ विशेषताऐं अवश्य ध्यान में रखनी चाहिये। एक तो यह बात ध्यान में रहने दो कि इस राग के गायन में तीव्र धैवत स्वर अपने श्रोताओं के सामने जितना भी रख सको तथा जितनी जल्दी रख सको उतना ही अच्छा है, ऐसा कहते हैं। कोई-कोई चंट गायक तो इस राग का प्रारम्भ उस धैवत से ही करता है, ऐसा करने से वास्तव में परिणाम बिल्कुल स्वतंत्र होता है। 'सा, रे॒ सा, ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग, मं ग, नि़ रे॒ ग, मं ग रे॒ सा' ये समुदाय इतर कुछ रागों में भी आ सकते हैं। इसलिये इनका प्रस्तार प्रारम्भ करके, बैठे रहना नहीं चाहिए। यद्यपि ये सब सायंगेय हैं तथापि उन्हें मारवा का रूप देने के लिये और भी आगे बढ़ना होगा।

प्रश्न--मारवा राग गाते हुये हमें कौन से राग दूर रखने की चेष्टा करनी पड़ेगी ?

उत्तर--मैं समझता हूँ, वहाँ हिंदोल, पंचम, सोहनी और पूरिया इन रागों से बचना होगा। हिंदोल तो तुम सीख ही चुके हो। वह उत्तराङ्ग प्रधान राग है और उसमें वादी धैवत है। मारवा का बड़ा भाग हिंदोल के समान दिखाई देता है, क्योंकि इन दोनों रागों में 'ध, मं ग, मं ध' ये स्वर बड़े ही महत्व के हैं, और फिर इन दोनों ही रागों में पंचम वर्ज्य है।

प्रश्न--परन्तु पूर्वाङ्ग में मारवा, हिंदोल के समान बिलकुल नहीं दीखेगा, ठीक है न ?

उत्तर--यह स्पष्ट है। उसका कोमल रिषभ ऐसा कुछ विलक्षण है कि वहां हिंदोल का संदेह भी नहीं होगा। किसी मार्मिक का ऐसा भी कथन है कि मारवा में रिषभ का विस्तार, श्रीराग के रिषभ के प्रमाण से किया जाय।

प्रश्न--वह कैसे ?

उत्तर--उनका यह कहना है कि श्रीराग में जैसे अनेक छोटी तानें रिषभ पर लाकर रखते हैं, वैसे ही मारवा में रक्खी जांय। श्रीराग में पंचम है और मारवा में नहीं है और फिर मारवा के आरोह में गान्धार वर्जित नहीं है।

प्र०—उसी तरह मारवा का धैवत भी तीव्र है, तो क्या फिर ये तानें मारवा में चलेंगी ? देखिये—रे़ रे़, ग रे़, ग मं ग रे़, ग रे़ सा, रे़ ग मं ध मं ग रे़, ग मं ग रे़, मं ग रे़ ग रे़, रे़ सा।

उ०—मैं समझता हूं, ये मारवा में अच्छी तरह चल सकती हैं। अब दूसरा एक छोटा सा नियम और कह देता हूँ, उसे भी ध्यान में रखना। उत्तरांग में आरोह की तानों में निषाद स्वर न लेकर "मं ध सां" ऐसा किया हुआ अच्छा दृष्टिगोचर होगा। निदान मध्य सप्तक में ही राग की सब खूबी है, इस नियम का पालन अधिक सुन्दर दीखेगा। हिंडोल में भी ऐसा ही कृत्य तुम करते हो, इसलिये मैं तुमको कुछ नया और कठिन काम बता रहा हूँ, सो नहीं। मन्द्र निषाद का प्रयोग "नि़ रे़ ग मं, ध मं ग रे़, ग मं ग रे़, सा" इस तरह से प्रचार में तुमको दृष्टिगोचर होगा, परन्तु मध्य स्थान में आरोह में निषाद छोड़ा हुआ हो तुम्हें सर्वदा दिखाई देना सम्भव है, और यह खोटा भी नहीं। मैंने पहिले कहा था कि मारवा में रिषभ का विस्तार कुछ हद तक श्रीराग के प्रमाण से करो। उस कृत्य को रिषभ का वक्रत्व ही कहा जायगा।

प्र०—अर्थात ऊपर से गाते-गाते रिषभ तक आया जाय और फिर पीछे जाया जाय, यही न ?

उ०—हां, ऐसा समझो तो चल सकता है। मैं यह नहीं कहता कि मारवा में "ग रे़ सा" और "रे़ सा" ये टुकड़े कभी नहीं लिये जायेंगे, मैंने तो साधारण चलन कहा है। अनेक तान रिषभ से आगे पलटने वाली तुम्हें दृष्टिगोचर होंगी इसलिये मैंने तुम्हारा ध्यान उधर आकर्षित किया है। "ध, मं ग रे़, ग मं ध, मं ग रे़, ग मं ग रे़, सा, ग, मं ध, नि ध मं ग रे़, ग मं ग रे़, ग रे़, सा" ये तानें इस राग में बारम्बार आनी सम्भव हैं। एक दम जाकर षड्ज से न मिलना पड़े, इस ढङ्ग से चलोगे तो यह राग अच्छा बैठेगा। रिषभ पर जाकर पीछे घूमने का परिणाम कुछ विलक्षण ही होता है। यह कृत्य पूरिया में नहीं किया जाता।

प्र०—अच्छा, मन्द्र सप्तक में हम जाना चाहें तो वहां कैसे करें ?

उ०—मारवा में गायक मन्द्र स्थान में अधिक तानें नहीं लगाते, वे बीच-बीच में रे़ नि़ ध़, मं़ ध़, सा, रे़ ग, मं ध मं ग रे़, ग मं ग रे़, सा, ऐसा करेंगे, परन्तु इस राग के मन्द्र स्थान में बहुत विचित्रता है, सो बात नहीं। आशा है यह मन्द्र प्रवेश का काम तुम अच्छी तरह से घोट डालोगे। मारवा में मींड और "नक्काशी काम" शोभित नहीं होता। उसका गाना स्पष्ट और खड़े स्वरों का है। पूरिया और मारवा में यह भेद भी ध्यान रखने योग्य समझा जाता है कि पूरिया का "ग, नि़ रे़ सा" इतना टुकड़ा कुछ ऐसा विलक्षण तथा मुलायम होता है कि उसे कान में पड़ते ही मार्मिकों का ध्यान उस राग की ओर खिंच जाता है। उसी रह "ध, मं ग रे़, ग मं ग रे़" ये दो टुकड़े आये कि श्रोताओं को मारवा का इशारा तत्काल हुआ ही समझो। मारवा, हिंदोल, सोहनी और पूरिया ये राग कुछ पास-पास के होने से उन सबों की ही पकड़ तुमको अलग-अलग

तय्यार करनी होगी। इनमें से हिंदोल तो होगया। प्रत्येक राग की पकड़ बड़ी युक्ति से कहीं-कहीं तो दो चार स्वरों में ही अपने मार्मिक पंडितों ने रख दी है, यह तुम जानते ही हो, अतः उसे राग का 'जीवभूत' भाग समझकर सदैव ध्यान में रक्खो।

प्र०—मारवा यदि हिंदोल के इतने पास है, तो ये दोनों राग उचित स्थानों पर अलग करके कैसे दिखाये जायेंगे ?

उ०—बताता हूँ। मारवा में पहले हिंदोल का "ग, सा" यह विशिष्ट प्रयोग कभी नहीं आयेगा। गुणी लोग एक ऐसी युक्ति बताते हैं कि ग, मं ध सां, ऐसे स्वर यदि इन दोनों रागों में आ सकते हैं तो वे प्रायः हिंदोल में ही अधिक बार आयेंगे।

प्र०—यह ठीक है। तार षड्ज स्वर मारवा में बारम्बार आने से उसका सायंगेयत्व बिगड़ता है। ठीक है न ? तो फिर मारवा में कैसे किया जायगा ?

उ०—वहां थोड़ी युक्ति से काम लेना होगा। तार षड्ज के रास्ते में अधिक जाओ ही मत। इन तानों को देखो—ध, मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा, सा, रे॒, ग, मं ध, मं ध, नि ध, मं ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा, सा रे॒ सा, ग मं ग रे॒ सा, रे॒ नि॒ ध, मं॒ ध॒, सा, मं॒ मं॒ ध॒ सा, ग, मं ध मं ग, नि ध, मं ग, ग मं ध ग मं ग, रे॒ सा। यहां तुमको हिंदोल दृष्टिगोचर नहीं होगा। अच्छा अब इसे देखो—सां, ध सां, मं ध सां, ग ग मं ध सां, सां नि ध, मं ध, मं ग, मं ध सां, नि नि ध ध, मं ध सां, ग ग मं ध मं ग, सां नि ध, मं ग मं ध सां।

प्र०—आगे न जाइये। इन तानों पर सायंगेयत्व बिलकुल नहीं, यह कैसा चमत्कार है। वही स्वर दोनों रागों में होने पर भी परिणाम कितना अलग-अलग है। ऐसी ही युक्ति अन्य समप्राकृतिक रागों के लिये भी होगी, ऐसा ज्ञात होता है।

उ०—हां, पर जबकि वे राग अभी मैंने तुमसे कहे नहीं तो उनकी चर्चा बीच में करना सुविधाजनक नहीं होगा।

प्र०—ठीक है। अब हम मारवा किस तरह से गायें ? यदि इसे समझा दें तो अच्छा होगा।

उ०—अच्छा, कहता हूँ—प्रारम्भ चाहो तो ऐसा करते जावो—"सा, रे॒ सा, ग, मं ग, रे॒ ग, मं ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒ सा" अथवा "ध, मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा, सा रे॒ रे॒ नि॒ ध, मं॒ ध॒ सा, ध॒ सा, रे॒ ग, मं ध नि ध मं ग, रे॒, सां, नि ध मं ग, ग मं ध ग मं ग, रे॒ सा, नि नि ध ध मं मं ग ग, ध ध मं मं ग ग, मं मं ग ग, रे॒ ग रे॒, मं ग रे॒, सा, सा रे॒ सा" ऐसा करो। इस राग में अधिक गड़बड़ या उलझन नहीं है, यह मैंने कहा ही था। जगह ब जगह रिषभ का वक्रत्व और दिखाते चलो तो बस। यह राग प्रसिद्ध और सीधा होने से बहुत से गायकों को आता है। कोई-कोई तो इसे बहुत सुन्दर गाते हैं।

प्र०--इस राग का अन्तरा कैसा रक्खा जायगा।

उ०--वह इस प्रकार शुरू करो--"ग, मं ध, सां, अथवा ग, मं ध मं, सां, सां, नि रें सां, सां, सां रें, नि रें, नि ध, मं ध, नि ध मं ग, ध मं ग इ०" मैं समझता हूँ, इतने इशारे से तुम ये राग सरलता से गा सकोगे। इतना ही क्यों, तुम उसे गाकर देखो न ? जहां अड़चन होगी वहां के लिये मैं हूं ही।

प्र०--अच्छा, कोशिश करता हूं--ध ध मं ग रे, ग मं ग रे सा, सा, रे रे सा, मं ध सा, रे, ग, मं ध, नि ध मं ग, रे, ग मं ध ग मं ग रे, रे, सा। सा रे सा। सा, रे ग, मं ग, मं ध मं ग, नि ध मं ग, रे ग मं ध नि ध, मं ग, ध मं ग रे, मं ग रे, ग रे, सा, सा रे सा॥ ग ग मं ध मं, सां, सां, सां रें सां, सां, रें रें, नि रें नि ध, मं ध, रें नि ध, मं ध, मं ग रे, ग मं ग रे सा।

उ०--मेरी समझ से, यह प्रकार 'मारवा' अवश्य हो सकेगा। कोई-कोई गायक "नि रे ग मं नि ध मं ग, रे ग मं ग रे सा, सा सा रे रे नि नि ध ध, मं ध सा, ग, मं ध मं ग, रे, ग मं ध ग मं ग रे, रे सा, सा रे सा" ऐसा करते हैं, यह भी ठीक होगा। मारवा की प्रकृति पूरिया जैसी गम्भीर नहीं। कोई-कोई उसके खड़े स्वर देख कर यह भी कहते हैं कि इस राग में वीर रस के गीत अधिक शोभा देंगे, किन्तु मैं पहले ही सूचित कर चुका हूं कि यह "रस" विषय जितना सरल समझा जाता है, उतना है नहीं। इसका निर्णय केवल कल्पना के बल पर नहीं किया जा सकता। अमुक स्वर का परिणाम प्रत्येक मानव प्राणी पर अमुक ही होगा यह निर्विवाद सिद्ध कर दिखाने में बड़ी चतुरता की आवश्यकता है! पाश्चात्य पंडितों ने इस विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं, किन्तु उनके सिद्धान्त निर्विवाद अपने यहां स्वीकार किये जांयगे या नहीं? प्रथम तो यही एक प्रश्न उपस्थित होता है। कोई कहते हैं अपना देश भिन्न, परिस्थिति भिन्न, अपने आचार विचार भिन्न, भाषा भिन्न, स्वरोच्चार करने की विधि भिन्न, नाद के परिणाम की कल्पना भिन्न, रस शास्त्र भिन्न, और साहित्य शास्त्र आदि सब भिन्न हैं। ये सब बातें एकदम कैसे भुलाई जा सकती हैं? यह तो मैं भी कहूंगा कि इसका समाधानकारक निर्णय अनेक अधिकारियों के सम्मेलन से करना ही उचित होगा। ऐसा एकबार करके फिर उसकी शैली से पद्य रचना और सङ्गीत प्रयोग होने लगे तो धीरे-धीरे कुछ काल में समाज की रुचि में कुछ नियमित परिवर्तन जरूर होंगे। नित्य सत्सङ्ग अथवा नित्य परिचय से अनेक चमत्कार हो सकते हैं, ऐसा अन्य विषयों में हम सदैव से देखते आ रहे हैं। अभी स्थिति ऐसी है कि बहुत से गायकों को यह मालूम ही नहीं कि 'रस' किसे कहते हैं? और रस शास्त्रियों को स्वर की पहिचान नहीं। जहां इन दोनों का थोड़ा बहुत योग होगा, वहां वैमत्य और परमत असहिष्णुता होगी ही, पर इस झगड़े में हम जायें ही क्यों? योग्य समय आने पर योग्य पुरुष आगे आकर इच्छित कार्य पूर्ण करेंगे ही। अब हम मारवा सम्बन्धी कुछ ग्रन्थों का मत देख जायें:—

रागलक्षणे:—

मायामालवगौलाच मेलाज्जातः सुनामकः।
मारुवाराग इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्॥
आरोहे रिववर्ज्यं च पूर्णवक्रावरोहकम्॥

यहां वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम अपना नहीं है, परन्तु थाट संधिप्रकाशोचित है

सारामृते:—

मेलान्मालवगौलीयाज्जातो मारुवसंज्ञकः ।
पूर्णः षड्जग्रहादिश्च सायंगेयः प्रकीर्तितः ॥

पुण्डरीक विट्ठल ने अपनी रागमाला में 'मालव' और 'मारवी' ऐसे दो भिन्न-भिन्न प्रकार कहे हैं। मारवी को उसने शुद्ध भैरव की एक भार्या माना है और उसका वर्णन इस प्रकार किया है:—

चंद्रास्या दीर्घकेशी अनलगतिनिगा सत्रिकास्ता रिधाभ्याम् ।
हेमाभा दीर्घरूपा बहुविधकुसुमैर्भूषिता स्निग्धनेत्रा ॥
मेवाडस्याग्रजाता मृगशिशुनयनी रक्तवस्त्रं दधाना ।
चेषद्धास्या स्तुवन्ती युधि नृपतिगणान् मारवी सा सदैव ॥

इस पर कोई-कोई ऐसी शंका करते हैं कि यह लक्षण मालवी का तो नहीं है ? वे यह भी कहते हैं कि पुण्डरीक का 'मालव' अपना 'मारवा' समझ लिया जाय। मालवा का वर्णन पुण्डरीक ऐसा करता है:—

गौरीमेलैव जातो रिपपरिरहितो सादिमध्यांतपूर्णो
वीरः शृङ्गारनिष्ठो वरशुकरुचिभा मूसलीकस्य मित्रं ।
पद्मास्यः पद्मनेत्रः सिततरवसनः कंठमालादिभूषः
सायंकाले सभायां प्रकटति चतुरो मालवो रागराजः ॥

हम मारवा में पंचम वर्ज्य करते हैं और रिषभ बक्र करते हैं। इसलिये यह लक्षण कुछ विचारणीय है। इस प्रसङ्ग में एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि पुण्डरीक यद्यपि दक्षिण का पण्डित था तथापि उसने उत्तर का सङ्गीत भी अवश्य सीखा होगा, ऐसे कुछ प्रमाण 'राग चन्द्रोदय' और 'रागमाला' में मिलते हैं। उसका सम्बन्ध 'फरोकी' घराने से था और वह घराना खानदेश की ओर अधिकारारूढ़ था, ऐसा भी कहा जाता है।

प्र०—यह तथ्य हमारे ध्यान में अच्छी तरह से है। रागमाला में बाखरेज, ईराख, मेवाड, मूसली ये नाम देखने से तो ऐसी शंका उठती ही नहीं।

उ०—ठीक है ! अस्तु, मारवा में निषाद स्वर भी हम गौण ही रखते हैं। अतः मारवा का घपला मालवश्री से न करना किन्तु·············!

प्र०—नहीं-नहीं, ऐसा मैं क्यों करूँगा ? उस राग को तो ग्रन्थकार काफी थाट में रखते हैं, वहां मारवा कहां से हो सकेगा ? उसे आपने हमसे पहले ही कह दिया है।

उ०—रागतरंगिणीकार ने 'मारू' और 'मालव' ये दो प्रकार अलग-अलग कहे हैं। उसने 'मालव' गौरी थाट में रक्खा है और 'मारू' का वर्णन कर्णाट थाट में किया है। अहोबल ने भी मालव और मारू ऐसा ही अधिकतर कहा है। यह एक ध्यान में रखने योग्य बात है। ये दोनों ही उत्तर के ग्रन्थकार हैं।

प्र०—भावभट्ट क्या कहता है?

उ०—उसने अपने अनूपरत्नाकर में "सत्रिका निविहीना वा सायं मालविका मता" ऐसा कहा है। वह आधार अपने प्रचलित मालवी के लिये ठीक है। सोमनाथ पंडित ने अपने रागविबोध में 'मारविका' ऐसा एक राग वसन्तभैरवी मेल में कहा है।

मेले वसंतभैरविकायाः शुद्धाः सरिमपधा मृदुमः।
कैशिक्यपरीयमस्मान्मारव्यथ मेलतोऽन्ये च ॥

सोमनाथ के भैरव, वसन्तभैरवी और मालवगौड़, ये थाट बहुत निकटवर्ती हैं, इसे भूलना नहीं। इन तीनों थाटों में "सा रे म प ध" ये स्वर शुद्ध कहे हुए हैं। अन्तर है केवल गांधार और निषाद स्वर में। भैरव और वसन्तभैरव थाटों में इतना फर्क है कि भैरव में अन्तर ग है और वसन्तभैरव में मृदु म (आगे की श्रुति) (ग) है। मालवगौड़ थाट में मृदु सा (तीव्रतम नि) और मृदु म (तीव्रतम ग) है। अर्वाचीन ग्रन्थकारों ने दो-दो ग, नि न मानकर केवल अन्तर ग और काकली नि ये दो ही स्वर माने हैं। मारविका का लक्षण सोमनाथ ने ऐसा दिया है:—

रिधहीना शाश्वतिकी सांता गांशग्रहा तु मारविका ॥

यह अपना प्रकार नहीं है। ऐसा स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। रे ध स्वर तो मारवा में अपने मुख्य स्वर हैं।

प्र०—आपने इतने मत बताये, परन्तु मारवा में तीव्र ध और तीव्र म कोई भी नहीं मानता। यह क्या बात है?

उ०—इसका कारण यह है कि अपना प्रचलित रूप नवीन है। नवीन रूप लोकप्रिय होने से, उसके नियम देखकर उसके लिये नये लक्षण ठीक तरह से निर्धारित करने होंगे। वैसा प्रयास 'लक्ष्यसङ्गीत' में चतुर पण्डित ने किया भी है, उनका किया हुआ वर्णन तुम्हारे प्रचलित मारवा का उत्तम समर्थन करेगा।

प्र०—वह कैसा है?

उ०—ऐसा है:—

गमनश्रममेलोऽसौ लक्ष्यगो मारवाभिधः।
तीव्रत्वाद्धैवतस्यात्र पूर्वीमेलभिदा स्फुटा ॥
एतन्मेलसमुत्पन्ना प्रसिद्धा मारवा मता।
आरोहे चावरोहेऽपि पंचमस्वरवर्जिता ॥

वादित्वं धैवते लक्ष्ये दृश्यते बहुसंमतम् ।
न मेऽभीष्टं भवेदस्मिन् सायंगेयस्वरूपके ॥
वादित्वे धैवते निष्ठे प्रातर्गेयत्वसूचनम् ।
हिंदोलांगगतं सिद्धं द्वयोः पंचमलंघनात् ॥
सुसंगतं प्रधानत्वं पूर्वांगे सायमीरितम् ।
मारवा ग्रन्थगा प्रोक्ता सांशा गांशाथवा पुनः ॥
व्यवहारे रिवक्रत्वं विशेषेण सुखप्रदम् ।
प्रच्छादनं निषादस्य ह्यनुलोमे गुणिप्रियम् ॥
मारवा पूरिया चेति द्वे सायं पोज्झिते यथा ।
ललिता सोहनी चेति द्वे यामेंऽन्त्ये पुनर्निशि ॥

कल्पद्रुमांकुर ग्रन्थ में ऐसा कहा है:—

रागेऽस्मिन्मारुसंज्ञे किल गमधनयस्तीव्रकाः स्युर्मृदूरि-
र्वादी चात्रर्षभोऽयं ध्रुवमनुभवतो लक्ष्ययोगानुरोधात् ॥
संवादी धैवतश्च स्फुटमिह गमनं साध्यतेऽतिश्रमेण
संगीताभ्यासशीलैर्नियतमविरतं गीयते सायमेव ॥

चन्द्रिकायाम्:—

तीव्रौ गमौ धनी चैव मृदू रिर्धैवतर्षभौ ।
संवादिवादिनौ यत्र स मारुः सायमीरितः ॥

पं० क्षेत्रमोहन स्वामी अपने 'सङ्गीतसार' में कहते हैं कि प्राचीन ग्रंथों का जो मालव राग है, वही अपना मारवा समझो। स्वयं उन्होंने जो मारवा का प्रकार दिया है, वह बिलकुल आज के अपने प्रचार के अनुसार है।

प्रश्न—तब वे तीव्र धैवत और तीव्र मध्यम मारवा में कहाँ से ले आये ?

उत्तर—आधार वे नारायण का कहते हैं, परन्तु मैं समझता हूँ उनको उस ग्रन्थ से राग के वास्तविक स्वर तो नहीं मिले होंगे। कारण, कलकत्ता के "रॉयल एशियाटिक पुस्तकालय" में नारायण की जो प्रति मैंने देखी, उसमें राग-रागनी के कुटुम्ब की रचना थी, परन्तु उनके स्वरों का स्पष्ट निर्देश मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुआ, तथापि वह ग्रन्थ मेरे पास न होने के कारण तत्सम्बन्धी अधिक चर्चा हम नहीं कर सकेंगे।

प्रश्न—प्रतापसिंह ने अपने संगीतसार में इस विषय में क्या दिया है ?

उत्तर—उन्होंने मारवा को 'मालवी' मानकर आगे प्रत्यक्ष स्वरूप ऐसा दिया है:—
ध मं ध मं ग रे॒ ग मं ग रे॒ सा। नि॒ रे॒ नि॒ ध॒ मं ध॒ नि॒ रे॒ सा। ग मं ग रे॒ सा, रे॒ सा।
हाँ, यह प्रकार ठीक है, परन्तु मालवी और मारवा एक नहीं हैं, यह तथ्य उनकी समझ में नहीं आया, ऐसा प्रतीत होता है।

प्रश्न—अब हमको मारवा थोड़ा सा गाकर दिखायेंगे क्या ?

उत्तर—हाँ, सुनोः—

मारवा—

ध मं ग रे, ग मं ग रे, सा, नि़ सा, रे रे सा, नि़ ध़, मं़ ध़ सा, रे ग, मं ध, नि ध मं ग, ध मं ग, मं ग, रे, सा; रे नि़ ध़, मं़ ध़, नि़ ध़ सा, नि़ रे ग मं ध मं ग, मं ग, रे सा; नि़ रे ग, रे ग, मं ध मं ग, मं ध नि ध मं ग, रें नि ध मं ग, रे ग मं ध नि ध मं ग, ध मं ग, मं ग, रे सा, सा रे सा; सा रे ग रे सा, रे रे ग रे सा, नि़ सा, नि़ रे ग, मं ग, ध मं ग रे ग मं ग रे सा, नि़ रे नि़ ध़ मं़ ध़ सा, ध़ मं़ ध़ सा, रे, सा, ध़ सा, रे ग मं ध मं ग रे सा, सा रे सा; ग ग मं ध सां, सां, रें रें सां, नि सां, सां, रें रें, नि रें नि ध, मं ध नि ध, मं ग, रे ग, रें नि ध, मं ग, रे ग, मं ध नि ध मं ग, मं ग, रे सा, सा रे सा; ग ग मं ध सां, ध सां, नि रें सां, नि सां रें रें नि रें नि ध, मं ध नि ध मं ग, रें रें नि नि ध ध मं मं ग ग, रे ग मं ध नि ध मं ग, ध मं ग, मं ग, रे सा, सा रे सा।

सरगम-एकताल

ध ध । मं मं । ग रे । ग मं । ग रे । सा ऽ ।

×
नि़ सा । रे रे । नि़ ध़ । मं़ ध़ । सा ऽ । रे सा ।
रे रे । ग ग । मं ध । मं ध । सां ऽ । रें सां ।
नि रें । नि ध । मं ध । मं ग । मं ग । रे सा ॥

अन्तरा—

ग ग । मं ध । मं ध । सां ऽ । रें रें । सां ऽ ।

×
नि सां । रें रें । नि ध । मं ध । नि ध । मं ग ।
रे ग । मं ध । नि ध । मं ग । रे ग । रे सा ।
नि रें । नि ध । मं ध । मं ग । मं ग । रे सा ॥


प्रश्न—मारवा राग हम भली भाँति समझ गये, अब अगला राग लीजिये।



राग पूरिया

उत्तर—अब हम "पूरिया" लेते हैं, क्योंकि यह मारवा के निकटवर्ती रागों में से एक है। "पूरिया" नाम सुनने में हमें कुछ आधुनिक और यावनिक लगता है, तथापि बहुत पुराना है। लोचन पंडित ने अपने 'रागतरंगिणी' ग्रन्थ में इसका स्पष्ट उल्लेख यह किया है, ऐसा मैंने कहा भी था। "पूरिया अपने प्रसिद्ध रागों में से एक माना जाता है तथा यह अधिकतर गायकों द्वारा गाया जाता है इसमें सन्देह नहीं।

प्रश्न—क्या यह राग 'रत्नाकर' में दिया है ?

उत्तर—नहीं ! वह दर्पण, राग विबोध, स्वरमेलकलानिधि, संगीत सारामृत आदि आजकल के ग्रन्थों में भी नहीं मिलता। अहोबल पंडित ने भी इसे परिजात में नहीं रक्खा है। फिर भी जब कि वह राग-तरंगिणी में है, तो उत्तर की ओर लगभग तीन चार सौ वर्ष से है, ऐसा सहज ही कहा जा सकता है। यद्यपि अपने पूरिया का स्वरूप लोचन के स्वरूप से भिन्न है, किन्तु मैंने नाम के विषय में उक्त बात कही है। अस्तु, अब हम इस राग पर विचार करते हैं। पूरिया सिखाते समय बड़े-बड़े गायक अपने विद्यार्थियों का ध्यान पूर्वी और पूरिया के भिन्न-भिन्न भेदों की ओर आकर्षित अवश्य करते हैं।

प्रश्न—पर ये दोनों राग पहले से ही भिन्न-भिन्न थाटों के हैं न ?

उत्तर-मेल भेद तो है ही, परन्तु वहाँ और भी कुछ बातें ध्यान में रखने योग्य हैं।

प्रश्न—तो फिर उन्हें भी कह दीजिये ?

उत्तर—वही अब मैं कहता हूँ। पूर्वी में हम दोनों मध्यमों का प्रयोग करते हैं, यह तुम्हें ज्ञात ही है। पूरिया में कोमल मध्यम का संसर्ग बिलकुल निषिद्ध है। पूरिया में पंचम बिलकुल वर्जित है किन्तु पूर्वी में वह एक अच्छा महत्व का स्वर रहता है। तुमको प्रतीत हुआ ही होगा कि पूर्वी थाट के सारे रागों में पंचम स्वर वर्जित नहीं था। मारवा थाट में यह स्वर न लगने वाले सुन्दर राग ४ या ५ ही निकलेंगे, यह ध्यान में रखने योग्य एक सिद्धांत है।

प्रश्न—भैरव थाट के रागों के विषय में भी तो शायद आपने ऐसी ही बात कही थी ?

उत्तर—हाँ, वह मुझे याद है। भैरव और पूर्वी थाट में मुख्यान्तर केवल मध्यम का ही है। मारवा थाट में पंचम वर्ज्य करने वाले कुछ राग "सोहनी, ललित और पंचम" भी तुम्हें ध्यान में रखने होंगे, वे सब आगे चलकर मैं धीरे-धीरे कहूँगा ही। पूरिया और मारवा ये सायंगेय प्रकार हैं और ललित, पंचम व सोहनी ये प्रातर्गेय प्रकार हैं, यह मैंने कहा ही था।

प्रश्न—पूरिया राग के वादी-संवादी स्वर कौन से हैं ? गान्धार और निषाद ही हैं न ?

उत्तर—हाँ, वादी गान्धार है और निषाद संवादी है। इन दोनों स्वरों पर इस राग की सारी विचित्रता है। इस राग के "नि सा रे ग मं" ये सब पूर्वी के स्वर होने के कारण इसकी अनेक तानें पूर्वी की तानों से मिल जाने की संभावना रहती है, यह सहज ही दिखाई देता है। इसी कारण से तो पूर्वी राग गाते हुये अपने कसबी गायक छोटे-छोटे स्वर समुदाय ऐसी खूबी से रखते हैं कि श्रोताओं को राग भेद सहज में दिखाई पड़ता है। संध्याकालीन किसी महफिल में तुम जाओगे तो वहाँ यह राग संभवतः अवश्य सुनाई देगा। और उसे पहिचानने में तुमको अधिक कठिनाई भी न होगी। उस समय पंचम छोड़ने वाले राग शुरू में मारवा और पूरिया ये दो ही होंगे। सायंगेय स्वरूप होकर ये पंचम हीन हैं, इतना दिखाई दिया तो फिर मारवा का क्या प्रश्न रहेगा? "ध मं ग रे, ग मं ग रे सा" यह मारवा की एक जीवभूत तान है, यह न हो तो तुम प्रसन्नता पूर्वक पूरिया की ओर घूमो। पूरिया बहुत ही प्रसिद्ध है तथापि सब गायक उसे यथोचित ही गाते होंगे, ऐसा मैं नहीं कहता। बहुत से गायक राग के मुखड़े मात्र तो ठीक सीख लेते हैं परन्तु उसकी सभी बारीकियाँ नहीं जानते, ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा और यह अनुभव हमें बारम्बार होता भी है। अच्छी उठान की छाप भी उत्तम होती है, यह हम मानते हैं; परन्तु केवल इससे ही तो काम नहीं चल सकता। अगले भाग भी ध्यानपूर्वक सुनकर सीख लेने बहुत ही उपयोगी होंगे। कुछ वर्ष हुये एक हिन्दुस्थान प्रसिद्ध मुसलमान गायक के मुँह से यह राग मैंने सुना था। मैं सत्य कहता हूँ कि उसके गाने से क्षण भर के लिये मैं बेसुध हो गया था। मेरे ऊपर उसका जो प्रभाव हुआ उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, क्योंकि अभी तुमको पूर्ण अनुभव नहीं हुआ है और इस विषय में तुम आज भी उतने विज्ञ नहीं हो। उस गायक ने अपने राग का विस्तार कुछ ऐसी खूबी से किया कि उसकी प्रत्येक तान सबको नवीन ही मालूम पड़ती थी। मेरे शरीर में दो एक बार तो रोमांच भी हुआ। मैं समझता हूँ कि उत्तम गाने से आँखों में पानी भर आना, ठंडक लगने से जैसी कंपकपी आती है वैसा अनुभव होकर रोमांच हो जाना, कोई सा भी शब्द सहन न होना, हम कहाँ हैं? यह क्षण भर के लिये भूल जाना आदि चमत्कारिक प्रभाव श्रोताओं के ऊपर होते हुए रसिक लोगों के मुँह से जो हम प्रायः सुनते रहते हैं, वह बिलकुल निराधार नहीं है। कुछ गायकों द्वारा केवल प्रेम की भावना से प्रेरित होकर "प्यारे के गले..., फूलन के हरवा..., सुघर बना..." वगैरह जो पुरानी चीजें उनके अर्थ की ओर किंचितमात्र भी ध्यान न देते हुये, कर्कश आवाज से व्यर्थ के जो गाने हम सुनते हैं वे उच्च श्रेणी के गायन कदापि नहीं कहे जा सकते।

प्रश्न—अजी, अच्छी याद आई। अभी-अभी आपने श्रोताओं पर होने वाले जो परिणाम कहे थे। वे कैसे और क्यों होते हैं? तथा किस नियम से होते हैं? इसका अन्वेषण अपने यहाँ किसी ने किया है क्या?

उ०—तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर कठिन है। इस विषय में अपने यहां के किसी विद्वान ने कुछ लिखा है या नहीं, मैंने नहीं सुना। मानव पर विभिन्न परिणाम उत्पन्न करने में केवल नाद समुदाय समर्थ होंगे कि नहीं? वहां शब्द की अपेक्षा होने से नाद और शब्द का योग किस नियम से किया जायगा? इस प्रयोग के लिये कौन से शास्त्र एवं कौन से ग्रन्थ उपयोगी होंगे? ये प्रश्न वास्तव में कठिन हैं। ऐसे विषयों की चर्चा

करने वाले संस्कृत ग्रन्थ मैंने अभी तक देखे नहीं हैं, यह स्वीकार करता हूं। कदाचित् पाश्चात्य पंडितों के ग्रन्थों में इस विषय पर कुछ-कुछ प्रेरणा तुम्हें मिल सकती है, परन्तु अपने यहां के गायकों के गाने में उन पाश्चात्य पंडितों का नियम लगाना थोड़ा विवाद-ग्रस्त ही होगा। मेरी सम्मति में तुम इस गड़बड़ी में अभी न पड़ो तो ही अच्छा है। मेरे इस कथन का तात्पर्य तुम समझ गये हो, तो बस। पूरिया राग बहुत रंजक है, ऐसा कहने से अन्य रागों पर अपनी श्रद्धा कम है, सो बात नहीं। प्रत्येक राग अपनी अपनी विशेषता रखता है। परन्तु उसमें रंजकत्व की मात्रा कम या अधिक मानने की प्रथा अपने यहां पुरानी है ही।

प्र०—पूरिया राग अपने गायक कितने बजे तक गाते होंगे ?

उ०—मैंने तो इसे रात में अच्छी तरह गाते हुये सुना है, परन्तु पद्धति की दृष्टि से उसका उचित समय कहा जाय तो वह सन्धिप्रकाश प्रहर ही माना जायगा, ऐसा मार्मिकों का मत है। इस मत के लिये ग्रन्थाधार के चक्कर में पड़ने की आवश्यकता बिलकुल नहीं है।

प्र०—यह ठीक है। ग्रन्थों में वर्णित राग रूप ही जब हमको बदल देने हैं, तो उनके "राग समय" की बातों में क्या रखा है ?

उ०—ठीक है, यह पूरिया राग साधारण रागों में से एक माना जाता है। यह अनेक गायकों को आता है। अतः अपने श्रोतागण बिना प्रयास ही इसे पहचान सकते हैं।

प्र०—तनिक ठहरिये। बीच में ही एक प्रश्न किये लेता हूं। एक ही राग भिन्न-भिन्न गायक उनके वर्ज्यावर्ज्य स्वर नियम और वादी नियमों का पालन करके गाने लगें तो सुनने वालों पर उसका परिणाम एकसा ही होगा क्या ?

उ०—तुम्हारा यह प्रश्न कुछ कठिन है। इसका उत्तर शायद विवादग्रस्त ही होगा। तुम जानते ही हो कि राग रूप उत्तम प्रदर्शित करने के लिये अनेक बातों की आवश्यकता होती है। सभी गायकों की आवाज एक समान कमाई हुई व मीठी नहीं होती। स्वरोच्चारण करते समय एक गायक जो जैसी गमक लगायेगा, वैसी दूसरे के गायन में न होगी। कभी-कभी एक का स्वरस्थान दूसरे के स्वरस्थान से भिन्न होता है। अपने सङ्गीत में बारीक कणों का कितना महत्व है, यह प्रत्यक्ष गायक वादक ही यथा-योग्य रीति से समझते हैं, इसी वास्ते कोई-कोई गायक कहते हैं कि हारमोनियम बाजे पर तुम कितनी भी कोशिश करो तो भी अपने सङ्गीत के मूल तत्व उसमें प्रदर्शित न हो सकेंगे। मैंने तुमसे कहा ही था कि अपने सङ्गीत में कुछ बातें आज भी ऐसी हैं जो प्रत्यक्ष सुनकर ही सीखी जा सकती हैं एक गायक अपना वादी स्वर और स्वर सङ्गति जिस तरह से संभालेगा वैसा कदाचित् दूसरे से नहीं हो सकेगा, यद्यपि राग नियम दोनों का समान ही होगा। पर अभी ऐसे झंझट में तुम पड़ते ही क्यों हो ?

प्र०—हां, यह भी आपका कहना उचित है। पूरिया राग श्रोताओं को सहज ही पहचानने में आता है, ऐसा आपने कहा था।

उ०—ठीक है । "मं ग रे सा, नि ध नि" ये टुकड़े कान में पड़े कि श्रोतागण पूरिया की आशा करने लगते हैं। यह राग पूर्वाङ्ग वादी होने से इसका सम्पूर्ण वैचित्र्य उसी अङ्ग में रखने के लिये हमेशा चेष्टा करो।

प्र०—अर्थात् इस राग को हम किस रीति से प्रदर्शित करने का प्रयत्न करें?

उ०—उसे मैं संक्षेप में कहता हूं। देखो—मं ग रे सा, नि ध नि, रे सा, नि, नि, रे ग, नि रे सा, नि, नि, मं ग, मं ध, रे, सा, नि, रे ग, मं ग, रे ग, मं रे ग, नि, रे सा"।

प्र०—ठहरिये तो—"मं रे ग, नि रे सा" यह तान आपने पहिले भी ध्यान में रखने के लिये हमसे कही थी?

उ०—हां, इसे मैंने पूरियाधनाश्री राग सिखाते समय तुमको ध्यान में रखने के लिये कहा था। यह तान पूरिया राग की होने से उस राग में शोभायमान होती है, ऐसा अनेक विज्ञ व्यक्ति कहते हैं। पूरियाधनाश्री में धैवत कोमल है और पंचम जीवभूत स्थान है, यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। कोई गायक पूरिया के मन्द्र स्थान में कोमल धैवत लगाने को कहते हैं, परन्तु हम बहुमत के अनुसार चलें यही उचित है।

प्र०—धैवत उतरकर वहां पंचम वर्ज्य होना अच्छा दीखेगा, ऐसा हमको प्रतीत नहीं होता। यह राग पूर्वाङ्ग वादी है न? धैवत थोड़ा आगे पीछे होने से क्या इतनी विसङ्गति पैदा कर सकता है?

उ०—हां, तुम्हारी यह शंका भी विचारणीय है। पूरिया के एकत्र चलन की तुमको अच्छी तरह साधना करनी होगी। कोई गायक कहते हैं कि पूरिया का रिषभ अति कोमल है, यह मत भी तुम अपने पास नोट करके रख सकते हो किन्तु उसकी अधिक छानबीन की जल्दी हमको नहीं है।

प्र०—पूरिया में वादी स्वर गान्धार है। तब उस स्वर का बहुलत्व हम किस प्रकार सँभालें? इसे संक्षेप में समझावें तो हम समझ लेंगे।

उ०—यह कृत्य तुम्हारे जैसे जिज्ञासुओं को बिलकुल कठिन नहीं है। देखो—"ग, नि रे सा, नि ध नि, रे ग, मं ग, नि रे ग, मं, मं ग, ग मं रे ग, नि रे सा; नि, नि, मं ध, नि, ग, मं ग, ग मं ध, ग मं ग, रे ग, नि मं ग, नि रे ग, मं ध ग मं ग, मं ग, ग, नि रे सा; इ०" यहां गगान्धार कितना आगे आया है, देखा? अब मारवा देखो—ध मं ग रे, ग मं ध मं ग रे, ग मं ग रे, सा, नि रे नि ध, मं ध, सा, रे, रे, ध मं ग रे, ग ग मं ध, मं ग रे, नि ध मं ग रे, ग मं ग रे, रे, सा, सा रे सा।

प्र०—यह तो स्पष्ट ही निराला प्रकार हो गया। इसको पूरिया कौन कहेगा बाबा?

उ०--अच्छा अब यह अङ्ग देखो "नि़, सा रे॒ ग, मं ग, रे॒ ग, रे॒ ग, ग मं ग, नि़ रे॒ ग, मं ग, रे॒ ग, रे॒ सा"

प्र०—ठीक है, यह पूर्वी का अङ्ग कितना अलग दिखाई देता है ? और अभी तो पंचम अथवा कोमल मध्यम भी आपने इसमें नहीं दिखाया। अङ्गों का महत्व कुछ विलक्षण ही होता है, इसमें कोई शंका नहीं। परन्तु ऐसे सूक्ष्म तथ्य कोई अच्छी तरह समझावे तभीत ।

उ०--यह ठीक है। अपने गायक स्वतः उत्तम गाते हैं, परन्तु वे इन मार्मिक और सूक्ष्म विषयों की ओर ध्यान नहीं देते। इससे उनके विद्यार्थियों को ऐसे तथ्य स्वतः खोजकर ग्रहण करने में बहुत समय लगता है। अस्तु, पूरिया में मन्द्र सप्तक का उपयोग बहुत अच्छा होता है। उस स्थान में गान्धार तक उतरना अच्छा दृष्टिगोचर होता है। मारवा में मध्यम के नीचे जाने की आवश्यकता नहीं। मारवा में नि़ रे॒ नि़ ध़, मं ध़ सा, ऐसा प्रकार लिया जाता है, यह मैंने कहा ही था। पूरिया में धैवत द्वारा उत्पन्न होने वाला अनिष्ट कारक और विसङ्गत परिणाम दूर करने के लिये निषाद और मध्यम की सङ्गति की जाती है, जैसे--"नि़ मं़ ग, मं़ ध़, रे॒, सा, नि़ ध़ नि़ रे॒ ग, मं ग, सां नि, मं ग, रे॒ ग, नि़ रे॒, सा" जिस तरह पूरिया को मारवा से अलग रखने के लिये साधन की आवश्यकता है उसी भांति उसे सोहनी से भी अलग रखने की सावधानी रखनी पड़ती है।

प्रश्न—उसे कैसे करते हैं ?

उत्तर—सोहनी उत्तरांग वादी राग होने से उसका वैचित्र्य उसके अङ्ग में होना उचित ही है, तथापि वहाँ भी नि ध नि, इस टुकड़े का परिणाम कुछ विलक्षण ही होगा, इसमें संशय नहीं। उस राग के विषय में मैं आगे बोलने वाला हूँ। "सां, नि ध नि, मं ग, मं ध नि सां, रें॒, सां" इतने स्वर कहे कि सारा रंग बदला।

प्रश्न—ठीक है महाराज। क्या चमत्कार है। और केवल चमत्कार ही क्यों? क्या यह अपनी पद्धति की रचनात्मक विशेषता नहीं है ? एक ही थाट में एक ही स्वर क्रम से, किन्तु अङ्ग भिन्नता से, राग भिन्नत्व उत्पन्न होना, यह हिन्दुस्थानी संगीत पद्धति का एक महत्वपूर्ण तत्व ही है। एक द्रष्टि से क्या हिन्दोल राग प्रातःकाल का मारवा नहीं है ? मुझे ज्ञात होता है कि ध्यानपूर्वक यदि कोई अनुसंधान करे तो कितने ही राग इस तरह से व्यवस्थित किये जा सकेंगे ?

उत्तर—यही तो मैं बारम्बार तुमसे कहता आया हूँ। अब यह तुमको स्वयं ही ज्ञात हो गया। बारम्बार सुन कर ये तीनों राग (मारवा, पूरिया, सोहनी) अपने मन में अच्छी तरह बिठालो, नहीं तो कलात्मक भाग कंठगत करने में तुम्हें अभी कुछ समय लगेगा, फिर भी उच्चकोटि और निम्नकोटि का रहस्य अब तुम्हारी समझ में स्वतः आने लगा है। बड़े-बड़े गायकों के गाने में अलंकारिक कण और स्वर संगति स्वयं ही अन्तस्फूर्ति से उत्पन्न हुआ करते हैं, वे हमें उसी समय ध्यानपूर्वक लक्ष्य में रखने चाहिए।

प्रश्न—यह बातें अच्छी तरह हमारी समझ में आगई हैं। ऐसी सभी बातें स्वभावतः हमारे अङ्ग प्रत्यंग में बस जानी चाहिये, यही कहिये न ? विशेष रूप से उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही न पड़े तो अच्छा। हम अपने मनमें तरह-तरह के विचार ले आते हैं और हमारा हाथ उन विचारों को कागज पर धड़ाधड़ लिख डालता है। हमारा हाथ वहाँ कौनसी शैली पर चल रहा है, यह अपने ध्यान में भी नहीं आता तथापि प्रत्येक लेखक की शैली स्वतंत्र ही होती है। यही बात कुछ अंश में गाने के बारे में भी है। अमुक राग गाया जाय, इतना एक बार अपना निश्चय हुआ कि गले से अपना कार्य निशंक चालू हो जाना चाहिये। किन्तु ऐसा होने के लिये मूल संस्कार उच्च कोटि के होने चाहिये, आपका यह कथन बिलकुल उचित ही है। ईश्वर कृपा करेगा तो हम अपनी मेहनत से थोड़े ही समय में आपकी शिक्षा का उचित उपयोग आपको करके दिखा देंगे।

उत्तर—मैं तो उसे शुभ दिन ही समझूँगा। अच्छा हम पूरिया राग का स्वर विस्तार करते हैं:—

ग, नि़ रे॒ सा, नि़ ध़ नि़, रे॒ सा, ग, म॑ ग रे॒ सा, नि़ नि़, रे॒ सा, नि़, म़॑ ग, म़॑ ध़ नि़, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। नि़ रे॒ ग, म॑ ग, रे॒ ग, म॑ म॑ ग, रे॒ ग, नि म॑ ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ सा। नि़ रे॒ ग नि़ रे॒ सा, नि़ नि़ रे॒ सा, म़॑ ध़ नि़ रे॒ सा, ध़ नि़, रे॒ सा, ग, नि़ रे॒ सा, नि़ रे॒ ग म॑ रे॒ ग, नि़ रे॒ सा। म॑ म॑ ग ग, म॑ ग, रे॒ ग, ग म॑ ध ग म॑ ग, नि़ रे॒ ग म॑ नि म॑ ग, म॑ ग, म॑ रे॒ ग, नि रें॒ नि म॑ ध ग म॑ ग, रे॒ ग, म॑ ध म॑ ग, म॑ ग, रे॒ ग, नि़ रे॒ सा। म़॑ ध़ नि़ सा रे॒ रे॒ सा सा, ध़ ध़ नि़ सा रे॒ रे॒ सा सा, नि़ रे॒ ग रे॒ ग रे॒ सा सा, नि़ रे॒ ग ग म॑ म॑ ग ग, ग म॑ ध ग म॑ म॑ ग ग, ग म॑ रे॒ ग रे॒ म॑ ग ग, नि नि म॑ ध ग, म॑ ग ग, रे॒ ग म॑ रे॒ ग, रे॒ सा सा, नि़ रे॒ सा।

प्रश्न—आगे अन्तरा की ओर कैसे घूमा जायगा ?

उत्तर—अन्तरा इस तरह गावोः—ग ग म॑ ध म॑ सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ गं रें॒ सां, नि, रें॒ नि, म॑ं गं, गं म॑ं गं, रें॒ सां, नि नि रें॒ नि म॑, नि म॑ ग, रे॒ ग म॑ नि म॑ ग, म॑ रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। इस चलन में तुमने धैवत की स्थिति देखी ? सारी खूबी गान्धार और निषाद स्वरों पर तथा "रें॒ नि" और "नि म॑" संगति पर है। पहले 'नि़ रे॒ ग, नि़ रे॒ सा, ग, नि़ रे॒ सा; म॑ ग, नि़ रे॒ सा; नि नि म॑ ग, नि़ रे॒ सा; ग म॑ ध ग म॑ ग, नि़ रे॒ सा; रें॒ नि, म॑ ध ग, म॑ ग, नि़ रे॒ सा; नि़ रे॒ ग म॑ ध ग, म॑ ग, नि़ रे॒ सा" ये टुकड़े मेरे साथ बार-बार गाकर अच्छी तरह मनमें बिठालो। मंद्र स्थान में राग विस्तार करते हुये एक मुख्य तत्व यह अपने ध्यान में रक्खो कि नीचे में जहाँ तक अपना गला मधुर और स्पष्ट जाय वहीं तक नीचे उतरो। "हाथों पर" या "मुँह बिगाड़ने" पर अपना गाना कभी नहीं लाना।

प्रश्न—"हाथों पर" गाना कैसे लाया जाता है ?

उत्तर—उसमें कोई विशेष रहस्य नहीं है ? वह कैसे होता है सो कहता हूँ। जब मुँह से आवाज भी स्पष्ट नहीं निकलती है, परन्तु हाथ जमीन पर रखकर कभी-कभी हाथ को जमीन पर मार कर बड़े कष्ट से बरसाती मेंढक के समान नीरस और घरघराता हुआ शब्द कुछ गायक उत्पन्न करते हुये दिखाई देते हैं।

प्रश्न—मालुम होता है ऐसा प्रयत्न मंद्र स्थान वाले स्वर लगाने के लिये करते होंगे ?

उत्तर—हाँ, उसी भाँति तार सप्तक के स्वर लगाते समय सिर के ऊपर हाथ ले जाते हैं। वहां पर चाहे स्वर अधूरे ही लग रहे हों किन्तु भाव ऐसा दिखाते हैं मानों तार स्थान के धैवत निषाद लग रहे हैं। उस समय वस्तुतः उनकी आवाज की पहुँच गान्धार तक भी मुश्किल से ही होती है ऐसे कृत्य को "हाथ पर गाना" कहते हैं। ऐसे अनेक गायक तुम्हारी दृष्टि में पड़ेंगे। वास्तव में गाते समय हाथ पैर बिलकुल न हिलाने वाले गायक हजार में पाँच भी नहीं मिलेंगे, यह मैं अस्वीकार नहीं करता किन्तु कला और दोष इनमें कुछ भी अन्तर नहीं है क्या ? मैंने भिन्न-भिन्न प्रकार के गायक देखे हैं, मुझे स्मरण है कि एक बार एक गायक को मैंने यही "पूरिया" राग गाते हुये देखा था। उपस्थिति दो तीन सौ व्यक्तियों की थी। एक बार "ग रे सा" यह स्वर कह कर मंद्र स्थान में जो उसने डुबकी मारी तो वहाँ से पूरे पंद्रह मिनट तक भी ऊपर के सप्तक में वह आया ही नहीं। लोग हंसने लगे। तो क्या यह उसकी प्रशंसा ही मानी जायगी ? तानपूरे की जोड़ी में उसका कुछ भी सुनाई न देता था। हां, उसकी सिसकारी कहीं-कहीं सुनाई पड़ती थी तथा बीच-बीच में वह अपना हाथ धड़ाम से जमीन पर निर्दयता से पीटता और फिर एक बार एक तरफ व दूसरी बार दूसरी तरफ लेटता हुआ ऐसा भाव दिखाता मानों अणु मंद्र सप्तक का काम कर रहा हो। गाते हुये नेत्र फाड़कर, मुँह खोल-कर, पगड़ी आधी बंधी आधी गले में पड़ी हुई रख कर प्रत्येक काल्पनिक तानों की कल्पना के साथ-साथ सिर मुँह और अपना कंधा उचकाकर गाना। कहने का तात्पर्य यह है कि तुम ऐसे दोषों से बचने की चेष्टा ही रखना। खूब रियाज करके पहले मंद्र स्वरों को इस तरह तैयार करो कि वे स्पष्ट सुनाई दें फिर उन्हें प्रयोग में लाकर दिखाओ। वहाँ के लिये एक और गूढ़ रहस्य बताता हूँ। जो राग मंद्र सप्तक में अच्छी तरह खुलते हैं, वे बहुधा तार सप्तक में अधूरे रहते हैं, ऐसा जानकारों का मत है। यदि ऐसा राग गाना हो तो पहले अपना तम्बूरा उच्च स्वर में ही मिलावो, फिर वह बहुत नीचे उतारा जा सकेगा। यह युक्ति मैंने अनेक बार काम में ली है। दरबारी कानड़ा, मियाँ की मल्हार, पूरिया वगैरह रागों में अपने गायक अनेक बार ऐसा करते हुये मिलेंगे। यदि तम्बूरा का स्वर बदलना सुविधाजनक न हो तो स्वयं अपना स्वर बदल लो। सारांश यह है कि तुम यह समझलो कि मण्डली में अपने गायन द्वारा किसी तरह हमें श्रोताओं को प्रसन्न करना है। मुझे विश्वास है कि कुछ समय बाद तुम्हीं कोई नई युक्ति मुझे बताओगे।

प्रश्न—यह सब मैं ठीक समझ गया। अब कुछ ग्रन्थों के मत भी कह दीजिये ?

उत्तर—ठीक है, वही कहता हूँ--पीछे भावभट्ट के राग वर्गीकरण कहते हुये मैंने 'पूर्वीकाललितायुक्ता हिन्दोलांता तथा भवेत्' वगैरह पूरिया के प्रकार कहे ही हैं। ये सब प्रकार आज अपने गायक उनके उत्तम लक्षण समझकर गा सकते हैं, ऐसी आशा कभी न करना। इसी तरह कोई मिश्र नाम तुम किसी धूर्त गायक से कहकर उस प्रकार को गाने की फर्मायश करोगे, तब वह उस नाम के ढंग पर किसी तरह कोई मिश्र रूप खड़ा कर दिखायेगा, परन्तु वह तुम्हारे कानों को मधुर लगे, यह असम्भव है।

प्रश्न—अर्थात थोड़ा बहुत इस नियम से चलेगा:—

रागावयवभूतानामुत्तमांशान् विवृत्य ते ।
मुख्यभागान् पुरस्कृत्य गायंति लक्ष्यवेदिनः ॥

उत्तर—स्पष्ट है, पर इसे छोड़ो। अब यहाँ मैं तुम्हारा ध्यान एक दूसरे विषय की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। प्रचार में पूरिया रात की, पूरिया दिन की, पूर्व्या कल्याण, पूर्व कल्याण, वगैरह नाम बारम्बार तुम्हें सुनाई देंगे अतः इस बारे में भी तुम्हें दो शब्द बता दूँ तो ठीक ही होगा। अब मैं जो कहूँ उस पर ठीक से ध्यान दो। मैंने अभी जो तुमसे सविस्तार प्रकार कहा उसको अपने गायक "रात की पूरिया" कहते हैं। इसमें "म, ध, नि, और ग" ये स्वर तीव्र होकर पंचम स्वर वर्ज्य है, यह तुमने समझ ही लिया होगा। इस राग के स्वरूप के बारे में कोई मतभेद नहीं है। अब "दिन की पूरिया" कौनसी ? यह प्रश्न भी उत्पन्न होगा। इसकी बाबत मैंने भिन्न-भिन्न गायकों से स्पष्ट पूछा और उन्होंने मुझे जो उत्तर दिये उन्हीं की सहायता से अब मैं कहता हूँ। कोई-कोई गायक, जो सप्रमाण उत्तर नहीं दे सके उनके विषय में मैं न कहूँगा। एक पंडित ने उत्तर दिया था कि हम तो बाबा, एक तीव्र मध्यम से अपनी पूर्वी गाकर उसे ही "दिन की पूरिया" कहते हैं। उन्होंने ऐसा भी कहा कि धैवत तीव्र करने से वहाँ मारवा थाट उत्पन्न होकर केई स्थानों में "रात की पूरिया" का सा आभास होगा। पूर्वी में दोनों मध्यम लगाते हैं, इसलिये हमारा एक मध्यम का यह प्रकार अलग ही रहेगा।

प्रश्न—किन्तु पूर्वी थाट में एक मध्यम वाले अन्य दूसरे राग होंगे ?

उत्तर—वैसा है ही, परन्तु कदाचित् वहाँ कोई ऐसा कह सकता है कि उन रागों का "चलन" पूर्वी के समान सीधा न होगा। खैर, मैंने तुमसे उस पंडित का कथन कह दिया। दूसरे एक गायक मुझे मिले, वे बोले कि प्रचार में जो पूर्वी राग सर्वत्र प्रसिद्ध है, उसे ही हम "दिन की परिया" समझते हैं। वह राग सूर्यास्त के पहले ही गाया जाता है। इस वास्ते उसको "दिन की पूरिया" हम कहते हैं। पूर्वी राग तो तुमको आता ही है। इसलिये मैं इस मत की अधिक चर्चा नहीं करूँगा। तीसरे एक महाराज ने कहा कि ग्रन्थों में जो पूर्वा कल्याण नामक प्रकार वर्णित है, उसीका गायकों ने हिन्दी नाम "दिन की पूरिया" रख लिया है।

प्रश्न—क्या इस कथन में कुछ वास्तविक तथ्य है ?

उत्तर—दक्षिण के एक संगीत ग्रन्थ में पूर्व कल्याण नामक एक राग मारवा थाट में (उधर के गमनश्रम थाट में) लिखा हुआ मैंने देखा है।

प्रश्न—उस राग का रूप वहां कैसा दिया है ?

उत्तर—उसमें पूर्वकल्याण का आरोहावरोह ऐसा कहा है—सा रे॒ ग मं प ध नि ध सां। सां नि ध प मं ग रे॒ सा। संस्कृत ग्रन्थों में "दिन की पूरिया" नाम होता नहीं तो फिर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि "पूर्वा कल्याण" को "दिन की पूरिया" मान सकते हैं या नहीं ? संभवतः कोई इसे स्वीकार नहीं करेगा।

प्रश्न—परन्तु "दिन की पूरिया" नाम अपने किसी प्राकृत ग्रन्थकार ने तो दिया ही होगा ?

उत्तर—नादविनोदकार ने इस नाम का एक राग अवश्य कहा है।

प्रश्न—उसने उसका वर्णन कैसा किया है ?

उत्तर—वह ऐसा है—"चन्दन सिरको लगाये हुवे पलंग पे बैठी हुई, सहेलियाँ आसपास खड़ी हुईं, बड़ी मिजाजदार, आहस्ता से बोलने वाली, बीन की तानों को छेड़ कर देख रही, उठकर बजाने का इरादा जिसका, ऐसी पूरिया रागिनी है।"

प्रश्न—परन्तु उसका स्वरूप ?

उत्तर—वह ऐसा दिया है:—ध़ नि़ सा सा ग मं ग मं ध म ग, नि ध म ग रे सा। मं ध मं ध सां सां ध नि सां गं रें सां नि ध म ग, ग मं ध नि सां, नि ध मं ग म ध मं ग, रे सा।

प्रश्न—किन्तु राग का नाम "दिन की पूरिया" दिखाई नहीं देता। मालुम होता है वह उसने शीर्षक में दिया होगा।

उत्तर—हां, ठीक है। किन्तु यह अपनी "रात की पूरिया" का स्वरूप नहीं है, क्योंकि यहाँ दोनों मध्यम हैं।

प्रश्न—तो फिर मालूम हो ा है कि पंचम वर्ज्य मानी पूरिया और दोनं मध्यम मानी "दिन की पूरिया" होगा।

उत्तर—क्यों ? इस प्रकार में तो ऋषभ तीव्र है न ? और तुम्हारे 'रात की पूरिया' में वह कोमल है। यह 'दिन की पूरिया' राग अपने गायक क्वचित् ही गाते हुये मिलेंगे। इसमें रिषभ स्वर किस युक्ति से आरोह में टाला गया है, उसे देखो न ?

प्रश्न—यदि वह स्वर आरोह में लगा होता तो कुछ-कुछ कल्याण का आभास होता और क्या ?

उत्तर—नहीं, कल्याण वहां कैसे दीखेगा ? कल्याण में 'ध म' संगति शोभा नहीं देगी। मेरी समझ में यह कल्याणी थाट का एक स्वतन्त्र रूप ही समझा जायगा। नाद-विनोदकार एक उत्तम तंतकार के नाम से प्रसिद्ध है। ऐसे प्रकार गाने वालों को कुछ कठिन पड़ेंगे, ऐसा कोई कहे तो आश्चर्य नहीं।

प्रश्न—पर इस राग को 'पूरिया' मानने के लिये उसका कौनसा भाग उपयोगी होगा ?

उ०—ऐसे झंझट में पड़ने की तुमको क्या आवश्यकता है ? इस प्रकार में "ग ध" सम्वाद है, यह तुमने देखा ही होगा। इसके रिषभ की ओर देखकर कुछ दया आती है। स्थायी के अन्त में "नि ध म ग रे सा" और अन्तरा में "म ध मं ग रे सा" गाते हुये गायकों को अवश्य अड़चन होगी, वहां उनकी मदद कौन करेगा ? तंतकारों का 'चलन' एक विकट समस्या है, ऐसा कोई भी कह सकता है। गायक लोग, बीनकारों के रागों की अनेक बार आलोचना करते हुए दिखाई देते हैं। बीनकार अपने राग का

मुखड़ा ठीक से संभालकर उसका विस्तार इच्छानुसार करते हैं, यह आक्षेप उनके ऊपर गायकों द्वारा लगाया जाता है, ऐसा मैंने अनेक बार सुना है। गायकों द्वारा किया हुआ असङ्गत विस्तार फौरन ही प्रकट हो जाता है। पर ऐसे निरर्थक विवादों में हम क्यों जायें ?

प्र०—अच्छा, क्या 'राधागोविन्द सार' में दिन की पूरिया कही है ?

उ०—नहीं। प्रतापसिंह ने 'वायुजिका' अथवा 'पूरियाकल्याण' ऐसा एक प्रकार कहा है। 'वायुजिका' नाम क्यों है ? और वह उन्हें कहां से मिला होगा, यह हमें नहीं देखना है। राग का प्रत्यक्ष वर्णन उन्होंने ऐसा किया है:--

याही को लौकिक में 'मेनाष्टक' अथवा 'पूरियाकल्याण' कहे हैं। शिवजी ने धवल संकीर्ण गानड़ा गायकें वाको 'वायुजिका' नाम कीनों। स्वरूप लिख्यते। गोरो जाको रङ्ग है। रङ्ग विरंगे वस्त्र हैं। चन्दन केसर को अङ्गराग लगावे है। सुन्दर चोली पहने है। मृग के से बड़े जाके नेत्र हैं। हाथ में कंकण है। कंठ में मोतिन की माला पहरे है। तरुणावस्था है। हँसी के वचन कहे है। सखिन की सभा में बैठी है। माथे पें छत्र है। पास चंवर डुले है।

प्र०—यह मैंने समझ लिया। अब आगे शास्त्र और आलापचारी होंगी ?

उ०—नहीं, शास्त्राधार की खटपट छोड़ कर वहां उन्होंने ऐसा कहा है—"शास्त्रन में सप्तसुरन सों गाई है। यातें सम्पूर्ण है। सन्ध्या समें गावनी।" यह शास्त्र उन्होंने कहाँ से लिया होगा, सो नहीं कहा जा सकता। रागमाला में ऐसा एक श्लोक मुझे दिखाई दिया था:--

कुर्वन्ती भवने विनोदमनिशं सख्यासमं स्वेच्छया
　　मंजीरे पदयोश्च कंकणयुगं हस्तद्वये बिभ्रती ॥
वातं चामरसंभवं च भजती चित्रांबरा कोविदा
　　वैराटी बहुभूषणान्वितनुः सायं बुधैर्गीयते ॥

पर, वह 'वराटी' रागिनी का है। अस्तु, सङ्गीत सार में अलापचारी ऐसी कही है। "धु प म ग रे ग, सा ग रे ग रे सा, नि धु प म ग रे ग म ग रे सा।"

प्र०—तो क्या यह प्रकार भैरव थाट का नहीं होगा ?

उ०—ऐसा जरूर होगा, परन्तु उसमें पूर्वाङ्ग को प्रधानता देनी होगी। ऐसा करने से धैवत गौण होगा एवं राग रूप थोड़ा बहुत गौरी के समान दीखेगा। भैरव थाट में एक गौरी प्रकार मैंने कहा ही था। उत्तराङ्ग बढ़ेगा तो उपरोक्त स्वर कालिंगड़ा को आगे ले आयेंगे, इसमें कोई संशय नहीं। मेरा अपना मत ऐसा है कि इस प्रकार को अपने यहाँ के गायक वादक आज पूर्व्या कल्याण कहने को तैयार न होंगे। आगे चलकर तुम उसकी खोज करोगे ही।

प्र०—क्या सङ्गीत कल्पद्रुमकार 'दिन की पूरिया' अलग कहता है ?

उ०—हां, वह उसका ऐसा वर्णन करता है:—

पूर्वी जेत औ मारवा तीन्हों स्वर समभाग ।
दिन की पूर्या होत है उपजत है अनुराग ॥

प्र०—इस प्रकार के स्वर कैसे निश्चित किये जांयगे ?

उ०—मालुम होता है, वे मारवा के ही रहेंगे। कल्पद्रुम में 'पूर्व्या' अथवा 'पूरवा' ऐसे भी राग कहे हैं और उनका वर्णन ऐसा किया है:—

पूर्वी मारू गौरा मिले पूर्वा तबहीं जान ।
चार घड़ी दिन शेष में याको नित हो गान ॥

पं० भावभट्ट ने ऐसा कहा है:—

पूरिया मध्यमादिः स्यात्संपूर्णः कंपशोभितः ॥
म ध नि सा सा नि ध प म ग रे सा (पूरियाकल्याण)

परन्तु इस उक्ति का विशेष उपयोग नहीं हो सकेगा क्यों कि इसमें स्वर स्पष्ट नहीं हैं। क्षेत्रमोहन स्वामी ने "यमनी पूरिया" यह नाम पसन्द करके राग रूप ऐसा कहा है:—

नि़ सा नि़ सा रे नि़ मं ध़ मं ध़ ध़ सा, ग रे सा, ग प मं प, ध मं ग रे, ग रे, नि़ सा, नि़ रे सा, ग रे सा। ग प मं ध सां सां नि सां नि रें सां गं रें सां नि सां नि रें नि ध मं ग, प मं ध मं ग, सा रे सा।

हमें इस रूप के विषय में योग्यायोग्य का विचार करने की जरूरत नहीं। इन्होंने 'पूरिया' राग का जो आधार दिया है, केवल वह अच्छा है।

प्र०—वह कैसा है ?

उ०—ऐसा है:—

पाडवा पूरिया प्रोक्ता गांधारांशेन शोभिता ।
तथा पंचमहीना च मतंगादिमुनेर्मतम् ॥

प्र०—वास्तव में यह आधार अपने प्रचलित स्वरूप का उत्तम समर्थन करेगा। आपके कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि 'दिन की पूरिया' राग का उत्तम और विश्वसनीय लक्षण अपने गायक नहीं कह सके, पर वे किसी तरह यों ही कल्पना के बल पर विचारकों को समझा देने का प्रयत्न करते हैं।

उ०—जो मैंने सुना और पढ़ा, वह तुमसे कह दिया। अब तुम्हें स्वयं अपनी विचार शक्ति से काम लेना होगा।

प्र०--यह समझ में आ गया। 'पूर्व्या' अथवा 'पूर्व्याकल्याण' ऐसे कुछ स्वतन्त्र प्रकार जो दीखते हैं, उनकी बाबत हमें थोड़ी सी जानकारी होनी चाहिये, यही न?

उ०--तुम ठीक कह रहे हो, किन्तु वहां भी फिर यह प्रश्न उत्पन्न होगा कि 'पूर्व्या' और 'पूर्वकल्याण' ये भिन्न ही माने जायेंगे या नहीं? दक्षिण की ओर पूर्वकल्याण नाम है, 'पूरिया' नहीं और उत्तर की ओर 'पूर्व्या' है परन्तु 'पूर्वकल्याण' अधिक प्रचार में नहीं है। वस्तुतः 'पूर्व्या' की अपेक्षा 'पूर्वकल्याण' नाम ही कानों को अधिक अच्छा लगेगा। यदि 'पूर्व्या' और 'पूर्वकल्याण' भिन्न-भिन्न प्रकार माने जांय तो एक तरह से सुविधा ही होगी।

प्र०--वह कैसे?

उ०--पूर्वकल्याण मारवा थाट में पंचम लगने वाला एक प्रकार होगा और पूर्व्या उससे एक भिन्न राग माना जायगा। मेरे गुरु ने मुझे 'पूर्व्या' राग का एक गीत बताया है, उसमें पंचम वर्ज्य है और धैवत दोनों हैं। उन्होंने कहा कि उसमें 'पूर्वी, पूरिया और मारवा' ये तीन राग मिलते हैं। उसके आधार से क्या एक छोटा सा सरगम कह दूँ?

प्र०--ऐसा करें तो हमारे लिये अधिक उपयोगी होगा।

उ०--अच्छा, तो वैसा ही करता हूँ। केवल सरगमों से राग का वास्तविक स्वरूप ध्यान में नहीं आता है, परन्तु साधारण रूप जरूर आ सकता है। तो फिर यह सरगम लो:--

झंपाताल—

सा	रे॒	।	ध़	नि़	रे॒	।	ग	ऽ	।	मं	मं	ग	।
×														
नि	नि	।	ध	मं	ध	।	मं	ग	।	रे॒	ग	रे॒	।
सा	रे॒	।	नि़	मं़	ध़	।	सा	ऽ	।	सा	रे॒	सा	।
नि़	नि़	।	रे॒	ग	मं	।	ध	मं	।	ग	रे॒	सा	॥

अन्तरा--

नि	ध	।	मं	ग	रे॒	।	ग	रे॒	।	नि़	रे॒	नि़	।
मं़	ध़	।	सा	ऽ	सा	।	सा	रे॒	।	सा	रे॒	सा	।
नि़	नि़	।	रे॒	ग	रे॒	।	ग	मं	।	ध	मं	ध	।
ग	रे॒	।	ग	नि	ध	।	मं	ग	।	रे॒	रे॒	सा	॥

प्र०--वास्तव में, यह एक चमत्कारिक मिश्रण प्रतीत होता है। इसमें पूरिया और मारवा ये राग मिले हुये हैं। कोमल धैवत की इसमें कुछ विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती और वैसे भी उसे बिलकुल गौण स्थान में रखा गया है।

उ०--तुम्हारा कहना गलत नहीं। कोमल धैवत न लिया जाय तो भी कुछ हानि नहीं। उसी तरह मन्द्र सप्तक में होने से उसको चढ़ाने में विशेष परेशानी होगी ऐसा भी नहीं मालूम पड़ता। वह बिलकुल कोमल तो लगता ही नहीं क्यों कि वहां पंचम वर्ज्य है

अतः उसको तीव्र करने से राग बिगड़ेगा नहीं। मेरे गुरु ने जो गीत सिखाया है, आगे मैं तुमको उसे ही सिखाऊँगा। इस प्रकार में गांधार और धैवत ठीक संभालना पड़ता है। क्षेत्रमोहन स्वामी ने यमनीपूरिया पर टिप्पणी देते हुए कहा है कि यमनी-पूरिया कभी-कभी पंचम वर्ज्य करके भी गाने का व्यवहार है। वह प्रकार "पूर्व्या" होगा अथवा कुछ और ? कौन जाने, परन्तु वे रिषभ तीव्र लगाते हैं। इस लिये वह अपना पूर्व्या तो नहीं हो सकता। दूसरे एक स्थान पर ऐसा कहा है—

"पूरिया रागिणी सैव मंगलाष्टकशब्दिता ॥

प्रश्न—तो फिर प्रतापसिंह ने लौकिक में जो "मेनाष्टक" नाम कहा है, संभव है वह मंगलाष्टक का प्राकृत रूप ही हो ?

उत्तर—यह मैं कैसे कहूँ। इसी तरह तुम आगे शायद "वायुर्जिका" नाम का मूल पूछोगे ? अस्तु, अब हम अपने विषय की ओर लौटते हैं। रागतरंगिणी में ऐसा कहा है:-

इमनस्वरसंस्थाने शुद्धकल्याण ईरितः ।
पूरिया विहिता लोके जयत्कल्याण एव च ॥

प्रत्यक्ष पूरिया राग का लक्षण सविस्तार वहाँ नहीं दिया है।

प्रश्न—अब हमको अपने प्रचलित पूरिया का समर्थन करने वाला आधार कह डालिये, क्योंकि उस पर हमारा समस्त आधार रहने वाला है।

उत्तर—अच्छा, लो कहता हूँ:—

गमनक्रियमेले सा पूरिया बहुसंमता ।
षाडवा पंचमत्यक्ता गांधारांशेन मंडिता ॥
मंद्रावधिर्लक्ष्यविद्भिर्गांधारोऽत्र नियोजितः ।
मंद्रमध्यस्वरैरेषा नित्यं रक्तिप्रदा भवेत् ॥
सायंगेया यतः सिद्धा पूर्वाङ्गप्रबला स्वयम् ।
उत्तरांगप्रधानाऽसौ सोहन्येव न संशयः ॥
निर्योश्च निम्योश्चापि संगतिः सुभगा भवेत् ।
मंद्रनिधनिस्वराणां संहती ह्यध्वदर्शिनी ॥ लक्ष्यसंगीते ॥

कल्पद्रुमांकुरेः—

पूरिया तु षाडवा रिकोमलान्यतीव्रका ।
मंद्रमध्यचारिणी सुरक्तिदा पवर्जिता ॥
मंद्रगामिनी मता गवादिनी निसंवदा ।
स्निग्धमंजुलस्वरैर्निशासु गीयते बुधैः ॥

चन्द्रिकायाम्:—

मृदुरिरितरे तीव्रा वादिसंवादिनौ गनी ।
पवर्जिता पूर्वयामे गीयते निशि पूरिया ॥

मालुम होता है, इतना परिचय तुमको पर्याप्त है। यह राग यहां प्रत्यक्ष गाकर दिखाने की आवश्यकता नहीं। क्योंकि अभी पीछे तुमने उसका स्वरूप स्वतः ही मुझे गाकर दिखाया था।

प्रश्न—तो भी एकाध सरल सरगम हमारे पास और रहा आवे तो अच्छा ही है।

उत्तर—अच्छा लो, एक कहता हूँ:—

पूरिया—त्रिताल

मं मं ग रे । सा ऽ नि़ ध़ । नि़ ऽ मं़ ध़ । नि़ रे ऽ सा ।
सा ऽ सां ऽ । नि़ ध़ नि़ ऽ । रे ग ऽ मं । ग रे सा ऽ।
नि़ रे ग ग । मं मं ग ग । नि नि मं ग । मं ग रे सा॥

अन्तरा—

मं मं ग ग । मं ग मं ध । मं सां ऽ सां । नि रें सां ऽ।
सां ऽ सां ऽ । नि ध नि ऽ । नि नि रें नि । मं मं ग ग।
रे ग ऽ मं । नि नि मं ग । मं ग रे मं । ग रे सा ऽ॥

झंपाताल—

ग ग । रे रे सा । नि़ रे । सा ऽ सा ।
नि़ रे । ग रे ग । मं ग । नि़ रे सा ।
नि़ रे । ग ऽ ग । मं ग । मं मं ग ।
नि नि । मं ध ग । मं ग । नि़ रे सा ॥

अन्तरा—

ग ग । मं ध मं । सां ऽ । नि रें सां ।
नि रें । गं रें सां । नि रें । नि मं ग ।
मं ग । मं नि मं । ग मं । ग रे सा ।
नि नि । मं मं ग । मं ग । नि़ रे सा ॥

कुछ विद्यार्थी खास तौर पर काम आने वाले ऐसे टुकड़े कंठस्थ करके तैयार रखते हैं, देखो:—"नि़ सा रे ग, मं ग" "ग, नि़ रे सा, नि़ ध़ नि़" "नि़ रे ग, मं ग मं रे ग" ध मं ग रे, ग मं ग रे, सा" तुमको भी ऐसा करना पसन्द हो तो बेशक करो। ये तुम्हारे सीखे हुये रागों की पकड़ के काम में थोड़े बहुत आयेंगे। "पूर्व्या" राग पूरिया और मारवा के संयोग से होगा। चाहो तो इसे ध्यान में रखो। इसकी सरगम मैंने तुम्हें बता ही दी है।

प्रश्न—अब आगे कौनसा राग लेते हैं?

——

राग जैत

उत्तर—आओ अब "जैत" राग लें। इस राग को प्रचार में भिन्न-भिन्न नाम दिये जाते हैं, जैसे:-जेत, जैत और जैत्र, जयन्त, जयत, जेतकल्याण इ०। इस राग के विषय में मैं जो कहूँ उसे ठीक समझकर ध्यान में रक्खो। "जेत" राग बिलकुल अप्रसिद्ध अथवा दुर्लभ नहीं है परन्तु उसके स्वरूप के सम्बन्ध में लोगों में कुछ-कुछ मतभेद दृष्टिगत होते हैं, इसलिये तुम उसे एकबार अच्छी तरह ध्यान में रख लो तो ठीक रहे।

प्रश्न—इन मतभेदों ने तो नाक में दम कर दिया महाराज! विद्यार्थियों के लिये यह कैसी मुसीबत है, ओह!

उ०—हाँ, यह बात सही है, परन्तु धीरे-धीरे अब ऐसी अड़चनें दूर होती जावेंगी और तब आगे की पीढ़ियों का मार्ग बहुत ही सुगम होगा, संभव है यह बात तुम्हारे हमारे सामने कदाचित् नहीं भी हो। परन्तु इससे ही क्या है, अपने देश में किस विषय में मतभेद नहीं है? अपना समस्त देश ही मतभेदपूर्ण है। उत्तम मार्ग यही है 'तुम भी अच्छे और हम भी अच्छे' ऐसा कहकर आगे चलना होगा। एक दूसरे की कृति में केवल दोष न खोजकर तद्गत उपयोगी भागों को आदर पूर्वक स्वीकार किया जाय तो संगीत कला का बड़ा ही उपकार होगा, ऐसा मुझे प्रतीत होता है। यद्यपि बाहरी ढोंग को मान देना अनुचित होगा तथापि जहाँ सचमुच चातुर्य हो वहाँ उसको गौरवान्वित करना ही चाहिए। अस्तु, आगे बढ़ने से प्रथम मैं तुमसे निश्चय पूर्वक कहता हूं कि हम 'जैतश्री, जेत और जेतकल्याण' ये तीन भिन्न-भिन्न प्रकार मानने वाले हैं। इनमें से जैतश्री का विचार तो यथासंगत हुआ ही है। जैतकल्याण के नाम से थोड़ा सा थाट का आभास होगा।

प्र०—अर्थात् "जेतकल्याण" राग का थाट कल्याण है, यही समझा जायगा न?

उ०—हाँ, पहिले मैंने रागतरंगिणी का एक श्लोक कहा था, उसमें जैतकल्याण नाम आया था। ध्यान है न?

प्र०—हाँ, उस श्लोक में शुद्धकल्याण, जेतकल्याण और पूरिया ये राग यमन थाट के बताये गये थे।

उ०—ठीक है। जेतकल्याण को हम भी कल्याण थाट में रखते हैं। खाली 'जेत' नाम का राग स्वतंत्र मानकर उसे "मारवा" थाट में रखते हैं। यह व्यवस्था हम मुख्यतः सुविधा के लिये नई कर रहे हैं, ऐसा नहीं समझना।

प्र०—नहीं, नहीं, ऐसा हम क्यों समझेंगे? आप बारम्बार कहते आये हैं कि हम अपने पास का कुछ भी तुमको नहीं सिखाते। जो प्रचार में अच्छे गायक-वादक करते हैं, वही और उतना ही आप हमको बताते हैं, यह हम अच्छी तरह समझ गये हैं।

उ०—फिर ठीक है। लखनऊ के एक प्रसिद्ध तंतकार ने मुझसे कहा था कि "जेत-कल्याण" राग कल्याण थाट में ही अच्छे गुणी लोग बजाते आये हैं।

प्र०—वह जेतकल्याण का नियम कैसा मानता था ?

उ०—जेतकल्याण में वह मध्यम व निषाद वर्ज्य करता था और वादित्व पंचम को देता था। यह उसका मत मेरे गुरु को भी पसन्द था। कोई केवल मध्यम ही वर्ज्य करते हैं, यह भी उसने कहा !

प्र०--प्रचार में जेतकल्याण हमें ऐसा ही सर्वदा गाते हुये मिलेगा न ?

उ०--मैंने उसे वैसा प्रायः अनेक बार सुना है। उस पंडित ने भी उसे वैसा ही मुझे गा बजाकर दिखाया।

प्र०--अर्थात् मध्यम और निषाद, ये दोनों स्वर छोड़कर ?

उ०--हां, अब ये दोनों स्वर निकल जांय तो क्या अड़चन उत्पन्न होगी ? बताओ तो ?

प्र०—ऐसा होने से 'सा रे ग प ध' इतने ही स्वर रह जांयगे, तो उस पर भूपाली या देशकार राग की छाया पड़ेगी।

उ०—शाबाश, ठीक कहा ! तो फिर ये दोनों राग दूर रखने के लिये तुम कौनसी युक्ति काम में लोगे ?

प्र०—मेरी समझ से उसमें दोनों रागों का योग कर दिया जाय तो ठीक रहे, अर्थात् भूपाली का उत्तराङ्ग और देशकार का पूर्वाङ्ग इनका किसी युक्ति से संयोग होना चाहिये। क्योंकि प्रबल अङ्गों का यहां नहीं चलेगा।

उ०—तुम्हारा यह कथन उचित ही है। तो फिर अपने गायक भी जैसा तुमने कहा वैसा ही करते हैं। इसके अतिरिक्त वे शुद्ध कल्याण की 'प ग' सङ्गति भी बीच-बीच में योजित करते हैं। ऐसा करने से राग का सायंगेयत्व अधिक रहता है। दो तीन रागों के दुर्बल अङ्ग लेकर उनमें इच्छित स्वर को वादी करके नवीन राग उत्पन्न करना शास्त्र विरुद्ध नहीं है। ऐसे अनेक उदाहरण हिन्दुस्थानी पद्धति में मिल सकते हैं। अस्तु, हम जेतकल्याण के विषय में बोल रहे हैं। दूसरे एक पंडित ने कहा था कि जेतकल्याण के आरोह में रे ध वर्ज्य किया जाय तो स्वतन्त्र रूप होगा।

प्र०—अर्थात् वहां उसने थोड़ा बहुत जैतश्री का नियम लगाया। यही न ?

उ०—तुम्हारा तर्क ठीक है। उसका ढङ्ग मुझे ऐसा ही दृष्टिगोचर हुआ। जैतश्री का थाट अलग होने से जैतकल्याण का उसमें मिल जाना सम्भव ही नहीं।

प्र०--प्रत्यक्ष प्रचार में क्या यह नियम पालन किया हुआ हमें दिखाई देगा ?

उ०—प्रचार में, आरोह में रिषभ वर्जित तुमको अनेक बार दीखेगा। धैवत यदि वर्जित न माना जाय तो भी वह स्वर जेतकल्याण में बिलकुल असहाय होता हुआ जरूर दीखेगा। कोई गायक तो उसे आरोह में वर्ज्य करते भी हैं।

प्र०—आपके उस लखनऊ के मित्र ने जेतकल्याण कैसा गाकर दिखाया था ? हमें उसे एकाध सरगम के रूप में समझा दें, तो अधिक अच्छा होगा।

उ०—उनके गाये हुये प्रकार का यह नमूना है, देखोः--

जेतकल्याण—झंपाताल

प ग । प ध प । रे रे । सा रे सा ।
सा सा । ग प प । प ऽ । प ध ग ॥

(अथवा दूसरा चरण)

सा रे । सा ग प । ग ऽ । प ध ग ॥ अस्थाई ॥

उसकी गाई हुई चीज की ऐसी उठान थी। वे जब-जब 'प ग' स्वर गाते थे, तब-तब मुझे शुद्ध कल्याण का आभास होता था। मुझे याद आता है, यही चीज मैंने पहिले अपने गुरू जी के मुख से सुनी थी। उन्होंने भी उसे उसी तरह गाया था। मेरे गुरू ने इस चीज के 'प ध ग', इस छोटे से टुकड़े की ओर मेरा ध्यान खास तौर पर खींचा था।

प्र०—इस विषय में वे क्या बोले ?

उ०—वे बोले कि मारवा थाट के पंचम स्वर लगने वाले अनेक रागों में यह टुकड़ा बहुत ही महत्व पाता है। जेतकल्याण में वे "प ध ग, प ध प, रे, सा" यह भाग बहुत ही सुन्दर गाते थे।

प्र०—हमारी समझ में आ गया। यह टुकड़ा वास्तव में विलक्षण लगता है। वहां सुनने वालों के मन में थोड़ी देर के लिये देशकार का रूप अवश्य उत्पन्न होगा, परन्तु उसमें वह 'रे रे, सा' भाग खूब जोड़ दिया है। अपने गायक चाहे विद्वान न हों, सङ्गीत शास्त्र का रहस्य चाहें न समझें, पर उनके अङ्ग में परम्परा गत कुछ न कुछ गुण स्वभावतः ही होते हैं, यह कहना ही पड़ेगा।

उ०—हां, तुम्हारा यह कहना कुछ अंशों में सत्य है। कुछ लोग ऐसे होते भी हैं। उस लखनऊ के पंडित ने अपनी चीज का अन्तरा बड़ी खूबी से गाया।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—अन्तरा में उसे तीव्र धैवत का बड़ा डर था। निषाद बिलकुल वर्ज्य और धैवत अल्पप्राय, तो फिर अड़चन होना स्वाभाविक ही था।

प्र०—विशेष अड़चन के लिये तो 'मनाक् स्पर्शः' 'अवरोहे द्रुत गीतो न रक्तिहाः' यह रास्ता तो है ही।

उ०—सो तो सही है, पर वह धैवत कहां और कैसे रक्खा जाय ? यह प्रश्न जरूर पैदा होगा। पहिले स्थायी में हम देख ही चुके हैं वहां धैवत स्वर अवरोह में एक झटके में लगाया गया था। अपना ध्यान सब पूर्वाङ्ग सुशोभित करने की ओर था। किन्तु अन्तरा, उत्तराङ्ग का नियम संभाल कर गाना होता है।

प्र०—वह ठीक है, पर इस गायक ने अपना अन्तरा कैसा रक्खा ?

प्र०—जेत को एक प्रकार का कल्याण मानने का व्यवहार है, यह उससे स्पष्ट होता है, आपने भी ऐसा कहा ही है।

उ०—हां, उसे मैंने पहले ही कह दिया है। Capt willard. अपने राग मिश्रण कोष्ठक में जेत का अवयव "जैतश्री, शुद्ध कल्याण" कहते हैं। वह एक तरह से ठीक ही है। कल्पद्रुम में ऐसा कहा है—

प्रथम प्रहर निस गाइये नव प्रकार कल्याण।
हेम खेम ऐमन पुनि भूपाली हंमीर।
श्याम जेत अरु पूरिया निशा समय यह वीर॥

नादविनोदकार जेत का थाट यमन ही मानते हैं और उस राग में केवल निषाद वर्ज्य मानते हैं?

प्र०—उसने जेतकल्याण का स्वरूप कैसा कहा है?

उ०—वह ऐसा है—नि़ सा ग, प, ध ध प, ध प प, रे, सा, नि़ ध़ नि़ रे सा, नि ध प, ग ग, ध ग प, रे रे सा। ग ग प प नि सां, नि सां, गं पं गं रें सां, ध ध रें सां, नि ध प, ध ध प ध, ग प रे रे सा।

प्र०—इस राग के विषय में प्रतापसिंह क्या कहते हैं?

उ०—वे कहते हैं, "शिवजी ने जेतश्री, केदार, संकीर्ण कल्याण गाइकें वाको जेतकल्याण नाम कीनों" उनका वर्णन किया हुआ राग रूप अब मैं नहीं कहता। उनकी दी हुई आलापचारी ऐसी है—प़ सा, ग मं ग, म नि ध। मं ग रे सा, ग रे सा ध़, प़ सा ग मं ग, मं ग रे सा।

प्र०—सब मिलाकर जेत को मुख्यतः कल्याण का अङ्ग देने का व्यवहार अधिक दीखता है। कोई मारवा अङ्ग से गायगा, कोई पूरिया के अङ्ग से और कोई शुद्ध कल्याण के अङ्ग से गायगा, ऐसा कहना उचित होगा क्या?

उ०—हां, स्थूल द्रष्ट्या ऐसा लक्ष रखने में कोई हानि नहीं है। "उत्तरी रिषभ" लगाकर गाना यद्यपि कुछ मधुर व कठिन है फिर भी तो वह सम्भव है, ऐसा कहना गलत न होगा। तुमको दोनों तरह से अब मैंने बता दिया है, उनको योग्य प्रसङ्ग में, योग्य रीति से उपयोग करो तो बस। जेतरूप का समर्थन करने वाले कुछ आधार और कहे देता हूं:—

जैत्रो रागो मारुसंस्थानजन्यः।
प्रोक्तो नित्यं वर्जितोऽयं मनिभ्याम्॥
वादी चास्मिन् पंचमः संप्रदिष्टः।
षड्जोऽमात्यो गीयते सायमेव॥ कल्पद्रुमांकुरे॥

मारुसंस्थानसंभूतश्चौडुवो मनिवर्जितः।
पवादी षड्जसंवादी सायं जैत्रोऽभिगीयते॥ चंद्रिकायाम्॥

प्र०—अब कौनसा राग लेंगे?

——

मालीगौरा

उ०—अपने यहाँ "मालीगौरा" नामक एक राग गवैये गाते हैं अब हम उस पर विचार करेंगे।

प्र०—मालीगौरा नाम सुनने में कुछ चमत्कारिक लगता है। यह मुसलमान गायकों द्वारा प्रचार में लाया गया होगा, ऐसा विदित होता है।

उ०—सम्भव है, ऐसा हो। मुझसे एक पण्डित ने कहा था कि वह "मालवगौड़" शब्द से निकला है।

प्र०—मालवगौड़ शब्द का अपभ्रंश "मालीगौर" हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं होगा ?

उ०—यह कल्पना बिलकुल निराधार और बेढङ्गी है, ऐसा तो मैं नहीं कहता; परन्तु हमें राग नामों के झगड़े में पड़ना ही नहीं है। लखनऊ के एक प्रसिद्ध बीनकार ने मुझसे कहा था कि 'मालीगौरा' राग 'मालव' और 'गौरी' इन दो रागों से मिलाकर उत्पन्न किया गया है।

प्र०—पर उन दोनों रागों में तो मध्यम कोमल है और धैवत भी कोमल है, फिर कैसे ?

उ०—मैंने तो तुमसे उनका मत कहा है। यह सायंगेय राग है, अतः कोमल मध्यम जाकर वहां तीव्र आया हो तो हमें आश्चर्य मालूम न होगा एवं यह पूर्वाङ्ग प्रबल राग है, इसलिये कोई धैवत का विधि निषेध नहीं भी मान सकता है, किन्तु मालीगौरा राग के विषय में एक दो मतभेद पाये जाते हैं। वह भी कह देने चाहिये। कोई 'गौरा' में तीव्र धैवत मानते हैं, कोई कोमल धैवत मानते हैं, और कोई-कोई दोनों लगाने को कहते हैं तो कोई "न तीवर, न कोमल" (अन्तर) धैवत लगाओ, ऐसी सिफारिश करते हैं।

प्र०—चतुर पण्डित कौनसा मत पसन्द करता है ?

उ०—उसको तो यह राग किसी न किसी थाट में रखना ही था। कोमल मध्यम न होने से जनकमेल "पूर्वी" या "मारवा" इनमें से एक होता ही। बहुमत से मालीगौरा राग में तीव्र धैवत का प्रचार होने से चतुर पंडित ने उसे मारवा थाट में रक्खा, सो ठीक ही किया।

प्र०—उसे मतभेद मालूम ही होंगे ?

उ०—हाँ, वे सब उसे मालूम थे। वह कहता है:—

अथ वक्ष्ये लक्ष्यगतमतभेदान्यथायथम् ।
जिज्ञासूनां यतोऽपि स्याद्रागनिर्णयसाधनम् ॥
केचिदत्र वर्णयंति विवादित्वं तु धैवते ।
येन स्याद्विशदो भेद एतस्यालक्ष्यवर्त्मनि ॥
संगिरंति पुनश्चान्ये द्विधैवतप्रयोजनम् ।
गौर्यङ्गसंयुतं गानमाहुस्ते त्र्यंशकं शुभम् ॥
पूरियायां प्रविष्टश्चेत्पंचमो ह्यपरे जगुः ।
अवश्यं संभवेत्तत्र गारारूपं न संशयः ॥

आज भी ये मतभेद दिखाई देते हैं, यह मैंने पहले ही कहा था। सायंगेय सन्धिप्रकाश रागों में धैवत पर मतभेद होता हुआ विशेषतः इस थाट में तुमको बारम्बार दीखेगा। "अन्तर धैवत" की कल्पना तो मतभेद के झगड़े को टालने का एक प्रयत्न समझा जायगा।

प्र०—तो फिर प्रश्न यह है कि अब हम यह राग किस तरह गायें ?

उ०—प्रथमतः मैं ये सब प्रकार तुमको बताये देता हूँ और फिर कौनसा पसन्द किया जाय इस पर विचार करेंगे। एक गायक ने यह श्रीराग के अङ्ग से गाया था, मुझे स्मरण है।

प्र०—यानी उसमें "सा, रे॒ रे॒, सा, रे॒, प, प" ऐसा भाग भी रहा होगा ?

उ०—हाँ, वह भी उसमें था। धैवत भी कोमल था, परन्तु श्रीराग का 'गान्धार धैवत' का नियम उसमें छोड़ दिया था।

प्र०—वह ठीक ही है। नहीं तो फिर श्रीराग ही न हो जाता ? अच्छा, पर उसने अपना प्रकार कैसे गाया ?

उत्तर—प्रथम उसने एक खूबी ध्यान में यह रक्खी कि उसने अपना राग मंद्र और मध्य स्थानों में ही गाया। वह कृत्य बुरा प्रतीत नहीं हुआ। देखो उसने ऐसा किया—"सा, रे॒ रे॒, सा, नि़, रे॒ नि़, प़, मं॑ ग़, मं॑ रे॒, सा, नि़ रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ नि़ ध॒ प़, मं॑ ग़, मं॑ ध॒ सा। नि़ रे॒ ग रे॒ सा, रे॒ नि़ प़, मं॑ ग़, मं॑ ध॒ सा, नि़ रे॒ सा, ग, नि़ रे॒ सा, रे॒ नि़ प़, इत्यादि।

प्रश्न—ठीक है महाराज ! इस प्रकार का परिणाम कुछ विलक्षण ही प्रतीत होता है। इसमें धैवत थोड़ा दुर्बल लगता है न ? बीच में "नि़ प़" सङ्गति भी अच्छी लगती है।

उत्तर—संध्याकाल का राग होने के कारण धैवत थोड़ा कम लिया है तो आश्चर्य नहीं। कोई तो उसे छोड़ने को ही तैयार होते हैं, यह मैंने कहा ही था। यह प्रकार जो उस गायक ने गाया उसमें श्रीराग का अङ्ग, क्वचित् नि प सङ्गति, धैवत कोमलत्व, मंद्र

स्थान में वैचित्र्य, धैवत का दौर्बल्य, गांभीर्य वगैरह सिद्धांत मुझे ध्यान में रखने योग्य मालूम पड़े और उन्हें मैंने अपनी कापी में लिख भी लिया था। "सा, नि़ रे॒ नि़ ध़ प," यह स्वर सूत द्वारा वह बीच-बीच में लेता था और वह सुन्दर दिखाई देते थे। नीचे से "मं़ ध़ सा, नि़ रे॒ सा" यह टुकड़ा जब वह लेता था, तब बहुत ही मीठा लगता था। इस तरह से तुम भी अब विस्तार करते चलो, मैं देखता हूँ।

प्रश्न—हम ऐसा करते हैं—सा, नि़ रे॒ सा, रे॒, रे॒ सा, नि़, रे॒ नि़ ध़ प़, मं़ ग़, मं़ ग़, मं़ ध़ नि़, रे॒ सा, रे॒ नि़ ध़, नि़ ध़ प़, मं़ प़ ध़ नि़, सा।

उत्तर—ठहरो, मुझे मालुम होता है यह मं़ प़ ध़ नि़ सा ऐसी सरल तान न ली जाय तो अच्छा होगा।

प्रश्न—अर्थात आरोह में पंचम न लिया जाय तो अच्छा रहेगा, यही न? हमें क्या, हम मं़ ध़ सा, मं़ रे॒ सा, मं़ सा, चाहें तो ऐसा कर सकते हैं। तो क्या इस राग का चलन कुछ-कुछ बसन्त के समान है, इसीलिये वहां पंचम को हटाते हैं?

उत्तर—तुम्हारा ध्यान उधर ठीक गया। कोई-कोई गायक यह भी कहते हैं कि "मालीगौरा" बसन्त का सायंगेय जवाब है। मेरे गुरू जी का भी यही मत था कि पूरिया, मारवा, मालीगौरा, पूर्वी, पूरियाधनाश्री, वराटी, गौरी वगैरह सायंकाल के रागों का सम्बन्ध यदि युक्ति पूर्वक प्रातःकाल के सोहनी, पंचम, वसन्त, परज, विभास, कालिंगड़ा वगैरह रागों से जोड़ दिया जाय तो पद्धति की दृष्टि से संगीत का बड़ा ही हित होगा। उनका यह भी मत था कि रात्रि के तीव्र रे ध लगने वालों थाटों से उत्पन्न होने वाले अनेक रागों का सम्बन्ध भिन्न-भिन्न विलावलों से, मार्मिकों द्वारा सहज में ही लगाया जा सकता है। उनकी यह कल्पना विचारणीय है, यह मैं भी कहूँगा। संध्याकाल के कोई २५ राग अङ्गभेद और वादी भेद से यदि उषाकाल व प्रातःकाल के राग किये जा सकें तो विद्यार्थियों को गायन सीखना बहुत सुविधाजनक होगा। ऐसा करने से यद्यपि अनेक प्राचीन रूप काम में आयेंगे, कुछ के थोड़े नियम बदलेंगे और कुछ बिलकुल नवीन प्रकार ही प्रचार में आयेंगे, यह स्वीकार है, तथापि ऐसा प्रयत्न अनुचित व असंगत नहीं होगा। फिर ऐसे सभी रागों को उत्तम नियमों द्वारा व्यवस्थित कर दिया जाय तो फिर अपनी पद्धति को दोष कौन देगा? यह कार्य भावी संगीत पीढ़ी का है, इसलिये अभी हमें इस पर विशेष विचार करने की आवश्यकता नहीं परन्तु यह बात स्वयं ही प्रसंगवश आ गई, इसलिये मैंने इतना कहा। तथापि क्षितिज पर धीरे-धीरे अब उन्नति के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं, यह किसी भी मार्मिक से छिपा नहीं है। अच्छा, अब तुम अपनी तान आगे चलाओ न?

प्रश्न—हाँ, "सा, नि़ ध़, रे॒ नि़ प़, मं़ ग़, मं़ ध़ सा, नि़ रे॒ सा, नि़ रे॒ ग, रे॒ सा नि़ सा, सा रे॒ ध़ सा, नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, मं रे॒ ग, रे॒ ग, रे॒ सा, रे॒ नि़ प़, मं़ ग़, मं़ ध़ सा, नि़ रे॒ ग, रे॒ ग रे॒ सा" ऐसा चल सकता है क्या? तार सप्तक में जा नहीं सकते ऐसा आपने कहा था। इसलिये अन्तरा किस तरह से लेना होगा, वह कदाचित् हमसे नहीं सधेगा।

उत्तर—अन्तरा मैंने ऐसा सुना था:—

"सा, रे सा, प, प, मं ध प, प, मं ध मं ग, ग प, रे ग, मं ध मं ग, रे सा, नि सा रे सा। प प, मं ध प, मं ग, मं रे ग, नि रे ग, मं ध ग, रे ग, मं रे ग, रे सा, नि रे सा"।

प्रश्न—यह तानें कहीं-कहीं पूरिया-धनाश्री के अङ्ग की नहीं मालुम होतीं क्या ?

उत्तर—वे अवश्य वैसी लगेंगी। कोई-कोई तो स्पष्ट रूप से यह कहते हैं कि मालीगौरा राग में वह अङ्ग है। अतः उसमें पूरिया का भाग है, इसमें कोई संशय नहीं।

प्रश्न—तो फिर मालीगौरा गाते समय कुछ गड़बड़ी होनी सम्भव है ?

उत्तर—मैं समझता हूँ, यदि तीव्र धैवत लगने वाला मत हम स्वीकार करें तो कुछ घपला नहीं होगा और वैसा प्रचार भी है।

प्रश्न--वह रूप किस के समान लगेगा ?

उत्तर—वहां पंचम लगाकर गाया हुआ पूरिया सरीखा प्रकार दिखाई देगा। यदि पंचम केवल अवरोह में रक्खें तो अधिक खुलेगा। "सा नि, रे नि, प, मं ग, मं ध, रे सा, नि ध नि रे ग, मं ग नि रे सा।" यहां पर धैवत को देखो किस युक्ति से लगाया गया है। उसे ध्यान में रहने दो।

प्रश्न—"सा, नि ध, प" ऐसा सरल करने से कुछ-कुछ कल्याण आगे आना संभव है। मालुम होता है इसीलिये आपने यह बात कही।

उत्तर--तुम ठीक कह रहे हो। पूरिया का अङ्ग रखने में बड़ी खूबी है। अब देखो:—ग, प ग, रे सा, नि, ध नि, रे नि, प, मं ग, मं ध सा, नि रे सा, नि रे ग, रे सा, नि रे ग, मं रे ग नि रे सा, सा, प, प, मं ध ग, रे ग, मं ध मं ग, रे सा। यह रूप बहुत स्वतन्त्र है। चलन पूरिया का है, अवरोह में पंचम है। जेतकल्याण में रे तीव्र है, जेत में म नि वर्ज्य हैं। सम्पूर्ण प्रकार के जेत में मन्द्र स्थान कम हैं, पंचम आरोह में स्पष्ट है तथा "प ग" संगति विचित्र है। पूरिया व मारवा रागों में पंचम वर्जित है। गौरा का अन्तरा तार स्थान में कभी नहीं जाता, ऐसा नियम रखने की आवश्यकता नहीं। मारवा थाट के प्रकारों में तार षडज तक गये हुए अन्तरे मैंने स्वयं सुने हैं। मैं एक साधारण नियम कहता हूँ। गौरा में मन्द्र स्थान का उपयोग अच्छा दिखाई देता है, इसे कोई भी स्वीकार करेगा। कोई-कोई गायक इस राग में बीच-बीच में "प ध ग" यह छोटी सी तान खास तौर पर लेने का प्रयत्न करता है। इसका कारण वह बताता है कि इस थाट के रागों में यह एक महत्व की निशानी है। गौरा-राग में विभिन्न स्थानों पर विश्रान्ति लेने में तथा आवाज छोटी-बड़ी करने में सारी खूबी है। मैं जो यह भिन्न-भिन्न प्रकार कह रहा हूँ, उसका कारण इतना ही है कि वे तुम्हें बारम्बार दिखाई देने सम्भव हैं। तीव्र धैवत का प्रकार अच्छी तरह स्वतन्त्र होने के कारण उसे स्वीकार करने के लिये मैं तुमसे कहता हूँ। जो दोनों धैवत रखना पसंद करते हैं उन्हें एक आरोह में और दूसरा अवरोह में लगाना सुविधाजनक होगा। किन्तु इस नियम का पालन करना सरल कार्य नहीं है, यह मानना पड़ेगा।

प्रश्न—तो फिर वे कैसे करते होंगे ?

उत्तर—वे कुछ तानें तीव्र धैवत की लगाते हैं व कुछ कोमल धैवत की लेते हैं। वह एक निराला ही प्रकार होता है। अब यह मजेदार चलन तुम्हीं देखोः—

सा, रे सा, ध़ सा, नि़ रे ग, रे सा, रे प, प, मं प, ध प, मं ध ग, रे ग, मं ध मं ग, रे, सा; सा, रे नि़ ध़ प़, मं़ ग, मं़ ग, मं़ ध़ सा, नि़ रे, सा, नि़ रे ग रे, सा, रे नि़, प़, मं़ प़, मं़ ग, मं़ ध़, सा; सा सा, प, मं ध प, मं ग, ध मं ग, रे ग रे सा, नि़ रे सा; प, मं ग, प, ध ग, रे ग, मं ध मं ग, ग रे सा, नि़ रे सा। तीव्र ध लगाने वाले प्रकार का साधारण चलन ऐसा रहेगा देखोः—सा, नि़ रे सा, रे ग, मं ग, मं ग, नि़ रे सा, नि़ रे ग, मं रे ग, प ग, ध प ग, रे ग, रे, सा; नि़ नि़ रे नि़, प़, मं़ ग, मं ग, मं ध़ रे सा; रे प, प मं प, मं, ग रे ग, मं ध मं ग, प ग, रे ग, रे सा नि़ रे सा। तारषड्ज तक जो अन्तरा ले जाते हैं, वे ऐसा करते हैं:—ग, मं ध मं, सां, सां, नि, रें नि, प, प मं ग, नि मं ग, नि मं ग, रे ग, मं ध मं ग, रे सा। श्री अङ्ग से चलने वाले ऐसा करेंगेः—सा, रे सा, ग प, प, मं ध प, प मं ध प, ग, रे ग, रे ग प, मं ध मं ग, रे प, ग रे सा। किन्हीं गायकों के मत से गौरा में श्री व मारवा का मिश्रण है, वे अपना लक्ष्यः—'रे रे, ग रे सा, रे प मं ध प, प ध ग, रे ग, मं ध मं ग, ग रे सा' इस तान की ओर खींचते हैं। इस मालीगौरा राग में धैवत का परिमाण बढ़ने देना नहीं चाहिये। इस राग में विश्रान्ति स्थान सा, ग, प यह स्वर माने जाते हैं। गांधारान्त तानें पूरिया का अङ्ग देती हैं, पंचमांत तानें श्री अङ्ग प्रकट करती हैं और षड्जान्त तानें इन दोनों का सुन्दर योग करती हैं, ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिए।

प्र०—जो धैवत वर्ज्य मानते हैं, उनका प्रकार कैसा होता होगा ?

उ०—वैसा प्रकार तुम्हारी दृष्टि में क्वचित ही पड़ेगा। धैवत वर्जित करके गाना कठिन होगा, सो बात तो नहीं है। दक्षिण के किसी पण्डित से तुम ऐसी फ़रमाइश करोगे तो वह चाहे जितनी धैवत हीन सरगम बनाकर तुमको दिखा देगा। यही क्यों ? दक्षिण के एक तैलगू ग्रन्थ में 'हंस नारायणी' नाम का एक राग पूर्वी थाट में है, उसमें धैवत वर्ज्य है। धैवत वर्ज्य होने से क्षण भर के लिये वह मारवा थाट में माना जा सकता है, अपने यहां भी वह प्रकार मैंने सुना है।

प्र०—तो फिर हम समझ गये। यदि ऐसा है तो हम भी एकाध सरगम ऐसी बना सकते हैं, देखियेः—

नि़ रे ग मं। प मं ग रे। ग मं प ग। मं ग रे सा।
नि़ रे नि़ प़। ऽ मं़ ग़ ग़। नि़ रे ग मं। रे ग रे सा॥ इ०

फिर इस प्रकार का नाम 'हंसनारायणी' रक्खो अथवा कुछ और रखदो।

उ०—हां, तुम्हारा कहना यथार्थ है, परन्तु मेरी सम्मति में हम अभी नवीन राग चर्चा में जाने की जल्दी न करें तो अच्छा।

प्र०—माळीगौरा राग में वादी सम्वादी कौन से माने जाँयगे ?

उ०—वादी रिषभ मानेंगे और सम्वादी पंचम। इससे सायंगेयत्व सुन्दर रहेगा। अस्तु! अब हम इस राग के विषय में कुछ ग्रन्थ मत भी देख जाँय। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में 'मालीगौरा' नाम दिखाई नहीं पड़ता। रत्नाकर, दर्पण, रागविबोध, स्वरमेल-कलानिधि, सारामृत, चतुर्दण्डिप्रकाशिका, चन्द्रिका, समयसार, अनूपविलास आदि ग्रन्थों में 'गौरी' है किन्तु मालीगौरा नाम वहां बिलकुल दिखाई नहीं देता। गौरी एक स्वतंत्र प्रकार है, जिसे मैं तुमको सिखा चुका हूँ।

प्र०—आप 'मालवगौड़' इस नाम के विषय में बोल रहे थे?

उ०—हां, मैंने कहा था कि किसी किसी मत से 'मालवगौड़' नाम का अपभ्रंश ही 'मालीगौरा' है। दक्षिण के कुछ ग्रन्थकार मालवगौड़ को एक प्रसिद्ध थाट का नाम मानते हैं। अहोबल कहता है:—

अथ मालवगौलेऽस्मिन् गौरीमेलसमुद्भवे।
त्यक्तधे रिस्वरोद्ग्राहे न ह्यारोहे तु गस्वरः॥
आरोहे यदि गांधारः पादिर्मान्तो विधीयते॥

गौलः

गौलस्तु गधवर्ज्यः स्याद्गौरीमेलसमुद्भवः।

मालवः

रिधौ तु कोमलौ यत्र गनी तीव्रौ च मालवे।
षड्जावरोहणोद्ग्राहे सरिन्यासांशशोभिते॥

रागविबोधे:—

मालवगौडः पूर्णः प्रदोषशोभोऽथवा रहितः।
गांधारधैवताभ्यां निन्यासांशग्रहोऽथवा सान्तः॥

किन्तु हमें मालवगौड राग के लक्षणों को व्यर्थ ही एकत्रित करने से क्या लाभ? जो कोई 'मालीगौरा' अथवा 'गौरा' यह नाम स्तैमाल करेंगे वे ग्रन्थकार ही अपने काम में आयेंगे। रागतरङ्गिणी में ऐसा कहा है:—

देशी तोडी देशकारो गौरो रागेषु सत्तमः।
गौडी संस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः॥

प्र०--यहां 'गौर' नाम आया है व थाट भी ठीक है, किन्तु यह नाम गौरी का तो नहीं होगा?

उ०—तुम्हारी शंका यथार्थ है। परन्तु तुमको मैंने बताया ही था कि लोचन पण्डित अपनी गौरी को 'श्री गौरी' ऐसा स्वतन्त्र नाम देता है किन्तु यहां गौरः ऐसा पुल्लिङ्ग प्रयोग है। श्री गौरी उसने जिस श्लोक में कही है, वह ऐसा है:—

मालवः स्याद्गुणमयः श्रीगौरी च विशेषतः ।
चैत्री गौडी तथा प्रोक्ता पहाडीगौरिका पुनः ॥

यद्यपि नामों के लिंग विचार में विशेष सिद्धान्त नहीं होता क्योंकि कोई ऐसा भी कहता है कि 'गौरा' स्त्री लिङ्ग शब्द है। अतः हम लोचन पण्डित के गौरः को मालीगौरा मानकर चलें तो कोई हानि दिखाई नहीं देती। यह एक सायंगेय प्रकार है अर्थात इसमें मध्यम तीव्र ठीक रहेगा। धैवत का भी तीव्रत्व समझा जायगा। नादविनोद में जो गौरा का स्वरूप दिया है, वहाँ दोनों मध्यम लगते हैं, जैसे:—

सा नि॒ ध॒ नि॒, सा, ग रे॒ सा, रे॒ रे॒ प प, मं मं ग, रे॒ सा, रे॒ प, प ध॒, सा, नि॒ रे॒ ग रे॒ सा, रे॒ रे॒ सा। यह स्थाई का भाग चल सकता है। यहां धैवत कोमल लगाया है, किन्तु यह मतभेद मैं तुमको पहिले बता चुका हूँ। आगे अन्तरा देखोः—रे॒ रे॒ रे॒ प प, प प, ध॒ प, म म, प, ग रे॒ रे॒ रे॒, मं ध॒ प मं, मं मं मं, ग, रे॒ रे॒ सा। यहां कोमल मध्यम का ऐसा प्रयोग हमें पसन्द नहीं है।

प्र०—यह आधार कल्पद्रुम का है?

उ०—उसका शास्त्र ही वह है। कल्पद्रुम में ऐसा हैः—

गौरद्युतिः कांचनचारुदेहा
सौंदर्यलावण्यकलायताची ॥
वीणां दधाना सुरपुष्पगंधी
गौरा च प्रोक्ता सुकुतूहलेन ॥

मालवागौरिसंयुक्ता श्रीरागो मिश्रितः पुनः।
गौरा ह्युत्पद्यते यत्र दिनान्ते गानमिश्रिता ॥
धैवतांशग्रहन्यासा संपूर्णा जायते स्वरैः ।
संध्याकाले प्रगातव्या श्रीरागस्य वरांगना ॥

उदाहरण—ध नि सा ग रे म प ध सा नि ध प। म म प सा ग रे सा ध नि नि ध प। गीत सूत्रसार में मालीगौरा में कोमल रिषभ व तीव्र मध्यम लगाने को कहा है। सङ्गीतसारकर्त्ता चेत्रमोहन स्वामी उसका थाट मारवा मानते हैं और विस्तार इस तरह करते हैं—

नि॒ सा नि रे॒ ग प ध प, सा रे॒ ग ध प मं ग, सा रे॒ सा, नि॒ सा नि॒ रे॒ सा, प॒ नि॒ ध॒ प, मं प मं ध॒ सा, सा, नि॒ सा। नि॒ रे॒ ग, ध प मं ग, सा रे॒ सा नि॒, सा रे॒ सा। इ०।

सुरतरंगिणीः—

गौर और सोरठ मिले, मालीगौर सुनाइ।

Capt. Willard कहते हैं कि मालीगौरा के अवयव "गौरी व सोरठ" हैं।

प्र०- मालुम होता है सोरठ में तीव्र धैवत लिया है ?

उ०--यह मैं कैसे कह सकता हूं भला ! कदाचित् वह भैरव थाट का 'सौराष्ट्र' राग होगा। सौराष्ट्रटंक मैंने तुमको बताया ही था, वह तुम्हें याद होगा। 'नगमाते आसफी' के ग्रन्थकार ने गौरा में मध्यम व धैवत तीव्र माने हैं, और राग का एकत्र रूप श्री राग के समान होता है, ऐसा कहा है। उसका यह कथन मुझे ठीक मालुम देता है। "नि़ सा रे॒ ग मं प" इन स्वरों से उत्पन्न होने वाली अनेक तानों में श्रीराग का अङ्ग सहज में ही दिखाया जा सकता है। आगे धैवत तीव्र रखकर "रे॒ रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, ग रे, मं ग रे॒, सा, रे॒ प प, मं ध ग, रे॒ ग, मं ध मं ग, रे॒ ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, रे॒ नि़, प़ मं़ ग़, मं़ रे॒ सा" ऐसा किया जाय तो श्री व पूरिया मिले हुए दिखाई देंगे।

प्र०--हां, ऐसा होना सम्भव है। अच्छा, अब हमें प्रचलित मालीगौरा का आधार बताइये ?

उ०--हां, सुनो--(लक्ष्यसङ्गीते)।

मारवामेलजन्योक्ता मालीगौरा मनीषिभिः।
संपूर्णा रिग्रहांशासौ संध्याकालोचिता सदा ॥
पूरियाश्रीमिश्रणेन रूपमेतत्समुद्भवेत्
मंद्रमध्यस्वरैरेषा प्रायो लक्ष्ये समीक्षिता ॥

आगे चलकर ग्रन्थकार ने उन विभिन्न मत भेदों का उल्लेख किया है, जो प्रचार में दिखाई देने सम्भव हैं एवं जो इतर ग्रन्थों में कहे गये हैं, उनके वे श्लोक पहिले मैं कह चुका हूं। इस ग्रन्थकार का यह मत हमें लक्ष्य में रखना चाहिये कि पूरिया और श्रीराग, इन दोनों के मिश्रण से यह प्रकार उत्पन्न होता है।

राग कल्पद्रुमांकुरे:—

मालीगौरःपरमरुचिरो मारुसंस्थानजन्यः
संपूर्णोऽसाविह किल रिपौ वादिसंवादिनौ रतः।
श्रीसंमिश्रो विलसति सदा पूरियामिश्रितश्च
सायं गीतो मधुरनिनदैर्मन्द्रमध्यप्रचारः ॥

चंद्रिकासार:—

गमधनि तीखे मृदुरिखव पंचमसुरहुँ लगाय।
रिप वादीसंवादितें मालीगौरा गाय ॥

प्रश्न—इस राग की एकाध सरगम बतादें तो बड़ी कृपा हो।

उत्तर—बताता हूं, लो—(कोमल धैवत लगने वाला प्रकार)

मालीगौरा—शूलताल

रे॒ रे॒ । सा ऽ । नि़ ध़॒ । रे॒ नि़ । प़ ऽ ।
×
म़॑ म़॑ । ग़ ग़ । म़॑ ध़॒ । सा ऽ । रे॒ सा ।
रे॒ रे॒ । प प । म॑ म॑ । प ध॒ । म॑ ग ।
रे॒ ग । म॑ ध॒ । ग म॑ । ग रे॒ । सा ऽ ॥

अन्तरा—

प म॑ । ग रे॒ । ग प । ऽ म॑ । ध॒ प ।
प म॑ । ध॒ प । म॑ ग । म॑ रे॒ । ग ग ।
रे॒ ग । म॑ ध॒ । ग म॑ । ग रे॒ । सा ऽ ॥

दूसरा प्रकार—त्रिताल (तीव्र ध लगने वाला)

रे॒ रे॒ सा ऽ । नि़ ध़ रे॒ नि़ । प़ ऽ ऽ ऽ । म़॑ म़॑ ग़ ग़ ।
० ×
म़॑ म़॑ ग़ ग़ । म़॑ ध़ सा ऽ । सा ऽ सा ऽ । रे॒ रे॒ सा ऽ ॥
सा रे॒ सा ऽ । नि़ ध़ नि़ ऽ । रे॒ ग ऽ प । ग रे॒ सा ऽ ॥

अन्तरा—

प म॑ ग ग । म॑ म॑ ध म॑ । सां ऽ सां ऽ । नि रें॒ सां ऽ ।
० ×
सां ऽ सां ऽ । नि ध रें॒ नि । प ऽ ऽ ऽ । म॑ म॑ ग ग ।
नि नि म॑ म॑ । ग ग म॑ ग । रे॒ ग ऽ म॑ । ग रे॒ सा ऽ ।
सा सा नि़ नि़ । रे॒ रे॒ ग ग । रे॒ ग ऽ प । ग रे॒ सा ऽ ॥

मालीगौरा का विस्तार मैं पहिले ही करके दिखा चुका हूं। यह राग गाते समय जगह ब जगह 'रे॒ नि़ प', 'रें॒ नि प', 'म॑ ध ग', 'नि़ ध़ नि़', 'रे॒ प प', 'म॑ रे॒ ग', 'ध म॑ ग' यह स्वरसमुदाय गायक तुमको दिखायेंगे। इनकी सहायता से तुम्हें राग निर्णय करने में सुविधा होगी। यह राग पूरिया, मारवा और जैत से बिलकुल भिन्न है, यह तथ्य तुमको भली प्रकार से समझ लेना चाहिए।

प्र०—मालीगौरा राग हम समझ गये, अब आगे का राग आरम्भ करिये ?

———

राग बराटी

उ०—अब हम "वराटी" लेते हैं। यह राग अप्रसिद्ध प्रकारों में से एक समझा जाता है। इसीलिये इसे सुनने का संयोग क्वचित ही प्राप्त होता है। बड़े-बड़े प्रसिद्ध गायकों के संग्रह में इस राग का एकाध दूसरा गीत अवश्य होता है किन्तु उसे वे बारम्बार नहीं गाते। अपने संस्कृत ग्रन्थकार भी वराटी नाम का उपयोग करते हैं। एक दो जगह 'बराडी' यह नाम भी मेरी नजर में आया है। अपने गायक "वराडी" अथवा "बरारी" नाम बरतते हैं। दक्षिणी की ओर 'वराली' ऐसा नाम प्रचलित है। उधर गौड़ को गौल कहते हैं, उसे तुम जानते ही हो। वराटी राग अप्रसिद्ध होने से उसके स्वरूप के विषय में कुछ मतभेद दिखाई दें तो आश्चर्य नहीं। मारवा थाट में पूरिया और मारवा के अतिरिक्त सायंगेय प्रकार साधारण गायकों को आते ही नहीं, ऐसा कहा जाय तो अनुचित न होगा।

प्रश्न—वहां पर तीव्र धैवत बड़ी असुविधा उत्पन्न करता होगा?

उत्तर—यह बात कुछ अंश में ठीक है। इस तरह से सम्पूर्ण प्रकार होने पर गायकों की अड़चन अधिक बढ़ जाती है, उस तीव्र धैवत को अच्छी तरह चमकदार करके बैठाने में बड़ी कुशलता की आवश्यकता होती है, जो सब के लिये संभव नहीं है।

प्रश्न—तो फिर ऐसे रागों की फरमाइश यदि कोई कर बैठे तो गायक क्या करते होंगे?

उत्तर—बुद्धिमान और धूर्त तो प्रायः सभी जगह होते हैं राग सन्ध्याकाल का है, इतना तो उन्हें मालुम ही होता है अतः वे धीरे-धीरे पूर्वी के समान कुछ काम दिखाकर बीच-बीच में दुहरे स्वर लगाते जाते हैं। यह देखकर श्रोतागण स्वयंमेव गड़बड़ी में पड़ जाते हैं। वैसे भी अभाग्यवश आजकल उच्चकोटि का गायन वही समझा जाता है जोकि दुर्बोध हो, पर सभी गायक ऐसा गोलमाल करते हैं सो मैं नहीं कहता। मैंने तो अपना एक साधारण अनुभव तुमसे कहा है। योग्य अधिकारी गायकों को भी मैंने खूब सुना है और उनके लिये मेरे हृदय में बड़ा आदर भाव है।

प्र०—और यदि श्रोताओं में से कोई गवैया निकल पड़ा तो उसके आगे ऐसा गोलमाल कैसे चल सकता है?

उ०—मजा तो यह है कि गायकों को पढ़े-लिखे श्रोताओं से जितना डर लगता है उतना उन गवैयों से वे नहीं डरते।

प्र०—क्योंकि उनका वह शीशे का महल है, सम्भवतः इसी कारण डरते होंगे?

उ०—कारण चाहे जो हो, मैंने तो वस्तुस्थिति कही है। वराडी राग मैंने भिन्न-भिन्न प्रकार से गाया हुआ सुना है और उसमें ध्यान देने योग्य कुछ बातें भी मैंने नोट की हैं।

प्र०—वह कौनसी?

उ०--बताता हूँ सुनो। अनेक गायक इस राग का रूप सायंगेयत्व और सन्धि-प्रकाश स्वीकार करते हुए दिखाई दिये। बहुतों को तीव्र मध्यम का प्रयोग उचित मालुम पड़ा। पूर्वाङ्ग वैचित्र्य सावधानी से संभालने का प्रयत्न प्रत्येक गायक में पाया गया। पूर्वाङ्ग की मर्यादा पंचम तक पहुँचने में है, यह मैंने तुम्हें बताया ही है। वराटी में 'प ध ग' यह विलक्षण रागवाचक टुकड़ा कई गायकों द्वारा लिया जाता है।

प्र०—यह टुकड़ा धैवत का अनिष्ट परिणाम हटाने के लिये बहुत उपयोगी प्रतीत होता है, इसे लगाकर फिर सायंगेय तानें ली जावें तो राग रूप अच्छा खुलेगा, इसमें संशय नहीं।

उ०—ठीक है। यह टुकड़ा लगाकर आगे पंचम पर पहुंच कर अधिक नहीं ठहरना है जैसे:--'प, ध ग, प' ऐसा करने से श्रोताओं को देशकार जैसे किसी प्रातर्गेय राग का आभास होगा। यह 'प ध ग' टुकड़ा हमें जेत, मालीगौरा आदि रागों में भी मिला था और उसे वहाँ बड़ी युक्ति से लगाना पड़ा था, यह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। हम जो वराटी प्रकार गाने वाले हैं वह लक्ष्यसङ्गीत के मत से अच्छी तरह मिलता है। मेरे गुरू जी भी वराटी ऐसे ही गाते थे। वराटी में से 'सां, ध प' यह प्रातर्गेय तान टालनी चाहिये। अवरोह में यद्यपि धैवत है, तो भी ऐसी तानों से राग के सायंगेयत्व को हानि पहुंचनी सम्भव है, इसीलिये गायक उसे नहीं लगाते। वराटी राग विभास का सायंगेय जवाब है, ऐसा भी कुछ गवैये कहते हैं।

प्र०—यानी मारवा थाट का विभास ?

उ०—हाँ, वह राग मैंने अभी तुमको नहीं बताया। वराटी का चलन यद्यपि कुछ-कुछ ऐसा ही है तथापि विभास में उत्तराङ्ग बहुत ही प्रबल और विचित्र है। कोई-कोई गायक वराटी में धैवत कोमल लगाने को कहते हैं परन्तु वह हमें ग्राह्य नहीं है। यहाँ एक बात यह भी कहे देता हूं कि वराटी और शुद्ध वराटी यह दो भिन्न राग मानकर हम चलने वाले हैं। संस्कृत ग्रन्थों में वराटी के अनेक भेद कहे हैं। सम्भवतः मैंने वे तुम्हें बताये भी थे। भावभट्ट कहता है:—

आद्या शुद्धवराटी स्याद्द्वितीया कौंतली मता।
तृतीया द्राविडी प्रोक्ता चतुथा सैंधवी मता॥
अपस्वरा पंचमीस्यात् षष्ठी हतस्वरा पुनः।
प्रतापाद्या सप्तमी स्यादष्टमी तोडिकादिका॥
नागवराटी नवमी पुन्नागा दशमी मता।
एकादशी तु शोकाद्या कल्याणी द्वादशी मता॥

इनमें से प्रचार में आये हुए हमें एक-दो ही मिलेंगे। अहोबल ने वराटी के ८ प्रकार कहे हैं। और उनके स्वर ऐसे दिये हैं:—

१ वराटी—सा रे॒ ग म॑ प ध॒ नि सां।

२ शुद्धवराटी--सा रे॒ रे म॑ प ध॒ नि सां।

३ तोडीवराटी—सा रे॒ ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां।

४ नागवराटी--सा रे ग॒ म॑ प ध॒ नि॒ सां।

५ पुन्नागवराटी--सा रे ग॒ म॑ प ध नि सां।

६ प्रतापवराटी--सा रे ग॒ म॑ प ध नि सां।

७ शोकवराटी--सा रे॒ रे म॑ प ध॒ नि॒ सां।

८ कल्याणवराटी--सा रे ग म॑ प ध नि सां।

प्र०--हम जो वराटी गाने वाले हैं, उसका स्वरूप भी हमें बतायेंगे क्या?

उ०--हां, वह ऐसा है:—

प, ध ग प ध, म॑ ध म॑ ग, प ग, रे॒ सा, सा, रे॒ ग, म॑ ग, रे॒ सा, नि़, रे॒ ग, रे॒, म॑ ग, रे॒ सा, नि़, रे॒ ग, प ग, प, ध म॑ ग, सा, प ध म॑ ग, रे॒ ग म॑ ध म॑ ग, प ध ग, रे॒ ग, म॑ ग, रे॒ सा।

इसमें मैं कहाँ-कहाँ किस प्रकार से रुका हूँ, वह देखा?

प्र०—तो फिर इस राग में विस्तार करते हुए—नि़ सा, नि़ रे॒ ग रे॒ सा, नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, म॑ ग, ध म॑ ग, प ध ग, रे॒ ग, म॑ ध म॑ ग, रे॒ सा। ऐसी तान हम लें तो चल सकती है?

उ०--मैं समझता हूँ, इससे कोई हानि नहीं होगी। उत्तराङ्ग में कुछ सावधानी रखनी होगी। इस राग में अच्छी तरह पूर्वी का रङ्ग ले आवो, तो मालीगौरा अलग करने में सुविधा होगी।

प्र०--ठीक है, क्योंकि गान्धार स्वर वादी है। यहां भी 'सां नि ध प' ऐसी सरल तान विशेष मधुर नहीं लगेगी ठीक है न?

उ०--तुम्हारा कथन यथार्थ है। इस राग में वैसी तान अच्छी नहीं लगेगी, वह श्रोताओं के सामने फौरन ही कल्याण की छाया उत्पन्न कर देगी। वराटी में तार स्थान तक गायक खुशी से जा सकता है किन्तु मालीगौरा में ऐसा करना बहुत से व्यक्ति पसन्द नहीं करेंगे। वराटी में आरोह का निषाद दुर्बल है।

प्र०--तो फिर यह कहना चाहिये कि किसी सीमा तक मालवी जैसा कृत्य इस राग में किया जायगा, क्योंकि जब आरोह में निषाद नहीं रहेगा और अवरोह में 'सां नि ध प' ऐसी तान भी नहीं चलेगी तो फिर थोड़ा बहुत वैसा ही हुआ कि नहीं?

उ०—सुविधा की दृष्टि से ऐसा समझ कर चलें तो कोई हानि नहीं दिखाई देती। अवरोह में 'नि प' सङ्गति वराटी में बहुत सुन्दर है। ऐसा मालवी में नहीं है। वहां 'नि म' की सङ्गति सुन्दर दिखाई देती है। वराटी में 'प ध ग' तथा 'रें नि प' यह दो टुकड़े श्रोताओं का ध्यान तुरन्त ही आकर्षित करते हैं। मालवी में ध कोमल है।

प्र०--वराटी का अन्तरा कैसे उठता है ?

उ०--उसे मैंने सुना है:--प, प ध सां, सां, सां रें सां, सां रें नि, प, प ध ग, प मं ध मं ग, रे ग, रे सा, इत्यादि तुम मेरे साथ-साथ 'प ध ग, प ध, मं ध मं ग, प ग, रे सा' यह स्वर बारम्बार कहो तो इस राग की विशेषता तुमको भली प्रकार साध्य होगी। मालीगौरा में 'प ध सां, सां, रें सां' इस प्रकार हम नहीं करते, यह ध्यान में आया ही होगा। वराटी में गान्धार और धैवत के साथ मध्यम व पंचम बारम्बार जोड़ देने में सारी खूबी है। नि रे ग, रे ग, मं ग, प ग, प ध मं ग, रे ग, मं ध मं ग, ग रे सा। रे ग, प, प ध ग, मं ध, सां, रें नि प, प ध, मं ग, प ग, रे सा, सा रे ग रे सा, रे ग रे सा, प मं ध मं ग, सां, नि प, मं ध मं ग, प, ध ग, रे ग, मं ध मं ग, मं ग, रे सा। इस प्रकार में जैत अथवा मालीगौरा दिखाई नहीं देगा। उत्तर की ओर एक बीनकार मुझे मिले थे, उन्होंने कहा था कि हम वराटी में पंचम वर्ज्य करते हैं।

प्र०--परन्तु फिर पूरिया और मारवा यह राग पास-पास आने लगेंगे सो ?

उ०--यह प्रश्न मैंने उनसे उसी समय किया, इसका उन्होंने ऐसा उत्तर दिया कि ये सब राग भिन्न-भिन्न श्रुतियों के माने जाँय तो विसङ्गति न होगी।

प्र०--भिन्न श्रुति वे कैसी-कैसी मानते थे ?

उ०--उन्होंने कहा, हम इन रागों की श्रुतियां इस प्रकार मानते हैं:--

वराटी-रे कोमल, ग तीव्रतम, म तीव्र, ध शुद्ध, नि तीव्र।

मारवा-रे कोमल, ग तीव्र, म तीव्र, ध शुद्ध, नि तीव्रतर।

पूरिया-रे कोमल, ग तीव्र, म तीव्र, ध तीव्र, नि तीव्रतर।

प्र०--किन्तु ऐसा मानने का आधार क्या है ?

उ०--आधार है स्वर्गवासी पिता और सुपुत्र जी के हाथ व कान। क्या यह स्थिति अपनी देखी भाली नहीं है ? आधार की आवश्यकता अब अगली पीढ़ियों को महसूस होगी, इसमें सन्देह नहीं और उस समय सम्पूर्ण आधार उपलब्ध भी होंगे, ऐसा मैं पहिले कह भी चुका हूँ।

प्र०--मालीगौरा के विषय में आपने उस बीनकार से कुछ पूछताछ नहीं की ?

उ०--उस पर भी विचार हुआ था। वे बोले--हम मालीगौरा में धैवत तीव्र लगाते हैं और दोनों मध्यम स्वीकार करते हैं, हम उनके मत का तिरस्कार कदापि नहीं करेंगे, जो हमें पसन्द आयेगा उसे ग्रहण करेंगे, शेष को अपने संग्रह में रखेंगे।

प्र०--अच्छा, पूर्वी की ओर वराटी के स्वरूप के विषय में कैसे विचार प्रचलित हैं ?

उत्तर--गीतसूत्रसार के लेखक बनर्जी के मतानुसार वराटी में रे ध कोमल और म तीव्र है तथा यह राग सम्पूर्ण है।

प्रश्न—क्षेत्रमोहन स्वामी वराटी में कौन से स्वर मानते हैं ?

उत्तर—वे भी वराटी को सम्पूर्ण मानते हैं। स्वामी जी उसके स्वर इस प्रकार बताते हैं:—

नि़ सा नि़ सा, सा रे प मं ग सा रे सा सा सा सा रे प प मं प ध मं ग सा रे ग रे सा। अस्ताई।

ग मं ध सां नि सां नि सां सां सां रें गं रें रें सां नि सां, प नि ध प, नि सां, प नि ध प, ग प मं ग, प मं ग, प मं ग, सा रे ग रे सा। अन्तरा।

मैंने उस ओर प्रवास किया था, किन्तु मुझे वराटी किसी ने गाकर नहीं दिखाई। मैं जहाँ भी गया वहां मुझे ऐसा मालुम हुआ कि उस समय कोई प्रसिद्ध गायक वहां उपस्थित ही नहीं थे। खैर इस बात को छोड़ो, अब हम कुछ ग्रन्थों के मत देखें:—
संगीत पारिजाते:—

रिकोमला गतीव्रा या कोमलीकृतधैवता।
निना तीव्रेण संयुक्ता वराटी धैवतादिका॥
मतीव्रतरसंपन्नांदोलनेन मनोहरा॥

शुद्ध वराटी में पं० अहोबल दोनों रिषभ लगाता है, ऐसा मैंने पहिले कहा भी है। वह शुद्ध वराटी के वर्णन में "पूर्व ग" यह नाम लिखता है, जो कि अपना तीव्र रिषभ प्रसिद्ध ही है।

प्रश्न—हां, खूब याद आई। इस तरह दोनों रिषभ एक के बाद एक भी कभी-कभी लगाये जाते हैं क्या ?

उत्तर—अहोबल ने अपने शुद्ध वराटी का स्वर स्वरूप स्वतः ऐसा दिया है। पहिले उसके लक्षण कहकर फिर स्वरूप बताये हैं:—

अथ शुद्धवराट्यां तु रिगौ कोमलपूर्वकौ।
मस्तु तीव्रतरो धः स्यात् कोमलस्तीव्रनिः स्वरः॥

प्रश्न—इसमें पूर्व ग कहा है, वह अपना तीव्र रिषभ ही तो है ?

उत्तर—हां, अब इसका स्वरूप देखो:—

ध ध नि सा रे ग म प म ग रे सा नि ध प नि सा। रे ग ग रे सा रे सा रे ग म ग रे सा इत्यादि। इसके द्वारा तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तुम्हें स्वयं ही मिल सकता है। यद्यपि ऐसे प्रयोग दक्षिण की ओर आज भी दिखाई देंगे किन्तु उन्हें हम उच्चकोटि के राग नहीं मान सकते। दोनों निषाद और दोनों मध्यम अपने हिन्दुस्थानी गायकों द्वारा साथ-साथ जोड़ते हुए हम देखते ही हैं। किन्तु रागों का केवल आरोह-अवरोह करते समय ऐसे स्वर नहीं जोड़े जाते। अस्तु, शार्ङ्गदेव पंडित ने अपने उपांग रागों में वराटी के प्रकार ऐसे कहे हैं:—

१–कुन्तल वराटी, २-द्राविड़ी वराटी, ३–सैंधवी वराटी ४–अपस्थान वराटी, ५–हतस्वर वराटी, ६–प्रताप वराटी और ७–शुद्ध वराटी।

प्र०—इनमें से कुछ नाम अहोबल ने अपने ग्रन्थ में रखे हैं और उनके स्वर भी दिये हैं। तो फिर रत्नाकर में वर्णित राग प्रकारों को समझने के लिये अहोबल के ग्रन्थ से कुछ सहायता नहीं ली जा सकती है क्या ?

उ०—उसे देखना दूसरों का काम है। सौवीर नामक ग्राम–राग की जो भाषा (भार्या) सौवीरी है, उसमें से शुद्ध वराटी उत्पन्न हुई है, ऐसा शार्ङ्गदेव ने कहा है। वह लिखता है:—

षड्जमध्यमया सृष्टः सौवीरः काकलीयुतः।
गाल्पः षड्जग्रहन्यासांशकः षड्जादिमूर्छनः॥
× × ×
सौवीरी तद्भवा मूलभाषा बहुलमध्यमा।
षड्जाद्यंताऽत्र संवादः सधयो रिधयोरपि॥
तज्जा वराटिका सैव चटुको धनिपाधिका।
सन्यासांशग्रहा तारसधा शांते नियुज्यते॥

वाराटी के उपांग "स्युर्वराट्या उपांगानि सन्यासांशग्रहाणि षट्। इत्यादि जो वहां कहे गये हैं, उन्हें फिर से यहां कहने की आवश्यकता नहीं। उसे वर्णन करते समय शार्ङ्गदेव ने "भूरि, बहुल, उरु" यह शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये हैं, इस बात को ध्यान में रक्खो। पंडित रामामात्य ने शुद्ध वराटी व कुन्तल वराटी ये दो प्रकार कहे हैं–

१–शुद्ध वराटी—सा, रे कोमल, रे तीव्र, म तीव्र, प, ध कोमल, नी तीव्र।

२–कुन्तल वराटी–सा, रे तीव्र, ग तीव्र, म, प, ध तीव्र, नी तीव्र। किसी–किसी ग्रन्थकार ने तो रत्नाकर की बिल्कुल नकल ही कर डाली है और किसी ने शार्ङ्गदेव के सब लेख अपने श्लोकों में निबद्ध कर डाले हैं, किन्तु उनमें रागों के थाट व स्वरूप न होने के कारण उनका वह वर्णन आज निरुपयोगी हो गया है। देखोः—

धांशा षड्जग्रहन्यासा धतारा मंद्रमध्यमा।
समशेषस्वरा पूर्णा शृङ्गारे याष्टिकोदिता॥
भाषा स्यात् सैंधवी नाम जाता मालवकौशिकात्।
तदंगं गायकैर्ज्ञेया सैंधवीयं वराटिका॥
षड्जांशन्याससंयुक्ता ममंद्रा सधकंपिता।
गांधारबहुला तज्ज्ञैः शृङ्गारे विनियुज्यते॥
निषादबहुला पूर्णा षड्जमंद्रा च ताडिता।
पूर्वोक्त विनियोगे च स्यात् कुन्तलवराटिका॥

मनिधेषु भवेन्मंद्रा षड्जांशन्यासराजिता ।
परिपूर्णपरैः सर्वैरपस्थानवराटिका ॥
कंपिता पंचमे षड्जे धमंद्रा भूरिपंचमा ।
षड्जांशन्याससंपन्ना स्यात् प्रतापवराटिका ॥
मंद्रधैवतसंयुक्ता पंचमाहतकंपिता ।
षड्जन्याससमुत्पन्ना हतस्वरवराटिका ॥
ऋषभे स्फुरिता भूरिनिमंद्रेण विराजिता ।
षड्जांशन्याससंयुक्ता द्राविडीयं वराटिका ॥

इस ग्रन्थकार ने अपने स्वर, मेल व जन्यराग वगैरह का जब कुछ स्पष्टीकरण ही नहीं किया तो पाठकों का समाधान कैसे होगा? स्वरों के बिना राग रूप कैसे निश्चित होगा? समाज द्वारा ऐसे लेखकों को मान्यता कैसे दी जा सकेगी? उनका "चतुश्चतुश्चतुश्चैव ····" आदि श्रुति विवरण तथा कहीं नकल करके उतारा हुआ पिंडोत्पत्ति व नादोत्पत्ति का विवरण उन्हें अवश्य चाहिए। लेकिन ऐसे लेखकों पर हमें क्रोध करने से क्या लाभ? संभवतः भविष्य में कुछ नवीन ग्रन्थ उपलब्ध होंगे और ये दुर्बोध दिखाई देने वाले भाग सुबोध होंगे, यह कहकर इस विषय को छोड़ देता हूं। राग विबोधेः—

शुद्धवराटीमेले साधारणतीव्रतममृदुसाः स्युः
शुच्यथसरिपधमस्माद्भवंति राग वराट्याद्याः ॥
शुद्धवराटी पूर्णा सांशांता रिग्रहाच मध्यान्हे ॥

तुम पूछोगे कि वराटी और शुद्ध वराटी राग यदि भिन्न हैं तो फिर शुद्ध वराटी पर ग्रन्थ मत कैसा? यह ठीक है, मैं भी उसे अधिक महत्व नहीं देता। बस एक-दो ग्रन्थ मत और देखलें, इनका उपयोग ग्रन्थों की एक वाक्यता सिद्ध करने के लिये कभी-कभी होता है। पुण्डरीक अपने "चन्द्रोदय" में कहता है:—

शुद्धौ सरी शुद्धगपंचमौ चे—
तथोज्वलो धैवतनामधेयः ॥
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ च
मेलस्तदा शुद्धवराटिकायाः ॥

इस वर्णन में रामामात्य व अहोवल के वर्णनों से बहुत कुछ साम्यता दिखाई देगी, ऐसा जान पड़ता है।

रागमालायाम्:—

भूपाली च वराटी च तोडी प्रथममंजरी ।
तुरुष्कतोडिका चेति हिंदोलस्य हि नारिकाः ॥

स्वागारे स्वेच्छया या मृदुतरवचनैः क्रीडिता बालिपुंजैः ।
चित्रं वस्त्रं दधाना कुसुमसुकबरी चामरैर्वीज्यमाना ॥
नानाशृङ्गारयुक्ता मदनसहचरी कोमलांगी सुगौरा ।
सायं पूर्णा त्रिपड्जा ब्रनलगतिगनी राजते सा बराली ॥

यह भैरव थाट का प्रकार दिखाई देता है। सायंगेय होने से इसमें तीव्र म ठीक ही लिया गया है। कोई शुद्ध म कहेंगे, कोई दोनों म लगायेंगे यह विचारणीय होगा।

सङ्गीतदर्पणेः—

षड्जग्रहांशकन्यासा वराटी कथिता बुधैः ।
प्रथमा मूर्छना ज्ञेया संपूर्णा कीर्तिवर्धिनी ॥
विनोदयंती दयितं सुकेशी सुकंकणा चामरचालनेन ।
कर्णे दधाना सुरवृक्षपुष्पं वरांगनेयं कथिता वराटी ॥

Capt. willard का कहना है कि वराटी में देशकार, तोड़ी और त्रिवण इन रागों का मिश्रण है। सुरतङ्गिणी में ऐसा भी कहा है:—

देशकार तोडी त्रिवण मिले बरारी होइ ॥ सुरतरंगिणी ॥

तुम्हें आवश्यकता हो तो उसमें बरारी का चित्रण भी मिलेगा:—

चतुराईसें चोरी कर कंकन कर झमकार ।
बिथुरी सिपुरी अलकशिर चित चोरत परकार ॥
झलके अङ्गोंअङ्गसे कानन फूल विचित्र ।
ललचावे लखि चित्तकों बैराटीको चित्र ॥

मालुम होता है कि इनायत खां साहेब ने अपने रागाध्याय के २ भाग किये हैं। एक में रागों का 'मिलाप' कहा है और दूसरे में उन सब के मूर्तिरूप बताये हैं। किन्तु केवल इतनी ही सामग्री से विद्यार्थियों को सन्तोष होगा, यह बात कोई स्वीकार नहीं करेगा। स्वराध्याय में 'रत्नाकर' के सम्पूर्ण स्वराध्याय का हिन्दी भाषान्तर दे दिया है। ऐसा उन्होंने किस हेतु किया? यह प्रश्न यहां कुछ महत्व नहीं रखता।

प्र०—तो इन्होंने भी विश्वनाथ पंडित और प्रतापसिंह के समान ही कार्य किया है?

उ०—विश्वनाथ पंडित ने केवल 'रत्नाकर' का ही भाषान्तर किया है, उसने व्यर्थ का रागाध्याय कहीं से लेकर उसमें सम्मिलित नहीं किया। इतना ही अन्तर है। प्रतापसिंह का तो और भी तीसरा पंथ हुआ है।

प्र०—सङ्गीतसार में बराटी कैसी बताई है ?

उ०—वह इस प्रकार है:—गोरो जाको रङ्ग है। सुन्दर शरीर है। हाथन में कंकण पहरे है। और अपने पती के ऊपर चंवर ढुलावत है। सुन्दर जाके केश हैं। कल्पवृक्ष के फूल कानन में पहरे है शास्त्र में तो यह सात स्वरनसों गाई है। सा रे ग म प ध नि सां। याको दिन के दूसरे पेहरे की घड़ी बाकी रहे जब गावनी।

प्र०—इस वर्णन में दर्पण के श्लोक का भाषान्तर दिखाई नहीं देता क्या ?

उ०—वह तो ग्रन्थकार स्वतः ही स्वीकार करता है। क्योंकि उसने आगे चलकर ऐसा कहा भी है:—"सङ्गीतदर्पणसें ग्रहांशन्यास षड्ज" इस वाक्य का अर्थ वे क्या लगाते होंगे यह भगवान जाने। बराटी की आलापचारी उस ग्रन्थ में ऐसी कही है:— सा प रे॒ ग रे॒ सा रे॒ सा। नि रे॒ ग रे॒ प ग। प ध॒ म ग रे॒ सा। ऐसा प्रकार अपने सुनने में तो आया नहीं।

प्र०—अब हमको प्रचलित स्वरूप का आधार बताइये ?

उ०—हां, अब ऐसा ही करता हूं:—

मारवामेलके प्रोक्ता बराटी बुधसंमता ।
आरोहेऽप्यवरोहे च संपूर्णा परिकीर्तिता ॥
गांधरोंगीकृतो वादी धैवतोऽमात्यसंनिभः ।
सांदोलनं मतं गानं प्रदोषे सुखदं नृणाम् ॥
प्राचुर्यान्मारवांगस्य क्वचित्तच्छंकनं भवेत् ।
मारवायांतु पोनत्वमतस्तस्याः स्फुटा भिदा ॥
केचिदुपदिशंत्यत्र कोमलत्वं तु धैवते ।
वादित्वमपि तत्रस्थं न तद्भाति सुसंगतम् ॥
गपयोः संगतिं केचिन्निर्दिशंति विचक्षणाः ।
न तद्दोषास्पदं भूयाद्दौर्बल्यान्मध्यमस्य च ॥लक्ष्यसङ्गीते॥

इस श्लोक में कही हुई बहुत कुछ बातें मैं तुम्हें बता ही चुका हूँ। यद्यपि यह राग सम्पूर्ण है, तथापि इसमें मध्य सप्तक में निषाद का प्रयोग अत्यन्त मर्यादित होता है। क्योंकि धैवत को उत्तराङ्ग में महत्व देना पड़ता है। इस राग में 'प ध ग' और 'नि प' यह टुकड़े योग्य रीति से लगाना बड़े कौशल का कार्य है।

कल्पद्रुमांकुरे:—

बराटीतिरागः स्मृतो मारुमेले
गवादी धसंवादियुक्तो विभाति ॥

सदा पंचमेनाभियुक्तः सुपूर्णाः
स सायं बुधैर्गीयते मंजुगीतैः ॥

चन्द्रिकायाम्ः—

वराटी मारुसंस्थाने धसंवादिगवादिनी ।
पंचमेन युता पूर्णा गीयते सायमेव हि ॥

प्र०—अब इस राग की एकाध सरगम कह दीजिये ?

उ०—अच्छा लो:—

वराटी—तीव्रा

प प । ध ग । प ऽ प । म॑ ध । म॑ ध । म॑ म॑ ग ।

× ×

म॑ रे॒ । ग प । ग रे॒ सा । नि़ नि़ । रे॒ ग । रे॒ रे॒ सा ।

नि़ रे॒ । ग रे॒ । ग प प । प प । ध सां । प ध प ॥

अन्तरा—

म॑ ध । सां ऽ । सां रें॒ सां । सां ऽ । रें॒ नि । प ऽ प ।

नि़ रे॒ । ग रे॒ । ग प ऽ । प प । ध सां । प ध प ॥

इस सरगम में प्रातःकाल का रङ्ग दूर करने की ही तुम्हारी सब कुशलता है। "नि़ रे॒ ग, रे॒ ग, म॑ रे॒ ग, प, प ध ग, म॑ ध म॑ ग, रे॒ ग, ध म॑ ग, प ग, रे॒, सा, नि़ सा, नि़ रे॒ सा, प ग प, प ध ग, नि़ रे॒ ग, म॑ म॑ ध, म॑ ग, प ग, रे॒ सा। प प ध सां, सां, सां रें॒ सां, रें॒ नि प, प ध ग, रे॒ ग, म॑ ग, सां प प, ध ग, रे॒ ग, म॑ ग रे॒ सा।" ऐसे ढङ्ग से तुम विस्तार करते जाओ, तो तुम्हारा राग ठीक रहेगा। थोड़ा सा भी उत्तराङ्ग प्रबल हुआ तो तुरन्त ही विभास और देशकार आगे आ जाँयगे।

प्र०—अब अगला राग लेंगे ?

———

साजगिरी

उत्तर—हां, अब "साजगिरी" के विषय में दो शब्द कहता हूँ। सायंगेय प्रकारों में से वही एक बाकी रहा है। साजगिरी नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि यह राग एक आधुनिक और यावनिक प्रकार होगा। कुछ लोगों की ऐसी धारणा भी है। अपने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में यह नाम कहीं भी दिखाई नहीं देता, हिन्दुस्थानी पद्धति में यह राग यदा-कदा मिल जाता है। "लक्ष्यसंगीत" में उसका वर्णन ठीक दिखाई देता है। उस ग्रन्थ में मियां की मल्लार, सूरमल्लार आदि हिन्दुस्थानी आधुनिक राग दिये हैं तो इसका होना भी उचित ही था। साजगिरी राग कब और कैसे प्रचार में आया, यह निश्चित करना कठिन है। आधुनिक रागों के विषय में मिस्टर बनर्जी अपने ग्रन्थ में इस प्रकार लिखते हैं:—

"यमन (इमन) यह एक पर्शियन शब्द है। इस राग को अमीरखुसरो ने भारत में प्रचलित किया। इमन में अन्य राग मिश्रित होकर यमनी पूरिया, यमन भूपाली, यमनी बिलावल, यमन बिहाग, यमन कल्याण, यमन झिंझोटी आदि राग उत्पन्न होते हैं। कुछ राग तुर्किस्तान से अपने यहाँ आये हैं, जैसे-तुरुष्क तोड़ी, तुरुष्क गौड़ आदि। इन रागों का वर्णन अपने संस्कृत ग्रन्थों में भी पाया जाता है। किन्तु वे आज अपने प्रचार में नहीं हैं। उदाहरणार्थ:—

बहार, अल्हैया, सरपर्दा, साजगिरी, शहाना, अड़ाना, सोहनी, सुह, सुघराई, झीलफ, मारु आदि राग मुसलमानी शासन काल में प्रविष्ट हुए हैं, ऐसा समझा जाता है, पीलू, बरवा, लूम, झिंझोटी, मारू, वगैरह प्रकार तो बिल्कुल आधुनिक ही होंगे क्योंकि वे प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होते। इन सभी रागों की प्रकृति क्षुद्र है। इनके अङ्ग-प्रत्यंगों का भली प्रकार से वर्णन व स्पष्टीकरण नहीं मिलता। इसी तरह इन रागों के गायन समय भी नियम पूर्वक दिये हुए नहीं मिलते। आजकल अपने हिन्दुस्तान में साधारणतया ऐसा रिवाज है कि यह पीलू राग झूलन-यात्रा के प्रसंग में गाया जाता है।"

इस प्रकार इन आधुनिक रागों का उल्लेख करके मिस्टर बनर्जी आगे चलकर ग्रह और न्यास स्वरों के बारे में अपना मत कहते हैं, इसकी बाबत में पहिले कह ही चुका हूँ। मिस्टर बनर्जी की सम्पूर्ण व्याख्या मैं तुम्हारे सम्मुख नहीं रख सका हूं, यद्यपि वर्तमान समय में ग्रह-न्यास का विशेष महत्व दिखाई नहीं देता। किन्तु मिस्टर बनर्जी ने उस विषय की विस्तृत चर्चा की है।

प्रश्न—इस विषय में उनका क्या कहना है, उसे बताने में कुछ हानि है क्या ?

उत्तर—नहीं, हानि तो कुछ नहीं। चाहते हो तो अवश्य बताऊँगा।

प्रश्न—उनकी व्याख्या सुनने की मेरी प्रबल इच्छा है। क्योंकि मिस्टर बनर्जी का कोई-कोई विचार बड़ा मनोरंजक होता है।

उत्तर—अच्छा तो सुनोः—

कुछ लोगों की ऐसी गलत धारणा है कि प्रत्येक राग स्वरग्राम के किसी निश्चित स्वर से ही उठना चाहिए और वह किसी नियत स्वर पर ही समाप्त किया जाना चाहिए। इस धारणा का मूल यह दिखाई देता है कि अपने संस्कृत ग्रन्थकारों ने प्रत्येक राग का ग्रह स्वर और न्यास स्वर बताने की विशेष रूप से चेष्टा की है। इतना ही नहीं, उन्होंने ग्रह और न्यास स्वरों की व्याख्या भी करदी है। यथाः—"जिस स्वर से राग का प्रारम्भ होता है, वह ग्रह स्वर जानो, और जिस स्वर पर वह समाप्त किया जाता है, वह न्यास स्वर माना जायगा।" वस्तुतः इस व्याख्या में विशेष अर्थ दिखाई नहीं देता। यदि हम ध्यान से देखें तो मालूम होगा कि ग्रह–न्यास की उक्त विवेचना कोरी–काल्पनिक है। प्राचीनकाल में गीतों से ही राग–रागनी की सृष्टि हुई होगी। यह सम्भव नहीं कि प्रथम किसी ने राग–रागनी उत्पन्न करके फिर उनके ग्रह–न्यास निश्चित किये हों। संभव है ग्रह न्यास की कल्पना कुछ गीत के लिये उपयोगी हो, किन्तु अपने ग्रन्थकार इस मुद्दे पर विभिन्न मत रखते हैं, इस कारण यह विषय और भी विवादास्पद हो जाता है। कोई कहता है कि ग्रह न्यास राग–रागनी पर लागू होते हैं, दूसरा कहता है कि ग्रह न्यास गीत से सम्बन्धित होते हैं, इस दूसरे पक्ष का कथन है कि जिस स्वर से गीत आरम्भ होगा वही उसका ग्रह स्वर होगा और जिस स्वर पर गीत समाप्त होगा वह उसका न्यास स्वर माना जायगा। हमें तो यह दूसरा मत ही कुछ युक्तिसंगत दिखाई देता है। उदाहरणार्थ "भज भजरे मन कृष्ण" यह यमन कल्याण का चौताला का प्रसिद्ध ध्रुपद ही ले लो, यह षडज से शुरू होता है और रिषभ पर समाप्त होता है। "आनन्दी जगवन्दी" यह भी उसी राग का तथा उसी ताल का एक दूसरा ध्रुपद है। यह पंचम से उठता है और षडज पर समाप्त होता है। "अल्ला मांडी अरज सुनिये" यह यमन कल्याण का एक और पुराना ख्याल है जो निषाद से आरम्भ होकर षडज पर समाप्त होता है। अब इन चीजों के प्रारम्भिक और समाप्ति के स्वरों पर ध्यान दिया जाये तो सब में असमानता दिखाई देती है, तब फिर यहां ग्रह और न्यास का नियम कहां रहा ?

राग-रागनी की रचना और अवयव देखें तो यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उनमें ग्रह और न्यास कायम करने का कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

राग का जो थाट होगा, उस थाट का गीत चाहें जिस स्वर से आरम्भ किया जा सकता है। उदाहरणार्थ यमन राग को ही देखो न ! यह राग तुम सा रे ग मं प ध नि इनमें से चाहे जिस स्वर से शुरू कर सकते हो। ऐसा ही प्रत्येक राग के विषय में कहा जा सकता है। किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि जिस राग में जो स्वर वर्जित हो उस स्वर से राग का प्रारम्भ नहीं हो सकेगा।

कोई–कोई ऐसा भी समझते हैं कि यमनकल्याण राग यदि सा अथवा रे या नि से शुरू नहीं किया है तो उसका राग रूप भ्रष्ट हो जायगा। ऐसा सोचने वाले भी भ्रम में हैं, वस्तुतः इस नियम में कुछ भी सार नहीं है। जिनको यमनकल्याण अच्छी तरह से गाना और पहिचानना आता है वे उसे चाहें जिस स्वर से शुरू करके अच्छा गा सकते हैं। हम प्रायः देखते ही हैं कि भिन्न–भिन्न गीत, चाहें वे ध्रुपद के हों या ख्याल के भिन्न–भिन्न स्वरों से उठते हैं तो भी वे सुनने में बुरे नहीं लगते। अपनी बड़ी-बड़ी पुरानी

चीजों को ही देखो उनमें ग्रह–न्यास नियम लगते हुए कहीं भी दिखाई नहीं देंगे। और आजकल की प्रचलित गायकी देखें तो केवल यही दिखाई देगा कि राग का "आलाप" करते समय उसे षडज से आरम्भ करते हैं। और वहां ही उसे लाकर समाप्त भी करते हैं। इसका तत्व यही प्रतीत होता है कि पुरानी चीजों के "बोल" छोड़कर केवल उनके स्वरों की सहायता से उन रागों का आलाप करने की एक नवीन प्रणाली गायकों द्वारा अपनाई गई होगी"। अस्तु, यह उस विद्वान लेखक का मत मैंने तुम्हें बताया है, इस पर अवकाश के समय विचार करना। प्राचीन ग्रह, न्यास, वादी, विवादी स्वरों का प्रयोग आज प्रचार में नहीं है, यह मैंने पहिले कहा ही है। सभी रागों का आलाप षडज से शुरू करो और षडज पर ही लाकर उसे समाप्त करदो, ऐसा व्यापक नियम आजकल के बड़े-बड़े गायक वादक पसंद करेंगे कि नहीं? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। अतः मि० बनर्जी का उक्त कथन ठीक ही है। अब हमें व्यर्थ के वाद-विवाद में नहीं पड़ना चाहिए क्योंकि इससे असुविधा ही होगी।

प्रश्न—ठीक है, तो अब साजगिरी के विषय को चलने दीजिये।

उत्तर—हां मिस्टर बनर्जी ने साजगिरी का थाट भैरव के समान माना है और उसमें रिषभ स्वर वर्जित माना है। अपना प्रकार बिल्कुल निराला है यह देखोगे ही।

प्र०—हम पहले धैवत तीव्र मानते हैं और मध्यम भी तीव्र ही लगाते हैं, ठीक है न?

उत्तर—हां, ऐसा है। पुनः इस साजगिरी में दोनों मध्यम और दोनों धैवत लगाने वाले हैं।

प्र०—तो फिर यह एक मिश्र स्वरूप दिखाई देगा?

उ०—हां, यह एक मिश्र–राग ही माना जाता है। बनर्जी ने साजगिरी का समय "दिवा चतुर्थ प्रहर" कहा है वह हमें मान्य है, उस समय में तीव्र मध्यम ठीक ही है।

प्र०—साजगिरी में कौन-कौन से राग मिलते हैं? पूर्वी और मारवा थाट तो मिलेंगे ही। क्योंकि दोनों धैवत आने वाले हैं।

उ०—साजगिरी में पूरिया और पूर्वी इनका मेल है, ऐसा कहा जाता है।

प्र०—तनिक ठहरिये, मालीगौरा में भी तो आपने कुछ-कुछ ऐसा ही बताया था?

उ०—तुम्हारी शंका ठीक है। किन्तु तुम मेरे बताये हुए एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त को भूल जाते हो। साजगिरी में हम दोनों मध्यम लगाने वाले हैं, वैसा हम मालीगौरा में नहीं करते। कदाचित कोई दोनों धैवत लेता हो। दूसरी एक विशेषता मैंने ऐसी बताई थी कि मालीगौरा में पंचम लगाकर गाया हुआ प्रकार पूरिया के समान दीखेगा, इस बात को ध्यान में रक्खो। साजगिरी में हम अपने चलन की जमीन निराली ही बनाने वाले हैं।

प्र०—वह किस तरह?

उ०—साजगिरी के अन्तरा में हम प्रत्यक्ष पूर्वी का ही एक टुकड़ा उसके कोमल धैवत सहित प्रविष्ट करेंगे ऐसा करने से वह मालीगौरा से बिलकुल प्रथक हो जायेगा।

यह मिश्रण चमत्कारिक है इसमें कोई संदेह नहीं; किन्तु इसके सम्बन्ध में यदि कोई मतभेद भी हो तो मुझे कोई आश्चर्य न होगा। जो गीत मुझे मेरे गुरू जी ने इस राग में सिखाये हैं उनके आधार से तथा लक्ष्यसङ्गीत में कहे हुए लक्षणों की सहायता से मैं तुमको यह राग समझाता हूं और साथ ही यह भी कहे देता हूँ कि तुम आगे इस राग के स्वरूप के विषय में और ज्ञान प्राप्त करना चाहो तो करो, किन्तु मैं जो प्रकार बताता हूं उसे भी अच्छी तरह हृदयंगम करके सीखलो क्योंकि इसकी भी उत्तम परम्परा और आधार है।

प्र०—आपकी बताई हुई प्रत्येक बात हम ध्यान में रखने का सदैव प्रयत्न करते आये हैं अत: पुन: आपको ऐसा कहने की आवश्यकता नहीं। प्राय: कुछ लोग ऐसे प्रश्न बारम्बार पूछते हैं कि तुम्हारा मत कौनसा है; तो हम उन्हें स्पष्ट उत्तर देंगे कि हमारा "लक्ष्य सङ्गीत मत" अथवा "चतुर मत" है। इतना ही नहीं, जो राग हम गायेंगे उसका ग्रन्थोक्त वर्णन और लक्षण भी हम व्यक्त करेंगे। साथ ही हम यह भी सिद्ध कर-देंगे कि जैसा हम वर्णन करते हैं वैसा गाते भी हैं। हमारी तो यह भी इच्छा है कि आपकी सिखाई हुई पद्धति की सहायता से कुछ नवीन शिक्षक तैयार करके उनके द्वारा अपने सङ्गीताभिलाषी विद्यार्थियों को सहज और सुलभ रीति से सङ्गीत ज्ञान मिल सके, ऐसा आयोजन करने का प्रयत्न हम बिलकुल निर्लोभी भावना रखकर करेंगे। सफलता भगवान के हाथ है।

उ०—तुम्हारा उत्साह प्रशंसनीय है। जैसा तुम उचित समझो वह खुशी से करो, ईश्वर तुम्हारे ऐसे निस्पृह और प्रमाणिक प्रयत्नों को सफल करके यश अवश्य देगा. अस्तु अब मैं तुमको साजगिरी की वास्तविक रचना थोड़ी-थोड़ी समझाता हूं। मैं जो कुछ कहूँ उस ओर अच्छी तरह ध्यान देना। साजगिरी में वादी गंधार है ऐसा समझकर चलो। मारवा और मालीगौरा रागों का वादी स्वर रिषभ था। पूरिया और वराटी का वादी गंधार था तथा जेतकल्याण और जेत का वादी पंचम था यह तुमको मालुम ही है। अब देखो—नि़, रे ग, रे मं ग, ग, रे सा, नि़, रे ग रे सा। यह भाग कैसा लगता है बताओ तो?

प्र०—यह पूर्वी अथवा पूरिया इन रागों की ओर संकेत करता है ऐसा हमको प्रतीत होता है।

उ०—अच्छा आगे देखो:—नि़ रे सा, नि़ ध़, सा, नि़ रे ग रे सा, मं ध मं सा, रे सा। अब पूर्वी दिखाई देती है क्या?

प्र०—नहीं, नहीं अब पूर्वी कहां से दीखेगी। कदाचित् अब थोड़ी बहुत छाया पूरिया की दिखाई देगी।

उ०—अच्छा, आगे चलो—सा, ध़ सा, नि़ रे ग रे सा, मं़ ध़ मं़ सा, रे सा, ग, म, नि नि, मं ध ग, ग मं ग मं ग मं प मं ग, रे सा। यहाँ ग मं ग मं ग मं प मं ग यह तान मैंने किस प्रकार जल्दी बोली उस पर ध्यान दिया? मैं यह तो नहीं

कहता कि इस राग में यह तान अवश्य आनी ही चाहिए अपितु मैंने उसे किस प्रकार से व्यक्त किया है उस पर ध्यान दो ! अच्छा, यह विस्तार कैसा दिखाई देता है ?

प्र०—वास्तव में यह प्रकार स्वतन्त्र दिखाई देता है। इस राग का चलन कुछ विलक्षण ही है। कोमल मध्यम आने से पूरिया तो दूर हो ही गई, पूर्वी का कोमल म और वह भी खुला हुआ आरोह में है ही। "ग म, नि नि मं ध ग" यह टुकड़ा ध्यान देने योग्य है। साजगिरी में पूरिया और पूर्वी का योग है, ऐसा आपने बताया ही था, किन्तु अभी तक कोमल धैवत वाला भाग दिखाई नहीं दिया ?

उ०—शाबास ! तुम्हारा लक्ष्य सुन्दर है। वह भाग अब अन्तरा की तानों में आने वाला है, ध्यान से देखो—मं ग, मं प, ध़ प, सां, नि रें सां, सां नि ध़, रें नि ध़ नि ध़ प।

प्र०—हां, ठीक है। अब पूरिया का रङ्ग भी उड़ने लगा। अच्छा अब आगे मिलाया कैसे जायेगा ?

उ०—आगे ऐसा करोः—प, प, प ध ग, प, ध सां, निरेंनि, मं ध ग, ग मं ग मं ग मं प मं ग आदि इस तरह इन दोनों रागों का योग अच्छा और सुसंगत दीखेगा।

प्र०—हम समझ गये। धीरे-धीरे हमारे लक्ष्य में अब यह भी आने लगा है कि मारवा थाट के पंचम लगने वाले रागों में "मंधग, पधग, पधसां" इत्यादि छोटे-छोटे टुकड़े अत्यन्त कलापूर्ण हैं। अभी तो हमको ऐसे दो तीन ही राग आपने बताये हैं उनमें जो बातें हमारी दृष्टि में पड़ीं वह कहीं। जेत, मालीगौरा और बराटी इन रागों में ये टुकड़े हमको महत्वपूर्ण प्रतीत हुए।

उ०—तुम ठीक कह रहे हो। साजगिरी में "पधग, पधसां" यह भाग वास्तव में उपयोगी है इसलिये उसे तुम बारम्बार गाकर और घोटकर कण्ठस्थ करलो फिर भिन्न-भिन्न स्थानों में उसे लगाने का प्रयत्न करो।

प्र०—मि० बनर्जी ने अपने ग्रन्थ में साजगिरी का कोई उदाहरण नहीं दिया क्या ?

उ०—नहीं। उन्होंने केवल थाट मात्र कह दिया है "उसका प्रकार षाडव है और वह सायंगेय है" इतने विवरण से तुम साजगिरी की भला क्या कल्पना कर सकोगे।

प्र०—यह बात ठीक है। इसमें कौनसे रागों का मिश्रण किया जायेगा यह तथ्य यदि मालूम हो जाय तो हम अपनी कल्पना बहुत कुछ आगे बढ़ा सकते हैं। उनका प्रकार प्रातःकाल का अधिक सुन्दर रहेगा क्योंकि उसमें वे रिषभ वर्जित करते हैं तथा धैवत व मध्यम कोमल रखते हैं। अर्वाचीन ग्रन्थों में साजगिरी का उल्लेख कहीं मिलता है क्या ?

उ०—सङ्गीतकल्पद्रुम में मिलता है। वहाँ उसे एक "उप राग" कहा है।

प्र०—उसका लेखक तो बड़ा परिश्रमी ज्ञात हाता है बाबा ! वह 'उप राग' कौनसे रागोंको मानता है ?

उ०—मेरी समझ में उसके उपराग वे होंगे जो अपने आधुनिक मुस्लिम गायक तथा इतर गायिकाओं द्वारा प्रचार में लाकर लोकप्रिय बनाये गये हैं।

प्र०—उसके वे उप राग आप हमें बतायेंगे क्या ?

उ०—तुम्हारी इच्छा है तो बताता हूं:—

झिंझोटी जंगला पीलुर्बर्वा धानी तिलंगिका ।
आसा घाटा लूहरो लूमलहरी तथैवच ॥
सिंधसोहर् सोहनी च गरभा धवलध्वनिस्तथा ।
गारा गोधूनि भटियारी च विरहा कज्जली तथा ॥
साजगिरिसरपरदा च जोनपुरी उशाखिका ।
शनम गनम नौरोजश्च बाकरेजो यवन्निका ॥
लावणी जोगिया जंगी अहंग सुहानास्तथा ।
इत्युपरागास्तथा प्रोक्ता देशे देशे तु विस्तरात् ॥
गान भेदोऽप्यनेकस्तु नययुगानवारिधे ।
गीतप्रबंधछंदस्तु सङ्गीत चतुरंग त्रेवटस्तथा ॥
माठा च परमाठा च धोवा धारु तथैवच ।
योनिकटरतिल्लाना ओष्टा नीरोष्टा तथा ॥
जुगलबंधसरिगमपधनि प्रेमलु शब्दिका तथा ।
ध्रुवपद् तुक मरयोष्ठ ख्यालटप्पा पुनस्तथा ॥
दादरा ठुमरी जाति पचरंगा धवलगर्भिका ।
देशे देशे भिन्ननाम तद्देशीगानमुच्यते ॥

इत्युपरागगानभेदाः ॥

ऐसे मनोरंजक देशी श्लोक अपने कोई-कोई गवैये बड़ी मेहनत से याद करके रखते हैं और उन्हें विशेष प्रसङ्गों के समय गम्भीर मुद्रा से अपने श्रद्धालु श्रोताओं के सामने धारा प्रवाह बोलकर क्षणभर के लिये उन्हें चकित कर देते हैं। इन श्लोकों में साजगिरी का भी नाम है, वह तुमने देखा ? खैर, श्लोकों को याद करने के झंझट में तुम नहीं पड़ना।

प्र०—नहीं-नहीं, भला हम ऐसा क्यों करने लगे। इन श्लोकों को बोलते हुए पहले तो हमको ही हँसी आयेगी, सुनने वालों की तो बात ही अलग है। तो फिर साजगिरी के विषय में अधिक जानकारी प्रत्यक्ष गायकों के अतिरिक्त और कहीं मिलने की सम्भावना नहीं, यही समझा जाय न ?

उ०—मुझे तो ऐसा ही जान पड़ता है। मेरे देखने में जो ग्रन्थ आये उनमें इस राग पर उपयोगी सामग्री मुझे दिखाई नहीं दी जितनी जानकारी मुझे मिली वह मैंने तुम्हें दे दी। मेरे कहे हुए प्रकार का आधार लक्ष्य सङ्गीत और मेरे गुरु हैं। सम्भव है ऐसे राग तुमको कुछ मुसलमानी ग्रन्थों में प्राप्त हो जाँय। अपने यहां के संग्रहीत कुछ देशी ग्रन्थों में भी वे मिल सकें तो तलाश कर देखना। उन्हें तुम प्राप्त कर सको तो मुझे कोई आपत्ति नहीं किन्तु जो स्वीकार करो उसे अच्छी तरह समझ बूझ कर ही स्वीकार करो।

प्र०—यथा शक्ति तो हम आपके कहे हुए प्रकारों को ही ग्रहण करते हैं। कोई अलग मिलेगा तो "मतभेद" शीर्षक के अन्तर्गत उसे भी नोट कर लेंगे। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थकारों ने इस राग का वर्णन नहीं किया, ऐसा आपने कहा ही है। किसी बड़े घराने का गायक उत्तम नियमों के साथ जब कोई और रूप व्यक्त करेगा तो आगे देखा जायेगा, सम्भवतः ऐसे लोग उत्तर की ओर मिलेंगे।

उ०—हाँ, ऐसे लोग दिल्ली, आगरा, लखनऊ, अलवर, टोंक, जैपुर, उदयपुर, रीवां, रामपुर सम्भवतः इन्हीं शहरों में मिल सकते हैं। मैं इनमें से कुछ शहरों में घूमा हूँ, पर वहां मुझे संतोषजनक सफलता नहीं मिली।

प्र०—क्यों भला ?

उ०—वहां के कुछ लोग तो ऐसी बातें करने लगे:—

"पंडित जी! इस तरफ़ गवैयों की क़दर नहीं रही, जहाँ-तहाँ ठुमरी ग़ज़ल का शौक़ आपको दिखाई देगा। वेश्याओं के मुजरे में चाहें तो पांचसौ रुपये दे देंगे किन्तु बड़े घराने के गवैया को पच्चीस मिलने में भी हज़ारों झंझट! यहां अप्रसिद्ध राग आप व्यर्थ ही खोजते हैं, इधर तो ग्रन्थों के नाम भी किसी को मालुम नहीं। हां, आजकल कुछ प्राचीन सङ्गीत के जानकार होंगे तो वे रामपुर, रीवां में कदाचित् मिल सकेंगे। सुना है आपके देश में सङ्गीत की चर्चा बहुत है।"

मैं रामपुर जाने वाला था, किन्तु वहां के राजा साहेब उस समय राजधानी में नहीं थे और उनके निकटवर्ती गायकों का गाना-बजाना राजा साहब की अनुपस्थिति में सुनना सम्भव नहीं था, इसलिये मैं वहां नहीं गया। पुनः एक बार हो सका तो उधर जाने वाला हूं, यदि मेरा जाना हुआ और वहां मुझे कुछ उपयोगी जानकारी प्राप्त हुई तो तुमको दूंगा ही। मेरे जाने का योग न आ सके तो तुम ही उधर जाने की चेष्टा करना।

प्र०—बहुत अच्छा। अब हमारी साजगिरी का आधार हमें बताइये ?

अच्छा सुनो:—

मारवामेलसंजाता साजगिरी जनप्रिया ।
आधुनिका मता तज्ज्ञैः संपूर्णा गांशमंडिता ॥
धैवतद्वंद्वमत्राहुः संगतिर्निमयोः शुभा ।
गानं गुणिसमादिष्टं सायंकालेऽति शोभनम् ॥
ईषत्स्पर्शः शुद्धमस्य नैव स्याद्रक्तिघातकः ।
पूर्यायाः पूर्विकायाश्च तेन स्यात्प्रस्फुटा भिदा ॥

पूरियांगभूषितेयं रागिणी यत्सुसंमता ।
मंद्रमध्यस्वरैर्गानमवश्यं सुखमावहेत् ॥
पूर्वीपूर्यामि श्रेन साजगिर्या जनिः स्मृता ।
रूपमेतन्मतं प्रायो विरलं लक्ष्यवर्त्मनि ॥ लक्ष्यसङ्गीते ॥

पूर्वीपूर्यामिश्रिता साजगीरी गांधारांशा पूर्णारोहावरोहा ।
ईषच्छुद्धो मध्यमो धैवतौ द्वौ प्रोक्तौ यस्यां गीयते सायमेव ॥ कल्पद्रुमांकुरे ॥

पूर्वीमिलसमुत्पन्ना गांशा साजगिरिर्मता ।
द्विधैवता च संपूर्णा क्वचित्कोमलमध्यमा ॥ चंद्रिकायाम् ॥

जबही गुनिजन पूरबी द्वै धैवतसें गाइ ।
तबही सारे जगतमें साजगिरी कहलाइ ॥ चंद्रिकासार ॥

प्र०—यह आधार ठीक रहा। अब इस राग का विस्तार करके दिखलाइये तो अच्छी तरह समझ में आजायेगा।

उ०—अच्छा वह भी लोः—

सा, नि़ नि़, रे॒ ग, म रे॒ मं ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा, सा, रे॒ सा, नि़ नि़, रे॒ ग नि़ रे॒ सा, ग रे॒ सा, सा, नि़ ध़ सा, नि़ सा, रे॒ नि़ रे॒ ग, नि़ रे॒ नि़ ध़॒, मं़ ध़॒ मं़ सा। रे॒ सा, ग ग म, नि नि मं ध ग, ग मं ग मं प मं ग, रे॒ सा। नि़ रे॒ सा, ग रे॒ सा, नि़ नि़ रे॒ नि़ ध़॒, मं़ ध़॒ सा, सा, ग रे॒, ग म, रे॒ मं ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा; सा रे॒ रे॒ सा, नि़ रे॒ ग रे॒ सा, म रे॒ मं ग, ग मं ध ग, मं ग, रे॒ ग, मं ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा; मं मं ग, मंग, ध ग मं ग, ग म, नि नि मं ग, ग मं ग मं, ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा। मं मं ग, प, ध॒ प, सां, सां, नि रें॒ सां, नि रें॒ गं रें॒ सां, सां सां, नि नि, रें॒ नि ध॒ प, प ध ग, प, प, ध सा, नि रें॒ नि मं ध ग, ग मं, ग मं, ग मं प मं ग, मं ग, रे॒ सा, नि़ नि़ रे॒ ग म रे॒ मं ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा।

इस राग का स्थूल स्वरूप तुम्हारे ध्यान में रहा आवे इसलिये अब एक सीधी-सादी सरगम भी कहे देता हूँः—

साजगिरी—झंपाताल

नि़ रे॒ । ग ग म । रे॒ मं । ग रे॒ सा ।
×
नि़ रे । ग रे॒ सा । नि़ रे॒ । नि़ ध़ ध़ ।
मं ध । सा ऽ सा । नि़ रे॒ । ग ग म ।
नि नि । मं ध ग । मं ग । नि़ रे॒ सा ॥

अन्तरा—

मं ग । मं ध॒ प । सां ऽ । नि रें॒ सां ।
×
सां सां । नि रें॒ सां । नि रें॒ । नि प प ।
प प । मं ध ग । प ध । सां रें॒ नि ।
मं मं । ध ग मं । ग ग । नि़ रे॒ सा ॥

प्र०—अब इस थाट के उत्तराङ्ग प्रधान रागों को आरम्भ करेंगे क्या ?

———

राग सोहनी

उ०—हाँ, अब हम सोहनो राग लेते हैं। अपने लक्ष्य सङ्गीत मत के अनुसार तथा प्रचार की ओर देखते हुए इसे मारवा थाट का राग मानते हैं। कोई-कोई गवैया ऐसा भी कहता है कि सोहनी में एक कोमल मध्यम ही लगाना चाहिये। कोई दोनों मध्यम लगाने को भी कहते हैं। यह राग रात्रि के अन्तिम प्रहर का है, अतः यदि इसमें कोई दोनों मध्यम भी लगाये तो हम उसको दोष नहीं दे सकते। कोमल मध्यम और तीव्र धैवत लगने वाले सन्धिप्रकाश थाट का नाम दक्षिणी पद्धति में 'सूर्यकान्त' अथवा 'वेगवाहिनी' मिलता है।

प्र०—दोनों मध्यम लगाने वाले गायक अधिक महत्व कौनसे मध्यम को देते हैं?

उ०—यह भी एक महत्व का प्रश्न है। ऐसे स्थलों पर मतभेद होने की सम्भावना रहती है। हम सोहनी में तीव्र मध्यम को ही महत्व देंगे।

प्र०—जो कोमल मध्यम लगाकर गाते हैं उनका प्रकार कैसा लगता होगा?

उ०—उसे अब तुम्हीं देखलो:—

"सां, नि ध, नि ध, म ग, म ध नि सां, रें रें सां, नि सां, नि ध, म ध, नि नि ध, म, ग, म ग रे सा, नि़ सा ग, म, ध, म, ग, म ध, म ध, नि सां रें सां, नि नि ध, सा ग म ध नि सां, नि सां, रें सां, गं रें सां, सां रें सां, म ध सां, गं सां, मं गं सां, म ध नि सां, नि ध म ग, म ग, रे सा, नि़ सा ग म, ध, ग म, नि ध ग म, ध नि सां, गं मं गं,"—

प्र०—यह एक चमत्कारिक रूप दिखाई देता है, इसमें कई जगह मध्यम पर क्यों रुकना पड़ता है?

उ०—वहाँ 'ग म ध नि सां।' ऐसी जलद तान लेते समय गायक को कुछ अड़चन पड़ती है। किसी-किसी का कहना है कि वह मध्यम यह सूचित करता है कि आगे ललितांग आने वाला है। ललिताङ्ग में दोनों मध्यम हैं, यह भी तुम्हें ध्यान में रखना चाहिये!

प्र०—तो फिर सोहनी में दोनों मध्यम लेना समयानुकूल होगा?

उ०—वह तो मैं पहले कह ही चुका हूं।

प्र०—दोनों मध्यम कैसे लगाये जाते हैं?

उ०—देखो—सां, नि ध, मं ध सां, नि ध, ग, म ग, मं ध नि सां रें सां, नि सां, मं ध नि सां, रें रें सां, गं रें सां, नि सां नि ध, मं ध, सां नि ध, म ग, मं ग रे सा, नि़ सा ग, मं ध नि सां, रें सां, गं मं गं, रें सां, नि ध, मं ध नि सां, नि ध म ग, नि ध ग, मं ग रे सा, नि़ सा ग, म ग, मं ध नि ध, म ग, मं ध नि सां, नि ध म ग, मं ग रे सा।

प्रश्न—यह प्रकार भी अच्छा दिखाई देता है। आप जो एक मध्यम वाला प्रकार मानते हैं उसका स्वरूप कैसा होगा ?

उत्तर—उसे भी समझाता हूँ, सुनोः—इस स्वरूप में पहली मुख्य बात जो तुमको ध्यान में रखनी है वह यह है कि इसमें तार षड्ज अच्छी तरह चमकने दो। उसका कारण चतुर पंडित ने ऐसा बताया हैः—

अंत्ययामप्रगेयत्वात्तारषड्जविचित्रता ।
संभवेत्तत्रसंगीतकेंद्रस्थानं क्रमागतम् ॥

प्र०—हम समझ गये, अब आगे ?

उ०—तुमने जब पूरिया सीखा था तब मैंने वहाँ संकेत किया था कि

सायंगेया यतः सिद्धापूर्वांगप्रबला स्वयम् ।
उत्तरांगप्रधानत्वे सोहन्येव न संशयः ॥

वह तुम्हारे ध्यान में होगा ही। सोहनी के लक्षण में चतुर कहता हैः—

मंद्रमध्यस्वरैः पूर्या सोहनी तूत्तरैः स्वरैः।
इति संगीतवैचित्र्यमद्भुतं हृदयंगमम् ॥

प्र०—पर वहाँ उन स्वरों की रचना किस तरह से की जायेगी, यह भी तो समझ में आना चाहिये ?

उ०—वह तो स्पष्ट है। पूरिया में तुमने यह रागवाचक तान "सा, नि़ ध़ नि़, मं़ ग़" ध्यान में रक्खी थी न ? इस तान को सोहनी में भी कोई लगा सकता है, किन्तु वह मध्य सप्तक में लगेगी।

प्र०—अर्थात् "सां, नि ध नि, मं ग" इस तरह ? अच्छा अब और आगे ?

उ०—आगे, "मं ध नि सां, रें सां" ऐसा करते ही सोहनी प्रगट होगी। "ग मं ध ग मं ग, मं ग रे सा" यह तान साधारण होगी। दूसरा एक और टुकड़ा भी सदा ध्यान में रखना है, वह है "नि ध, ग" इसे पूरिया में मत लगाना। धैवत और गंधार की यह संगति बिलकुल स्वतंत्र है। एक सूक्ष्मदर्शी गायक ने हम से कहा था कि पूरिया और सोहनी इन दोनों की पकड़ "सा, नि़ ध़ नि़, मं़ ग़" तथा "सां, नि ध नि ध, मं ग" अथवा "सां नि ध नि ध, ग" इस क्रम से मानो। यह कथन भी विचारणीय है अतः इसे भी तुम ध्यान में रखना।

प्र०—सोहनी में वादी स्वर कौनसा है ?

उ०—वादी स्वर कोई तार षड्ज मानता है, पर हम तो धैवत को ही मानते हैं, सम्वादी गांधार होगा। सोहनी में पंचम वर्जित है इसलिये उसकी जाति षाडव है। कुछ लोग सोहनी को "नि ध नि सां, नि ध, ग" इस टुकड़े से पहचानते हैं और यह ध्यान देने योग्य है। इस राग में मंद्र सप्तक में जाने की विशेष आवश्यकता नहीं। सोहनी

एक बहुत मधुर और लोकप्रिय राग माना जाता है और वह अनेक गायकों को आता है। इस राग के आरोह में रिषभ बिल्कुल दुर्बल रहता है, कोई उसे वर्जित भी करते हैं। सोहनी का सारा वैचित्र्य उत्तरांग में होने के कारण आरोह में रिषभ छोड़कर "नि़ सा ग ग, मं ध नि सां" ऐसा करना गायकों को अधिक सुविधा जनक होता है। प्रातःकाल के समय तारषड्जविचित्र राग बहुत ही खुलता है, यह मैं पहले कह ही चुका हूँ।

प्र०—सोहनी का प्रारम्भ हम कैसे करें ?

उ०—अमुक स्थान से ही तुमको उठना चाहिये ऐसा प्रतिबन्ध तो है नहीं, पर एक सीधा प्रकार ऐसा है सो देखो ! "ग, मं ध नि सां, रें रें सां, नि ध नि सां, नि ध, ग, मं ध, ग मं ग रे सा, नि़ सा ग ग, मं ध नि सां इत्यादि" इस तरह से तुम शुरू करो तो राग स्पष्ट दिखाई देगा। सोहनी में तीव्र मध्यम श्रोताओं का मन विशेष रूप से अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, परन्तु कोमल मध्यम में वह बात नहीं है, उसको उचित स्थान देना बड़ी कुशलता का कार्य है।

प्र०—हम समझ गये। पंचम वर्ज्य होने से और धैवत बहुत दूर जाने से गायक को कुछ अड़चन तो जरूर पड़ेगी, किन्तु खुला हुआ मध्यम लगाते ही तत्काल अपना स्वतंत्र रूप उत्पन्न करेगा, ठीक है न ?

उ०—तुम ठीक समझे। पूरिया में मंद्रावधि गंधार स्वर है और सोहनी में तार-अवधि मध्यम को मानते हैं। सोहनी के मंद्र स्थान में कोई नहीं गा सकता सो बात नहीं, परन्तु वहाँ श्रोताओं को जहाँ-तहाँ पूरिया का भास हो सकता है। वहां तुम "नि़ रे ग, नि़ रे सा" इस तान से पूरिया हटाने का प्रयत्न कर सकते हो, यह मैं जानता हूँ। तथापि उस स्थान में विशेष उलट पुलट करना उचित न होगा। कोई-कोई गायक सोहनी में कोमल धैवत लगाने को कहते हैं परन्तु यह मत हम पसंद नहीं करते।

प्र०—सोहनी राग बहुत प्राचीन है क्या ?

उ०—प्राचीन ग्रन्थों में मुझे यह नाम नहीं मिला। साधारण धारणा ऐसी है कि यह एक आधुनिक प्रकार है। सोहनी के निकटवर्ती अन्य राग हिन्दोल, मारवा, पंचम आदि हैं उनमें से हिन्दोल और मारवा तुमको मालुम ही हैं और पंचम राग आगे आयेगा ही।

प्र०—हिन्दोल में रिषभ नहीं है और आरोह में निषाद अस्तप्राय है, तो फिर उस राग की बाबत और कुछ कहना ही नहीं है। मारवा में संध्याकालीन रंग, रिषभ की वक्रता, मं ध की संगति, निषाद का दौर्बल्य और तारस्थान का सीमित प्रयोग ये तथ्य भूलने नहीं चाहिये। सोहनी पूरिया का जवाब है, यह बात भी हमें ध्यान में रखनी उचित होगी ?

उ०—हाँ, तुम्हारी यह बात युक्तिसंगत है। सोहनी में हिन्दोल और मारवा का थोड़ा सा चलन यदि दिखाई भी दे तो निषाद उन दोनों रागों का भ्रम दूर करेगा, ऐसा कहा जा सकता है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि सोहनी एक अर्वाचीन प्रकार है।

यह राग संगीत रत्नाकर, दर्पण, कलानिधि, राग विबोध, चंद्रोदय, रागमाला, तरंगिणी और समयसार इनमें से किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलता। क्षेत्रमोहन स्वामी सोहनी का उदाहरण देकर एक टिप्पणी में कहते हैं "सोहनी का नाम हमें किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रंथ में दिखाई नहीं दिया, केवल शब्द कल्पद्रुमकार ने इसे दिया है। यह राग नाम संस्कृत है या प्राकृत इसका निर्णय हमने अभी स्वीकार नहीं किया; किन्तु हम यह मानते हैं कि सभी गायक आजकल इस राग में पंचम वर्जित करके इसे षाडव मानते हैं।

प्र०—क्षेत्रमोहन स्वामी ने इस राग में मध्यम और धैवत कैसे माने हैं?

उ०—वे मध्यम कोमल मानते हैं और धैवत तीव्र लगाते हैं।

प्र०--उन्होंने अपना उदाहरण किस प्रकार से दिया है?

उ०—वह ऐसा है:—ध़ नि़ सा, नि़ ध़, म़ ध़, नि़ ध़, म़ रा, म़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, ग म ग, सा रे॒ सा नि़ सा, रे॒ सा, ग सा, रे॒ सा, नि़ सा, रे॒ नि़ ध़, म़ ग़, रे॒ सा, नि़ सा, रा म़ ध़. म़ ध़ नि़ सा, ग म ग; सा रे॒ सा॥ अन्तरा ग म ध म ध नि सां, सां नि सां, रें॒ गं रें॒ सां. नि सां रें॒ नि ध म ग, म ध नि ध म ग, सा रे॒ सा॥ यह प्रकार अपने यहाँ दिखाई नहीं देता, इसका थाट ही निराला है और उस थाट में उक्त उदाहरण ठीक ही है। स्वामी जी के इस उदाहरण से संगीताभिलाषी विद्यार्थियों को बहुत सहायता मिली होगी। कहीं-कहीं उनका मत हमारे लिये ग्राह्य न हो एवं उनका संस्कृत संगीत का अध्ययन हमें उच्चकोटि का प्रतीत न हो यह संभव है, फिर भी यह मानना पड़ेगा कि उनका ग्रन्थ उपयोगी है। उनके दिये हुए प्रसिद्ध रागों के उदाहरण स्वीकार करने में हमारी कोई हानि नहीं। अनुकूल प्रमाणों द्वारा उन्होंने अपनी शिक्षा प्रणाली से रागों की विवेचना की है। बंगाल के ग्रन्थकारों का उद्देश्य अपने समाज को केवल जानकारी करा देना है, ऐसा मेरा मत है। उधर के 'गीत सूत्रकार' और 'संगीतसार' इन ग्रन्थों का मैंने भाषान्तर करके तुम्हारे लिये पहले ही से रख छोड़ा है। अब इस प्रसंग में एक चमत्कार की ओर भी तुम्हारा ध्यान मैं आकर्षित करूंगा।

अपने 'सामवेदी' गायक ब्राह्मण भी अपने मंत्र इस सोहनी के स्वरों में गाते हैं; इसी प्रकार अपने हिन्दू भाइयों के भी विवाह व यज्ञोपवीत संस्कारों में गाये जाने वाले मंगलाष्टक इसी राग में होते हैं। ऐसा क्यों है? यह प्रश्न विद्वानों के लिये विचारणीय है। यदि सोहनी और शोभनी इन दोनों शब्दों में कोई संबंध कायम हो सके तो संगीतकल्पद्रुम के एक दो श्लोक अपने काम में आ सकते हैं।

प्र०--वे कौन से हैं?

उ०--वे इस प्रकार हैं:—

माधवः शोभनः सिंधुः मारुमेवाडकुन्तलाः।
कलिंगः सोमरागश्च मालकोशसुता इमे॥
शोभनी चंद्रकासी च प्रेमानंदी तथैवच
आल्हादी मोदिनी चैव शोभस्य स्युर्वरांगनाः॥

प्रश्न—इस ग्रंथकार ने यह क्या गड़बड़ घोटाला किया है ?

उ०—मैं तो समझता हूँ कि उसकी बराबर परिश्रम अपने देश में किसी ने भी नहीं किया होगा, चाहे वह स्वयं अधिक विद्वान न हो किन्तु उसके परिश्रम और उसके संग्रह को देखते हुए वह धन्यवाद का पात्र है। हम उस पर कहीं-कहीं टीका-टिप्पणी भी करते हैं, साथ ही उसके ग्रन्थ का उपयोग भी हम बार-बार करते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं।

प्र०—कल्पद्रुम में सोहनी राग नहीं दिया है क्या ?

उ०—हाँ, उसका लक्षण वहाँ ऐसा दिया है:—

नीलांबरा शोभनगात्रगौरा
वीणांदधाना सुरपुष्पकर्णा ॥
सौंदर्यलावण्यविभूषितांगी
सा सोहनी कौशिकरागणीयम् ॥
गांधारांशग्रहन्यासा रिपवर्जितऔडुवा ।
निशि तृतीयप्रहरे शोभनीगानमुच्यते ॥
वसंत परज रु मालकंस मिलत एकही रंग ।
सोहनी होत सुघर गुनी रिपवर्जित नित संग ॥

इस ग्रन्थ के स्वराध्याय का स्पष्टीकरण तो अब सम्भव दिखाई नहीं देता परन्तु ग्रंथकार हिन्दुस्तानी पद्धति का ही मानने वाला था, ऐसा उसके लेखों से सहज अनुमान लगाया जा सकता है। उसने सोहनी में रे प वर्जित करने को कहा है किन्तु प्रचार में रिषभ लिया हुआ तुम देखोगे ही। रे प वर्जित करके एक नवीन प्रकार चाहो तो उत्पन्न हो सकता है।

प्र०—वैसा एक राग अपने यहाँ है न ? दुर्गाराग में रे प वर्जित नहीं हैं क्या ?

उ०—पर वह तो खमाज थाट का राग है।

प्र०-फिर भी वह बिल्कुल निराला प्रकार तो हुआ ही। खैर आगे चलने दीजिये ?

उ०—भावभट्ट पंडित ने अपने 'अनूप विलास' में नृत्य निर्णय से "सुहवी" नामक राग का वर्णन उतार लिया है, किन्तु मेरी राय में वह सोहनी नहीं है।

प्र०—उस राग के स्वर भावभट्ट कैसे बताते हैं ?

उ०—भावभट्ट ने वह राग शंकराभरण थाट में लिया है, अर्थात् उसमें रे ध तीव्र होंगे।

प्र०—सोहनी के विषय में प्रतापसिंह क्या कहते हैं ?

उ०—उन्होंने एक दिलचस्प युक्ति निकाली है। वे सोहनी में धैवत "अन्तर" कहते हैं अर्थात् वह न तो तीव्र है और न कोमल। राग वर्णन उन्होंने ऐसा किया है:—

"शिवजी ने अपने मुख सों परज संकीर्ण मालवी राग गाइके वाको सोहनी नाम कीनो। स्वरूप। गोरो जाको रंग है। श्वेत वस्त्र पेहरे है। और ताल हात में है। ऐसी स्त्री जाके संग है। हाथ में जाके पिनाक बाजो है। नाना प्रकार के आभूषण पेहरे है। और मधुर बचन कहे है। और राजान की सभा में शोभायमान है। कुण्डल जाके कानन में विराजमान है। और मद सों छक्यो है। शास्त्र में तो यह छह स्वरन में गायो है। ग म ध नि सा रे ग। यातें षाड्व है। याको रात्री के तीसरे पहर में गावनो। आलापचारी। ग म ध नि सा नि ध म ग म। ग रे सा नि ध नि सा ग म ग। म ध ग म ग रे नि सा॥

प्र०—मालुम होता है उन्होंने कोमल मध्यम लगाया है?

उ०—हाँ! अब हम जो प्रकार गाते हैं उसका वर्णन सुनोः—

मारवामेलसंजाता सोहनी लक्ष्यसंमता।
आरोहे चावरोहेऽपि परिक्ता कीर्त्यते सदा॥
उत्तरांगप्रधानत्वे वादित्वं धैवते भवेत्।
अमात्यसंनिभो गः स्याद्गायनं शेषयामके॥
प्रयोगो दृश्यते शुद्धमध्यमस्य क्वचिन्मतः।
संगतिर्धगयोर्नित्यं प्रस्फुटं रूपमादिशेत्॥

इसी मत के अनुयायी और भी आधार देखो।

कल्पद्रुमांकुरेः—

यत्रस्याद्दृषभो मृदुर्निधमगास्तीत्राः स्वराः पंचमो
वर्ज्यः स्यादथ मध्यमो निगदितः क्वापि क्वचित्कोमलः।
वादी धैवत उच्यते सहचरो गांधारकः कथ्यते
रात्र्यामन्तिमयामके सुमधुरं सा गीयते सोहनी॥
मृदुरिरितरे तीव्रा वादिसंवादिनौ धगौ।
द्विमध्यमा पवर्ज्या च सोहन्यपररात्रगा॥ चंद्रिकायाम्।
तीवर सब कोमल रिखवपंचम बरजित होइ।
धग वादीसंवादि है कही सोहनी सोइ॥ चंद्रिकासार।

बस, इसी नियम से तुम सोहनी गाते जाओ। यदि किसी को कोमल मध्यम अथवा दोनों मध्यम की आवश्यकता हो तो ऐसे उदाहरण अब तुम्हारे पास हैं ही।

प्र०—अब इस राग को स्वरों द्वारा एक बार गाकर हमें दिखा दीजिये?

उ०—हाँ, ऐसा ही करता हूँ।

सरगम-त्रिताल—

मं ध नि सां । रें रें सां ऽ । नि ध नि सां । नि ध ऽ ग ।
×
मं ध ऽ ग । मं ग रे सा । ध नि सां नि । ध ध ऽ ग ॥
×

अन्तरा--

ग ग मं ध । नि नि सां ऽ । सां रें नि सां । नि ध नि ध ।
ध नि सां गं । मं गं रें सां । नि ध नि सां । नि ध ऽ ग ॥

अब थोड़ा-थोड़ा हम विस्तार करते हैं:—ग मं ध, ग मं ग, रे सा, नि़ सा, ग ग, मं ग, मं ध नि सां, ध नि सां, रें सां, नि ध, मं ध नि़ ध, ग, नि नि ध, सां नि ध, मं ग, ग मं ध ग मं ग, सा ग मं ध, नि ध, मं ग, मं ग, रे सा, सा रे सा। सा सा ग ग, मं ग रे सा, ग ग मं ग, नि़ सा ग, ग, मं ध नि सां, रें रें सां, सां नि ध, मं ध, रें सां, नि ध, नि ध, ग, ग मं ध ग मं ग, रे सा, नि़ सा ग ग, मं ध नि सां, ध नि सां, रें रें सां, गं रें सां, मं गं रें सां, सां नि ध, मं ध, नि ध, मं ग, ध मं ग, मं ग, रे सा, सा रे सा। मंद्र सप्तक में विस्तार करना हो तो इस प्रकार करो। सा नि़ ध़, मं़ ध़ नि़ सा, ध़ नि़ सा, रे रे सा, नि़ ध़, सा ग, मं ग, रे सा, नि़ सा ग, मं ग, मं ध नि ध, मं ग, ग मं ध ग मं ग, सां नि ध, मं ग, ग मं ध ग मं ग रे सा इ०।

प्र०—अब कौनसा राग बतायेंगे ?



राग ललित

उ०—अब हम ललित राग लेते हैं। यह राग अपनी हिन्दुस्तानी पद्धति में एक अति मधुर और प्रसिद्ध समझा जाता है और प्रायः सभी गायकों को आता है। इस राग का अङ्ग बिलकुल स्वतन्त्र होने के कारण इसे पहिचानने में किसी को विशेष कठिनाई नहीं होती। प्रातःकाल के समय में सोहनी और ललित यह दोनों अङ्ग बड़े ही सुहावने प्रतीत होते हैं। ललित अङ्ग के विषय में मुझे विभिन्न स्थलों पर बोलना पड़ा था इसलिये तुमको यह मालुम ही होगा कि ललित में दोनों मध्यमों का बड़ा विचित्र प्रयोग है। ये दोनों मध्यम जहाँ-तहाँ एक साथ जोड़कर लिये जाते हैं, यह बात मैं तुमको बता ही चुका हूं।

प्र०—वह हमको अच्छी तरह याद है। केदार, पूर्वी, मेघरंजनी आदि रागों का वर्णन करते समय यह बातें आपने बताई ही थी।

उ०—हां, ठीक है! ललित में अपने यहां तीव्र धैवत का प्रचार अधिक है?

प्र०—अर्थात् कोई-कोई इस राग को कोमल धैवत भी लगाकर गाते हैं?

उ०—ऐसा मानने वाले भी कभी-कभी हमें मिल जाते हैं परन्तु हम अपने प्रचार के अनुसार ही चलेंगे।

प्र०—उस मत का आधार भी कुछ है क्या?

उ०—कुछ ग्रन्थकार उस मत का समर्थन करते हैं। कई संस्कृत ग्रन्थों में ललित का धैवत कोमल कहा है परन्तु अनेक ग्रन्थों में तीव्र मध्यम नहीं दिया, फिर भी हम दोनों मध्यम लगाते हैं, यह अपवाद ही माना जायेगा न? कुछ दक्षिणी ग्रन्थों में ललित राग सूर्यकांत थाट में बताया है। उस थाट में धैवत तीव्र है।

अब हम इस राग पर विस्तृत रूप से विचार करते हैं। अपने यहां ललित राग एक षाड्व प्रकार माना जाता है, इसमें पंचम वर्जित करने का रिवाज इधर बहुसम्मत है। पूर्व के ग्रन्थों में ललित राग सम्पूर्ण लिखा हुआ दिखाई देता है। एक हिन्दू गायक ने भी मुझ से एक बार ऐसा ही कहा था, परन्तु हमें वह मत ग्राह्य नहीं। तो फिर फिलहाल हम अपने ललित के स्वर "सा रे॒ ग म म॑ ध नि सां" यही मानकर आगे बढ़ते हैं। इस सप्तक के मध्यम पर ऐसे टुकड़े होंगे 'सा रे॒ ग, म' 'म॑ ध नि सां' यह टुकड़े ठीक तरह से व्यक्त हों तो ललित राग दिखाई देगा। इसके कोमल मध्यम का खुला उच्चारण होते ही बहुत कुछ काम बन जायगा।

प्र०—ललित में वादी स्वर मध्यम ही समझा जायेगा न?

उ०—हां, इस विषय में कहीं भी मतभेद दिखाई नहीं देता, केवल इस मध्यम से ही इस राग का गाना बहुत सरल हो गया है। इस मध्यम की सहायता से कितने ही सायंगेय टुकड़े यदि जोड़ दिये जांय तो भी राग का स्वरूप लुप्त नहीं होता। इस व्यस्त

मध्यम के आगे किसी भी दूसरे स्वर का प्रकाश नहीं पड़ सकता। ललित, उत्तराङ्ग प्रधान राग होने से इसके पूर्वाङ्ग का कोई महत्व नहीं, ऐसा कोई कह सकता है; परन्तु कोमल मध्यम का वैचित्र्य बिल्कुल स्वतन्त्र है, इसमें भी सन्देह नहीं। 'नि़ रे॒ ग म, म, म मं म ग' इतने स्वर आये कि श्रोतागण ललित की ओर आकर्षित हुए। उत्तराङ्ग प्रधान रागों में आरोह करते समय अनेक बार रिषभ दुर्बल लिया हुआ मिलता है, इस नियम को कोई-कोई ललित में भी लगाते हैं और 'नि़ सा, ग म, मं म ग' ऐसा करते हैं; परन्तु मध्यम की इतनी बड़ी सहायता के कारण आरोह में रिषभ आने से कोई विशेष हानि नहीं होती। ललित में तुम्हारे लिये याद करने योग्य टुकड़े ये हैं:--नि़ रे॒ सा, ग म, अथवा नि़ रे॒ ग म, म, और मं ध, मं म, यह दोनों टुकड़े इस राग की जान हैं। ग म मं म इस तरह बीच-बीच में मध्यम जोड़ने से राग रक्ति अधिकाधिक बढ़ती जाती है। अब छोटी-छोटी तान बनाकर देखो। इस राग को मंद्र स्थान में बहुत नीचे ले जाने की आवश्यकता नहीं।

प्र०--अच्छा देखिये कोशिश करता हूं:--

नि़ सा, ग, म, ग, रे॒ सा, रे॒ ग म, नि़ रे॒ ग म, ग, म मं ग म, रे॒ ग, मं ग, रे॒ सा; नि़ सा, ध़ नि़ सा, ग म, मं म, रे॒ ग, म, ग म मं ग म, रे॒ ग, नि़ रे॒ ग म, ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा; नि़ रे॒ ग म, रे॒ ग म, सा रे॒ ग म, मं म, ग, मं ग रे॒ सा। ऐसा विस्तार चलेगा क्या ?

उ०--यह विस्तार श्रोताओं को बहुत कुछ ललित का सा ही मालूम पड़ेगा। संध्याकालीन रागों में ऐसा खुला कोमल मध्यम लगने वाला राग गौरी के एक प्रकार के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है, इसलिये श्रोताओं को प्रातर्गेय प्रकारों में ही उसे ढूंढना पड़ेगा और ऐसा करने से उन्हें स्वयं ललित की ओर ही आना पड़ेगा।

प्र०--किन्तु गौरी में पंचम है और धैवत कोमल है ?

उ०--सो तो ठीक है, पर हम अभी मध्यम के निकट तो पहुंचे ही नहीं। पहली बात तो यह है कि गौरी में 'म, रे॒ ग, म ग, रे॒, सा' ऐसा हम करते हैं और दूसरी बात 'नि़ रे॒ ग म, मं म, ग' ऐसे स्वर हम गौरी में नहीं लेते।

प्र०--उत्तराङ्ग में यह राग कैसे संभाला जाता है ?

उ०--वहाँ धैवत और मध्यम की सङ्गति सम्हालना बड़ी कुशलता का कार्य है 'नि़ रे॒ ग, म, मं म, ग' यह स्वर गाकर आगे 'मं ध, मं म, ग' ऐसा टुकड़ा कुछ सावकाश रीति से कहें तो ललित का स्वरूप उत्पन्न होगा। 'ध, मं म ग' यह स्वर मींड से कहें तो परिणाम और भी संतोषजनक होगा। कुछ मार्मिक व्यक्ति 'मं ध, नि ध, मंध, मं म, ग, इसे ललित की एक पकड़ ही समझते हैं। मुझे मालूम है कि प्रसिद्ध गायक अपने शिष्यों को ललित की तालीम देते समय उपरोक्त तान खास तौर पर ध्यानपूर्वक सिखाते हैं, अतः इस तान को तुम मेरे साथ बारम्बार गाकर अच्छी तरह बैठालो।

प्र०--तो फिर हम ललित का उठान 'नि़ सा, ग, म, म ग, म मं म म, म ग, रे॒ सा, नि़ रे॒ सा; नि़ रे॒ ग, रे॒ ग म, ग म मं ग, म, ग, मं ध, मं म, ग, मं ग रे॒ सा; नि़ सा,

ध़ नि़ सा, ग, म, ध मं ध, मं म ग, रे॒ ग, मं ग रे॒ सा, नि़ सा ग म' ऐसा साधारण रक्खें तो भी चल सकता है, ऐसा हमारा विश्वास है ?

उ०—कोई हानि नहीं। ललित में निषाद का गौणत्व स्वमेव आ जाता है।

प्र०—वह तो आयेगा ही, क्योंकि 'ध मं ध' यह विचित्र सङ्गति उत्तराङ्ग में है। हम तो समझते हैं कि निषाद को आगे लाने का प्रयत्न यदि कोई करेगा भी तो थोड़ा बहुत सोहनी का अङ्ग श्रोताओं को दिखाई देने लगेगा ?

उ०—तुमने ठीक कहा। इतनी जोखिम तो वहां है ही, इसीलिये अपने कुशल गायक 'मं ध नि सां, रें॒ सां, नि ध' यह प्रकार यथासम्भव ललित में नहीं रखते।

प्र०—तो वहां वे कैसा करते हैं।

उ०—इस तरह करते हैं:—'मं ध सां, सां, रें॒ नि ध, मं ध, मं म ग, मं ग रे॒ सा'।

प्र०—तो फिर ललित राग के दोनों अङ्गों में स्वतन्त्र पकड़ है, ऐसा मानकर चलने से कोई हानि नहीं दिखाई देती। पूर्वाङ्ग में यदि 'नि़, रे॒ ग, म, मं म ग' इस टुकड़े से राग व्यक्त होता है तो उत्तरांग में 'सां, रें॒ नि ध, मं ध, मं म' इस तान से भी वह प्रकट हो सकता है ?

उ०—हां ऐसा कहने में कोई हानि नहीं। कोई-कोई 'मं ध, मं, म ग' ऐसी युक्ति की पकड़ ललित के लिये रखते हैं, वह जिस-जिस स्थान पर आती है वहाँ बहुधा ललिताङ्ग होता है, ऐसा मानना अनुचित नहीं होगा।

प्र०—ललित का अन्तरा गायक कैसे शुरू करते हैं ?

उ०—उसे वे प्रायः ऐसे आरम्भ करते हैं:—ग, मं ध सां, सां रें॒ सां, गं रें॒ सां, नि सां, रें॒ नि ध, मं ध, सां, रें॒ नि ध, मं ध, मं म ग, आदि यह भाग वास्तव में बहुत सुन्दर दीखता है। मध्यम धैवत की सङ्गति जितनी गम्भीरता से लाई जा सके उतनी लाने का प्रयत्न गायक हमेशा करता है। पूर्वाङ्ग में 'नि़ रे॒ ग म, मं म ग' इस तरह से आरोह में रिषभ लगाने का व्यवहार है, यह मैं पहले बता ही चुका हूं। मेरे गुरु जी 'नि़ रे॒ सा, ग, म, मं म ग' ऐसा कृत्य पसन्द करते थे; किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि प्रचार का निरादर करके वैमनस्य बढ़ाना उचित नहीं, इसलिये वह रिषभ पूर्वाङ्ग में कुछ क्षम्य भी हो सकता है। कुछ सूक्ष्म स्वरदर्शी बीनकारों का कहना है कि 'ललित का धैवत न तीव्र है न कोमल' साथ ही वे यह भी कहते हैं कि इस प्रकार का धैवत गायकों को विशेष रूप से तलाश करने की आवश्यकता नहीं पड़ती वह तो मध्यम धैवत की सङ्गति में स्वतः ही अपने योग्य स्थान पर लग जाता है।

प्र०—चलो फिर झगड़ा मिटा ?

उ०—हां तो, मैंने पीछे कहा था कि ललित में कोई-कोई पंचम स्वर मानने को तैयार हो जाते हैं, सो तुम्हें याद होगा ही ? उनको अपना राग ललितपंचम, पंचम भटियार आदि पंचम स्वर लगने वाले रागों से पृथक करने में बहुत अड़चन पड़ती है।

प्र०—तो फिर उन्हें, अपने बचाव के लिये 'इसके चलन को देखो इसके उच्चार को देखो' ऐसा कहना पड़ता होगा ?

उ०—यह भी ठीक कहते हो, इसीलिये पंचम वर्ज्य करने का पक्ष हम पसन्द करते हैं। वह ठीक भी है और वैसा ही अपने यहां प्रचार भी है। क्षेत्रमोहन स्वामी ने ललित में पंचम स्वीकार करने का कारण ऐसा कहा है कि यदि ललित में पंचम वर्ज्य किया जायगा तो वसंत और ललित को अलग-अलग करने का साधन फिर कुछ भी नहीं रहता।

प्र०—वसन्त में 'मं ग' स्वरों की पुनरावृत्ति विलक्षण है और धैवत मध्यम की सङ्गति ऐसी नहीं है। क्या यह इन रागों को पृथक करने का एक महत्वपूर्ण साधन नहीं है?

उ०—इस झंझट में हम पड़ें ही क्यों? उनके कथन पर टीका-टिप्पणी करने का कार्य हमें उधर के ग्रन्थकारों पर ही छोड़ देना चाहिये। अपना वसन्त भी अलग है और अपना ललित भी निराला है। मि० बनर्जी ने उनके कथन पर जो समालोचना की है वह बिलकुल ठीक ही है, ऐसा हम नहीं मान सकते।

प्र०—बनर्जी क्या कहते हैं?

उ०—वे अपने 'गीतसूत्रसार' में एक जगह लिखते हैं:—

"हम जो यहाँ राग लक्षण दे रहे हैं अनेक स्थानों पर उनका मेल सङ्गीताध्यापक श्री युत क्षेत्रमोहन स्वामी महाशय के मत से नहीं मिलता। उनका 'विष्णुपुरी' मत है। बङ्ग देश में विष्णुपुर हिन्दुस्तानी सङ्गीत का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है, यह हम मानते हैं परन्तु उसी विष्णुपुर में आज की सङ्गीत-स्थिति निराली है। विष्णुपुर के प्राचीन सङ्गीत नियम आज के हमारे सङ्गीत नियमों से अनेक स्थानों पर मेल नहीं खाते। ऐसी स्थिति गोस्वामी की दृष्टि में भी आई और उन्होंने अपने मत की पुष्टि के लिये प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ-मतों का आश्रय लिया, किन्तु मेरा कहना यह है कि हमारे संस्कृत ग्रन्थ अर्थात् व्याकरणादिक शास्त्र कल्पतरु के समान हैं। जिसकी जैसी भावना या कामना होती है वैसा स्वरूप उसे ग्रन्थ द्वारा प्राप्त हो सकता है। 'सङ्गीतसार' में वर्णित अनेक रागों का ग्रन्थकर्त्ता ने प्राचीन संस्कृत आधार बताया है, परन्तु जिन रागों के सम्बन्ध में उन्हें वैसा आधार नहीं मिला, जैसे—यमन, बिभास, भूपाली, ककुभ, सोहनी, सहाना इत्यादि। इनके रूप लोगों को मान्य न हुए तो वहां स्वामी जी क्या करेंगे? प्राचीन ग्रंथों में सोमेश्वर का 'राग विबोध' बहुत आधुनिक है, ऐसा मैंने सुना है। सोमेश्वर का मत अपने वर्तमान सङ्गीत से बहुत मिलता है किन्तु गोस्वामी महाशय ने उसे एक ओर हटा-कर उससे भी प्राचीन ग्रन्थकारों का मत स्वीकार किया। हिन्दुस्तानी गवैये ललित में पंचम अवश्य ही वर्जित करते हैं, सोमेश्वर का भी मत ऐसा ही है; परन्तु स्वामी जी ने उन मतों को छोड़कर सङ्गीत दर्पण का मत प्रमाणिक माना क्यों कि वह मत उनके विष्णुपुर-मत से मेल खाता है। ललित में पंचम वर्ज्य करने से वसन्त को अलग कैसे किया जा सकेगा? यह उनके सामने एक बड़ी अड़चन आई। वस्तुतः वह अड़चन कुछ भी नहीं थी; कहां तो प वर्जित वसन्त और कहां प वर्जित ललित! इसी प्रकार 'सिंदूरिया' नामक एक राग जो पंजाब में विशेष प्रसिद्ध है और जिसको अपने यहां भूल से 'सिन्धुड़ा' कहते हैं उसके बारे में देखो। वह राग सिन्धु अथवा सन्धवी राग से भी बिल्कुल भिन्न है परन्तु स्वामी की समझ में वह भेद नहीं आया।

वे सिन्धु राग के आलाप की टीका में कहते हैं "वस्तुतः सिन्धु और सिन्धूरा इनमें बिलकुल अल्प भेद है"। ऐसे भ्रमवश उन्होंने सिन्धूरा का आलाप लिखने का प्रयत्न ही नहीं किया। 'सङ्गीत सार' में बिहाग, शंकरा, जेत, साजगिरी और मुल्तानी ऐसे कुछ रागों में 'कड़े निषाद' का व्यवहार बताया है यह उनकी भ्रांति है, ऐसा मैं पहले कह ही चुका हूं। प्राचीन सङ्गीत में 'कड़ी नि' का व्यवहार है और वह ठीक ही है क्यों कि उस समय शुद्ध नि और षड्ज में पूर्णान्तर होता था और अब अर्द्धान्तर है। आज का अपना शुद्ध निषाद वही प्राचीन तीव्र निषाद है। स्वामी ने अपने 'कंठ कौमुदी' नामक ग्रन्थ में तीव्र निषाद का व्यवहार कहीं भी नहीं किया। 'सङ्गीत सार' में 'शहाणा' राग के आलाप में 'ध' स्वाभाविक कहा है और इसी तरह यमन, हिण्डोल, हंबीर, यमनीपूरिया इत्यादि रागों का स्वाभाविक थाट बताया है। परन्तु 'कंठ-कौमुदी' में शहाणा में ध कोमल और उन यमनादिक थाटों का राग तीव्र मध्यम लगने वाला कहा है। इस तरह भिन्न-भिन्न स्थानों में उनके कथन में विरोधाभास होने से समझने में भ्रांति होती है क्यों कि ऐसा करने का वे कुछ कारण भी नहीं बताते। × ×"

आज का हिन्दुस्तानी सङ्गीत प्राचीन हिन्दू सङ्गीत से बिल्कुल पृथक होगया है। इस दृष्टिकोण से यह स्पष्ट है कि उसका व्याकरण भी नया होना चाहिये। अब और आगे मैं नहीं जाना चाहता। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि बनर्जी के मत पर किसी को आलोचना करने का अधिकार ही नहीं। उनसे भी बहुत भूलें हुई हैं परन्तु इस विषय में जाने की अभी हमें आवश्यकता नहीं। बनर्जी अपने ललित में पंचम वर्ज्य करते हैं और तीव्र मध्यम भी छोड़ते हैं; किन्तु हम तो दोनों मध्यम लगाते हैं।

प्र०—ललित में पंचम कैसा लगेगा "पमग" ऐसा सीधा स्वर-समुदाय कानों को कैसा मालूम होगा ?

उ०—जो बात तुमको नीरस लगती है वह प्राचीन विद्वानों को नीरस क्यों न लगेगी ? वे ऐसी सीधी तान नहीं लेते बल्कि वे पंचम और गंधार की मधुर सङ्गति करते हैं।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—अब तुम्हीं इस टुकड़े को देखो कैसा लगता है:—

नि़ सा, ग म, प म ग, रे॒ ग म, ध, म प ग, प ग रे॒ सा, रे॒ ग म। यह बुरा नहीं लगता। "मतभेदों से सङ्गीत की विचित्रता बढ़ती है" ऐसा जो लोग कहते हैं उसका भी कुछ अर्थ तो है ही, किन्तु गायक यदि उसे समझ कर गाये तभी उसकी प्रशंसा होगी। तुम अपने यहां का प्रकार अच्छी तरह गाकर फिर श्रोताओं को पंचम लगने वाला प्रकार सुनाओगे तो वे तुम्हारी प्रशंसा अवश्य करेंगे। तानपूरे का पहला तार जो पंचम में मिला हुआ रहता है उसे ललित राग गाते समय गायक लोग खास तौर पर मध्यम में मिलाते हैं।

प्र०—श्रोताओं को ललित में पंचम का भास न होने पावे इसीलिए वे ऐसा करते होंगे ?

उ०—हाँ, कारण तुमने ठीक बताया। परन्तु इस प्रकार तार बदलने से कभी-कभी विलक्षण परिणाम भी होता है।

प्र०—वह कैसा ?

उ०—तुमको अभी उतना अनुभव नहीं है, इसीलिए मेरे कथन का मर्म तुम्हारी समझ में जल्दी नहीं आ सकेगा।

प्र०—तो भी उसे बता दीजिए ? मैं बहुत ध्यानपूर्वक आपका कथन सुनूंगा।

उ०—अच्छा तो कहता हूँ:-पंचम का तार मध्यम में मिलाकर जो अनिष्ट परिणाम तुम टालना चाहते हो, फिर भी वह श्रोताओं को और कभी-कभी स्वतः तुम्हें भी स्पष्ट प्रतीत होता रहता है।

प्र०—वास्तव में यह रहस्य समझ में नहीं आया। हमको पंचम की आवश्यकता नहीं इसलिये हमने उसे तम्बूरे में से निकाल दिया तो भी वह श्रोताओं के कानों में पड़ेगा और उसे हम स्वयं भी सुनेंगे, यह कैसे सम्भव हो सकता है भला ?

उ०—यह चमत्कार मुझे तो अनुभव से विदित है ही परन्तु अच्छे-अच्छे गायकों ने भी अपना अनुभव मुझे ऐसा ही बताया, पर ऐसा होता क्यों है ? यह रहस्य समझने के लिये तुमको विशेष अड़चन पड़ेगी, ऐसी बात नहीं है।

प्र०—ऐसा होना किस प्रकार संभव है ?

उ०—ऐसा चमत्कार प्रायः मध्यम वादी वाले रागों में होता है। जिन रागों में पंचम वर्ज्य नहीं है उनमें उस ओर अधिक ध्यान नहीं जाता; परन्तु मध्यम वादी रागों में वैसा अवश्य होगा। मध्यम वादी रागों में मध्यम को व्यस्त अथवा खुला रखने के लिये हमारा प्रयत्न रहता है। प्रत्येक मिनट पर उस मध्यम को हम अनेक बार विभिन्न रीति से आगे लाते रहते हैं, उसके द्वारा स्वयं ऐसा परिणाम होने लगता है कि श्रोतागण उस मध्यम को ही षड्ज समझने लगते हैं और तनिक सी असावधानी में ही स्वयं अपने को भी कभी-कभी वैसा भ्रम होने लगता है, यह सचमुच एक विलक्षण और बड़ी मनोरंजक बात है।

प्र०—हाँ, अब आया ध्यान में। एक बार मनमें यह भान हुआ कि यह मध्यम षड्ज है, तो फिर ऐसा भी अवश्य भासित होता होगा कि षड्ज का तार पंचम में बज रहा है ?

उ०—शाबाश ! तुम ठीक समझे। मध्यम का पंचम तो षड्ज होगा ही। तानपूरे पर षड्ज के तीन तार होते हैं और किसी समय मध्यम स्वर षड्ज के रूप से मस्तिष्क में घुस गया तो जो विलक्षण प्रकार होता है उसे शब्दों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

प्र०—उसकी कल्पना हमको अब होती है। हम भी वैसा अनुभव करके देखेंगे; परन्तु यह तो बताइये कि फिर वह भ्रम हटाया कैसे जायगा ?

उ०—जब वैसा भ्रम होने लगे तो तुरंत मध्यम का परिमाण कम करदो और दूसरे अर्द्धान्तर में विस्तार करने लगो तो जो परिणाम वहाँ पहले उत्पन्न हो रहा था वह फिर

षड्ज का प्रकाश बढ़ जाने के कारण नहीं होगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि एक बार एक गायक ने मालकोंस गाते समय अपना तंबूरा बीच में ही रोक दिया और कहने लगा कि "ठहरिये ! मैं भीमपलासी में चला गया हूँ ऐसा मालुम पड़ता है"। अस्तु, अब हम अपने रागों की ओर लौटते हैं, आशा है मेरे कथन का अर्थ तुम्हारी समझ में आगया होगा।

प्र०—ललित में यदि हम पंचम स्वर लें तो अपने लोग उस प्रकार को कैसा कहेंगे ?

उ०—हाँ, यह भी एक मनोरंजक समस्या है। अपने यहाँ ललितपंचम नामक एक प्रकार है, ऐसा मैंने पहले कहा था, तुमको उसकी याद होगी ही ?

प्र०—हाँ, भैरव राग के थाट बताते समय आपने कहा था ?

उ०—ठीक है। तो अब प्रश्न यह उठता है कि ललित में यदि हम पंचम स्वर शामिल करें तो "ललितपंचम" राग हो सकेगा कि नहीं ? यह विषय वास्तव में विवाद-ग्रस्त है, अतः इसका विचार हम पंचम राग का वर्णन करते समय करें तो कैसा ?

प्र०—कोई हानि नहीं ! यदि आपको ऐसा करना अधिक सुविधाजनक प्रतीत होता है तो ऐसा ही करिये।

उ०—मैं समझता हूँ वैसा करना ही ठीक रहेगा। अस्तु, इस ललित के सम्बन्ध में तो अब विशेष कहने के लिये कुछ रहा नहीं। मैंने तुमको जो बातें बताई हैं उन्हें मोटे तौर पर इस प्रकार नोट करलो:—

ललित एक मारवा थाट का राग है और वह षाडव है, इसके आरोहावरोह में पंचम नहीं लगता। गायन समय रात्रि का अन्तिम प्रहर है, इसमें दोनों मध्यम लगते हैं। कोमल मध्यम इसका वादी स्वर है और वह जहाँ तहाँ खुला हुआ लगकर राग का रक्ति गुण बढ़ाता है। इस राग में दोनों मध्यम साथ-साथ जब लगते हैं तब यह राग बहुत खुलता है। धैवत की संगति इस राग में बड़ी आनंददायक होती है, इसे लगाते समय जैसे-जैसे मींड़ ली जायेगी वैसे-वैसे राग की गम्भीरता व मधुरता बढ़ेगी। यह राग उत्तरांग में प्रबल होने के कारण "रें नि ध, मं ध मं म, म ग" इस तान में स्पष्ट प्रगट होगा। इस तान में कोई-कोई "नि़ सा, ग रे सा, म, म मं म ग" अथवा नि़ रे ग म, मं म ग, अथवा नि़ सा म, मं म ग, अथवा नि़ सा ग, म, मं म ग, ऐसे स्वर समुदाय भी जोड़ देते हैं. परन्तु उत्तरांग की वह तान राग निर्णय स्पष्ट करेगी। इस राग में "ग, म, ध, सां" यह विश्रान्ति स्थान सुविधाजनक होंगे। मैंने यह भी कहा था कि मध्य रात्रि के आस-पास ललित राग एक बहुत ही विचित्र और स्वतंत्र रूप मालूम होता है; यह बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन राग है। इसके स्थायी व अन्तरा कैसे शुरू होते हैं और इनके चलन कैसे हैं, यह तुमको मालूम हो ही गया है।

प्र०—यह सब जानकारी हमको होगई। अब इस राग के विषय में यह बताना रह गया है कि अपने ग्रन्थकार इसके बारे में क्या-क्या कहते हैं ?

उ०—हाँ, अब हम यह भी देखते हैं:—

रत्नाकरे:—

टक्कभाषैव ललिता ललितैरुत्कटैः स्वरैः।
षड्जांशकग्रहन्यासा षड्जमंद्रा रिपोज्झिता ॥
धीरैर्वीरोत्सवे प्रोक्ता तारगांधारधैवता ॥

दूसरा प्रकार देखो:—

भिन्नषड्जेऽपि ललिता ग्रहांशन्यासधैवता ।

टक्क और भिन्न षड्ज इनका रूप अन्य ग्रन्थकार कैसा कहते हैं, सो तुमको मालूम ही है।

संगीतदर्पणे:—

रिपवर्ज्या च ललिता औडवा सत्रया मता।
मूर्छना शुद्धमध्या स्यात् संपूर्णा केचिदूचिरे।
धैवतत्रयसंयुक्ता द्वितीया ललिता मता ॥

इस व्याख्या के द्वारा 'सा ग मं ध नि सां' स्वर ललित के लिये उत्पन्न करने वाले पंडित भी मुझे मिले हैं।

स्वरमेलकलानिधौ:—

सग्रहसन्यासयुक्ता ललिता पंचमोज्झिता ।
षाडवा प्रथमे यामे गेया सा शोभनप्रदा ॥

इस राग को रामामात्य ने मालवगौड़ थाट में रक्खा है, इसलिये इसमें धैवत कोमल होगा।

रागविबोधे:—

उषसि तु पूर्णाऽपा व ग्र त्याद्या शुचिर्ललिता।

सोमनाथ भी इस ललिता का थाट मालवगौड़ मानता है, इसलिये धैवत का निर्णय पाठकों को ही करना होगा। पंचम सहित और पंचम रहित ऐसे दोनों प्रकार इस ग्रंथकार ने दिये हैं। कोई कहते हैं कि पंचम लगने वाले प्रकार को 'शुद्ध ललित' नाम देकर उसे प्रथक प्रकार माना जाय।

संगीतसारामृते:—

षहीना षाडवा टक्कभाषेयं ललिता प्रगे।
गेया मालवगौलीयान्मेलाज्जाता च सग्रहा ॥

यहाँ फिर टक्क भाषा कही है, उसे देखो। आगे ग्रन्थकार ऐसा कहता है:—

"अस्य रागस्यारोहावरोहयोः स्वरगतिरवक्रा। उदाहरणं। नि सा रे म ग रे। रे सा सा रे सा सा नि ध। म ध नि सा रे। रे म म ध। म ध नि सा। नि ध नि ध म

ग रे रे सा। नि सा रे सा नि ध। नि ध नि सा। इति उद्ग्राहप्रयोगः। ग म ग रे सा नि। अस्मिन् स्थाये। ध नि सा रे म ग। रे ग म ध नि सा नि ध म ग। ग म ध म ग रे सा। इति ठायप्रयोगः। म ग रे सा नि ध नि ध म म रे सा। इति गीतप्रयोगः। दक्षिण की ओर यह प्रयोग आजकल भी प्रचलित हैं। संगीत समयसार ग्रन्थ में 'ललिता' टकराग का एक अङ्ग मानी गई है। मेरी कापी में श्लोक की प्रथम पंक्ति अशुद्ध है किन्तु दूसरी ऐसी है:—

षड्जांशन्याससंयुक्ता ज्ञेया वोरे रिपोज्झिता।

प्र०—यह ग्रन्थकार रिषभ भी वर्ज्य करता है, यह भी तो विचारणीय है?

उ०—हाँ अवश्य। रात्रि के अन्तिम प्रहर के अनेक रागों के आरोह में रिषभ दुर्बल रहता है, यह मत तुमको बहुत गायकों का मिलेगा, पर इतनी बारीकी देखने वाले लोगों की संख्या अब कम होती जारही है, यह कहना ही पड़ेगा।

रागलक्षणे:—

मायामालवमेलाच्च जातो ललितनामकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमेवच।
आरोहेऽप्यवरोहे च पवर्ज्यं षाडवं तथा॥

सा रे॒ ग म ध॒ नि सा। सा नि ध॒ म ग रे॒ सा॥

सद्राराग चंद्रोदये:—

शुद्धौ सरी शुद्धपधैवतौ चेन्मनामधेयो लघुपूर्वकश्च।
लघ्वादिकौ षड्जकपंचमौ चेद्विशुद्धरामक्यभिधस्य मेलः॥
सांशग्रहांतो ललितोऽपरोऽसौ सप्तस्वरः प्रातरसौ विगेयः॥

यह लक्षण मैं तुमको विशेष रूप से ध्यान में रखने के लिये कहूँगा। इसमें मध्यम तीव्र है, जो एक महत्वपूर्ण तथ्य है। मैंने कहा था कि कई ग्रन्थकार ललित में कोमल मध्यम लेते हैं, यह बात तुम्हें याद होगी ही।

प्र०—पर यहाँ "अपरः" ऐसा क्यों आया है?

उ०—पुण्डरीक ने "शुद्ध ललित" नामक एक प्रकार मालवगौड़ थाट में कहा है, इसलिये 'अपरः' कहना ठीक ही है। शुद्ध ललित का लक्षण उसने ऐसा कहा है:—

सांशांतिकः सग्रहकः परिक्तः
प्रातस्तु शुद्धो ललिताभिधानः॥

पुण्डरीक ने रागमाला में क्या लिखा है सो देखो—

भैरवः शुद्धललितः पंचमः परजस्तथा ।
बंगालश्चेति पंचैते शुद्धभैरवसूनवः ॥
ललितश्च विभासश्च सारंगस्त्रिवणस्तथा ।
कल्याण इति पंचैते देशिकारस्य सूनवः ॥

अब लक्षण सुनोः—

सांशाद्यन्तः प्रवीणः शुचितरललितो मारवीमेलजातो
भाले धत्ते सुबिंदुं कनकसमनिभं शुभ्रवस्त्रं दधानः ॥
गौरांगश्चंपमल्लीकुसुमभरशिराः पंकजाक्षो विलासी
कामी तांबूलहस्तः प्रतिदिनमुषसि प्रार्थकः खंडितानाम् ॥

यह शुद्ध ललित का वर्णन हुआ। अपने यहाँ के कुछ गायक "ललित" व "ललत" इन्हें भिन्न-भिन्न राग मानते हैं, तो इनकी अपेक्षा 'शुद्धललित' और 'ललित' इन्हें प्रथक मानना अधिक ठीक होगा।

ललित का लक्षण रागमाला में ऐसा कहा हैः—

देशीमेले प्रजातः स्वरसकलयुतः धत्रिकश्चंचलाक्षः
हस्ते पद्मं दधानः शुचिवसनरतः श्लिष्टश्रंगारसर्वः ॥
मुग्धस्त्रीणां समक्षे हसति सकपटं पूर्णतांबलवक्त्रः
कामी कामावतारः कुटिलसुललितो भाति धृष्टः प्रभाते ॥

मारवी थाट "अनलगतिनिग" कहा है और देशी मेल "गान्धारान्त्येंदुगौ" लिखा है सो देखो!

अनूपसङ्गीतरत्नाकरे—

संपूर्णः सत्रिकः शुद्धललितः प्रातरिष्टदः ।

यह प्रकार भावभट्ट ने गौरी थाट में रक्खा है, अर्थात् वह भैरव थाट ही हुआ।

रागमाला—

है सत्रयसों जुतसदा औडव रिप घट जानि ।
ललित प्रातहि गाइये कोविद कहे बखानि ॥

प्र०—अपने दसों थाटों में रिप वर्जित करने का प्रयत्न करके कोई देखे तो उसे दस मधुर राग प्राप्त होंगे, ठीक है न?

उ०—यह तो स्पष्ट ही है। हिंडोल, मालकोंस, दुर्गा इत्यादि प्रकार ऐसे ही हैं और कुछ नये भी निकलेंगे। एक गायक ने "नि़ सा ग॒ म ध नि॒ सां" ऐसी बागेश्वरी गाई थी, वह मैंने सुनी थी, "नि़ सा ग॒ म॑ ध॒ नि सां" यह प्रकार टोड़ी का होगा।

जहाँ अड़चन पड़े वहां अवरोह में या "मनाक्स्पर्शः" के नाते विवादी स्वर, अङ्ग नियम सम्हालते हुए लगाया जा सकता है। पंचम स्वर वर्जित किया हुआ किस समय अच्छा नहीं लगता, यह भी देखना पड़ेगा।

प्र०—यह सब नियम हम भलीभांति समझ गये, अब आगे चलने दीजिये ?

उ०—हां,

क्षेमकरणकृत राग मालायाम्—

धत्ते ललाटे तिलकं च पीतं शुभ्रांबरश्चंपकपुष्पमालः ।
तांबूलहस्तो ह्यतिगौरदेहो विलासिवेषो ललितः प्रदिष्टः ॥

सङ्गीतसम्प्रदायप्रदर्शिन्याम्—

ललिता सग्रहा प्रातर्गेया पंचमवर्जिता ॥

अब दूसरा एक महत्वपूर्ण आधार कहता हूं। लोचन पंडित लिखता है:—

धनाश्रीस्वरसंस्थाने धनाश्रीर्ललितस्तथा ।

यह श्लोक तुम्हारा परिचित ही है। धनाश्री मेल उसका ऐसा है:—

ऋषभः कोमलो गस्तु द्वे श्रुती मध्यमस्य चेत् ।
गृह्णाति द्वे श्रुती मश्च पंचमस्य विशेषतः ॥
धैवतः कोमलो निश्च षड्जस्य द्वे श्रुती तथा ॥

अर्थात् यह पूर्वी थाट हुआ। यहाँ ललित में तीव्र मध्यम है, यह ध्यान में तुम रक्खोगे ही। धैवत सब ग्रन्थकार कोमल लगाते हैं। अपने यहाँ तीव्र धैवत का प्रचार है, यह कोई अस्वीकार नहीं करेगा।

प्र०—कोई कहेगा "न तीवर न कोमल" ऐसा धैवत लगाओ तो झगड़ा मिटा।

उ०—हाँ, ऐसा भी कोई कह सकता है। नवीन श्रुति व्यवस्था में षडज पहिली श्रुति पर आ जाता है। उसके निकट चौथी श्रुति पर २७० का रिषभ होगा और इसी प्रकार ४०५ का धैवत पंचम के आगे चौथी श्रुति पर जायगा। अर्थात् २६६⅔ रे और ४०० ध, इन ध्वनियों के स्थान हो सकते हैं। यथा:—

एनयैव व्यवस्थित्या ह्युत्पन्नः स्वरमेलकः ।
कनकांगीतिसंप्रोक्तः कर्नाटकीयकोविदैः ॥
ग्रंथानां तत्र चाद्यानां शुद्धमेलो भवेदसौ ।
इति सर्वेऽपि जानंति मर्मज्ञा लक्ष्यवेदिनः ॥
तयैव हि व्यवस्थित्या शुद्धमेलः सुसाधितः ।

हरप्रियसमाख्यातो ह्यहोबलादिपंडितैः ॥
हिंदुस्थानीयपद्धत्यां श्रुतिक्रमविपर्ययात् ।
शंकराभरणाख्यातो मेलः शुद्धः सुनिश्चितः ।
अत्र मेले मतः षड्जः प्रथमश्रुतिमाश्रितः ॥
ग्रन्थेषु लक्ष्यते सोऽपि चतुर्थ्यां स्थापितो बुधैः ॥

अपने यहाँ तीव्र धैवत किस प्रकार प्रविष्ट हुआ होगा, उसकी बाबत अब कैसे कहा जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर तुम्ही को देना चाहिए, ऐसा भी मैं नहीं कह सकता।

प्र०—क्षेत्रमोहन स्वामी ने अपने ललित का उदाहरण कैसा दिया है?

उ०—वह ऐसा लिखते हैं:—

नि़ सा नि़ सा रे॒ ग म, म म म, प ग, प ग, प ग, सा रे॒ सा, नि़ नि़ सा, रे॒ ग प ग सा ग रे॒ सा। ग म मं ध म ध ध नि सां, सां, सां नि नि सां, नि रें॒ गं पं गं, सां, गं रें॒ सां, इ०

Capt. willard ने ललित के अवयव देशी, विभास व पंचम अथवा देशी व विभास कहे हैं।

प्रतापसिंह ने हिंदोल की रागिनी ललित का वर्णन ऐसा किया है:—शास्त्र में तो यह पाँच सुरन सों गायो है। स ग प ध नि सा। यातें औडव है। अथवा सा रे ग म प ध नि यातें सम्पूर्ण है। और कोई याको आरम्भ धैवत सों कहते हैं। ध नि सा ग प ध। याको सूरज के उदय पहिले एक घड़ी में गाइये। रात के चौथे पहर में चाहो तब गावो। सङ्गीतदर्पनसें ग्रहांशन्यास षड्ज। आलापचारी। सा रे॒ ग म, ग म, ध॒, म। ध॒ प म, ग म ग। रे॒, नि़ रे॒ ग रे॒ सा। भैरव पुत्र 'ललित' का जो वर्णन दिया है उसमें आलापचारी अलग नहीं बताई, परन्तु शास्त्र में ऐसा वर्णन है—"शास्त्र में तो यह पांच सुरनसों गायो है। सा ग म ध नि सा। याको सूर्य के उदयसमे गावनो। और दिन के प्रथम पहर में चाहो तब गावो"।

प्र०—अब हमें प्रचलित स्वरूप का आधार बताइये?

उ०—अच्छा, वह भी कहता हूं:—

मारवामेलने गीता रागिणी ललिताऽधुना ।
आरोहे चावरोहेऽपि पंचमेन विवर्जिता ॥
विश्लिष्टमध्यमस्तस्यां कस्य नो द्रावयेन्मनः ।
संगतिर्मधयोर्नित्यमपूर्वां रक्तिमावहेत् ॥
शुद्धमध्यमवादित्वं सर्वत्र बहुसंमतम् ।
अमात्यत्वं भवेत्षड्जे शास्त्रोक्तनियमागतम् '॥

उत्तरांगप्रधानत्वे तारषड्जविचित्रता ।
अत्रापि लक्षिता तज्ज्ञै रजन्यां प्रहरेंऽतिमे ॥

कल्पद्रुमांकुरेः—

गीतांतेऽसौ भवति ललितः कोमलेनर्षभेण
युक्तस्तीव्रैस्तु ग म ध नि भिः कोमलेनापि मेन ॥
मांशः षड्जोऽत्र तु सहचरः पंचमो वर्ज्यतेऽस्मि-
स्तुर्ये यामे निशि सुमतिभिर्गीयते मंगलार्हः ॥

चन्द्रिकायाम्ः—

मृदू रिनिंधगास्तीव्रा मद्वयं पंचमो न हि ।
समसंवादिवादी च गीतांते ललितः शुभः ॥

चंद्रिकासारः—

द्वै मध्यम कोमल रिखब पंचम सुर बरजोइ ।
समसंवादीवादितें ललत राग शुभ होइ ॥

विनोद्कार ललित में धैवत कोमल लगाता है। और मध्यम दोनों मानता है। वह व्यवहार मैंने तुम्हें बताया ही है। उसका शास्त्राधार 'कल्पद्रुम' में ऐसा दिया है:—

निषादांशगृहं न्यास क्वचिन्मध्यम ईरितः ।
संपूर्णा ललिता प्रोक्ता हेमंततौं प्रगीयते ॥
हिंदोलपंचमं मिश्रः वसंतः स्वरसंयुताः ।
ललिता जायते विद्वन् प्रातःकाले प्रगीयते ॥

ऐसा शास्त्रीय विवरण देकर आगे उसने जो प्रत्यक्ष रूप दिया है वह अच्छा है, किन्तु उसे यहां बताने की आवश्यकता नहीं।

प्र०—अब यह राग हमको थोड़ा सा गाकर दिखा दीजिये, बस।

उ०—अच्छा, सुनोः—

ललित—त्रिताल

नि़ सा ग रे॒ । सा ऽ नि़ सा । ग ऽ म ऽ । म मं म ग ।
×
ग ग मं ध॒ । मं ध॒ सां ऽ । नि ध॒ ऽ मं । ध॒ ध॒ सां ऽ ।
सां ऽ नि रें॒ । नि ध॒ मं ध॒ । सां ऽ मं ध॒ । ऽ मं म ग ॥

अन्तरा—

मं	ध	मं	ध	। सां	ऽ	सां	ऽ	। सां	ऽ	सां	ऽ	। नि	रें	सां	ऽ	।
								×								
सां	ऽ	नि	ध	। मं	ध	सां	ऽ	। नि	ध	नि	ध	। मं	ध	ऽ	मं	।
म	ऽ	म	ग	। नि	ध	मं	ध	। ऽ	मं	ग	मं	। ग	रे	सा	ऽ	।
सा	सा	म	ग	। मं	ध	सां	ऽ	। रें	नि	ध	नि	। ध	मं	म	ग	॥

ललित—त्रिताल.

नि	रे	ग	रे	। सा	ऽ	नि	रे	। ग	ग	म	म	। म	मं	म	ग	।
म	ग	मं	ध	। मं	ध	सां	ऽ	। रें	नि	ध	नि	। ध	मं	म	ग	।

अन्तरा—

म	ग	म	ध	। ऽ	मं	ध	सां	। नि	रें	सां	ऽ	। गं	रें	सां	ऽ	।
रें	नि	ध	नि	। ध	मं	ध	सां	। नि	ध	मं	ध	। ऽ	मं	म	ग	॥

एक गायक ने अपना प्रकार इस तरह गाकर दिखाया था:—

ललित—झंपाताल

म	ग	। रे	सा	रे	। ग	ग	। म	ऽ	म	।
×										
म	ग	। मं	धु	मं	। नि	धु	। मं	धु	मं	।
म	ग	। मं	धु	नि	। सां	ऽ	। नि	रें	सां	।
रें	नि	। ध	नि	ध	। मं	धु	। मं	म	ग	।
				×						

अन्तरा—

ग	ग	। मं	धु	मं	। सां	ऽ	। नि	रें	सां	।
नि	रें	। गं	रें	सां	। रें	नि	। धु	नि	धु	।
मं	धु	। नि	धु	मं	। ग	मं	। ग	रे	सा	।
रें	नि	। धु	नि	धु	। मं	धु	। मं	म	ग	॥

ललित का साधारण चलन ऐसा होगा—ग, रे सा, नि रे ग, म, म, मं म ग, मं ध, मं ध, ध, मं म ग, ग, मं ध, नि ध, मं ध, मं म ग, मं ग रे सा, नि रे ग, म; ग, मं ध सां, सां, नि रें सां, नि रें गं रें सां, रें सां, नि, रें नि ध, मं ध सां, रें नि ध, नि ध, मं ध, मं, म, मं गं, रें सां, रें नि ध, मं ध, सां, नि ध, मं ध, मं म, म, ग, मं ग रे सा, नि, रे ग, म।

प्र०—अब कौनसा राग लेंगे ?

———

राग पंचम

उ०—अब हम "पंचम" राग पर विचार करेंगे। यह राग अपने यहां बहुत प्राचीन माना जाता है। इसका वर्णन अपने कई ग्रन्थकारों ने किया है। पंचम के भिन्न-भिन्न प्रकार अपने संस्कृत ग्रन्थों में दिखाई पड़ते हैं। जैसे—शुद्ध पंचम, पूर्ण-पंचम, ललितपंचम, हिंडोलपंचम, दिव्यपंचम, कोकिलपंचम, भूपालपंचम, आम्रपंचम, अधिपंचम, धातुपंचम, भिन्नपंचम, मालवपंचम, गांधारपंचम, वसन्त पंचम इत्यादि। यह न समझना कि आजकल यह सभी प्रकार अपनी हिन्दुस्थानी पद्धति में प्रचलित हैं, साथ ही हम यह भी नहीं कहते कि हमारे यहां पर पंचम राग बिलकुल अप्रसिद्ध है। अपितु यह राग अपने देखने में हमेशा नहीं आता। अपने गायक इस राग को भिन्न-भिन्न तरह से गाते हुए पाये जाते हैं। गायकों के भिन्न-भिन्न घराने होने के कारण ऐसा होना स्वाभाविक भी है। 'पंचम राग के सम्बन्ध में जो दो-एक खास मतभेद ध्यान में रखने योग्य हैं, उन्हें अब मैं बताऊँगा। एक महत्वपूर्ण तथ्य तुम यह ध्यान में अवश्य रखना कि पंचम में कई गायक थोड़ा बहुत ललितांग सम्मिलित करते हैं।

प्र०—यानी वे दोनों मध्यम लगाते होंगे, ऐसा प्रतीत होता है ?

उ०—हां, प्रातःकाल के समय में यह अङ्ग बहुत ही स्वतन्त्र और विचित्र प्रतीत होता है, ऐसा मैं कह ही चुका हूँ। यह अङ्ग लाना हो तो "नि़ सा, म, म, म, ग" यह टुकड़ा जीवभूत समझकर लगाना ही चाहिए।

प्र०—पंचम राग भिन्न-भिन्न प्रकार से सुनने में आयेगा, ऐसा आपने कहा था, तो प्रचार में बहुधा कौनसे प्रकार दिखाई देंगे ?

उ०—कोई पंचम राग में दोनों मध्यम लगाते हैं और पंचम स्वर वर्जित करते हैं। कोई दोनों मध्यम लगाते हैं; परन्तु पंचम स्वर वर्जित नहीं करते और धैवत कोमल रखते हैं। कोई-कोई दोनों मध्यम, पंचम तथा तीव्र धैवत लगाते हैं। कोई दोनों मध्यम लगाकर रिषभ छोड़ते हैं। कोई रिषभ और पंचम यह दोनों स्वर वर्जित मानते हैं और कोई केवल रिषभ छोड़ते हैं, यह बड़ी मनोरंजक बातें हैं, किन्तु इनमें से कुछ बातें गुणीजनों के लिये महत्वपूर्ण भी हैं।

प्र०—वे कौनसी ?

उ०—गाये जाने वाले प्रचलित प्रकारों में जो संधिप्रकाश रूप हमें दिखाई देते हैं, उन रागों को अधिकतर गायक प्रातःकालीन मानते हैं। रे कोमल और ग तीव्र हुआ तो फिर धैवत कैसा भी हो वह चल सकता है। इस राग में बहुधा मध्यम प्रधान होने से धैवत राग हानि नहीं कर सकता। मैंने कहा ही था कि इस समय ललितांग बहुत ही प्रबल होता है और कोमल मध्यम जहां-तहां अपना प्रभाव दिखाने लगता है। मुझे याद है कि एक गायक ने मुझ से यह भी कहा था कि इन प्रातःकालीन रागों को "गमनश्रम" अथवा मारवा थाट" में रखने की अपेक्षा सूर्यकान्त थाट में रखना अधिक

सुविधाजनक होगा। परन्तु अपने यहां इस थाट का प्रचार नहीं है तथा राग में दोनों मध्यम आते हैं, इसलिये थाटों का उलटफेर करने की आवश्यकता नहीं है। प्रभातकाल में तीव्र मध्यम निर्बल होता जाता है, इसे हम अस्वीकार नहीं करते। कोमल मध्यम प्रबल होने से पंचम स्वर का अभाव रक्तिहानि न करके राग वैचित्र्य को ही बढ़ाता है। अच्छा, अब पंचम के जो प्रकार हम पसन्द करने वाले हैं उनको बताता हूँ:—

प्र०—हां, उन्हें ही मैं पूछने वाला था।

उ०—तो अब ध्यानपूर्वक मेरे कथन को सुनो! पंचम राग हम दो प्रकार का स्वीकार करेंगे, जिनमें पहिला प्रकार ऐसा है:—

मारवामेलके जातः पंचमो लोकविश्रुतः।
संपूर्णो मध्यमांशोऽपि नक्तं यामेऽतिमे ततः॥
उत्तरांगप्रधानोऽयं द्विमध्यमविभूषितः॥

प्र०—अर्थात् इस प्रकार में मारवा थाट के सभी स्वर हैं और दोनों मध्यम हैं, ऐसा मानें? पंचम स्वर आने से सोहनी और ललित तो स्वतः ही दूर होगये, अब रहगयी परज-बसंत की उलझन, ठीक है न?

उ०—पहिली बात तो यह है कि परज में धैवत कोमल है और फिर अपने इस पंचम में ललितांग नहीं है।

मुक्त्वान्मध्यमस्यात्र ललितांगं परिस्फुटम्।

तब परज की ओर तो देखना ही नहीं है। बसन्त दो प्रकार से गाते हैं, ऐसा मैंने कहा था। परन्तु तीव्र धैवत और दोनों मध्यम लगाकर जो इसे गाते हैं वे इसमें पंचम वर्ज्य करते हैं और जो पंचम लगाकर गाते हैं, वे कोमल धैवत रखते हैं। मध्यम, गांधार की पुनरावृति तथा सङ्गति आदि सिद्धान्त तो अलग ही रहे। उत्तरांग प्रधान दूसरा राग तुमको मैंने 'विभास' बताया था।

प्र०—उसका पंचम से मिल जाने का कोई भय नहीं, क्योंकि उसमें कोमल मध्यम बिलकुल नहीं है और उसका धैवत कोमल है।

उ०—ठीक है। तो फिर अब तुम्हारा यह पंचम प्रकार कालिंगड़ा, परज, बसंत, सोहनी, विभास और ललित इनसे तो भिन्न ही कहा जायगा। भटियार, भंखार अभी तुमको मैंने बताये नहीं, अतः इनके विषय में अभी हम नहीं बोलेंगे। अस्तु, पहला पंचम तो यह हुआ, अब हम दूसरा प्रकार अपने संग्रह में रखना चाहते हैं, इसमें पंचम स्वर वर्जित है और थोड़ा सा ललितांग है।

प्र०—तो फिर ललित से उसके मिलने की भ्रान्ति नहीं होगी क्या?

उ०—यदि वह कुशलतापूर्वक नहीं गाया जायगा तो वैसी भ्रान्ति हो सकती है। परन्तु इसके लिये अपने गायक एक युक्ति बताते हैं—

प्र०—वह कौन सी

उ०—वे कहते हैं कि ललित के आरोह में रिषभ लगाने की स्वतन्त्रता हो और पंचम राग के आरोह में यह स्वर न लगाया जाय! दूसरे गायक इससे भी बढ़कर कहते हैं कि पंचम में रिषभ बिल्कुल छोड़ दो, तो संशय ही मिट जाय।

प्र०—तो फिर आप क्या करेंगे?

उ०—हम अवरोह में रिषभ दुर्बल रखेंगे। अर्थात उक्त दोनों मतों से कुछ कुछ मिलकर चलेंगे।

प्र०—इस पंचम का इकट्ठा चलन कैसा मालुम होता है?

उ०—वह कुछ कुछ सोहनी जैसा अथवा किसी के मत से हिन्दोल जैसा दिखाई देगा। सोहनी और हिन्दोल का उत्तरांग प्रायः एक सा होता है, यह तुम्हें मालुम ही है। सोहनी में निषाद अधिक स्पष्ट है और हिन्दोल में धैवत अधिक स्पष्ट है, यह इन रागों में परस्पर भेद है।

प्र०—तो फिर यह कहना चाहिए कि यह पंचम राग एक तरह से सोहनी और ललित का मिश्रण ही है?

उ०—चाहो तो ऐसा कह सकते हो। कोई यह भी कहेगा कि यह हिन्दोल और ललित का मिश्रण है। कुछ भी सही, तुम्हारी समझ में यह राग आ जाना चाहिए तो बस। अस्तु, अब हम आगे चलते हैं:—

सोहनी का प्रसिद्ध रूप "सां, नि ध, मं ध नि सां, नि ध, ग" यह है। और ललित का टुकड़ा जो इतर रागों में शामिल किया जाता है, वह ऐसा है:— "नि़ सा, म, म, म मं म ग," तो अब इन दोनों का ऐसा योग कर देना चाहिए कि वह उक्त दोनों रागों से बिल्कुल अलग मालुम पड़े।

प्र०—वह कैसे किया जायगा?

उ०—मैं करके दिखाता हूं, देखो:—

मं ध सां, सां सां, नि ध, मंध मंग, मं ग रे॒ रे॒ सा, सा सा म, म, म मं म ग, मं ध सां, सां, सां, नि ध। यहां पर मैं सोहनी युक्तिपूर्वक दूर करता हूँ और ललित भी नहीं होने दूंगा:—"रें॒ नि ध, मं ध, मं म ग" यह ललित का भाग याद है न? इसे इस पंचम राग में न ले आना। इससे भी स्वतन्त्र रूप रखना हो तो रिषभ वर्जित करो तथा दोनों मध्यम अलग-अलग लगाओ।

प्र०—इसमें किसी को मारवा का भाग दिखाई नही देगा क्या?

उ०—नहीं मारवा पूर्वाङ्ग वादी है, उसका उत्तराङ्ग इतना प्रबल कैसे होगा? "ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒ सा" यह तान बिल्कुल निराली नहीं लगती क्या? उत्तरांग में यदि "मं ध सां, नि ध मं ध," ऐसा प्रकार करना पड़े तो उस तान का फौरन ही

"मं ध मं ग रे़, ग मं ग रे़, ग रे़ सा" ऐसा भाग मारवा में जोड़ देना होगा। मारवा में कोमल मध्यम नहीं है, यह तुम जानते ही हो। "मं ध सां, सां नि ध तथा मं ध सां, रें नि ध ये टुकड़े क्रमशः सोहनी और मारवा राग का संकेत करते हैं, ऐसा मैंने कहा ही था।

प्र०—पंचम राग का अन्तरा कैसे लेंगे ?

उ०—तुम एक छोटी सी यह सरगम याद करलो:—

झम्पाताल

मं ध । सां ऽ सां । सां ऽ । नि नि ध ।
×
मं ध । मं ग मं । ग ग । सा ऽ सा ॥
सा सा । म ऽ म । ग ग । म ग ग ।
मं ध । सां ऽ सां । नि ध । नि मं ध ॥

अन्तरा

मं ध । सां ऽ सां । सां सां । गं गं सां ।
×
सां ऽ । गं गं मं । गं गं । सां ऽ सां ॥
मं मं । गं गं मं । गं गं । सां ऽ सां ।
मं ध । सां ऽ सां । नि ध । नि मं ध ॥

प्र०—इस रूप में हमें हिन्दोल का भाग विशेष दिखाई देता है, यदि इसमें ललित का वह टुकड़ा न होता तो इस प्रकार को हिन्दोल ही कहा जाता।

उ०—तुम्हारा कहना यथार्थ है, परन्तु यह प्रकार मैंने प्रत्यक्ष सुना हुआ ही तुमको बताया है। हिन्दोल की छाया कम करने के लिये कोई-कोई अन्तिम चरण में मं ध। सां-सां। सां-। नि ध नि। ऐसा करते हैं।

प्र०—तो मालूम होता है कि वहाँ ऐसा करके सोहनी का आभास श्रोताओं को होने देते हैं ?

उ०—हाँ। हिन्दोल का आभास और भी कम करना हो तो स्थाई के दूसरे चरण में मं ध। मं ग मं। ग ग। रे़ रे़ सा। ऐसा करना ठीक रहेगा। देखो यह सभी कृत्य कितने सरल हैं ? कोई भी कार्य अच्छी तरह समझ कर हम करने लगें तो वह अप्रिय न लगकर आनन्ददायक ही होता है। मूल तथ्य जिनकी समझ में अच्छी तरह आ जाता है, फिर उनके लिये ठीक-ठीक राग रूप व्यक्त करना बिल्कुल कठिन नहीं होता। हाँ, तो अब देखो पंचम राग के सम्बन्ध में मुख्य दो भेद मैंने तुमको बताये। (१) वह जिसमें पंचम लिया जाता है (२) जिसमें पंचम वर्जित होता है। पहले प्रकार पर अभी हमने विचार नहीं किया, दूसरे प्रकार की चर्चा हमने की है। मैंने तुमसे कहा था कि यह दूसरा प्रकार सोहनी अथवा हिन्दोल अङ्ग से गाने का प्रचार है, उसमें ललित का एक छोटा टुकड़ा

राग भेद के लिये सम्मिलित होता है, किन्तु उतने से ही वह राग पूर्ण रूप से ललित हो जायेगा, ऐसा नहीं समझना चाहिये। मैंने तुमको बताया ही था कि पंचम राग में रिषभ का सीमित प्रयोग कैसे और क्यों होता है।

प्र०—इस पंचम प्रकार में वादी स्वर तारषड्ज माना जाय तो उसका एकत्रित स्वरूप भली प्रकार आकर्षक होकर नहीं खुलेगा क्या ?

उ०—हाँ, तुम्हारा यह कहना ठीक है। वह समय भी उस स्वर के अनुकूल है। मेरे गुरु जी ने मुझे एक रहस्य विशेष रूप से ध्यान में रखने के लिये बताया था। उन्होंने कहा, पंचम का कोई सा भी प्रकार गाते समय जहाँ तक हो सके ललित की तरह उसमें दोनों मध्यम जोड़ कर नहीं लगाना बल्कि उन्हें अलग-अलग प्रयुक्त करना।

प्र०—यानी एक तो आरोह में और दूसरा अवरोह में, इस तरह ? नहीं—ऐसे नहीं, उन्हें भिन्न-भिन्न टुकड़ों अथवा तानों में लगाना चाहिये। इस युक्ति से राग में आयी हुई ललित की छाया कम होगी। अस्तु, अब हम पंचम के इतर प्रकार देखेंगे। मैं जो कहूं, उसे बहुत ध्यानपूर्वक समझो। पंचम राग ललितांग का एक प्रातः कालीन राग है, ऐसी अपने यहां धारणा पाई जाती है। इसलिये यह आवश्यक है कि उसे ललित से अलग करने की युक्ति प्रयुक्त की जाये। तुम उसे कैसे करोगे, देखूं तो ?

प्र०—पंचम स्वर स्वीकार किया जाये तो ललित दूर होगा, मैं तो ऐसा ही समझता हूँ ?

उ०—ठीक है। और दूसरी युक्ति दोनों मध्यम अलग-अलग लगाने की मैंने बतायी थी।

प्र०—पंचम राग में जो पंचम स्वर लगाया जायेगा, वह आरोह में या अवरोह में ?

उ०—तुम्हारा प्रश्न अच्छा है। बहुमत ऐसा है कि पंचम अवरोह में ही लगाया जाय। इस समय के बहुत से समप्रकृतिक रागों में यह स्वर अवरोह में ही लगाया जाता है उदाहरणार्थ देखोः—सा, रे़ रे़ सा, सां, सां, रें़ नि ध प, प, प मं ग, मं ध सां, रें़ नि ध मं ग रे़ सा। मं ध सां, सां, सां रें़ नि ध, मंध, निध, मंग, मं ध सां रें़ रें़ नि ध मं ग रे़ सा। यह कैसा दिखाई देता है।

प्र०—इसका उठान पहले तो हमको श्री राग के समान मालुम पड़ा, परन्तु आगे चलकर उस राग के सब नियम शिथिल हो गये। इसमें धैवत तीव्र है, अतः वहां श्री राग का तो प्रश्न ही नहीं पैदा होता ?

उ०—खूब समझे। यह प्रकार एक प्रसिद्ध गवैया ने 'पंचम' कहकर मुझे सुनाया था। जब इसे मैंने एक दूसरे गायक के सामने गाया तो उसने इसे "बसंत पंचम" कहा। तुम इस प्रकार को अपने संग्रह में रक्खो। पंचम न लगने वाले बसंत में तीव्र धैवत है तथा दोनों मध्यम होते हुए अवरोह में पंचम नहीं है। पंचम लगने वाले बसंत में धैवत कोमल है, यह तुम जानते ही हो। चतुर पंडित ने जो प्रकार कहा है वह इनसे भी अलग है, क्योंकि वह सम्पूर्ण होकर दोनों मध्यम वाला है तथा उसका वादी स्वर मध्यम है।

प्र०—ठीक है, क्योंकि उसमें ललितांग है। किन्तु अपनी संगीत परम्परा भी विचित्र है, इसमें इतने मतभेद और झंझट होने के कारण गायकों में यदि वाद-विवाद उत्पन्न होते हैं तो क्या आश्चर्य ? और फिर "सही" किसे कहा जायगा ?

उ०—तुम व्यर्थ ही घबरा गये। जो गायक अपना राग उत्तमता से गाते हुए उसके सब नियम भी समझा सकेगा तो वह अवश्य ही ठीक और सही माना जायगा। हां, उसके राग का स्वरूप रक्तिदायक अवश्य होना चाहिए। तुम्हारे ही सब नियम संसार भर में प्रचलित हों, ऐसी आशा तुम कैसे कर सकोगे? तुम अपने रास्ते चलो, वे अपने मार्ग से जाँयगे। अन्य विषयों में भी तो मतभेद चलते रहते हैं, फिर सङ्गीत में भी चलें तो क्या आश्चर्य है?

प्र०—नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। हमने तो वैसे ही अपने मनोविचार प्रकट किये थे। पहिले आपने पंचम राग के जो १०-१५ अच्छे-अच्छे प्रकार कहे थे, उन्हें कौन गायेगा और वे कैसे गाये जाँयेंगे? एक स्वर प्रतिकूल लगा कि राग बदला। पहिले कहे हुए प्रकार ग्रन्थकारों ने कैसे दिये हैं, उन्हें भी संक्षेप में आप कहेंगे क्या?

उ०—उनमें से कुछ कहता हूँ, सुनोः—

मायामालवगौलाच्च मेलाज्जातः सुनामकः।
ललितपंचमोरागः सन्यासं सांशकग्रहम्।
आरोहे तु पवर्ज्यं च पूर्णवक्रावरोहकम्॥
सा रे ग म ध नि सां। सां नि ध म प म ग रे सा।
मायामालवमेलाच्च पूर्णपंचमरागकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
आरोहे तु मवर्ज्यं चाप्यवरोहे निवर्जितम्॥
सा रे ग प ध नि सां। सां ध प म ग रे सा।
अधिकारिखरहरप्रियमेलात् सुनामकः।
रागः पंचम इत्युक्तः सन्यासं सांशकग्रहम्।
गवर्ज्यं वक्रमारोहेऽप्यवरोहे समग्रकम्॥
सा रे म प ध प नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।
सरसांगीमेलजातो दिव्यपंचमनामकः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते।
आरोहे त्ववरोहे च संपूर्णं वक्रमेव च॥
सा रे ग म प ध नि सां। सां नि ध प म ग रे सा।
झालवरालिमेलाच्च जातः कोकिलपंचमः।
सन्यासं सांशकं चैव सषड्जग्रहमुच्यते॥
प ध नि सा रे ग रे। सा नि ध प ध नि सा।
झालवरालिमेलाच्च जातो भूपालपंचमः।

गन्यासं गांशकं चैव गांधारग्रहमुच्यते ॥
निवर्ज्यं वक्रमारोहे गनित्यक्तान्यवक्रकम् ॥
सा रे रे॒ रे म प ध॒ सा । सा ध॒ प म ध॒ म रे सा ॥ रागलक्षणे॥
गांधारपंचमः सामवरालीमेलसंभवः ।
संपूर्णः सग्रहन्यासः सायंकाले प्रगीयते ॥
मेलात्सामवराल्यास्तु जातोऽयं भिन्नपंचमः ।
संपूर्णः सग्रहांशोऽपि सायमेव प्रगीयते ॥
वसंतभैरवीमेलजातो ललितपंचमः ।
संपूर्णः सग्रहन्यासः प्रातर्गेयः शुभप्रदः ॥
पूर्णपंचमरागोऽयं जातो मालवगौलतः ।
निवर्जनात् षाडवोऽयं षड्जन्यासग्रहांशकः ॥

मैं समझता हूं, इतने बहुत काफ़ी हैं। इनमें से कुछ प्रकार आसानी से गाये जा सकते हैं।

प्र०—खूब याद आई, आप हमको "ललितपंचम" बताने वाले थे, उसे अभी कहदें तो कैसा ?



ललितपंचम

उत्तर—हाँ, "ललितपंचम" और "पंचम" यह दोनों राग अलग-अलग हैं, यह तो तुम्हारे ध्यान में आया ही होगा। ललित पंचम में धैवत कोमल लगाते हैं और पंचम में तीव्र, इसी से रागभेद स्पष्ट होजाता है। अपने ग्रन्थकार ललित-पंचम को मालवगौड़ थाट में रखते हैं और उनका ऐसा करना ठीक भी है। अब पंचम और मध्यम स्वर का प्रश्न रह जाता है। चतुर पंडित कहता है:—

गौडमालवमेलोत्थो रागो ललितपंचमः।
आरोहे तु पवर्ज्यं स्यात् पूर्णवक्रावरोहकम्॥
मध्यमस्यैव बाहुल्यान्निश्रितं चित्तरंजनम्।
गानं चानुमतं रात्र्यां तृतीये यामके सदा॥
ललितांगालंकृतो यत्स्वीकृतो गायनोत्तमैः।
मध्यमावप्युभौ ग्राह्याविति लक्ष्यविदां मतम्॥
अवरोहे यथायोग्यं पंचमस्य प्रयोगतः।
गोपनं ललितांगस्य कुर्वन्ते गानकोविदाः॥

उसके कहे हुए यह लक्षण मुझे अच्छे प्रतीत होते हैं। मैंने भी यह राग ऐसा ही सुना है। पंचम में हमेशा थोड़ा-बहुत ललितांग होना चाहिए, यह विधान अब अपने यहाँ बहुसम्मत है। ललितांग होने के कारण दोनों मध्यमों का प्रयोग पण्डित ने ठीक ही बताया है। रागलक्षण ग्रन्थ का वर्णन मैंने पहिले कहा ही था, वह तुम्हारे ध्यान में होगा? वहां आरोह-अवरोह भी दिया हुआ था, ठीक है न?

प्र०—हां, वहां आरोह में पंचम वर्ज्य किया गया था, वह नियम अच्छा है, अतः हम उसे स्वीकार करेंगे। इस राग का स्वरूप स्वरों के द्वारा व्यक्त करके हमें दिखायेंगे क्या?

उ०—मुझे एक अच्छे गायक ने ललित पंचम में एक गाना सुनाया था, उसी के आधार पर तुमको यह सरगम बताता हूँ:—

ललितपंचम—एकताल

।   । ग   म । ग   रे । सा   नि । ध   नि ॥
सा   ग । ग   म । ऽ   म । म   मं । ऽ   म । म   ग ॥
×
म   ध । नि   सां । सां   रें । सां   नि । ध   प । मं   प ॥
×
मं   ध । प   मं ।

अन्तरा--

ग	म । धु	नि । सां	ऽ । सां	ऽ । सां	नि । सां	रें ॥
×						
सां	नि । धु	नि । सां	गं । गं	मं । गं	रें । सां	नि ॥
×						
धु	प । मं	प । ग	म । ग	रे । सा	ऽ । नि़	सा ॥
×						
रे	नि़ । सा	धु़ । नि़	सा । नि	सां । नि	धु । ग	म ॥

इस गीत में दोनों मध्यम साथ-साथ जुड़े हुए तुम देख रहे हो। मेरी समझ में, वहां का तीव्र मध्यम छोड़ दिया जाय तो अधिक हानि नहीं दीखती, क्योंकि वह बिलकुल गौण स्थान में है। अब यह दूसरा प्रकार देखोः--

सां, नि धु, प मं प, धु नि धु प, मं म, ग, म ग म, म, नि धु प, ग, मं ग रे सा, नि़ सा, म, म, सां, रें नि धु, नि धु प म, सां।

ग ग मं धु सां, नि सां, नि रें सां, सां, सां, नि धु नि, रें गं, रें सां, रें नि धु मं म, म, म ग, म नि धु मं म ग, मं ग रे सा, सा सा, म, म, सां, रें नि धु, नि धु, मं म।

प्र०--इसमें कई जगह हमें वसंत का आभास क्यों हुआ ?

उ०--इसमें कुछ तान वसंत की अवश्य हैं। एक बार एक गायक के सामने मैंने यह प्रकार गाया था, तो उसने इसे "वसंत पंचम" कहा। इसमें एक-दो जगह परज की छाया भी दिखाई देती है, परन्तु परज और वसंत इन दोनों रागों में मुख्य भाग ललित के नहीं हैं। पंचम राग गाने में ललितांग को खासतौर पर लिया जाता है, यह सिद्धान्त ध्यान में रखने योग्य है।

प्र०--वह तो मैं जानता हूं। उस अङ्ग को फिर पंचम स्वर लगाकर दूर करना पड़ता है, ठीक है न ?

उ०--ठीक समझे। अब हम तीव्र धैवत लगने वाले सम्पूर्ण पंचम की ओर लौटते हैं। इस प्रकार में दोनों मध्यम हैं और पंचम भी है। इसमें ललितांग को परिमाण से आगे नहीं जाने देना चाहिए, यही इसकी विशेषता है।

प्र०--इस पंचम राग का स्वरूप भी बतायेंगे क्या ?

उ०--वह ऐसा होगा, देखोः--ग, म ग रे सा, सा, म, म, ग, (कोई सा म, म मं म ग, ऐसा करते हैं) प, मं ध मं म, म ग, मं ध सां, सां, नि रें नि, प, मं ध मं म, म ग, प ग, रे सा। मं ध सां, सां, नि रें सां, गं रें सां, नि रें नि, मं ध सां, रें नि, प, मं ध, मं म, म, ग, प ग रे सा। कोई पंडित ऐसा भी मानते हैं कि पंचम राग में दोनों मध्यम साथ-साथ जोड़ कर न लिये जाँय तो अधिक अच्छा होगा। संगीत सार के लेखक ने अपने पंचम में तीव्र मध्यम सचमुच ही छोड़ दिया है। वह सोहनी में भी कोमल मध्यम ही लगाता है, किन्तु उसमें पंचम स्वर छोड़ देता है। इस कृत्य से राग भेद स्पष्ट हो जाता है।

प्र०—यह मत भी हम ध्यान में रखेंगे। इस प्रकार का रूप ऐसा होगा:—

सा, रे॒ सा, म, म, ग, प, म, प ग, म ध सां, सां, रें॒ नि ध, म ध सां, म, प ग, रे॒ सा। यह तो कुछ-कुछ स्वतन्त्र रूप ही होगा, ठीक है न? अच्छा, इसका अन्तरा स्वामी जी ने कैसा दिया है?

उ०—उन्होंने अपना पंचम ऐसा कहा है, देखो:—(स्थूल रूप)

नि॒ सा म, म, म ग, म, ग, प, म, प ग, ग, म ध सां, नि ध, म ध, नि ध म, म ग, प, म ग, ग रे॒ सा।

ग ग, म, ध नि सां, सां, रें॒ नि ध, म ग, म ध नि ध म, म ग, प, म, प ग, ग रे॒ सा॥

इसकी म ध संगति तथा जगह-जगह प ग संगति सुन्दर मालुम होती है, यह प्रकार मैंने भी सुना है, इसलिये इसे तुम ध्यान में रखना।

प्र०—मि० बनर्जी ने भी पंचम का स्वरूप बताया है क्या?

उ०—वे अपने पंचम राग में पंचम स्वर वर्जित करते हैं और एक कोमल मध्यम ही लेते हैं।

प्र०—तो फिर उनका रूप 'सा, रे॒ सा, म, म, ग, म ध, नि सां, रें॒ नि ध, म ध सां, नि ध, म, म ग, म ग रे॒ सा।

उत्तर—हां, वह ऐसा ही होगा। कोमल मध्यम के इस प्रकार में कोई रिषभ पूर्ण रूप से वर्जित करते हैं। अस्तु, अब और अधिक मत भेद नहीं हैं। तुम अपने ध्यान में २ प्रकार अवश्य रक्खो (१) हिंदोल अथवा सोहनी अङ्ग का (२) दोनों मध्यम, तीव्र धैवत और अवरोह में पंचम लगने वाला प्रकार। क्षेत्रमोहन स्वामी का प्रकार तुम्हें याद हो तो उसे भी बराबर ध्यान में रखना। अवरोह में यदि रिषभ हो तो मेरी राय में संधिप्रकाश रूप अधिक स्पष्ट होगा, अतः इस स्वर को तुम कभी वर्जित नहीं करना। 'सां नि ध, प' ऐसी तान गायक लोग पंचम में खास तौर पर छोड़ देते हैं, क्योंकि यह तान प्रथक राग की सूचना देती है। धैवत कोमल लगाने से 'ललित पंचम' अलग करने में सुविधा होती है। पंचम राग में किसी ने रिषभ छोड़ दिया तो उसकी परवाह मत करो, और ऐसे मतका आधार भी कहीं प्राप्त हो सकता है। यहां एक बात और कहे देता हूँ। कुछ गायक इस राग में पंचम स्वर का प्रयोग 'नि॒ सा, म, म, प ग, प, ध प म, प ग, मं ध सां' ऐसा करते हुए भी तुम्हें मिलेंगे, तथापि 'प ध नि सां' अथवा 'सां नि ध प' ऐसे प्रयोग की आशा नहीं।

प्र०—अब अपने ग्रंथकारों की सम्मति भी बताइये।

उ०—वह भी कहता हूँ:—

रत्नाकरे:—

मध्यमापंचमीजातः काकल्यंतरराजितः।
पंचमांशग्रहन्यासो मध्यसप्तकपंचमः॥

हृष्यकामूर्छ्नोपेतो गेयः कामादिदैवतः ।
चारुसंचारिवर्णश्च ग्रीष्मेऽह्नः प्रहरेऽग्रिमे ॥

शुद्ध पंचम की भाषा दक्षिणात्य बताई है और उसकी विभाषा आंधाली कही है। आंधाली का उपांग मल्हारी है। पहिले के ग्रन्थकार एक 'मल्हारी' भैरव थाट में वर्णन करते हैं:—

संगीतदर्पणे:—

रागः पंचमको ज्ञेयः पहीनः षाडवो मतः ।
प्रथमा मूर्छ्ना यत्र षड्जत्रयविभूषितः ॥
केचिद्वदंति संपूर्णः शृङ्गाररसपूरकः ॥
रक्तांबरो रक्तविशालनेत्रः ।
शृङ्गारयुक्तस्तरुणो मनस्वी ॥
प्रभातकाले विजयी च नित्यं ।
सदा प्रियः कोकिलमंजुभाषी ॥

सद्रागचंद्रोदये:—

पांशांतिकः पग्रहको रिरिक्तो-
सौ पंचमः प्रातरुपैति जन्म ॥

यह राग उस ग्रन्थ में मालवगौड थाट में कहा है, रिषभ वर्ज्य है।

रागमालायाम्:—

श्यामं तांबूलहस्तं करधृतकुमुदं मारवीमेलजातं ।
पत्रिं चारिं सुरेशं पिकमृदुवचनं वेणुकं पीतवस्त्रम् ।
लिप्तांगं यत्तपंकः शिरसि सुमुकुटं बालचंद्रार्कभालं ।
गायंतीहात्र नाके सकलसुरवराः पंचमं सुप्रभाते ॥

यहां भी थाट अपना भैरव है। रिषभ वर्ज्य है, समय प्रातःकाल है। सोमनाथ पंडित ने पंचम राग भैरवथाट (उनका मालवगौड थाट) में कहा है, जैसे:—

रागविबोधे:—

पंचम ऋषभविहीनः पांशन्यासग्रहो ह्युषसि ।

यह मत पुण्डरीक के मत से मिलता है।

लोचन पंडित ने पंचम का थाट गौरी माना है, अर्थात् वह अपना भैरव थाट ही हुआ। वह कहता है:—

मालवः पंचमः किं च जयंतश्रीश्च रागिणी ।
आसावरी तथा ज्ञेया देवगांधार एव च ॥
सिंधी आसवरी ज्ञेया ज्ञेया गुणकरी तथा ।
गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः ॥

संगीतपारिजातेः—

पंचमो रिपहीनः स्यात्तीव्रगः सादिमः स्मृतः ।
मध्यमन्याससंयुक्तो मध्यमांशेन शोभितः ॥

यह एक विलक्षण स्वरूप निकलता है, जो कुछ-कुछ तुम्हारे खमाज के दुर्गा जैसा दिखाई देगा। दुर्गा में निषाद कोमल ही है। इस प्रकार में मध्यम वादी होने से निराला रूप हो सकता है। Capt. Willard अपने ग्रन्थ के कोष्ठकों में पंचम के अवयव 'ललित और वसंत' अथवा (अन्यमत से) 'वरारी, गौड़ व गुर्जरी' अथवा 'गांधार, मनोहर व हिन्दोल' कहते हैं।

कल्पद्रुमेः—

ललितश्च वसंतश्च हिंदोलः पर्जसंज्ञितः ।
पंचमोभूत्सर्वं ऋतौ वसत गीयते ॥
पंचमगृहसंयुक्ता संपूर्णा पंचमस्वराः ।
पधनिसारेगमश्च हिंडोलवल्लभा स्मृता ॥

प प ध ध नि सा रे ग म प रे सा। म प ध सा ग रे सा नि ध प म ग रे सा।

तत्रैवः—

ऋषभांशग्रहन्यासः पंचमस्वरवर्जितः ।
शेषरात्र्यां प्रगीयते पंचमो राग उच्यते ॥

आगे ऐसा उदाहरण है:—रे म प ध नि सा ग म ध रे सा ग रे सा नि प म।

वसंतहिंदोलललितमिलि मालकोश पुनि ठान ।
षट राग सुर लेतही पंचम होय सुगान ॥

इस शास्त्र के आधार से "नाद विनोद" कार ने पंचम का आलाप ऐसा तैयार किया है:—प ग रे॒ सा, ध ध म म प प ध प ग, मं ध नि रें॒ नि ध मं ग रे॒ सा। अस्ताई। मं ध मं ध नि सां, सां गं रें॒ सां। नि रें॒ नि ध मं ग रे॒ सा, प प प ध प ग, नि रें॒ नि ध मं ग रे॒ सा, ग रे॒ रे॒ सा। अन्तरा।

संगीतकल्पद्रुमांकुरे:—

राग: पंचम एष सर्वविदितो युक्तो वसंतस्वरै: ॥
वादी मध्यम एव यत्र विलसत्संवादिषड्जो मत: ॥
आरोहे ऋषभं न संस्पृशति यो वर्ज्यर्षभोऽपि क्वचिद् ।
रात्रावंतिमयामके सुमतिभिर्मंजुस्वरं गीयते ॥

रागचंद्रिकायाम्:—

वसंतस्वरसंयुक्त आरोहे वर्जितर्षभ: ।
पंचम: समसंवादश्चतुर्थप्रहरे निशि ॥

चंद्रिकासारे:—

सब वसंतके सुर जहां चढत रिखब नहिं लाग ।
सम संवादीवादितें कहियत पंचम राग ॥

ये आधार सुन्दर हैं इसलिये इनको भी तुम ध्यान में अवश्य रखना ।

प्रश्न—अब कौनसा राग लेंगे ?



राग भंखार

उ०--अब "भंखार" और "भटियार" इन रागों को क्रमानुसार लेंगे। पहिले मैं भंखार के विषय में बोलूंगा।

इसकी दुर्मिल रागों में गणना की जाती है। इसका नाम तो बहुत लोगों ने सुना होगा; किन्तु इसे गाने वाले विरले ही मिलेंगे। मैं तो समझता हूँ कि यदि तुम गायकों से पंचम, भटियार और भंखार राग स्पष्ट लक्षणों से अलग-अलग दिखाने को कहो तो उनमें से अधिकतर भ्रम में पड़ जाँयगे। प्रातःकाल के समय 'सूर्यकान्त' थाट की प्रबलता रहती है, यह बात गायकों को विदित है ही, और ये राग भी उसी समय के हैं, ऐसा भी वे लोग सुनते रहते हैं। इसलिये वे ललित और बसन्त को बचाकर कुछ और मनोरंजक मिश्रण तैयार करके गाते हुए प्रायः हमें मिलते हैं। भंखार और भटियार इन रागों का प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन न होने से उनको नियमबद्ध करना आसान नहीं है।

प्र०—इनके स्थूल नियम प्रसिद्ध गायकों के गीतों के आधार से निर्धारित कराने पड़ते हैं। ठीक है न?

उ०—यह तो स्पष्ट है। मैं भी ऐसा ही कहने वाला था। मेरे गुरुजी ने इन रागों में जो गीत सिखाये हैं, उनके आधार से मैं तुमको इस राग के स्वरूप की जानकारी कराना चाहता हूं। भंखार और भटियार ये राग सन्धिप्रकाशोचित हैं, यह प्रायः सभी स्वीकार करते हैं। तो फिर सा, रे॒, ग, म, प इन स्वरों पर कोई आपत्ति करेगा, ऐसा नहीं जान पड़ता। अब प्रश्न केवल मध्यम धैवत का रह गया। कोई कहेगा हम दोनों मध्यम लगाते हैं और कोई कहेगा कि हम एक ही लगाते हैं।

प्र०--"एक ही लगाते हैं" ऐसा कहने वालों को कोमल मध्यम लगाना पड़ेगा न?

उ०—मैं तो ऐसा ही समझता हूं, क्योंकि प्रातःकाल के समय एक तीव्र मध्यम से ही कोई यह राग गायेगा, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता। उस समय कोमल मध्यम बिल्कुल न लगने वाला राग केवल विभास ही दिखाई देता है। उसका तीव्र 'म' धैवत के आश्रय से और पंचम गान्धार की सङ्गति के नीचे इतना दुस्सह नहीं हो सकता, किन्तु हमें इस राग के विषय में आगे बोलना ही है। एक तीव्र मध्यम लेने से ही सन्ध्याकालीन वातावरण उत्पन्न होगा, यह तुम जानते ही हो।

प्र०—तो फिर इन दोनों रागों में दोनों मध्यम लगाने का ही रिवाज हमें दिखाई देगा, ऐसा मानकर हम चलें तो ठीक रहेगा या नहीं?

उ०—मेरी राय में ऐसा करना ठीक ही होगा। भंखार और भटियार ये दोनों राग सम्पूर्ण माने जाते हैं।

प्र०—पंचम राग से इनका मिलाप होने की सम्भावना तो अवश्य होगी?

उ०--वह मैंने पहले ही कह दिया है। अब तो प्रश्न यह है कि ये सब राग अलग-अलग कैसे रक्खे जाँयगे? इस प्रश्न का उत्तर अब मैं देता हूं ठीक तरह से ध्यान दो।

पंचम राग में ललिताङ्ग स्पष्ट है, यह तुम जानते ही हो। वह ललिताङ्ग भंखार राग में नहीं आने देना चाहिये, यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त तुम अपने ध्यान में रक्खो।

प्र०--अर्थात् 'नि़ सा, म, म, म ग' ऐसा खुला मध्यम वाला टुकड़ा भंखार में नहीं आयेगा?

उ०—ठीक समझे। यह टुकड़ा न होने से मेरे बताये हुये पंचम के सभी प्रकार अलग हो जांयगे। ठीक है न? दूसरी बात, भंखार में वादी स्वर पंचम रक्खा जाय और बीच-बीच में प ग की सङ्गति हो। तीव्र धैवत से तीव्र मध्यम की सङ्गति बहुत सुन्दर मालूम होगी।

प्र०—यह एक बड़ी विलक्षणता मालूम देती है। यह कैसा रूप होगा? इसके स्वर हमें गाकर दिखायेंगे क्या?

उ०—यह देखो, दिखाता हूं—ग, प ग, रे॒ सा, नि़ सा, ग म प, प म प ग, मं ध मं ग, मं ग रे॒ सा, नि़ नि़, सा रे॒ ग, म ग, म ध मं ग, मं ग रे॒ सा। प, म प ग, प ग रे॒ सा, नि़, रे॒ ग, म ग, ग म ग, ग म ध मं ग, मं ग रे॒ सा, नि़ सा, ग म प, प, प म प ग, मं ध मं ग, प ग रे॒ सा, इत्यादि।

प्र०—यह क्या महाराज! यह सवेरे की पूर्वी है क्या? अब कहां है 'पञ्चम' और 'ललित'?

उत्तर—तुम भूलते हो। पूर्वी में कोमल मध्यम लगाकर 'नि़ सा ग म प' यह कैसे होगा? इस राग में 'प, म ग, मं ग रे॒ सा, नि़, सा रे॒ ग म ग, म ध मं ग, प ग रे॒ सा, प, म प ग, मं ग, रे॒ सा इत्यादि' यह तान बिलकुल स्वतन्त्र है। यह प्रकार अपने गुरू जी द्वारा बताये हुये गीत के आधार से मैंने कहा है। अब इसे मैं दुहराऊँगा नहीं।

प्र०--और अन्तरा?

उ०--अन्तरा ऐसा है--सा सा, ग म प, प, ग, ग म प ग, प ग रे॒ सा, सा रे॒ सा नि़, सा, रे॒ ग, म ग, म प, म प ग, प ग रे॒ सा। इत्यादि। इस राग में तुम्हारे लिये विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य भाग ये हैं, देखो--'प, म प ग, प ग रे॒ सा' 'म, प ग, म ध, म ग' 'मं ग रे॒ सा' यहाँ 'ध प' ऐसा टुकड़ा कितनी चतुराई से हटाया गया है, उसे देखो! 'प ग, रे॒ सा' इस टुकड़े से किंचित संध्याकालीन रागों की छाया उत्पन्न होगी, परन्तु आरोह और अवरोह में 'म प, प, म ग' 'म ध म, प ग' ये टुकड़े लगा कर कोमल मध्यम दिखाते ही सन्ध्याकाल के सारे राग दूर हो जांयगे। पूर्वी में 'ग म मं ग म ग' इस तरह से मध्यम का संयोग होता है, वह और भी अलग है।

प्र०—इस राग में हमको एकाध सरगम बता दें तो अच्छा होगा ?

उ०—कहता हूँ, लो।

स्थाई—त्रिताल

नि़ सा ग म । प ऽ ऽ म । प ग ऽ मं । ग रे़ सा ऽ ।
नि़ नि़ सा रे़ । ग ऽ म ग । म ध मं ग । प ग रे़ सा ॥

अन्तरा—

सा सा ग म । प ऽ प ऽ । म ऽ प ग । प ग रे़ सा ।
नि़ नि़ सा रे़ । ग ऽ म ग । ध मं ग प । ग रे़ सा ऽ ॥

इस सरगम से राग का केवल स्थूल रूप ही दीखता है, यह तुम समझते ही होगे ?

प्र०—मालूम होता है, इस राग का अन्तरा तार सप्तक में कभी नहीं जाता ?

उत्तर—मेरे गुरु जी की कही हुई चीज़ में वो नहीं जाता था, इसीलिये मैं भी इस सरगम का अन्तरा ऊपर नहीं ले गया। दूसरा एक गीत मैंने सीखा है उसका अन्तरा तार सप्तक तक जाता है।

प्र०—वह कैसे ?

उ०—ऐसा है—'मं ध सां, सां, रें़ सां, सां, म म, प ग, मं ध सां, रें़ नि ध, मं ग, प ग रे़ सा; सा सा, ग म प इत्यादि'

प्र०—भंखार में पञ्चम स्वर केवल अवरोह में ही आप लगाते हैं, यह तथ्य भी हमको ध्यान में रखना होगा, ठीक है न ?

उ०—हाँ! तो, मं प ग, मं ध, मं ग, प ग रे़ सा। सां, नि ध, मं ध, मं ग, नि़ सा ग म प, म, प ग, प ग रे़ सा। सा, रे़ रे़ सा, ग, म ग, मं ध मं ग, मं ध सां, रें़ सां, गं रें़ सां, मं गं रें़ सां, सां नि ध, म ग, प ग रे़ सा, नि़ सा ग म प। इस तरह से इस राग का विस्तार तुम आसनी से कर सकोगे।

प्रश्न—भंखार नाम कुछ विलक्षण-सा मालूम होता है। यह कोई बिलकुल आधुनिक नाम है ?

उ०—तुम्हारे प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर देना तो कठिन है; किन्तु मेरे गुरु ने ऐसा कहा था कि यह 'बाखरेज' शब्द का अपभ्रंश होगा। 'बाखरेज' नाम बहुत पुराना है। सोमनाथ और पुण्डरीक ने इसका जिक्र किया है। रागविबोध की टीका में सोमनाथ ऐसा कहता है—'देशाकारस्य समृद्ध्या बाखरेजः' यह एक मुस्लिम प्रकार है, ऐसा वह स्वीकार करता है। पुण्डरीक ने अपनी रागमाला में देशकार का वर्णन करते हुए इसका जिक्र किया है:—

जातोऽघोराख्यवक्त्रात् त्रिगतिगनिगमाः सत्रिपूर्णोऽत्ररागे
रक्तांगः पद्मनेत्रः सितगजगमनो बाखरोजस्य मित्रम् ॥

देखो! यहां भी बाखरेज का सम्बन्ध देशकार से है। "त्रिगतिग निगम" इस विशेषण से पूर्वी थाट का संकेत स्पष्ट मिलता है। भंखार को प्रातःकालीन राग मानने से इसमें दोनों मध्यमों की उपस्थिति ठीक ही है। यह समय सूर्यकान्त थाट का होने से तीव्र धैवत भी बिलकुल उचित है। भंखार और भटियार रागों में ललितांग का भेद रक्खा जाय तो ये राग अलग-अलग गाने में कठिनाई नहीं होगी। भंखार में केवल "ध ग" की सङ्गति होने से ही वह सन्ध्याकालीन राग नहीं होजायगा।

प्र०—उसे हम अच्छी तरह समझ गये हैं। पहले तो इस प्रकृति के राग ही संध्याकाल के नहीं हैं। पूरिया और मारवा की बाबत तो कुछ शंका है ही नहीं, क्योंकि इनमें पंचम बिलकुल नहीं लगता। वराटी में कोमल मध्यम नहीं है, और साजगिरी में दोनों धैवत हैं। इस राग को समकालीन रागों से बचाना चाहिये, यह सच है; फिर भी यह कृत्य अधिक कठिन नहीं दिखाई देता।

उ०—ठीक है। सोहनी और ललित ये राग तो पंचमहीन ही हैं। पंचम का जो पहिला प्रकार मैंने कहा था, उसमें भी पंचम वर्ज्य था।

प्र०—पंचम के अन्य प्रकारों में ललितांग है, इसलिये वे भी अलग ही रहेंगे, ठीक है न?

उ०—ठीक कहा। इस भंखार राग को प्राचीन ग्रन्थों का आधार मिलना तो सम्भव है ही नहीं। चतुर पण्डित ने इसकी बाबत कहा है:—

मारवा मेलके प्रोक्तो रागो भंखारनामकः।
आधुनिकं वदंतीमं केचिल्लक्ष्यविचक्षणाः॥
संपूर्णः पंचमांशः स्यादुत्तरांगप्रधानकः।
यामे तृतीयके रात्र्यां गानमस्य सुखप्रदम्॥
ईषत्स्पर्शो भवेदिष्टः शुद्धमस्याभिव्यक्तये।
रागस्यास्य समुद्धारे प्रवदंति मनीषिणः॥
मुक्तमस्य तिरोभावे कथं पुनः समुद्भवेत्।
तत्स्वरांशयुतो रागो भट्टिहारः सुलक्षणः॥

उस पण्डित का यह कथन बिलकुल सही है। और भी ऐसे दो-एक मत देखोः-

कल्पद्रुमांकुरे—

भंखाररागस्तु वसंतमेले।
संपूर्णरूपः खलु पंचमांशः॥
द्विमध्यमोऽसौ मृदुलर्षभश्च।
रात्रौ तृतीये प्रहरेऽभिगीयते॥

चंद्रिकायाम्:—

वसंतमेले झंखारः संपूर्णो मृदुलर्षभः ।
द्विमध्यमः पंचमांशस्तृतीयप्रहरे निशि ॥
जब वसंतके मेल में पंचमहूँ लग जाय ।
पस बादी संवादितें राग भखार कहाय ॥

चंद्रिकासार ।

प्र०—पूर्व की ओर इस राग का प्रचार कैसा है ?

उ०—उधर के ग्रन्थों में झंखार (अथवा भख्खार) कहा हुआ नहीं मिलता। कल्पद्रुम में ऐसा कहा है:—

भैरवो मालकोशश्च ललितो मिश्रिता यदा ।
भखारो जायते तत्र प्रातःकाले प्रगीयते ॥
भैरव मालवकोश मिलि और ललितही ठान ।
भखारा ही होत है प्रहर दिन चढ़े गान ॥

सुरतरङ्गिणी:—

फरोदस्त तिरवन मिले होइ बखार निहार ।
गौरी मिले बिरावरो संकर × × ॥

यह और एक छोटी-सी सरगम तीव्रा ताल में कहे देता हूँ:—

झंखार—तीव्रा.

नि॒ सा । ग म । प ऽ ऽ ॥ म ऽ । प ग । रे॒ रे॒ सा ।
ग ऽ । म ग । मं ध मं । ध मं । ग प । ग रे॒ सा ॥

अन्तरा—

सा सा । ग म । प ऽ प ॥ म ग । प ग । रे॒ रे॒ सा ।
नि॒ ऽ । सा रे॒ । ग ऽ ऽ ॥ म म । ग ग । प ऽ प ।
म ग । प ग । रे॒ रे॒ सा ॥

इस राग की पकड़ "प, म, प ग, प ग रे॒ सा, नि॒, सा रे॒ ग, म ग, म प म ग" यह समझ लो। कोई-कोई कहते हैं कि इस राग में ललित का उत्तराङ्ग "ध, मं ध, मं ग" यह चमकता हुआ रक्खा जाय, इस मतभेद को भी अपने ध्यान में रहने दो। यह सरगम इस तरह की नहीं है, यह तो स्पष्ट है ही।

प्र०—ठीक है। अब भटियार राग के कुछ लक्षण कह दीजिये ?

उ०—अब मैं ऐसा ही करने वाला था। भटियार अथवा भट्टिहार यह नाम प्रचार में कैसे आये, इसका निर्णय करना सहज नहीं है। दंत कथा में ऐसा कहा जाता है कि यह राग भर्तृहरि राजा ने प्रचलित किया था, इसीलिये उसका "भटियार" नाम पड़ा है। हमारे कुछ गायक भी कहते हैं कि ये राग भर्थरी राजा का बनाया हुआ है। तुम जैसी उचित समझो इसके लिये शोध करो, ऐसी ऐतिहासिक शोधों की अपने यहाँ अभी इतनी प्रवृत्ति नहीं है। यह शोध भी छोड़ो, अभी तो श्रुति स्वर जैसे महत्वपूर्ण विषय पर भी वास्तविक उपयोगी चर्चा इधर नहीं शुरू हुई। मुझे याद है कि लगभग दो-तीन वर्ष हुये, मेरे मन में यह भावना आई थी कि अपने यहां सङ्गीत के शास्त्रीय ज्ञान के प्रसारार्थ कोई सुव्यवस्थित संस्था स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न—पर हमारे यहां अनेक 'क्लब' और 'शाला' हैं न ?

उ०—वे तो हैं और वे अपने ढङ्ग से सङ्गीत की सेवा भी करते हैं, यह स्वीकार करता हूं, परन्तु मैं जो चाहता हूँ वह संस्था इससे कुछ निराली ही होती।

प्र०—वह कैसी ?

उ०—उसका उद्देश्य यह होगा कि सङ्गीत के सभी प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थ (जो उपलब्ध हों) संग्रह करके, उन्हें छापकर प्रकाशित करना, अनुवाद कराना, समय-समय पर मीटिंग करके विद्वानों द्वारा सङ्गीत-शास्त्र पर व्याख्यान दिलाना, सङ्गीत पर औपचारिक चर्चा करना, वर्तमान सङ्गीत पद्धति का इतिहास तैयार करना, उसकी राग-रचना सुव्यवस्थित करके ग्रन्थरूप में प्रकाशित कराना, विवादग्रस्त रागरूपों का निर्णय योग्य अधिकारी और प्रसिद्ध गायकों-वादकों की सम्मति से करना, बड़ी-बड़ी रियासतों में रहने वाले गुणी लोगों का सहयोग प्राप्त करना, गायक-वादकों के घरानों का इतिहास प्राप्त करना, प्रसिद्ध गायकों के समयानुकूल कार्यक्रम कराकर समाज में अप्रसिद्ध रागों को प्रचलित करना, उत्तम गायकों को संस्थाओं में नौकरी दिलाकर उनके द्वारा पद्धतिबद्ध शिक्षण दिलाना, गायक-वादकों के स्वरचित राग-नियम व उनकी लिपि का ज्ञान प्राप्त करना, संस्था के कार्यों का लेखा-जोखा रखना और उनको मासिक पत्र-पत्रिकाओं द्वारा प्रकाशित करना, आदि। मैं समझता हूं ऐसी कोई संस्था अभी तक प्रकाश में नहीं आई है। जिन लोगों ने केवल पेट भरने के लिये सङ्गीत-शिक्षण का कार्य चालू किया है, उनके द्वारा उक्त प्रकार की संस्था को चलाने की आशा नहीं की जा सकती। और जो सङ्गीत को केवल मनोरंजन का साधन समझते हैं, उनकी बाबत तो कुछ कहना ही व्यर्थ है।

प्र०—अच्छा, तो फिर आपकी उस योजना के बारे में क्या हुआ ?

उ०—मैंने यह विचार किया कि पहले हम दो तीन व्याख्यान श्रुति स्वरों पर दें, तत्पश्चात् उस संस्था के महत्व और उपयोगिता की बाबत शनैः शनैः प्रचार करें, तो उसका महत्व अपने संगीताभिलाषी मित्रों की दृष्टि में तत्काल आ सकेगा। व्याख्यान

के सम्बन्ध में मैंने अपने विचार एक सुशिक्षित और संगीतानुरागी मित्र के आगे रक्खे, किन्तु उन्होंने इस विषय में अपना जो स्पष्ट मत दिया, उससे मेरा उत्साह भंग हो गया।

प्र०—क्यों भला, ऐसी क्या बात उन्होंने कही ?

उ०—मैं उनको बिलकुल दोष नहीं देता। जो बात उन्हें मेरे हित में जान पड़ी, वह उन्होंने स्पष्ट कह दी। उन्होंने क्या कहा, यह अधिकतर उन्हीं के शब्दों में कहता हूँ। उन्होंने कहा, "मुझे संगीत में यद्यपि अधिक जानकारी नहीं है, किन्तु अपने यहां की स्थिति देखते हुये मैं तुम्हें कुछ सलाह दे सकता हूँ, तुमको पसन्द आये तो मानना, अन्यथा नहीं मानना। तुम्हीं विचार करो कि आज अपने यहाँ शास्त्रीय दृष्टि से संगीत की चर्चा करना कोई पसन्द करता है क्या ? चार विद्वान इकट्ठे होकर किसी संगीत विषय पर निष्पक्ष भावना से कुछ बोलते हुये तुमने कभी सुने हैं क्या ? पहले तो यही देखो कि यह विषय उत्तम रीति से सीखे हुये अपने यहाँ कितने निकलेंगे ! और जो कुछ थोड़े से निकलेंगे भी, उनमें परस्पर सद्भाव कितना होगा ? तब ऐसी परिस्थिति में तुम्हारा व्याख्यान सुनने वाला कौन निकलेगा ? इसका अच्छी तरह विचार तुमको करना पड़ेगा। जो समझदार हैं, वे भी बहुधा आयेंगे नहीं और जो आयेंगे वे एक तमाशा देखने की लालसा रखकर ही आयेंगे। उनके आगे तुमने अपनी श्रुति स्वरों की नीरस चर्चा रक्खी, तो मैं जानता हूँ, उनमें से अधिकतर बिलकुल निराश होकर उठ जायँगे। सम्भव है आकर फँस जाने के कारण कुछ देर तक जैसे-तैसे धैर्य धारण करके घड़ी की ओर देखते हुये बैठे रहेंगे। परन्तु दूसरे व्याख्यान में तो उनका दसवाँ भाग भी नहीं रहेगा, यह मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ। तुम्हारे परिश्रम की ओर देखने की उन्हें भला क्या जरूरत पड़ी है ? वे कहेंगे हमको किसी तरह कुछ मजा आना चाहिये। मिस्टर मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि लोगों को इकट्ठा करके उनकी जेब से पैसा निकालने का मार्ग कुछ और ही है। यदि तुमको आगे आना ही हो, तो कुछ युक्तियों से काम लेना पड़ेगा। वहाँ "दुनियाँ झुकती है" इस कथन को ध्यान में रखकर तुमको अपना बर्ताव रखना पड़ेगा। थोड़ी देर के लिये सोचो तो सही कि तुम्हारे श्रुति स्वरों का लोगों को क्या करना है ? वे २२ हों या २२०० हों, उन पर तुम्हारी चकल्लस सुनने को कौन बैठा रहेगा ? इतना अवकाश व इतना धैर्य है किसको ? लोग कहेंगे, ऐसी बातें चाहो तो पुस्तक के रूप में प्रसिद्ध करो। हम अवकाश मिलने पर उसको पढ़ लेंगे। यदि वैसे ही तुमने लिखा, तो भी उसे कौन पढ़ता है ? पर वे कहेंगे ऐसा ही। और तुम्हारे व्याख्यान में है क्या ? हाँ कुछ चटकदार नकल, कुछ मजेदार ठुमरी, कुछ बिलकुल असम्भव गप्प तुम अपने व्याख्यान के बीच-बीच में ले आवो, तो तुम्हें थोड़ा बहुत यश प्राप्त हो सकता है। आजकल धर्म, भाव और भक्ति इनकी इधर उधर खूब चर्चा होती है, इसलिये उनका जिक्र भी व्याख्यान के बीच-बीच में कर दो। नादब्रह्म, परब्रह्म, सच्चिदानन्द, एकाग्रता, प्रचीन ऋषि मुनि, देश के गत वैभव, प्राचीन पौराणिक महिलाओं का संगीत ज्ञान और आजकल की स्त्रियों की इस विषय में उदासीनता, मध्यकालीन संगीत की दुर्दशा, वर्तमान जागृति, देश की रुग्णः स्थिति आदि विषय तुम्हारे व्याख्यान में आने ही चाहिये। इनके साथ-साथ थोड़ी बहुत श्रुति स्वर मूर्छना सम्बन्धी बातें भी सुनाते रहें तो कोई तुम्हारी निन्दा करेगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता। और बीच-बीच में कुछ गाना बजाना हो, किन्तु वह बहुत उच्च कोटि का नहीं, अपितु

उसमें कुछ गवैयों की तरह का, कुछ नाटकी ढंग का, कुछ हरदासी, कुछ अंग्रेजी बैंड की शैली का और कुछ इधर-उधर का मिश्रण यदि हो, तभी श्रोतागण अपनी उदार वृत्ति उड़ेल सकेंगे। लोगों को नवीनता और पाश्चात्य शैली की टीप-टाप ही अधिक पसन्द आयेगी, ऐसा मुझे जान पड़ता है। इसी प्रकार यदि तुम बिलकुल सादा स्वदेशी पोशाक पहिन कर, गले में तुलसी की माला डालकर व्याख्यान को खड़े होगे, तो भी लोग आकर्षित होंगे। कहा भी है "पानी तेरा रंग कैसा ? जिसमें मिलाओ जैसा" संगीत से परमेश्वर की प्राप्ति अवश्य होती है। ध्रुवपद गाते समय सम्भव हो, तो जहाँ-तहाँ "मद् भक्ता यत्र गायंति" "चैतन्यं सर्व भूतानाम्" ऐसे श्लोक बीच-बीच में लगाते रहो। उसे गाने में और अर्थ समझाने में बहुत समय निकाला जा सकता है। श्रोताओं का ध्यान कुछ जमाने के लिये कोई "पॉपूलर" लोकप्रिय चीज भी होनी चाहिये। मेरे कहने का सार आप समझ रहे होंगे, संगीत पर कोरा तत्वज्ञान किसी को पसन्द नहीं आने का। अजी ! "सा रे ग ध" इनका इतिहास सुनने को कौन बैठेगा ? ऐसी बातों में आनन्द मालूम होगा हजारों में केवल दस-पाँच व्यक्तिओं को, बाकी के लोगों को इतने समय बैठकर क्या करना है ? अमुक पण्डित, अमुक स्थान पर, अमुक शताब्दी में हुआ, उसके स्वर अमुक थे, उसकी अमुक पद्धति थी, इन पचड़ों में क्या रक्खा है ? वह पण्डित हुआ, गया, मरा, तो अब उसका रोना-पीटना हमारे मत्थे क्यों ? ऐसा कोई कहे तो मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होगा। मैं तो एक मित्र व स्नेही के नाते तुमको ऐसी सलाह दूंगा कि लोग तुम्हारे व्याख्यान में आकर तुम्हारी संस्था के प्रति सहानुभूति दिखावें। ऐसा यदि तुम चाहो, तो मेरे कहे हुये कुछ प्रकार तुमको स्वीकार करने के सिवाय दूसरा उपाय नहीं। इस उपदेश के लिये मैं क्षमा माँगता हूँ। यद्यपि मुझे संगीत का ज्ञान नहीं है, तथापि संसार का अनुभव मैंने यथेष्ट प्राप्त किया है। अनेक लोगों का सत्संग लाभ भी मैंने प्राप्त किया है। हो सकता है, मेरे उक्त कथन में कुछ बातें तुम्हें अनुचित प्रतीत हों, परन्तु तुमको अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर ध्यान देकर चलना है। मैं कहता हूं, ऐसे अनेक लोगों के उदाहरण कदाचित् तुम्हारी दृष्टि में पड़ेंगे और सम्भव है उनमें से कुछ योग्य अधिकारी भी हों, फिर भी तुम्हारा उद्देश्य स्तुत्य है, यह मैं अस्वीकार नहीं करता। तुम कहते हो, ऐसी संस्था अपने शहर में नहीं है, यह तो सच है, परन्तु उसे शुरू करके कुछ समय तक निर्विघ्न चलाने को पैसे का साधन भी तो चाहिये और पैसे का प्रश्न आते ही देने वालों की रुचि की बात सामने आयेगी। आजकल समय की गति की ओर आँखें बन्द करके चलने से कोई सफल होगा, ऐसा मुझे नहीं जान पड़ता बाबा !"

प्र०—उनकी यह बातें आपको कैसी लगी होंगी ?

उ०—नहीं-नहीं, मुझे उनके उक्त कथन पर क्रोध बिलकुल नहीं आया। मुझे ऐसा कार्य करने की इच्छा नहीं थी और पैसा बटोरने की तो कल्पना भी न थी। मैंने सोचा था कि मेरे व्याख्यानों से अपने सुशिक्षित लोगों में इस विषय की जिज्ञासा उत्पन्न होकर संगीतोन्नति को थोड़ी बहुत मदद मिलेगी; किन्तु उनके विचारोंको सुनकर मेरा वह भ्रम दूर हो गया और मैंने अपना इरादा उसी दम बदल दिया। अजी, व्याख्यान सुनने को आने वाले श्रोताओं की कुछ मत पूछो। वे ऐसा भी कह सकते हैं कि व्याख्यान सुनते

सुनते हम ऊब गये हैं, अब थोड़ा नाच भी होना चाहिये। तो उनकी यह इच्छा कैसे पूरी की जायगी! लोगों को किसी तरह खुश करके उनके पैसों का अपने को दुरुपयोग नहीं करना है। जिस चीज का ग्राहक नहीं, उसे बाजार में रक्खो ही मत, यही चतुराई का मार्ग है। फिर तो मैंने अपने मन में यही निश्चय किया कि संगीत विषय में अच्छे गुणी लोगों से हमने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है, उसे यथाशक्ति और यथा मति ग्रन्थ रूप से ही लिख रक्खें, तो कभी न कभी किसी न किसी रूप में उसका प्रयोग होगा ही। उसी से हमारे समाज की उचित सेवा हो सकेगी। अस्तु, अब अपने छोड़े हुये विषय की ओर लौटना चाहिये।

प्र०—हाँ, भटियारी के बारे में आगे चलने दीजिये।

उ०—"भटियारी" का नाम आने से ही तो यह विषयान्तर बीच में हुआ। क्षेत्रमोहन स्वामी इस राग पर अपनी टिप्पणी में कहते हैं कि "भटियारी" राग प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में नहीं मिलता, इसे विक्रमादित्य राजा के भाई भर्तृहरि ने प्रचलित किया, ऐसी दन्त कथा है। James Prinsep साहेब के "Indian Antiquities" ग्रन्थ में कहे अनुसार भर्तृहरि राजा ईसा की दूसरी शताब्दी में हुआ।

प्र०—तो यह राग बहुत प्राचीन होना चाहिये, फिर भी यह संस्कृत ग्रन्थों में नहीं, यह आश्चर्य की बात है।

उ०—स्वामी ऐसा ही कहते हैं, परन्तु यह राग नाम अपने "राग तरंगिणी" में स्पष्ट है। "रत्नाकर" में वह नहीं दिखता। तरंगिणी में भटियारी का थाट गौरी कहा है। हम इसमें धैवत तीव्र लगाते हैं, तथापि यह सन्धिप्रकाश रूप है, यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है। एक गायक ने दोनों धैवत लगाकर यह राग गाया था, ऐसी मुझे याद है। मेरे गुरु इसमें तीव्र धैवत ही लगाते थे। उनका मत "लक्ष्यसंगीत" से मिलता है। लोचन पण्डित कहता है :—

रामकरी तथा गेया गुर्जरी बहुली तथा।
रेवा च भटियारश्च षट्रागश्च तथोत्तमः॥

× × ×

गौरीसंस्थानमध्ये तु एते रागा व्यवस्थिताः॥

अब हम इस राग के विभिन्न अङ्गों का थोड़ा-थोड़ा निरीक्षण करते हैं। इस राग में दोनों मध्यम बड़ी खूबी से लगाये जाते हैं। सन्धिप्रकाश राग होने के कारण इसमें रि कोमल और ग नि तीव्र होंगे ही। प्रातःकाल का राग होने से कोई इसका थाट सूर्यकान्त कहे, तो उसमें कुछ भी विसंगति नहीं है। थोड़ी-सी रात्रि शेष होने के कारण वहाँ तीव्र मध्यम की उपस्थिति भी अपने साधारण नियम के अनुकूल ही होगी। ऐसे समप्राकृतिक अथवा प्रातःकालीन अनेक रागों में "मं ध सां" अथवा "मं ध नि सां" इस तरह से अन्तरा शुरू करने में आता है, इसे ध्यान में रक्खो। भटियारी का मिश्रण

झंखार से न होने पावे। झंखार में पंचम वादी होता है, यहाँ कोमल मध्यम का विशेष महत्व है। यह मध्यम विभिन्न स्थानों पर आगे रखने से कहीं-कहीं ललिताङ्ग तुम्हें दिखाई पड़े, तो आश्चर्य नहीं, परन्तु इस राग में 'प म' 'ध प म' 'प ग' ये टुकड़े ऐसी विलक्षणता से लगाये जाते हैं कि उनका सामूहिक परिणाम बिलकुल स्वतन्त्र हो सकता है।

प्र०—इस राग के विषय में चतुर पण्डित का क्या मत है ?

उ०—वह कहता है:—

गमनश्रममेलोत्थो भट्टियारः प्रकीर्तितः ।
संपूर्णो मध्यमांशोऽसौ चरमांगविभूषितः ॥
मध्यमोऽत्र भवेन्मुक्तस्तत्रैव न्यास ईरितः ॥
प्रयोगस्तीव्रमध्यस्यानुलोमे रात्रिसूचकः ।

प्र०—भटियारी में कोई-सी सरगम कहेंगे क्या ?

उ०—हाँ, कहता हूं:—

भटियार—झंपाताल

सा सा । ध ध प । म म । म प ग ।
×
मं ध । सां ऽ सां । रें नि । ध ध प ।
सां सां । नि ध ध । ध ध । नि प म ।
म म । ध प म । प ग । रे रे सा ॥

अन्तरा—

मं ध । सां ऽ सां । सां ऽ । सां रें सां ।
×
सां सां । रें गं रें । सां ऽ । नि ध प ।
प ध । सां ऽ सां । रें नि । ध प म ।
म म । ध प म । प ग । रे रे सा ॥

प्र०—यह रूप कुछ विचित्र-सा ही लगता है महाराज। यह सुन्दर है, अतः सभी को प्रिय मालूम होगा। इसमें 'फिरत' किस प्रकार की जायेगी ?

उ०—हमको मध्यम बढ़ाना है, तो उस स्वर की 'बढ़त' ऐसे की जायगी, देखो—सा, ध ध, प म, म, प ग, सा, म, म प ग, ध सां ध, प म, म प ध सां, नि ध, प म, म प ग, रे सा; ध प म, प म, नि ध प म, रें सां, नि ध प, प ध सां, रें सां, नि ध प म, ग म, प ग, रे सा; सा रे ग, म, प म, ध, प म, सां रें गं रें सां, रें सां, ध प म, प ग, रे सा, ध प म।

यहाँ "तात मेल" यानी देशकार का थाट होगा। वह अपना पूर्वीथाट होगा। इस विभास में पंचम वर्ज्य है, उधर तुम्हारा लक्ष्य गया ही होगा। यह प्रकार हमें मान्य नहीं होगा।

राग मंजरी में ऐसा कहा है:--विभासः सत्रिकः पूर्णः पहीनः शुद्धमादिकः ॥

नृत्य निर्णयेः—औडुवो मनिहीनत्वाद्विभासो गादिरिष्यते।

प्र०—पुण्डरीक ने भिन्न-भिन्न प्रकार कहे हैं, ऐसा माना जा सकता है क्या ?

उ०--हाँ, ऐसा ही मानना ठीक होगा, सुरतरंगिणी में कहा है:--

कहे बिलावल गूजरी आसावरि पुनि संग।
ऐसे कहत विभासको इनसों मिल नित अङ्ग ॥
देशकार को अंश ले धनासिरीको अंश।
बहुल विरारी अंश ले गाय विभास प्रशंस ॥

संगीत कल्पद्रुमकार कहता है:--विभास अरुणोदयसमे कुक्कुट पछि उचराय।

"राधागोविन्द संगीतसार" में प्रतापसिंह कहता है:—"शर्द काल के सम्पूरन चन्द्रमासों जाको मुख है। गौरो जाको अंग है। रंग बिरंगे वस्त्र पेहेरे है। चंचल जाके नेत्र हैं। प्रीती में मग्न है। और केसरी को रंग जाके भाल में है। फुलन के माला जाके कण्ठ में विराजे है। मणिन के जड़ाऊ आभूखन जाके कण्ठ में हैं। मन मान्यो विहार करे है। हाथ में सूवा को पढ़ावे है। तरुण अवस्था है। अधरामृत चूवे है।" यह वर्णन उसने रागमाला से ही लिया होगा, ऐसा मुझे संदेह होता है। वहाँ का तीसरा चरण समझ में न आने के कारण उसने छोड़ दिया है जबकि वही उपयोगी चरण था।

प्रश्न--उसने विभास के स्वर कैसे कहे हैं ?

उत्तर—उसने आलापचारी ऐसी दी है:--

रे ग रे नि रे ग। प ग मं ध मं ग।
रे सा रे सा। मं ध (अन्तर) सा

इस प्रकार में तीव्र रिषभ और "उतरी" निषाद ये स्वर कैसे आये, सो समझ में नहीं आता। कदाचित् वे प्रकाशकों की गलती से आये हों ?

उत्तर की ओर के एक उर्दू ग्रन्थ में विभास के स्वर ऐसे दिये हैं:—

सा, कोमल रे, शुद्ध ग, (म वर्ज्य) प शुद्ध, ध शुद्ध, नि वर्ज्य।

हम दो प्रकार का विभास मानते हैं, यही उत्तम पक्ष मुझे जान पड़ता है। भैरव-थाट का विभास हम म नि हीन औडव मानते हैं और इस मारवा थाट का विभास हम संपूर्ण मानते हैं, यह आवश्यक तथ्य ध्यान में रखकर चला जाय तो बस।

क्षेत्र मोहन स्वामी विभास में रे, ध तीव्र मानते हैं और मध्यम वर्ज्य करते हैं। वे अपना प्रकार ऐसा बताते हैं:--

सा रे ग प, प ध, प, ध नि ध, प, सां, प ध नि ध प, ध प, ग प ग रे सा, नि नि सा, रे सा। अस्ताई।

ग ग प ध सां, सां रें सां नि सां नि रें गं, पं गं, रें गं रें सां, ध नि ध प, ग रे ग प ध सां, प ध नि ध प, ग प ग रे सा, नि़ नि़ सा, रे सा। अन्तरा।

नादविनोदकार विभास में निषाद वर्ज्य करता है, परन्तु रे कोमल और म ध तीव्र मानता है। उसका उदाहरण ऐसा है:—सा, ध़ सा, रे॒ प ग रे॒ सा, सा ध ध प, ध, सा ध ध प, ग ग रे॒ सा, सा रे॒ ग ग रे॒ रे॒ सा। अस्ताई। ग ग प प, मं ध प ध, सां ध सां ध प मं ग रे॒ सा, ध प ग ग रे॒ रे॒ रे॒ सा। अन्तरा।

मि० बनजी साहेब क्षेत्रमोहन स्वामी के मतावलंबी हैं।

Capt. willard द्वारा दिये हुये कोष्ठक में विभास के घटक अवयव 'बिलावल, गुर्जरी और आसावरी' मिलते हैं।

प्रचलित प्रकारों के समर्थक अन्य आधार मिलने संभव न होने के कारण अपने अन्य ग्रन्थमत ढूंढने की तुम्हें आवश्यकता नहीं।

प्रश्न—अब यदि आपकी आज्ञा हो, तो इस मारवा थाट के राग हमारे ध्यान में किस प्रकार आये हैं, उन्हें संक्षिप्त रीति से एक बार सुना दें क्या ?

उ०—हाँ, ऐसा करो, तो मुझे संतोष ही होगा।

प्र०—अच्छा, तो फिर सुनिये—इस थाट में हमने कुल बारह राग सीखे। सुविधा के लिये इन बारह रागों के दो वर्ग किये गये; (१) सायंगेय राग और (२) प्रातर्गेय राग। मारवा, पूरिया, जैत, मालीगौरा, वराटी और साजगिरी ये सायंगेय राग हैं। इन सायंगेय रागों के पुनः दो वर्ग ऐसे होंगे, (१) पंचम लगने वाले (२) पंचम वर्ज्य। मारवा और पूरिया, ये पंचम न लगने वाले राग हैं। साजगिरी में दोनों मध्यम आने से इतर पाँच रागों से वह सहज ही अलग होता है। मारवा और पूरिया ये राग हम किस तरह अलग रक्खेंगे, सो देखिये:—मारवा में 'रे ध' अथवा किसी के मत से 'ग ध' सम्वाद है, पूरिया में गनि स्वर-सम्वाद है। मारवा में 'ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा, रे॒ नि़ ध़, मं़ ध़ सा, रे॒ ग, ध मं ग रे॒, सा' ये स्वर समुदाय हम अच्छी तरह तैयार करने वाले हैं। इस राग में ऋषभ पर वक्रत्व रखने से वह अधिक खुलता है, ऐसा आपने कहा था। 'ध मं ग रे॒, ग मं ग रे॒, सा' इस पकड़ से भी यह राग स्पष्ट पहिचाना जा सकता है। पूरिया में 'ग, नि़ रे॒ सा, नि़ ध़ नि़' 'मं ग, मं रे॒ सा' इतने स्वर ठीक कहते बने कि काम हुआ। पूरिया राग में 'नि़ ध़ नि़' यह टुकड़ा बहुत ही विचित्र है, इसी तरह उसमें 'नि़ रे॒' तथा 'नि मं' यह सङ्गतियाँ श्रोताओं का ध्यान तुरन्त आकर्षित करती हैं। मारवा का उत्तराङ्ग प्रबल हुआ, तो पंचम राग का आभास होगा और पूरिया के उत्तराङ्ग की प्रधानता होने से सोहनी दीखेगी। जेत और जेतकल्याण ये दो भिन्न-भिन्न राग समझे जाँयगे। इन दोनों ही में म नि वर्ज्य हैं, परन्तु उनके थाट अलग-अलग होने से गड़बड़ होने का भय नहीं।

जेतकल्याण में पंचम वादी है और ध बिल्कुल दुर्बल है, अतः भूपाली और देशकार सहज ही दूर हो सकते हैं। उसका 'प, प ध ग, प, ध प रे, सा' यह भाग बिलकुल स्वतन्त्र है। जेत के आरोह में ऋषभ वर्जित करने से उसका स्वरूप बहुत ही खुलता है। 'सा, ग प, प, सां, प ध ग, प ग, रे॒ सा' ऐसा प्रकार कोई गायेगा, तो कोई जेत सम्पूर्ण

भी गायगा, परन्तु उसमें पंचम बढ़ाकर राग-भेद उत्तम सँभालेगा। जेत, मालीगौरा और वराटी रागों में झाँकते हुये श्री अथवा गौरी अङ्ग श्रोताओं को दिखाई देने सम्भव हैं। पूरिया, मारवा और साजगिरी इन रागों में पूरिया अङ्ग दीखेगा। जेत में सारी खूबी धैवत को मर्यादित रखने में है। मारवा थाट के सायंगेय रागों में म, नि वर्ज्य करने वाले दूसरे राग हैं ही नहीं, इसलिये औड़व जेत तो स्वतन्त्र ही रहेगा। कोई गायक जेत में दो ऋषभ और दो धैवत लगाते हैं, यह भी आपने कहा था, उसे भी हम ध्यान में रखने वाले हैं। मालीगौरा में पंचम है, अतः पूरिया और मारवा तो दूर हो गये, म, नि वर्ज्य नहीं है, अतः औड़व जेत तो होगा ही नहीं। आरोह में रे ध स्पष्ट है, इसलिये सम्पूर्ण जेत भी पृथक रक्खा जा सकता है। मालीगौरा दो तरह से गाते हैं, ऐसा भी आपने कहा था। एक प्रकार का स्वरूप पंचम अवरोह में लगाकर गाये हुए पूरिया के समान दीखता है और दूसरा प्रकार श्री और मारवा इनका मिश्रण दीखता है, ऐसा आपने कहा था। यह दूसरा प्रकार प्रायः मन्द्र और मध्य स्थान में गाते हैं। वराटी का स्वरूप बहुत ही चमत्कारिक है, उसमें वह 'प ध ग, प, ध मं ग, रे॒ ग, मं ग रे॒ सा' भाग हम खास तौर पर सिद्ध करके रक्खेंगे।

वराटी में गांधार वादी है और धैवत सम्वादी है, अतः जेत और मालीगौरा उससे पृथक ही रहेंगे। धैवत आगे रखने से मारवा जान पड़ेगा, पर पंचम स्पष्ट होने से उसका सन्देह बिलकुल नहीं रहेगा। वराटी में पूर्वाङ्ग यदि उत्तम न संभाला गया, तो उसी दम विभास का स्वरूप सुनने वालों के समक्ष खड़ा हो जायगा। वराटी अच्छी तरह पूर्वी अङ्ग से गायें, तो मालीगौरा बिलकुल दूर रहेगा, ऐसा आपने कहा ही था। वराटी गाते हुये मध्य स्थान के आरोह का निषाद दुर्बल रखने की हमेशा सावधानी रखनी होगी, यह भूलने का काम नहीं है। साजगिरी में दोनों मध्यम हैं, अतः उसका स्वरूप स्वतन्त्र ही है। उसमें पूर्वी और पूरिया इनका योग जो आपने कर दिखाया वह हमको बिलकुल विलक्षण मालूम पड़ा। उसमें 'ग मं, नि नि मं ध ग, ग मं, ग मं, प मं ग रे॒ सा' यह तान जो आपने ली, उसे हम बहुत सावधानी से तैयार करने वाले हैं। इस प्रकार ये छः सायंगेय राग हुये। अब प्रातःकाल के छः राग हम कैसे ध्यान में रक्खेंगे, वह देखियेः—

सोहनी राग सवेरे की पूरिया है, ऐसा समझा जाता है। उसमें तार षडज खूब चमकता हुआ रखना चाहिये। सोहनी ध्यान में रखने के लिये 'मं ध नि सां रें॒ रें॒ सां, नि ध नि सां, नि ध, ग' यह अच्छी तान है। कोई तो 'नि ध नि ध सां, नि ध, ग' इसे सोहनी की पकड़ ही समझते हैं। मध्यम सम्बन्धी मत-भेद जो आपने कहे, वह सब हमारे ध्यान में हैं। सोहनी में निषाद आगे लाते जाँय, तो हिंदोल, मारवा, पंचम आदि प्रकार दूर होंगे। ललित यह बहुत ही प्रसिद्ध सवेरे का प्रकार है। इसमें दोनों मध्यम युक्ति पूर्वक साधने और मध्यम धैवत सङ्गति भली प्रकार संभालने में सारी खूबी है। 'नि॒ रे॒ ग म, मं म, ग, मं ध, मं म ग' यह तान जिसको सध जायगी उसे ललित अच्छी तरह से गाते बनेगा, यह खुशी से कहा जा सकता है। ललित का धैवत-सम्बन्धी मत-भेद आपने कहा था, उसे भी हम ध्यान में रखने वाले हैं। पूर्व की ओर इस राग में पंचम लगाने का व्यवहार है, ऐसा भी आपने कहा था। हम आपके यहाँ

के प्रचार के अनुसार वह स्वर वर्ज्य ही मानेंगे। सायंगेय रागों के समान प्रातर्गेय रागों के भी दो वर्ग किये जा सकते हैं। सोहनी और ललित ये राग पंचम वर्जित होंगे और पंचम, भंखार, भटियार और विभास ये पंचम लगने वाले राग होंगे। पंचम के भिन्न-भिन्न प्रकार हमको आपने बताये हैं, उनमें से दो तीन हम खास तौर पर ध्यान में रखने वाले हैं। पहला, हिंदोल अथवा सोहनी अङ्ग का बिलकुल सहज है, उसमें 'नि सा, म, म, म ग' यह टुकड़ा सम्मिलित करने की वह युक्ति अच्छी है। उसके योग से हिंदोल मारवा, सोहनी वगैरह राग सहज ही दूर किये जा सकते हैं। इस प्रकार को ललित से अच्छी तरह दूर रखना चाहिये। आरोह में ऋषभ छोड़ देने से अथवा दोनों मध्यमों का संयोग न करने से ललित सहज ही अलग होगा। ललित में मध्यम वादी है और पंचम राग में तार षड्ज वादी है। पंचम स्वर लगने वाला सम्पूर्ण प्रकार आपने कहा है, उसमें भी ललितांग है, परन्तु उसका प्रमाण सावधानी से सँभालना होगा। इस प्रकार से पंचम स्वर केवल अवरोह में रक्खा जायगा, उसी तरह ऋषभ स्वर भी अवरोह में लगाने से राग को अलग करने में अधिक सुविधा होती है। कोई गायक रे, प स्वर आरोह में न लगाने का नियम पालन नहीं करते, ऐसा भी आपने कहा था, उसे भी हम लक्ष्य में रखने वाले हैं। 'ललित पंचम' को हम एक स्वतन्त्र प्रकार मानकर भैरव थाट में रखेंगे। उसमें ललितांग रख कर पंचम स्वर केवल अवरोह में लगायेंगे। भंखार राग में ललितांग न होने से उसे सहज ही स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। उसमें पंचम वादी है और 'प ग' की विचित्र सङ्गति है। 'नि सा ग म प, म, प ग, मं ध मं ग, प ग रे सा' यह तान हम खास तौर पर याद करके रखने वाले हैं। भंखार में भी पंचम आरोह में न लगाना, ऐसा आपने कहा था। भटियार राग में ललितांग होने से वह भंखार से सहज ही पृथक हो जाता है। यदि दोनों मध्यम उसमें हैं तो एक के बाद एक, इस प्रकार नहीं लगाना, ऐसा आपने सूचित किया था, वह बात हमारे ध्यान में है। भटियार में 'ध, प, म, प ग, मं ध सां, सां नि ध प म, प ग, रे सा' यह तान बहुत ही चमत्कारिक लगती है। इस राग में मांड राग का कुछ-कुछ आभास श्रोताओं को कहीं-कहीं होगा, इस तरह भंखार में अथवा उस समय के दूसरे किसी भी राग में नहीं हो सकता। इस राग में 'प ग' सङ्गति वैचित्र्य दायक है। विभास में कोमल मध्यम बिलकुल नहीं है, अतः वह उस समय के अन्य पांच रागों से पृथक हो ही गया। इस राग में 'प ग' और 'मं ध' यह सङ्गति ध्यान में रखने योग्य है। 'प ग प, प ध, मं ध मं ग, प ग रे सा' यह तान हम अच्छी तरह तैयार करके रखने वाले हैं। विभास में वादी धैवत है, इसलिये उसका स्वरूप बहुत ही गम्भीर हो सकता है। बीच-बीच में पंचम पर रुकने से बहुत सुन्दर परिणाम होगा। वहां किसी को थोड़ी-सी देसकार की झलक दीखेगी, परन्तु उस राग का नियम बिलकुल स्वतन्त्र है।

उ०—शाबाश! अब मेरी चिन्ता दूर हुई। पूर्वी और मारवा थाट के राग यद्यपि बहुत ही मनोरंजक हैं, तथापि उन्हें उत्तम रीति से समझ कर ध्यान में रखने के लिये विद्यार्थियों को बड़ी ही अड़चनें पड़ती हैं। तुम इनको अच्छी तरह समझ गये, यह देख कर मुझे संतोष होता है। प्रिय मित्र! अब आज अपना संभाषण हम यहीं रोक देते हैं।

* समाप्त *


CENTRAL ARCHAEOLOGICAL
New Delhi
LIBRARY